UGC-CARE List-Social Sciences

ISSN 0974-0074

# राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा

**National Peer Reviewed Journal of Social Sciences**

वर्ष 22 अंक 2

जुलाई–दिसम्बर, 2020

**समाज विज्ञान विकास संस्थान**

**बरेली (उ.प्र.)**

## इस अंक में


| | | |
|---|---|---|
| 1. | **गांधी के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता**<br>प्रोफेसर तपन कुमार शांडिल्य | 1–8 |
| 2. | **पारम्परिक कुम्भकारी कला के विविध आयाम – गोरखपुर की टेराकोटा कलाकृतियों के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन**<br>सुश्री पल्लवी सोनी | 9–18 |
| 3. | **मैनपाट (फेंडलिंग) तिब्बती शरणार्थी सेटलमेंट, छत्तीसगढ़ में आर्थिक गतिविधियां एवं पलायन की समस्या**<br>ग्रेट गुलशन<br>डॉ. मीताश्री श्रीवास्तव | 19–26 |
| 4. | **कार्यस्थल पर लैंगिक असमानता से शिक्षकों की कार्य संतुष्टि और तनाव के स्तर पर प्रभाव**<br>डॉ. रंजना कुमारी<br>डॉ. ऊषा | 27–34 |
| 5. | **राजस्थान के राजसमंद जिले के मार्बल उद्योग में कार्यरत श्रमिकों की प्रकृति एवं समस्याएँ**<br>डॉ. नेहा पालीवाल<br>भरत सिंह राव | 35–45 |
| 6. | **उत्तर भारत में व्यक्तिगत भूमि दानों का आभिलेखिक अध्ययन (छठी शताब्दी ईसवी से 12वीं शताब्दी ईसवी तक)**<br>डॉ. शोभा मिश्रा | 46–53 |
| 7. | **आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद के उत्थान की प्रक्रिया का ऐतिहासिक विश्लेषण**<br>डॉ. चन्दन कुमार | 54–59 |
| 8. | **सांख्यदर्शन सम्मत कार्यकारणवाद : एक समीक्षात्मक विवेचन**<br>मोहन सिंह भदौरिया | 60–66 |
| 9. | **मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्यों की जनांकिकीय संरचना में जन्म दर एवं मृत्यु दर की प्रवृत्तियों का एक तुलनात्मक विश्लेषण**<br>डॉ. राजकुमार नागवंशी | 67–73 |
| 10. | **उत्तर प्रदेश में आपदा प्रबन्धन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन**<br>भूपेन्द्र प्रताप सिंह<br>डॉ. रूपेश कुमार सिंह | 74–82 |
| 11. | **मध्य प्रदेश के श्योपुर जिले में जनजातीय आजीविका समस्या का प्रबंधन**<br>मनीष त्यागी<br>डॉ. सौभाग्य रंजन पाढ़ी | 83–88 |

| | | |
|---|---|---|
| **12.** | **वैश्वीकरण और आधुनिक भारतीय समाज की चुनौतियाँ**<br>डॉ. मनीष सिंह | **89–97** |
| **13.** | **संग्रह विकासः पुस्तकालय पेशेवर के लिए कठिनाइयाँ और समाधान**<br>डॉ0 रेखा वर्मा<br>प्रोफेसर शिल्पी वर्मा | **98–105** |
| **14.** | **दलित चेतना की विकासमान धारा : अठारहवीं सदी से समकाल तक**<br>डॉ विकास कुमार | **106–112** |
| **15.** | **पंचायती राज और ग्रामीण विकास पर केन्द्रीय सरकार के प्रयासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन**<br>सब्बल पटेल | **113–122** |
| **16.** | **झारखण्ड राज्य में कौशल विकास कार्यक्रम का प्रभाव-एक अध्ययन**<br>अखिलेश कुमार सिंह<br>डॉ0 ज्योति प्रकाश | **123–128** |
| **17.** | **मेवात क्षेत्र से पलायन का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण**<br>डॉ. शर्मिला यादव | **129–133** |
| **18.** | **राजस्थान के इतिहास में प्राथमिक स्त्रोतों के रूप में ख्यात रचनाओं का महत्व**<br>डॉ. मोनिका | **134–138** |
| **19.** | **हिन्दी सिनेमा में ग्रामीण परिदृश्य का चित्रण**<br>राहुल कुमार | **139–145** |
| **20.** | **जनजातीय क्षेत्र में नक्सलवाद के प्रभाव का समाजशास्त्रीय अध्ययन**<br>डॉ. हेमलता बोरकर वासनिक | **146–153** |
| **21.** | **ग्रामीण विकास में राष्ट्रीय सेवा योजना की भूमिका**<br>डॉ. हसमुख पंचाल | **154–161** |
| **22.** | **21वीं सदी में महिला सशक्तीकरण : एक सिंहावलोकन**<br>सुश्री राखी प्रजापत | **162–171** |
| **23.** | **गौतम बुद्ध केंद्रीय पुस्तकालय (बी.बी.ए.यू.) के उपयोगकर्ताओं की डिजिटल लाइब्रेरी के महत्व पर अवधारणा**<br>सुश्री नेहा कन्नौजिया<br>प्रोफेसर शिल्पी वर्मा | **172–177** |
| **24.** | **नवादा जिले की फसल गहनता : एक भौगोलिक अध्ययन**<br>डॉ. अमर कुमार | **178–182** |

# पत्रिका के सदस्यों की सूची

**(गतांक से आगे)**

920. प्रोफेसर सौभाग्य रंजन पाढ़ी, अध्यक्ष समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय वि.वि., अमरकंटक (म.प्र.)।
921. डॉ. विमल कुमार लहरी, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, बी.एच.यू., वाराणसी (उ.प्र.)।
922. डॉ. गुरूसरन लाल, असिस्टेंट प्रोफेसर पत्रकारिता एवं जनसंचार, गुरू घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिलासपुर (म.प्र.)।
923. डॉ. हेमलता बोरकर वासनिक, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)।
924. डॉ. नेहा पालीवाल, असिस्टेंट प्रोफेसर एवं इन्चार्ज अर्थशास्त्र विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)।
925. भरत सिंह राव, शोध अध्येता अर्थशास्त्र, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)।
926. सुश्री मंजू नेगी, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, डी.एस.बी. कैम्पस, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)।
927. मोहन सिंह भदौरिया, शोध अध्येता भारतीय दर्शन विभाग, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, रायसेन (म.प्र.)।
928. सुश्री पल्लवी सोनी, असिस्टेंट प्रोफेसर फाइन आर्ट्स, डा. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अध्योध्या (उ.प्र.)।
929. चन्दन कुमार, पूर्व शोध अध्येता इतिहास, सी.एम.जे. विश्वविद्यालय, जोराबत (मेघालय)।
930. डॉ. अमर कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर, सी.एम.जे. कॉलेज दोनबारी हाट खुटैना, मधुवनी (बिहार)।
931. सुश्री जसपाल कौर, शोध अध्येत्री हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ (पंजाब)।
932. डा. आभा चौहान खिमटा, असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हि.प्र.)।
933. सुश्री राखी प्रजापत, सीनियर रिसर्च फैलो, अहिंसा एवं शान्ति विभाग, जैन विश्वभारती मान्य विश्वविद्यालय, लाडनू (राज.)।
934. सुश्री कोमल तूनवाल, सीनियर रिसर्च फैलो, अहिंसा एवं शान्ति विभाग, जैन विश्वभारती मान्य विश्वविद्यालय, लाडनू (राज)।
935. डॉ. रंजना कुमारी, असिस्टेंट प्रोफेसर मनोविज्ञान (अतिथि) पूर्णिया विश्वविद्यालय, पूर्णिया (बिहार)।
936. डॉ. सविता राजन, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, इंदिरा गाँधी राजकीय पी.जी. कालेज, बांगरमऊ, उन्नाव (उ.प्र.)।
937. डॉ. स्मिता, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज (उ.प्र.)।
938. डॉ. ऊषा, असिस्टेंट प्रोफेसर गृह विज्ञान, (अतिथि) पूर्णिया विश्वविद्यालय पूर्णिया (बिहार)।
939. ग्रेट गुलशन, शोध अध्येता मानवविज्ञान, दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली)।
940. श्री दिलीप कुमार, शोध अध्येता समाजशास्त्र, डा. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)।
941. सुश्री नीलम यादव, शोध अध्येत्री शिक्षाशास्त्र, बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)।
942. भुवनेश कुमार मंडल, शोध अध्येता भूगोल, पटना विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)।
943. डॉ. प्रमोद कुमार गुप्ता, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)।
944. डॉ. परवेज अली, असिस्टेंट प्रोफेसर अर्थशास्त्र विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)।
945. डॉ. ललिता सरोहा असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, राजकीय डिग्री कालेज, बी.बी. नगर, बुलन्दशहर (उ.प्र.)।
946. सुश्री रिंकी आर्य, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, एम.बी. (पी.जी.) कालेज, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)।
947. श्री मनीष सिंह, 25 रामकृष्ण पथ, पटना (बिहार)।
948. डॉ. रेखा वर्मा, एसोशिएट प्रोफेसर पुस्तकालय, एम.बी.पी. राजकीय पी.जी. कालेज, लखनऊ (उ.प्र.)।
949. डॉ. विकास कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, ईश्वर शरण डिग्री कालेज, प्रयागराज (उ.प्र.)।
950. डॉ. प्रगति, असिस्टेंट प्रोफेसर गृह विज्ञान, एल.एन.एम. विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)।
951. डॉ. अमित कुमार उपाध्याय, असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान डी.डी.यू. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ.प्र.)।
952. डॉ. अश्वनी कुमार असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास, बी.एल.जे.एस. महाविद्यालय, तोशाम, भिवानी (हरियाणा)।
953. अखिलेश कुमार सिंह, शोध अध्येता अर्थशास्त्र, राँची विश्वविद्यालय, राँची (उत्तराखण्ड)।
954. डॉ. सुरभि श्रीवास्तव, असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास, डा. शकुन्तला मिश्र राष्ट्रीय पुनर्वास वि.वि. लखनऊ (उ.प्र.)।
955. डॉ. अश्वनी कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, एम.डी. यूनिवर्सिटी, रोहतक (हरियाणा)।
956. सब्वल पटेल, शोध अध्येता समाजकार्य, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)।
957. सुश्री निर्दोषिता बिष्ट, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र राजकीय पी.जी. कालेज, द्वारहाट, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)।
958. योगेश मनाली, शोध अध्येता समाजशास्त्र, डी.एस.बी. परिसर कुमाऊँ वि.वि., नैनीताल (उत्तराखण्ड)।
959. डॉ. प्रतिभा राज, असिस्टेंट प्रोफेंसर समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)।
960. डॉ. हँसमुख पाँचाल, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, गुजरात विद्यापीठ, गाँधीनगर (गुजरात)।
961. राहुल पाण्डेय, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, राजकीय डिग्री कालेज, मुन्शियारी, पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)।
962. डॉ. ज्योति प्रकाश, असिस्टेंट प्रोफेसर अर्थशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची (उत्तराखण्ड)।
963. डॉ. सुमन शर्मा, प्राचार्या लेडी श्रीराम कालेज, दिल्ली यूनीवर्सिटी (दिल्ली)

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2020
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# गांधी के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता

❑ प्रोफेसर तपन कुमार शांडिल्य

गाँधी जी का आर्थिक-दर्शन किसी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री का दर्शन नही है। गाँधी जी एक व्यावहारिक अर्थशास्त्री थे। गाँधी जी ने अर्थ के साथ नैतिकता, सेवाभाव, त्याग एवं मानव कल्याण के विभिन्न पक्षों को जोड़कर एक ऐसा स्वतंत्र दर्शन प्रस्तुत किया है जो व्यावहारिक जीवन की समस्त आर्थिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। गाँधी जी का मानव आर्थिक मानव न होकर नैतिक मानव है और गाँधी जी का अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र है, सर्वोदय का अर्थशास्त्र है जिसमें ग्राम स्वराज, आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं स्वावलंबन, श्रम की प्रतिष्ठा, कृषि एवं कुटीर उद्योगों का विकास, उत्पादन एवं वितरण का विकेन्द्रीकरण, आर्थिक विषमता का उन्मूलन, साध्य एवं साधनों की पवित्रता, अस्तेय, अपरिग्रह एवं प्रयास के सिद्धाँत पर आधारित आर्थिक विकास का स्वदेशी माडल समाहित है। प्रस्तुत लेख के अंतर्गत गाँधी जी के आर्थिक विचारों एवं उनकी प्रासंगिकता का विशद विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

**गांधीजी** एक व्यावहारिक अर्थशास्त्री थे। गांधी जी का आर्थिक दर्शन किसी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री का दर्शन नहीं है। मार्शल, पीगू एवं कीन्स आदि 19वीं सदी के अर्थशास्त्रियों की भांति गांधी ने आर्थिक दर्शन के किसी सर्वभौमिक या सर्वकालिक सिद्धांतों की स्थापना नहीं की। पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विकास की अवधारणा के अनुसार भौतिक विकास को ही आर्थिक विकास की कसौटी माना गया है जबकि गांधी ने 'अर्थ' के साथ नैतिकता, सेवा भाव, त्याग एवं मानव कल्याण के विभिन्न पक्षों को जोड़कर एक ऐसा स्वतंत्र दर्शन प्रस्तुत किया है जो व्यवहारिक जीवन की समस्त आर्थिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। सन 1937 में गांधी ने अर्थशास्त्र के संबंध में कहा था कि, सच्चा अर्थशास्त्र कभी भी नैतिक स्तर का विरोध नहीं करता है ठीक वैसे ही जैसे सभी सच्चे नीतिशास्त्र अपने नाम अनुकूल अवश्य ही अच्छे अर्थशास्त्र भी होने चाहिए।[1] गांधी का आर्थिक दर्शन उन आर्थिक विचारों का समग्र रूप है जो मनुष्य की आर्थिक गतिविधियों की नैतिक आधार पर माननीय दृष्टि से व्याख्या करते हैं। गांधी के आर्थिक विचारों का ज्ञान उनके द्वारा रचित ग्रंथों, लेखों, भाषणों, संग्रहों तथा संपादित पत्रिकाओं आदि में समय-समय पर व्यक्त विचारों से मिलता है। इनमें उनकी आत्मकथा (My Experiments with Truth), हरिजन (Harijan), यंग इंडिया (Young India), नवजीवन (Navjivan), शत-प्रतिशत स्वदेशी (Cent Percent Swadeshi), स्वदेशी खादी का अर्थशास्त्र (The Economics of Khadi), सर्वोदय (Sarvoday), हिंद स्वराज (Hind Swarajya), 'The Constructive Programme Towards Non-violent, Socialism, India of My Dreams' तथा Economic and Industrial Life and Relations आदि रचनाएं प्रमुख हैं।

**गांधी युग** में तत्कालीन भारतीय समाज आर्थिक गुलामी और शोषण से त्रस्त था। अंग्रेजी सरकार का आधार ही गरीब भारत के शोषण पर आधारित था। अंग्रेजों द्वारा भारत के गरीबों का रक्त चूसा जा रहा था और भारतीय संपत्ति को निर्लज्जतापूर्वक ब्रिटेन भेजा जा रहा था। यह वही भारत देश था जिसकी संपन्नता और वैभव के संबंध में फ्रांस के एक यात्री बर्नियर ने कभी लिखा था कि, ''यह भारत एक ऐसा अथाह गड्ढा है जिसमें विश्व का अधिकांश सोना व चांदी चारों ओर से अनेक रास्तों से होकर जमा होता है परंतु उससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता है।"[2] परंतु अंग्रेजों की खुली बाजार नीति (Policy Of Free Trade)ने भारत को आर्थिक दृष्टि से बर्बाद कर दिया था।[3] जिसके संबंध में ई. वाचा ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "भारत की आर्थिक व्यवस्था ब्रिटिश शासन के अधीन बिगड़ चुकी थी। यहां के चार करोड़ भारतीयों को दिन में केवल एक बार खाना खाकर संतुष्ट रहना पड़ता था। इसका एकमात्र कारण यह था कि इंग्लैंड भूखे किसानों से बलपूर्वक टैक्स प्राप्त करता था और यहां अपना माल भेज कर भरपूर लाभ कमाता था।"[4] भारत की आर्थिक दुर्दशा का चित्रण करते हुए

❑ प्राचार्य कॉलेज ऑफ कॉमर्स, आर्ट्स एंड साइंस, पटना, पूर्व कुलपति, नालंदा खुला विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)

डब्लू. टी. थार्नटन ने लिखा है कि, भारतीय लोग इंग्लैंड को आर्थिक कर (Tax) देते हैं। इसके कारण भारत का अपना सारा खून चुस गया है और उसकी औद्योगिक स्थिति के मुख्य स्रोत सूख गए हैं। सन 1900 में भारत की आर्थिक बदहाली का चित्रण सर विलियम डिग्वी ने इस प्रकार किया है "भारत में लगभग 10 करोड़ ऐसे निवासी हैं जिन्हें किसी भी समय भरपेट भोजन नहीं मिलता है। इस अधःपतन का दूसरा उदाहरण इस समय किसी भी उन्नतिशील देश में कहीं पर दिखाई नहीं देता है।"[5] पंडित नेहरू ने भारत की आर्थिक दुर्दशा पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है कि "एक ग्रामीण उद्योग के बाद दूसरा ग्रामीण उद्योग नष्ट होता गया और भारत ब्रिटेन का आर्थिक उपकरण बन गया।"[6]

**अंग्रेजों** के शोषण पर आधारित कुटिल आर्थिक नीति का उल्लेख करते हुए दादा भाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक, 'Poverty and Unbritish Rule in India' में लिखा है कि, "अंग्रेजों के पूर्वगामी शासक कसाई थे जो इधर-उधर काटते थे परंतु अंग्रेज जिनके पास वैज्ञानिक चाकू है, हृदय को काट रहे हैं फिर भी घाव दिखाई नहीं देता, वे शीघ्र ही सभ्यता की उच्च बातों, उन्नति तथा ना जाने किन-किन बातों का प्लास्टर लगा देते हैं।"[7] दादा भाई नौरोजी के हृदय की उक्त पीड़ा को गांधी गहराई से महसूस करते थे।

**हिंद स्वराज : देसी मॉडल**

**गांधीजी** 'हिंद स्वराज' के माध्यम से भारतवासियों के समक्ष 'स्वराज' का 'देसी मॉडल' प्रस्तुत करते हैं। गांधी का स्वराज एक वैकल्पिक सभ्यता का प्रारूप या ब्लूप्रिंट है। वह राज्य की सत्ता प्राप्त करने का कोई राजनीतिक एजेंडा या घोषणा पत्र नहीं है। वास्तव में नेहरू, अरविंद घोष, विनोबा भावे और रविंद्र नाथ टैगोर आदि मनीषियों की भांति गांधी भी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। वह मात्र एक राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक या अर्थशास्त्री ही नहीं थे बल्कि वे संतों की उस परंपरा से संबंध रखते थे जिसकी शुरुआत शंकर से मानी जाती है। शास्त्रीय अर्थों में गांधी न तो राजनीतिशास्त्री थे, ना समाजशास्त्री और ना ही अर्थशास्त्री वरन वे इससे भी आगे बढ़कर सब कुछ थे।[9]

**कौटिल्य** के 'अर्थशास्त्र' के पश्चात गांधी द्वारा रचित छोटी सी पुस्तक 'हिंद स्वराज' राजनीतिक सिद्धांत को गांधी का एक महत्वपूर्ण योगदान है।[10] 'हिंद स्वराज' में आधुनिक सभ्यता, औद्योगीकरण, तर्कणावादी उपभोक्तावाद एवं भौतिकवाद के मुकाबले गांधी भारत के माध्यम से संपूर्ण विश्व के समक्ष इस सभ्यता का सर्वथा देसी मॉडल प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं जिनमें मानवीय मूल्यों, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के आधार पर मानवता का कल्याण सुनिश्चित किया जा सकेगा। गांधी का मत है कि मानव जीवन एक संपूर्ण इकाई है, एक समग्र है जिसे खंडों में विभाजित नहीं किया जा सकता है।[11] मनुष्य की विभिन्न गतिविधियों को अलग-अलग खंडों में विभाजित करना संभव नहीं। उसके जीवन की समस्त गतिविधियों का मूल आधार मानवीय और नैतिक ही होना चाहिए। गांधी मानव जीवन के विकास को ही सच्चा विकास मानते हैं। गांधी के अनुसार जीवन का अर्थ है विकास और विकास का मुख्य विषय व्यक्ति (मानव) है। गांधी का आर्थिक दर्शन भी मानवीय तत्व के विकास की मूल भावना से प्रेरित है।[12]

**गांधी का** मानव 'आर्थिक मानव' ना होकर 'नैतिक मानव' है और गांधी का अर्थशास्त्र 'नीति शास्त्र'है। सन् 1937 में गांधी ने इस संबंध में कहा था कि, सच्चा अर्थशास्त्र कभी भी नैतिक स्तर का विरोध नहीं करता।[13] ठीक वैसे ही जैसे सभी सच्चे नीतिशास्त्र अपने नामनुकूल अवश्य ही अच्छे अर्थशास्त्र भी होने चाहियें। आधुनिक अर्थशास्त्र में व्यक्ति मशीन का पुर्जा बनकर अपनी नैतिकता को खो देता है। गांधी का मत है कि, ''सच्चा अर्थशास्त्र वही है जो सामाजिक न्याय और नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन करता है। आधुनिक परिभाषा में व्यक्तित्व को कर मशीन का पुर्जा बन जाना मनुष्य की प्रतिष्ठा को गिराना है।"[14]

**गांधी का सर्वोदय** - गांधी का अर्थशास्त्र 'सर्वोदय का अर्थशास्त्र' है।[15] सर्वोदय का अर्थ है सबकी समान उन्नति, एक व्यक्ति का भी उतना ही महत्व है जितना अन्य व्यक्तियों का सामूहिक रूप से। इनके अनुसार अमीर, मध्यमवर्ग, गरीब मूर्ख, विद्वान, छूत-अछूत तथा अल्पमत-बहुमत सब का उदय हो। सब की कमी की पूर्ति हो अमीर का उदय नैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में ज्यादा आवश्यक है तथा गरीब का आर्थिक क्षेत्र में। कल्याण किसी एक वर्ग का न हो, वरन सबका हो। कल्याण मात्र भारत का ही नहीं, वरन संपूर्ण विश्व का हो। सर्वोदयी नेता भूदान, संपत्ति दान तथा ग्राम दान का समर्थन करते हैं। इन योजनाओं की सफलता से अनेक लाभ होंगे।[16] शोषण का अंत, दलगत प्रणाली के दुर्गुणों से मुक्ति, अहिंसा, विकेंद्रीकरण, सहयोग, पारिवारिक संबंध की स्थापना तथा हृदय परिवर्तन आदि इनके मुख्य लाभ हो सकते हैं। गांधी का अर्थशास्त्र

समाज के अंतिम से अंतिम व्यक्ति के कल्याण पर आधारित है। सर्वोदय की धारणा गांधी में मूल रूप से ही विद्यमान थी वह परंतु रस्किन की पुस्तक 'अनटू दिस लास्ट' को पढ़कर गांधी के हृदय में सर्वोदय की भावना और अधिक दृढ़ हो गई। इस पुस्तक का गांधी के अंतःकरण पर गहरा प्रभाव पड़ा। गांधी ने गुजराती भाषा में 'सर्वोदय' शीर्षक से रस्किन की पुस्तक 'अनटू दिस लास्ट' का अनुवाद भी किया है। अपनी पुस्तक 'सर्वोदय' में गांधीजी लिखते हैं कि, "जो चीज मेरे अंदर गहराई से छिपी हुई थी, रस्किन के ग्रंथ में मैंने उसका स्पष्ट प्रतिबिंब देखा।"[17]

इस पुस्तक से गांधी को ज्ञान हुआ कि :-

1. सबकी भलाई में हमारी भलाई निहित है।
2. वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एक सी होनी चाहिए क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको एक सा है।
3. मेहनत मजदूरी का किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

**गांधी** ने स्वयं स्वीकार किया है कि, "पहली चीज मैं जानता था। दूसरी को मैं धुंधले रूप में देखता था, तीसरी का मैंने कभी विचार ही नहीं किया था।'सर्वोदय'ने मुझे दिये की तरह दिखा दिया की पहली चीज में ही दूसरी दोनों चीजें समाई हुई हैं।"[18] सवेरा हुआ और मैं इन सिद्धांतों पर अमल करने के प्रयास में लग गया। गांधी का सर्वोदय वेन्थम और मिल द्वारा प्रतिपादित उपयोगितावाद से सर्वथा भिन्न है। वेन्थम का उपयोगितावाद 'अधिकतम संख्या के सुख' (Greatest Good of Greatest Number) की वकालत करता है।[19] वेन्थमका अधिकतम संख्या का अधिकतम सुख 'विशुद्ध सुखवादी प्राणी है। जबकि गांधी का मानव आध्यात्मिक और नैतिक मानव है जो इस सभ्यता में आस्था रखता है कि-

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामया
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत।'[20]

अर्थात गांधी का मानव अपने भौतिक सुखों की कामना करने वाला स्वार्थी प्राणी नहीं है उसकी कामना तो यही है कि सभी लोग सुखी हों, सभी निरोगी हों, कोई दुख का भागी ना हो, सभी का कल्याण हो।

**गांधी के** अनुसार, 'जिस राज्य में एक व्यक्ति भी भूखा है वह आदर्श राज नहीं है, चाहे उसमें रहने वाले ज्यादातर लोग कितने ही सुखी क्यों ना हो। इस आधार पर गांधी वेन्थम के अधिकतम संख्या का अधिकतम सुख (ग्रेटेस्ट गुड ऑफ ग्रेटेस्ट नंबर) के उपयोगितावादी सिद्धांत को निरस्त कर देते हैं। गांधी का 'सर्वोदय का अर्थशास्त्र' स्वत्याग (Self Sacrifice) और 'निःस्वार्थ सेवा' (Selfless Service) जैसे उदात्त मानवीय तथा नैतिक मूल्यों पर आधारित है। 4 अक्टूबर 1949 में गांधी ने 'हरिजन पत्रिका' में प्रकाशित अपने लेख में लिखा है कि, "मेरा जीवन लक्ष्य केवल भारतीयों में बंधुत्व की स्थापना करना नहीं है।[21] एक ऐसे आदर्श सर्वोदय समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें ऊंच-नीच, अमीर-गरीब, शोषण, असमानता एवं हिंसा जैसी बुरी प्रवृत्तियों का सर्वथा अभाव होगा। सर्वोदयी समाज में सिद्धांतहीन राजनीति (Politics without Principle), धन बिना श्रम के (Money without Labour), बिना चरित्र के ज्ञान (Knowledge without Character), बिना नैतिकता के व्यापार (Business without Morality), विज्ञान बिना मानवता (Science without Humanity) और सेवा बिना त्याग (Service without Sacrifice) को 'महान पाप' की संज्ञा दी गई है।[22]

**गांधी का** 'सर्वोदयी अर्थशास्त्र' ग्राम स्वराज, आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं स्वावलंबन, मानव श्रम की प्रतिष्ठा, कृषि एवं कुटीर उद्योग धंधों का विकास, उत्पादन एवं वितरण प्रणाली के विकेंद्रीकरण, आर्थिक विषमता के उन्मूलन, साध्य एवं साधनों की पवित्रता, अस्तेय, अपरिग्रह एवं प्रन्यास के सिद्धांत पर आधारित आर्थिक विकास के स्वदेशी मॉडल पर आधारित है।[23] गांधी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की पुनर्प्रतिष्ठा और मजबूती पर आधारित आर्थिक विकास की वकालत करते हैं। गांधी के अनुसार, "भारत की आत्मा गांवों में बसती है और भारत केआर्थिक विकास का रास्ता गांव से होकर जाता है।"[24] भारत गांवों का देश है। भारतीय अर्थव्यवस्था प्राचीन समय से ही कृषि प्रधान ग्रामीण अर्थव्यवस्था रही है। भारत की 80 प्रतिशत जनसंख्या गांव में ही निवास करती है। अतः गांधी का विचार था कि गांव के पुनरुद्धार के बिना भारत के लिए स्वराज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। गांधी जी के शब्दों में, "यदि देश का विकास करना है तो पहले हमें गांव पर विशेष ध्यान देना होगा। भारत चंद शहरों में ही नहीं बल्कि गांवों में निवास करता है अतः बिना गांव के विकास के भारत का विकास संभव नहीं है।"[25]

**गांधी जी** भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले राष्ट्र में श्रम प्रधान तकनीक को ही उपयुक्त मानते थे। भारत की गरीब

एवं बेरोजगार जनता की भलाई के लिए गांधी बड़ी-बड़ी मशीनों का विरोध करते थे परंतु छोटी-छोटी मशीनों और यंत्रों के प्रति उनका उदार दृष्टिकोण था।[26] उनका विचार था कि मानवीय पक्ष मशीनीकरण से ऊपर है। वे मानव को प्रमुख एवं मशीनों को गौण समझते थे। उनकी धारणा है कि, "मशीन का अपना स्थान है लेकिन उसे आवश्यक मानवीय श्रम को अपदस्थ नहीं करने देना चाहिए। एक सुधरा हुआ हल अच्छी चीज है। लेकिन यदि एक मशीनी सुधारों के द्वारा भारत की सारी भूमि जोत लेता है और उसकी संपूर्ण उपज का मालिक बन जाता है, जिससे लोगों को रोजगार से वंचित होना पड़ेगा, वो भूखों मरेंगे और बेकार हो जाएंगे।"[27] इसलिए गांधीजी मानवीय श्रम और प्रतिष्ठा पर आघात करने वाली मशीनों के विरोधी थे लेकिन ऐसी मशीनों का वह निश्चय ही स्वागत करते थे जो मनुष्य के श्रम को कम करती हैं और झोपड़ियों में रहने वाले लाखों-करोड़ों व्यक्तियों के भार को हल्का करती हैं।[28] गांधी के अनुसार, ऐसे सादे औजारों या यंत्रों का जो व्यक्ति की मेहनत को बचाए झोपड़ी में रहने वाले लाखों करोड़ों का बोझ कम करें स्वागत है।[29] परंतु ऐसे उद्योग जिनसे बेरोजगारी बढ़े और केवल उद्योगपतियों की आय में वृद्धि हो नहीं लगाए जाने चाहिए। गांधी मानते थे कि मशीनों से कार्य करना सुविधाजनक तो है ही परंतु मशीनें वरदान नहीं हो सकती हैं।[30]

**विकेंद्रीकरण का सिद्धांत :** गांधी के आर्थिक दर्शन का आधार विकेंद्रीकरण का सिद्धांत है। वे राजनीतिक ही नहीं वरन् आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी विकेंद्रीकरण को अनिवार्य मानते हैं। जिस प्रकार राजनीतिक स्तर पर सत्ता की सफलता तभी सुनिश्चित हो सकती है जब सच्चे अर्थों में वास्तविक सत्ता जनता के हाथों में निहित हो उसी प्रकार आर्थिक विकास, समृद्धि और संपन्नता के लिए भी यह जरूरी है कि उत्पादन प्रक्रिया गांव से ही शुरू की जाए। क्योंकि यदि गांव समृद्ध होंगे तो देश स्वयं ही समृद्ध हो जाएगा। गांधी मानते थे कि आर्थिक विकेंद्रीकरण लोकतंत्र का आधार है।[31] ग्राम पंचायतें लोकतंत्र को स्थापित करने वाली मूल इकाई हैं जो स्वच्छ प्रशासन और न्याय प्रदान करती हैं। सत्ता के विकेंद्रीकरण के बिना धन एवं संपत्ति का विकेंद्रीकरण संभव नहीं है। अतः ग्राम पंचायतों के माध्यम से गांधी राज व्यवस्था में सत्ता के विकेंद्रीकरण की स्थापना करना चाहते थे। गांधी का कहना था कि, बड़े-बड़े उद्योगों के केंद्रीकरण से समाज में नाना प्रकार की विषमतायें उत्पन्न होने लगती हैं और इससे अर्थव्यवस्था का संतुलित विकास बाधित होता है तथा आर्थिक शक्तियों का केंद्रीकरण और असमान वितरण समाज को विभाजित कर देता है या अमीर तथा गरीब को एक दूसरे का विरोधी बनाकर समाज की शांति को सदैव के लिए नष्ट कर देता है।[32] अतः गांधी राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों ही क्षेत्रों में विकेंद्रीकरण को अपनाने पर जोर देते हैं। यंग इंडिया में गांधी लिखते हैं कि, "मेरी मौलिक आपत्ति बड़ी मशीनरी के विरुद्ध इस आधार पर है कि इसने राष्ट्रों को एक दूसरे के शोषण के योग्य बना दिया है। वास्तव में स्वयं यह काष्ठ या धातु की वस्तु होती है और अच्छे और बुरे काम के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है किंतु हम देखते हैं कि इसका दुरुपयोग ही हो रहा है।"[33]

**गांधी का** विचार है कि विकेंद्रीकरण में औद्योगिक समाजों की कई गंभीर समस्याओं का निदान निहित है। उनके शब्दों में, "तनाव, हिंसा और अशांति को यदि रोकना है तो आर्थिक क्षेत्र का भी विकेंद्रीकरण होना चाहिए। इस हेतु बड़ी-बड़ी मशीनों के स्थान पर लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिए। विकेंद्रित अर्थव्यवस्था में श्रमिकों का शोषण नहीं होता है और रोजगार में वृद्धि के अनेकों अवसर उत्पन्न होते हैं।"[34] गांधीजी चाहते थे कि कृषि से शेष समय में किसान लघु तथा कुटीर उद्योग धंधों में व्यस्त रहकर किसी न किसी प्रकार की आर्थिक गतिविधियों में व्यस्त रहें। इससे ग्रामीण किसानों की अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है। इसके लिए गांधी सदैव कुटीर उद्योगों के उत्पाद जैसे चटाई, झाडू, मिट्टी के बर्तन, खिलौने, चमड़े का सामान तथा हस्तशिल्प एवं पशुपालन जैसी आर्थिक क्रियाओं को प्रोत्साहन देने की बात करते हैं। गांधी जी का विचार था कि, "ग्रामीण क्षेत्रों में कच्चे माल की कमी नहीं है अतः सूत कातना, गुड़ बनाना, धान से चावल तैयार करना, नीम का तेल निकालना, हाथ से कागज बनाना, जैसे कार्यों के माध्यम से बेरोजगारी, प्रदूषण और शोषण जैसी समस्याओं से किसानों को बचाया जा सकता है।"[35]

**1917 में** गांधी जी द्वारा किसानों के लिए अमानवीय करों से मुक्ति हेतु चलाया गया सत्याग्रह आंदोलन तथा 1918 में किसानों के पक्ष में चलाया गया 'कर नहीं आंदोलन' (No Tax Campaign) सरकार की करारोपण नीति के विरोध में ही था जिसमें गांधी को व्यापक सफलता प्राप्त हुई। चंपारण में नील की खेती करने वाले गरीब किसानों

से अंग्रेज सरकार द्वारा जबरदस्ती कर वसूल किया जाता था। खेती में नुकसान के बावजूद किसानों पर लगान बढ़ा दिया जाता था। गांधी जी का विचार था कि, "करो की दर एवं मात्रा ना तो ज्यादा होनी चाहिए और ना ही कम। यदि करारोपण की दर ज्यादा है या ज्यादा मात्रा में कर लिए जा रहे हैं तो इससे कर अपवंचन बढ़ेगा और कर की मात्रा यदि कम है तो पर्याप्त राजस्व नहीं मिल सकेगा।"[36] गांधीजी चाहते थे कि सरकार कर से प्राप्त राजस्व को गरीब जनता के लिए ही खर्च करें तभी समाज में सबका भला हो सकता है। वे कर को समाज कल्याण का माध्यम (घटक) मानते थे और चाहते थे कि कर से प्राप्त राजस्व की बर्बादी ना हो। अंग्रेजों द्वारा करों से प्राप्त राजस्व का उपयोग भोग विलास के लिए किया जा रहा था और भारतीय धन तेजी से ब्रिटेन जा रहा था। गांधीजी इसे ही भारत की गरीबी और आर्थिक दुर्दशा का एक प्रमुख कारण मानते थे।

**1934 में** 'हरिजन'[37] पत्रिका में गांधीजी लिखते हैं कि, ग्रामोद्योगों की योजना के पीछे मेरी कल्पना तो यह है कि हमें अपने रोजमर्रा की आवश्यकताएं गांव में बनी चीजों से ही पूरी करनी चाहिएं और जहां तक मालूम हो कि अमुक चीजें गांव में मिलती ही नहीं है वहां हमें यह देखना चाहिए कि उन चीजों को थोड़े परिश्रम और संगठन से बनाकर गांव वाले उनसे कुछ मुनाफा उठा सकते हैं या नहीं। लाभ का अंदाजा लगाने में हमें अपना नहीं किंतु गांव वालों का ख्याल रखना चाहिए।"[38]

**ट्रस्टीशिप** – गांधीजी चाहते थे कि समाज में सभी वर्गों को जीवन की सभी आवश्यक वस्तुऐं समान रूप से उपलब्ध होनी चाहियें। इसके लिए गांधीजी 'प्रन्यास के सिद्धांत (Principle of Trusteeship) या संरक्षण का सिद्धांत' की आवश्यकता पर जोर देते हैं। ट्रस्टीशिप का सिद्धांत[39] इस बात पर आधारित है कि जिसके पास धन है, वह उसे अपना समझ कर फिजूल व्यय ना करें। उस धन को थाती समझ कर रखे और लोक कल्याण में खर्च करें। जब तक धनिक वर्ग शिक्षा से अपना धन त्याग नहीं देता अथवा उसे जनता की अमानत समझकर खर्च नहीं करता तब तक हिंसात्मक क्रांति अनिवार्य है। धनाढ्य लोग यदि जन सामान्य की तरह सादगी से रहते हैं और खर्च कम करते हैं तो वे जनता के ट्रस्टी कहे जा सकते हैं। जो ट्रस्टीशिप की भावना रखेगा, वह लोगों को दबाकर एवं उनका शोषण करके धन नहीं जमा करेगा। गांधीजी पूंजीपतियों के उस प्रकार के विरोधी नहीं थे जिस प्रकार के विरोधी कार्लमार्क्स थे। गांधी एवं मार्क्स दोनों ने व्यक्तिगत संपत्ति के अधिकता का विरोध किया है, परंतु दोनों ने अलग-अलग ढंग से इसका विरोध किया है। गांधी पूंजीपतियों तथा श्रमिकों के बीच समन्वय, सहयोग और पारस्परिक त्याग को अनिवार्य मानते हैं, वहीं मार्क्स इन दोनों वर्गों के बीच वर्ग संघर्ष और एक का अंत अनिवार्य मानते हैं।[40] गांधी समाज के दो वर्गों को एक दूसरे का पूरक बनाना चाहते हैं परंतु मार्क्स पूंजीपति वर्ग के अंत को ही सही और उपयुक्त समाधान मानते हैं। गांधी हृदय परिवर्तन द्वारा पूंजीवाद, शोषण तथा आर्थिक विषमता का अंत चाहते हैं जबकि मार्क्स शक्ति प्रयोग द्वारा पूंजीपतियों की समाप्ति। गांधी पूंजी का स्वामित्व पूंजीपति के हाथ में छोड़ कर उसका सार्वजनिक उपयोग चाहते हैं परंतु मार्क्स संपत्ति का स्वामित्व और उपयोग दोनों सर्वहारा वर्ग के हाथ में देना चाहते हैं।[41]

**गांधी** की न्यासधारिता का सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि मनुष्य भले ही करोड़ों की संपत्ति अर्जित करें परंतु यह बराबर ध्यान रखें कि वह अर्जित संपत्ति उसकी नहीं है, बल्कि सारे समाज की है। उसके पास जो कुछ भी है, वह उसका ट्रस्टी है।[42] कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसके पास कोई न कोई शक्ति नहीं हो। यह जितनी शक्तियां हैं मनुष्य उन सब का केवल ट्रस्टी बने। ये शक्तियां उसे इसलिए प्राप्त हुई हैं कि इनके द्वारा वह उत्पादन करें और अपनी आवश्यकता के अनुकूल उसका उपयोग करें ताकि समाज अधिक से अधिक कल्याण की कल्पना साकार कर सकें। इस विषय में दो मत नहीं है कि जब प्रत्येक व्यक्ति अपने को ऐसा समझेगा तब समाज में सर्वोदय की अर्थव्यवस्था होगी और उसके तीन प्रमुख आधार होंगे – अहिंसा, शोषणविहीन समाज एवं समता।[43]

**जनसंख्या एवं आर्थिक विकास** – गांधीजी जनसंख्या तथा आर्थिक विकास दोनों को परस्पर घनिष्ठ रुप से संबंधित मानते थे, मद्यनिषेध, मानव विकास तथा पर्यावरण के मुद्दे भी गांधी के आर्थिक मॉडल का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। गांधीजी ने जनसंख्या के संबंध में भी अपना विचार व्यक्त किया है। वे पूर्णतया धार्मिक एवं नैतिक व्यक्ति थे। अतः उनका दृढ़ मत था की जनसंख्या वृद्धि को नैतिक तरीकों से ही रोका जाए। जनसंख्या के विचार के संबंध में माल्थस एवं गांधीजी में समानता है।[44] गांधीजी मानते थे कि आज जो भ्रष्टाचार है, संपत्ति की तृष्णा है, जीवन में

भोग विलास है, इन सब का कारण है आत्म संयम की कमी। माल्थस की कुछ अतिशयोक्तियों से गांधी जी सहमत नहीं थे, परंतु जहां तक संयम, नियम, आचार-विचार का संबंध है, उससे सहमत थे। जनसंख्या के संबंध में गांधी जी का कहना है कि, "बढ़ती जनसंख्या राष्ट्रीय हित में नहीं है क्योंकि इसे प्राकृतिक संसाधनों के अनुकूल होने चाहिए यदि प्राकृतिक संसाधन कम मात्रा में है तो देश की जनता को ब्रह्मचर्य और स्वयं के द्वारा जनसंख्या में वृद्धि पर नियंत्रण लगाना चाहिए।"[45] गांधी जी का विचार था कि, "यदि भूमि की उचित व्यवस्था, बेहतर कृषि हो तथा सहायक उद्योग धंधों का जाल फैला हो तो देश आज की तुलना में दुगुनी जनसंख्या का भरण पोषण कर सकता है। यदि जनसंख्या ज्यादा है तो सरकार बेहतर प्रबंधन के माध्यम से इसका भरण पोषण भी कर सकती है।"[46] इस प्रकार गांधीजी राष्ट्र के आर्थिक विकास का जनसंख्या से सीधा संबंध मानते थे और राज्य के संसाधनों के अनुरूप जनसंख्या का समर्थन करते थे।

**गांधीजी और मूल्यपरक शिक्षा** - महान गांधीवादी नेता और दक्षिण अफ्रीका के पूर्व राष्ट्रपति नेल्सन मंडेला ने कहा कि, "शिक्षा वह हथियार है, जिससे दुनिया बदली जा सकती है।"[47] विश्व गुरु रहे भारत ने अत्यंत प्राचीन काल से ही पूरे विश्व को ज्ञान-विज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया है। तक्षशिला, पल्लवी और नालंदा विश्वविद्यालय समेत कई ऐसे प्रकाश स्तंभ थे, जहां धर्म, आयुर्वेद, ज्योतिष, वास्तुकला, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, ज्ञान, दर्शन, संस्कृति और संस्कार के प्रकाश से पूरा विश्व आलोकित होता था। कई देशों से विद्यार्थी यहां अध्ययन करने के लिए आते थे। समय बदला, इसके साथ ही भारत का इतिहास भी बदला। विदेशी आक्रांताओं ने भारत पर कई वर्षों तक शासन किया और उन्होंने अपनी सत्ता की संपूर्ण ताकत से भारतीय संस्कृति, आध्यात्म और चेतना की विरासत को कुचलने का प्रयास किया। आज आधुनिकता की दौड़ में हम परिवार के अंदर ही बंटकर रह गए हैं, मूल्यों की अनदेखी कर हम नैतिकतावादी प्रगति को सर्वस्व मान रहे हैं। खुद को हमने कंप्यूटर तक सीमित कर लिया है और स्मार्टफोन को ही अपनी दुनिया मान बैठे हैं। नैतिकतावाद की चुनौती का मुकाबला हम केवल मूल्यों के आधार पर कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति परंपरा से उपजे ये शाश्वत मूल्य हमारी हर चुनौती में मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हैं।[48] मेरा मानना है कि इन जंजीरों और बेड़ियों से बाहर निकलने में बापू के विचार हमारे लिए मददगार साबित हो सकते हैं। गांधी जी जो कहते थे, वह करते थे, उसे यथार्थ में जीकर दिखाते थे। गांधी जी सदैव भारतीय संस्कृति परंपराओं के समर्थक रहे हैं। वे भारतीय संस्कृति को असाधारण और महत्वपूर्ण मानते थे।[49]

**गांधीजी शिक्षा**, स्वास्थ्य एवं रोजगार जैसी आधारभूत सुविधाओं के विकास को प्राथमिकता पर रखते हैं। गांधी जी का विचार था कि, यदि शिक्षा दोषपूर्ण होगी या सिर्फ आर्थिक स्वार्थों को समझने वाली होगी तो देश में आदर्श व्यवस्था की स्थापना नहीं हो सकती है। अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों पर जबरन थोपी गई पाश्चात्य शिक्षा पद्धति को गांधी जी भारत की संस्कृति के खिलाफ मानते थे। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति ज्ञानपरक होकर विदेशी भाषा परक शिक्षा पद्धति है। गांधीजी इस पद्धति से क्षुब्ध थे। गांधी जी द्वारा प्रतिपादित 'वर्धा स्कीम ऑफ एजुकेशन' शिक्षा पद्धति का मुख्य आधार 'बुनियादी शिक्षा' था।[50] गांधीजी मानसिक के साथ-साथ चारित्रिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं शारीरिक विकास को शिक्षा का उद्देश्य मानते थे। गांधी जी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा के दो मूलभूत उद्देश्य थे- पहला तो यह कि शिक्षा को सही अर्थ में शिक्षित होने का माध्यम बनाया जाए और दूसरा यह कि शिक्षा को आत्मनिर्भरता के सिद्धांत से जोड़ा जाए। गांधीजी के अनुसार, "शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसमें ज्ञान के साथ-साथ आय के अर्जन तथा रोजगार की प्राप्ति भी हो सके। शिक्षा ऐसी हो जो बच्चों में गुण तथा संस्कारों का विकास करें और उन्हें ज्ञानवान बनाकर रोजगार भी प्रदान करे।"[51] गांधीजी बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में हस्तकला को विशेष महत्व देते हैं। हस्तकला को वे सीधे अर्थव्यवस्था से जोड़कर देखते थे। उनका विचार था कि, अगर विद्यार्थी प्रारंभ से ही किसी सहज कला की ओर अग्रसर हो जाए तो उसको पेट भरने की समस्या का समाधान मिल जाएगा और भारत की परंपरागत हस्तकलाओं को भी आश्रय मिलेगा। स्वाबलंबन की भावना मजबूत होगी। गांधी जी का विचार था कि उच्च शिक्षा का उद्देश्य भी देश की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए।[52] तत्कालीन भारत में प्रचलित लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति को गांधीजी अव्यावहारिक और अनुपयोगी मानते थे। उनका विचार था कि, इस प्रकार की शिक्षा पद्धति से साक्षरता तो हासिल होती है लेकिन ज्ञान नहीं। ऐसी शिक्षा ना तो मनुष्य का आध्यात्मिक विकास करती है ना ही रोजी-रोटी

दे पाती है। निश्चित रूप से गांधी की शिक्षा व्यवस्था 'सर्वोदय' का मार्ग प्रशस्त करती है।[53]

**स्वामी** विवेकानंद ने कहा था "शिक्षा ही मनुष्य के सर्वोन्मुखी विकास का एकमात्र साधन है।"[54] अतः 'नई शिक्षा' के द्वारा हम बच्चों में एक नई वैचारिक क्रांति जगा दें, जो स्वयं सक्षम हों, स्वावलंबी बनें। वे सजग बनें, जागरूक बनें, वे देश निर्माण में सहयोगी बनें, उनमें सृजनात्मकता का पूर्ण विकास हो, यही नई तालीम है। इन सिद्धांतों के व्यवहारिक रूप देने में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। मुझे विश्वास है कि नई शिक्षा नीति के माध्यम से, नवाचार, अनुसंधान के माध्यम से हम नव भारत के निर्माण में अपने अध्यापकों को प्रेरित कर पाएंगे। नई शिक्षा नीति के माध्यम से महात्मा गांधी के सपनों को पूरा करने का हमने संकल्प लिया है।[55] आध्यात्मिक और मानवीय मूल्य जीवन के निराशा और हताशा के क्षणों में आशा और आत्मबल की शक्ति का संचार करके मनुष्य को एक बार फिर नई उड़ान भरने योग्य बना देते हैं। नई शिक्षा नीति में हमने ध्यान रखा है कि इन मानवीय मूल्यों को केवल शिक्षा के माध्यम से छात्रों के भीतर विकसित किया जा सकता है।[56]

**गांधी एवं पर्यावरण** – गांधीजी पर्यावरण के मुद्दे को भी आर्थिक विकास से जोड़कर देखते हैं। यद्यपि गांधीजी के समय पर्यावरण पर इतना गंभीर संकट नहीं उत्पन्न हुआ था परंतु गांधी जी को डर था कि यदि भोगप्रधान तर्कणाबादी प्रवृत्ति और लोभ लिप्सा के कारण मनुष्य आधुनिक सभ्यता के प्रभाव में आकर प्रकृति का अंधाधुंध दोहन करेगा तो भविष्य में पर्यावरण को गंभीर संकट उत्पन्न हो सकता है। इसलिए वे पर्यावरण की सुरक्षा को लेकर भी चिंतित थे। यद्यपि गांधी जी ने पर्यावरण संरक्षण को साफ-सफाई एवं स्वच्छता से ही जोड़ कर देखा था और एक ऐसे आदर्श स्वच्छ ग्राम की कल्पना की थी जिसमें हर झोपड़ी साफ-सुथरी हो, हर व्यक्ति स्वच्छ और पूरा ग्राम हरा भरा हो। गांधी जी का विचार था कि विकृत उपभोक्तावाद निश्चित रूप से पर्यावरणीय असंतुलन और पर्यावरण संकट को जन्म देगा।[57]

**पर्यावरण** प्रदूषण के लिए मुख्य रूप से जनसंख्या वृद्धि, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, कल कारखानों का विकास, वाहनों की वृद्धि और आणविक विस्फोट को जिम्मेदार माना जाता है। पर्यावरणविद् सुंदरलाल बहुगुणा ने कहा है कि, "भोगवादी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव से मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ता जा रहा है। यदि समय रहते इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो इसका असामयिक अंत निश्चित है।"[58]

**निष्कर्ष** – गांधी के आर्थिक विकास का लक्ष्य 'सर्वोदय' अर्थात सबका उत्कर्ष, सबका विकास और सबका सुख है। वह आर्थिक विकास के माध्यम से देश की जनता के भौतिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक स्तर को उस सीमा तक ऊंचा उठाना चाहते थे जिससे कि 'सर्वोदय' के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। गांधीजी चाहते थे कि आधुनिक तकनीक मानव केंद्रित प्रकृति संगत बने, प्रकृति के साथ उसका विरोधाभास ना हो, वह मनुष्य की सृजनशीलता के अनुरूप हो। वे ग्रामीण स्वाबलंबन, आत्मनिर्भरता, कृषि क्षेत्र के वैज्ञानिक विकास, कुटीर उद्योगों का विस्तार, श्रम की प्रतिष्ठा, उत्पादन एवं वितरण प्रणाली का विकेंद्रीकरण, स्वदेशी, सर्वोदय, आर्थिक विषमता का उन्मूलन, अस्तेय, अपरिग्रह और प्रन्यास के आर्थिक सिद्धांतों के माध्यम से भारत को उसका पुराना गौरव और आत्म सम्मान दिलाने की बात करते हैं। गांधी जी का अर्थशास्त्र 'मानव विकास के बिना' 'आर्थिक विकास' को अपूर्ण एवं अधूरा मानता है। गांधीजी मानते हैं कि मानव विकास तभी संभव है जब आर्थिक विकास के साथ-साथ मानव जीवन के नैतिक, आध्यात्मिक, शैक्षणिक, सामाजिक, आदि सभी पक्षों का सर्वागीण विकास भी हो। गांधीजी ने आर्थिक विकास की कल्पना मानव विकास के माध्यम से की है और विकास के साधनों में वह मानवता को प्राथमिकता देते हैं। वे चाहते हैं कि सभी लोग मिल-जुलकर अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुरूप आर्थिक क्रियाओं का संपादन करें तथा उत्पादन में योगदान दें। 'वैश्विक अर्थशास्त्र' को मानवीय चेहरा प्रदान करने के लिए हमें गांधी के बताए मार्ग का ही अनुसरण करना होगा। निःसंदेह गांधी की प्रसंगिकता आज पहले की तुलना में और अधिक बढ़ गई है। गांधी सत्य, अहिंसा, वसुधैवकुटुंबकम, त्याग, उदारता एवं मानवता के सनातन शाश्वत मूल्यों के प्रतीक थे और ज्यों-ज्यों विश्व में मानवता के शाश्वत मूल्यों पर संकट के बादल गहराते जाएंगे, त्यों-त्यों गांधी की प्रसंगिकता बढ़ती ही जाएगी। गांधी आधुनिक एवं नैतिक क्रांति के साक्षात प्रतीक थे। गांधी का एक जीवन दर्शन है, एक विस्तार है, सदी के लिए गांधी ही मानवता का भविष्य हैं। वर्तमान भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी द्वारा 2 अक्टूबर 2014 को गांधी जयंती के अवसर पर घोषित

‘स्वच्छ भारत-स्वस्थ भारत’ में मेक इन इंडिया, सांसद आदर्श ग्राम योजना, सामूहिक सामाजिक भागीदारी, आदि कार्यक्रमों की घोषणा से आभास होता है कि भारत राष्ट्र के जीवन में यह शुभ घड़ी आ गई है जब भारत को अपने पुराने वैभव और विश्व गुरु की ख्याति को संपूर्ण विश्व पटल पर जोरदार ढंग से दर्ज कराना होगा।

## सन्दर्भ


1. सिंह रामजी, ‘गांधी दर्शन मीमांसा’, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, बिहार, 1986, पृ.19
2. महात्मा गांधी, ‘हिंद स्वराज’, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1938 पृ.29 (प्रस्तावना के पृष्ठ)
3. वही, पृ. 17
4. वही पृ. 18
5. वही पृ. 22
6. वही पृ. 27
7. वाजपेयी ए.डी.एन., ‘गांधी का अर्थ चिंतन’, कॉलेज बुक डिपो, त्रिपोलिया, जयपुर, पृ.16
8. महात्मा गांधी, ‘हिंद स्वराज’, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1938, पृ.29
9. वही पृ. 30
10. वही पृ. 31
11. वही पृ. 38
12. वही पृ. 39
13. वही पृ. 49
14. वही पृ. 55
15. महात्मा गांधी, ‘सर्वोदय’, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1908 पृ.21
16. वही पृ. 26
17. John Ruskin, *'Unto This Last'*, Fq Classics, London, 1860 p. 10
18. ‘मेरी आत्मकथा - सत्य के प्रयोग’, नवजीवन पब्लिशर्स, अहमदाबाद, पृ.22
19. वही पृ. 55
20. ‘श्रीमद् भगवत गीता एवं गरुड़ पुराण’, गीता प्रेस, गोरखपुर
21. महात्मा गांधी, ‘हरिजन’ नवजीवन पब्लिशर्स, अहमदाबाद, 1934, पृ.10
22. वही पृ. 25
23. वही पृ. 28
24. सिंह धर्मेंद्र, ‘गांधीय आर्थिक दर्शन’, प्राक्कथन रामनरेश मिश्र, रीगल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ. 4-5
25. वही पृ. 18
26. वही पृ. 19-20
27. वही पृ. 41
28. महात्मा गांधी ‘यंग इंडिया’, नवजीवन पब्लिशर्स, अहमदाबाद, 1925, पृ.12
29. वही, पृ. 22
30. वही, पृ.19
31. जौली सुरजीत कौर, ‘गांधी एक अध्ययन’, कंसेप्ट पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 33
32. वही पृ. 36
33. महात्मा गांधी, ‘यंग इण्डिया’, पूर्वोक्त, पृ.16
34. नागेश्वर प्रसाद (संपादित), ‘हिंद स्वराज एक फ्रेश लुक’, नई दिल्ली गांधी पीठ फाउंडेशन, 1985, पृ.111
35. विद्युत चक्रवर्ती, ‘सोशल एंड पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ महात्मा गांधी’, लंदन राटलेज, 2000, पृ.82
36. ‘गांधी, संपूर्ण गांधी वाङ्मय’, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली खंड-48, पृ.458
37. महात्मा गांधी, ‘हरिजन’, पूर्वोक्त, पृ.52
38. वही पृ. 38
39. मोहनदास करमचंद गांधी, ‘ट्रस्टीशिप’ संकलित रविंद्र केलेकर, नवजीवन मुद्रालय, अहमदाबाद, 1960, पृ.89
40. वही पृ. 92
41. वही पृ. 93
42. वही पृ. 98
43. वही पृ. 102
44. Ghosh B.N., 'Beyond Gandhian Economics Towards A Creative Deconstruction', Sage Publications, New Delhi, 2012, p. 105
45. शर्मा अमित कुमार, ‘हिंद स्वराज की प्रासंगिकता’, कौटिल्य प्रकाशन दिल्ली, 2005, पृ.64-65
46. Bose N.K., 'Socialism from Gandhi', Navjeevan Prakashan Mandir, Ahmedabad, 1958, p. 709
47. सिंह रामजी सिंह, पूर्वोक्त, पृ.249
48. वही पृ. 253
49. पोखरियाल रमेश ‘निशंक’, ‘गांधीजी और मूल्यपरक शिक्षा’, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 38
50. सिंह रामजी सिंह, पूर्वोक्त, 253
51. वही पृ.262
52. महात्मा गांधी, ‘यंग इण्डिया’, पूर्वोक्त, पृ.49
53. वही पृ.50
54. वही पृ.56
55. पोखरियाल रमेश ‘निशंक’, पूर्वोक्त, पृ. 68।
56. वही, पृ.72
57. मिश्रा वीणा गोपाल, ‘21वीं सदी में गांधी का आर्थिक दर्शन’, रीगल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ. 113-146
58. पाण्डेय दुर्गादत्त, ‘पर्यावरण दर्शन’, परामर्श (हिंदी) खंड-17, अंक-3, दर्शन विभाग, पुणे विश्वविद्यालय, पुणे, जून 1996 पृ.252

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2020

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# पारम्परिक कुम्भकारी कला के विविध आयाम – गोरखपुर की टेराकोटा कलाकृतियों के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन

❑ सुश्री पल्लवी सोनी

पारम्परिक कुम्भकारी कला की विकास यात्रा कब और किस रूप में शुरू हुई या तो ठीक से नहीं कहा जा सकता किंतु सागर मंथन में प्राप्त अमृत कलश ने भारतीय जीवन दर्शन में कुंभ, घट या कलश निर्माण की प्राचीनता को स्थापित किया है। कुंभ ब्रह्मांड का प्रतिरूप माना जाता है। अतः कुंभ का रचनाकार कुंभकार कहलाया। वैसे प्रमाणित तौर पर इस कला की शुरुआत सिंधु घाटी की सभ्यता से मानी जाती है। मिट्टी या टेराकोटा की बनी हुई अनेक लघु मूर्तियाँ सिन्धु घाटी की सभ्यता के अवशेषों से प्राप्त हुई हैं। आज देशभर के अलग-अलग क्षेत्रों में कुम्भकारी लोककला अपने विभिन्न रुपों मे विद्यमान मिलती है जैसे-गोरखपुर की कुम्भकारी कला सदियों के ज्ञान एवं परम्परा से संचित पारंपरिक लोककला का एक अनूठा उदाहरण है। आज विश्व में भारत के उत्तर प्रदेश मे स्थित गोरखपुर जिले के औरंगाबाद गाँव की टेराकोटा कलाकृतियों ने एक अलग पहचान बना रखी है। इस समय स्थानीय कलाकार 1000 विभिन्न प्रकार की टेराकोटा कलाकृतियाँ बनाने लगे हैं, जिससे इसके बाजारीकरण को भी बढ़ावा मिला है और संचार क्रान्ति ने भी गोरखपुर की इन टेराकोटा कलाकृतियों को बाजार क्षेत्र के विश्व पटल पर लाने में सहायक भूमिका निभाई है। प्रस्तुत लेख पारंपरिक कुम्भकारी कला के विविध आयामों को प्रकाशित करने का एक प्रयास है।

**मानव** सभ्यता के प्रारम्भिक काल से अब तक यदि कोई कला अपना जीवंत स्वरूप संजोये हुए है, तो वह है, कुम्भकारी लोक कला या पॉटरी। कुम्भकारी लोक कला का इतिहास बहुत पुराना है, संभवतः मानव में सृजनशीलता जब उत्पन्न हुई तभी से इसका उद्‌भव हो गया होगा। वैसे प्रमाणिक तौर पर यह सिन्धु घाटी की सभ्यता से विद्यमान है।[1] सिन्धु घाटी के केन्द्र मोहनजोदड़ो से अनेक स्त्री-पुरुषों की मृण्मूर्तियां, खिलौने तथा अनेक प्रकार के सादे एवं अलंकृत मृदभांड प्राप्त हुए हैं। यहाँ से प्राप्त मिट्टी के खिलौने बिना किसी सांचे की सहायता से चूंटिया कर, मिट्टी की बेलनाकार लोई बना कर बनाए गए हैं। उनके निर्माण में सांचों का प्रयोग नहीं हुआ। स्त्रीमूर्तियां मुख्यतः खड़ी मुद्रा में हैं और उनके दोनों हाथ अगल-बगल नीचे की ओर लटके हुए हैं। उनकी आंखें तथा स्तन मिट्टी की गोलियों तथा आभूषण लंबी पट्टीयों से ऊपर की ओर चिपकाकर बनाए गए हैं। हड़प्पा संस्कृति के केंद्रों से पुरुषों की मूर्तियां कम मिली हैं तथा स्त्री मूर्तियों की प्रधानता है। संभवतः ये तत्कालीन मातृ देवी की प्रतिमा है। हड़प्पा संस्कृति के प्रमुख केंद्र चन्हुदड़ो से भी हाथ से बनाए गए खिलौने तथा मूर्तियां मिली हैं, किंतु यहाँ से प्राप्त नारी मूर्तियों की अपनी अलग विशेषता है।

इसी सभ्यता के एक और स्थान मेहरगढ़ से कुम्भकारी कला के अनेक चिन्ह मिले हैं, जिसमें टेराकोटा से बनी हुई, अनेक लघुमूर्तियाँ वहाँ के अवशेषों से मिलती हैं, जिसमें गाय, कुत्ता, भालू बंदर आदि पशुओं के रूपों को सृजित किया गया है। मोहनजोदड़ो आदि स्थलों से जो बर्तन मिले हैं, उनकी मिट्टी तीन प्रकार की है। कुछ बर्तनों की मिट्टी स्लेटी रंग की है, तो दूसरे प्रकार के बर्तन वे हैं, जिनकी मिट्टी पकाने पर गुलाबी रंग की हो जाती है तथा तीसरे प्रकार के वे बर्तन हैं, जिनकी मिट्टी पकने पर श्वेत गुलाबी रंग की हो जाती है। सिंधु घाटी के बर्तन नियंत्रित आंच में पकाए गए प्रतीत होते हैं तथा बर्तनों को पकाने के लिए बनाए गए भट्टी के नमूने भी मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त हुए हैं। इस समय के पात्रों पर रेखांकन चित्रण भी मिलता है। सिंधु सभ्यता के मृदभांड चाक पर निर्मित है। मोटी तल के यह बर्तन अच्छी तरह पकाए गए हैं और उन पर अलंकरण भी किया गया है। अलंकरण में मुख्य रूप से वृक्ष, लहरदार रेखाएं, आड़ी-तिरछी रेखाएं तथा कुछ बर्तनों पर मछली, सर्प और हिरण भी अंकित है।[2]

**सिंधु** घाटी की सभ्यता के पश्चात यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा शतपथ ब्राह्मण में कुंभकारी कला का उल्लेख मिलता है। आत्रेय ब्राह्मण ग्रंथ मे मिट्टी का हाथी बनाने की विधि का उल्लेख हुआ है। पाणिनी ने

❑ शोध अध्येत्री, ललित कला विभाग, डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुर्नवास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

कुम्हार के लिए 'कुलाल' और मिट्टी के बर्तनों के संदर्भ में 'कौलालिकाः' शब्दों का प्रयोग किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी पूजन के लिए कुंभकार के नाग प्रतिमा बनाने का वर्णन मिलता है। नारदपुराण और गणेशपुराण में गणेश की मृण्प्रतिमा बनाने का उल्लेख है। हरिवंशपुराण में मधु-कैटभ की मिट्टी की प्रतिमाओं का जिक्र है। मार्कंण्डेय पुराण में दुर्गा की मिट्टी की मूर्ति का उल्लेख है। इसी प्रकार शिव को प्राप्त करने के लिए तपस्यारत पर्वती की प्रसन्नता के लिए उसकी सखियों का मिट्टी की शिवप्रतिमा बनाने का उल्लेख है। महाभारत में उल्लेख है, कि द्रोण के शिष्य एकलव्य ने अपने गुरु की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा की थी। पतंजलि ने निष्णात कुम्हार को 'महाकुंभकार' कहा है। बुधघोश ने मिट्टी की कला को 'पोत्थक रूप' कहा है। कश्यप संहिता में उल्लेख है, कि संस्कार क्रिया के समय बालक के सामने खिलौने रख दिए जाते थे। हर्षचरित में बाण ने लिखा है कि राज्यश्री के पाणिग्रहण संस्कार के अवसर पर मिट्टी से निर्मित शुभदायक फल, वृक्ष, पशु तथा शुभदायक फल धारण स्त्रियों की आकृतियां बनाई गई थीं। बाण ने जिन चार कलाओं का उल्लेख किया है, उनमें मृतिका कला भी एक है।[3]

**वैदिक** काल के पश्चात कुंभकारी कला के इतिहास में मौर्यकालीन कुंभकारी कला का महत्वपूर्ण स्थान है। तीसरी शती ईसा पूर्व मौर्य साम्राज्य स्थापित हुआ। भारतीय इतिहास का यह क्रांतिकारी युग था। मौर्यकाल में कुंभकारी कला ने एक नया मोड़ लिया। इस युग का सर्वोत्तम उदाहरण सारनाथ से प्राप्त सिंहशीर्ष है। मौर्यकालीन स्थलों से अनेक प्रकार की मृण्मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं। इनमें सबसे विशिष्ट वे मूर्तियां है जो पाटलिपुत्र से मिली थीं और नाट्य मुद्रा में हैं। उनके मस्तक पर विपुल शिरोभूषा है और कटिप्रदेश में नीचे से चौड़ा घाघरा पहने हैं। पटना संग्रहालय में इस तरह की बहुत सी मूर्तियां हैं। निर्माण विधि की दृष्टि से यह मूर्तियाँ हाथ से बनाई गई हैं। केवल मस्तक अथवा मुख सांचे से बना है। हाथ से बनाने के बाद कई तरह के मिट्टी के काम के टुकड़े ऊपर से चिपकाए हुए हैं। इसके अलावा पटना शहर, बुलंदी बाग आदि मौर्यकालीन स्थलों से भी मौर्यकालीन मृण्मयी सामग्री मिली है। मौर्यकालीन मृदभांड भी कई प्रकार के मिले हैं, जिनमें विशिष्ट तकनीक से युक्त उत्तरी कृष्णमार्जित मृदभांड मौर्य स्तरों से अधिक संख्या में मिले हैं, जो अनेक प्रकार की आभा वाले होने के साथ चित्रित भी हैं। मौर्य स्तरों से भूरे तथा लाल रंग के मृदभांड भी प्राप्त हुए हैं।[4]

**शुंगकाल** की कुंभकारी कला भी भारतीय कला इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस काल की कुंभकारी कला की कलाकृतियों को नवीन स्वरूप प्रदान करने के लिए सांचों का प्रयोग होने लगा था। इस युग के कुंभकारों ने जीवन की वास्तविकता को अपने शिल्प का विषय बनाया और उन्हें अपने कला कौशल से साकार किया। शुंगकालीन कुंभकारी कला की सबसे अनुपम देन वे मृदाफलक है, जो विशेषकर भारत के उत्तर तथा पूर्वी क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं। इन पर अंकित दृश्यों से तत्कालीन संस्कृति तथा विभिन्न सामाजिक पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। शुंगकाल में हिंदू देवी-देवताओं की माटी की मूर्तियां भी मिली हैं। इसके साथ ही इस काल के मृदापात्रों के विकास क्रम के संदर्भ में बी.बी. लाल का मत है कि ''पंजाब में रोपड़ तथा हस्तिनापुर की खुदाई से प्राप्त मिट्टी के बर्तनों से ज्ञात होता है, कि उत्तरी भारत में एक प्रकार का गुलाबी पीला बर्तन सिंधु सभ्यता का अंत होने पर बनने लगा था।''[5]

**ईसा पूर्व** तीसरी शती से लेकर पहली सदी तक भारत में कई विदेशी जातियों ने प्रवेश किया। पहली सदी में शक, पल्हव तथा दूसरी-तीसरी सदी में कुषाण जाति भारत में आई। इनमें सबसे अधिक शक्तिशाली कुषाणवंश के राजा थे। भारत पहुंच कर सम्राट बौद्ध धर्म के अनुयायी हो गए। गंधार तथा मथुरा बौद्ध कला के बहुत बड़े केंद्र बन गए। कनिष्क के समय कलाएं खूब फली फूलीं। फलस्वरुप कुंभकारी भी नए रूपों के साथ लोकप्रिय हुई। माटी के शिल्पकारों ने सांचों का प्रयोग छोड़कर हाथ से मूर्तियाँ बनाना शुरू कर दिया। विदेशी लोगों के चेहरे तथा वेशभूषा से तत्कालीन शिल्पी बहुत प्रभावित हुए। कुषाणकाल में हाथ से बनाई गई मातृदेवी की बहुत सी मृण्मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। यद्यपि इस काल में पाषाण मूर्तियों का महत्व बढ़ गया था, किंतु मृण्मूर्तियां भी समांतर रूप से बनती रहीं। कला कौशल की दृष्टि से कुछ अच्छी मृण्मूर्तिया भी मिली हैं। यवन तथा कुषाण सभ्यता का प्रभाव भारतीय मिट्टी के बर्तनों पर भी पड़ा और भारत में नए प्रकार के बर्तन बनने लग गए। इस काल के पेय पदार्थ रखने वाले बर्तनों में टोंटी तथा हैंडिल लगने लगा। इस काल के बर्तन रोपड़, तक्षशिला और हस्तिनापुर से प्राप्त हुए हैं। इन बर्तनों को सुंदर बनाने के लिए उन पर ठप्पे लगाए गए हैं। रोपड़ से प्राप्त बर्तन भी हस्तिनापुर और अहिछत्र की

भांति लाल रंग के हैं। हस्तिनापुर से मिले बर्तन प्रायः लाल रंग के हैं और वे सब चाक से बने हुए है।[6]

**गुप्तकाल** भारतीय कला का स्वर्णकाल माना जाता है। इस युग में बड़ी तेजी से कलात्मक मृण्मूर्तियां बननी प्रारंभ हुई। मथुरा, पवाया, अहिछत्र, श्रावस्ती, भीटा, राजघाट आदि स्थान मृण्मूर्तियों के केंद्र बन गए। छोटी मूर्तियों के अतिरिक्त मिट्टी के फलक भी मंदिरों और घरों में लगाने की प्रथा चल पड़ी। इस काल में मृण्मूर्तियों की एक राष्ट्रव्यापी शैली का विकास हुआ, जो पूर्व में तेजपुर स्थित मंदिर से पश्चिम में मीरपुरखास के स्तूप तक पाई जाती है। उत्तर गुप्त काल में कश्मीर के अखनूर तथा अश्कूर स्थान भी कुंभकारी कला के प्रमुख केंद्र थे।[7]

**नवीं** शताब्दी के बाद देश में फिर अव्यवस्था हो गई। फलस्वरुप कलाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ा। कुंभकारी कला तो कुछ समय के लिए एक प्रकार से लुप्त ही हो गई। उसके बाद तो क्रमशः कुंभकारी कला की सोच और परिवेश ही बदल गया और यह कला भी प्राचीन परिवेश से बाहर निकलकर आधुनिक रूप ग्रहण करने लगी।

**गुप्त** युग के प्रारंभिक काल में बर्तनों के आकार प्रायः वैसे ही चलते रहे जैसे कुषाण काल के थे। किंतु आगे चलकर सांचे में ढले बर्तन प्राप्त होने लगते हैं, जिन पर खुदाई के स्थान पर छपायी के काम अधिक पाए जाते हैं। इनका रंग भी आग मे पकने पर गहरे लाल से सिंदूरिया हो जाता है। मृण्मूर्तियों और मृद्पात्रों के अतिरिक्त गुप्त काल में दैनिक जीवन में काम आने वाली अन्य वस्तुएं भी मिट्टी से बनाई जाती थीं जिनमें हाथ के कड़े, दीपक, झांवे, मैलखोरा, संकल्प पात्र, धातु गलाने की मूस, पासे, पहिए, गोलियां, मनके, चकरियां, ठप्पे, मुहरें, गले और कान के आभूषण और खिलौने आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।[8]

**भारत** की कुंभकारी कला पांच हजार वर्षों से अधिक पुरानी हैं। इसे संपूर्ण विस्तार के साथ कहना यहाँ अभीष्ट नहीं है। यहाँ कुंभकारी कला के ऐतिहासिक परिदृश्य को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत कर यह बताने का प्रयास किया गया है, कि इस कला की जड़ें बहुत गहरी हैं। मानव के विकास के साथ- साथ इस कला का भी विकास हुआ और समय के साथ में युगानुरुप परिवर्तन भी हुए। परन्तु यह कुंभकारी कला आज भी विभिन्न रूपों में विद्यमान है।[9]

**वर्तमान** में हमारे देश में कुम्भकारी कला के क्षेत्र में टेराकोटा की वैभवशाली और समृद्ध परम्परा स्थापित है। हम अगर पूरे देश पर व्यापक दृष्टि डालें तो कई ऐसे उदाहरण मिलेंगे, जो टेराकोटा जैसी श्रेष्ठ पद्धति को दर्शाते हैं। टेराकोटा का शाब्दिक अर्थ है- आग में पकी मिट्टी। व्यवहारिक परिप्रेक्ष्य में इस शब्द का अर्थ- पकी मिट्टी से बना बर्तन है। टेराकोटा की श्रेणी में आग में पकाये गये मिट्टी के समस्त छिद्रयुक्त बर्तन, खिलौनें और मृणमूर्तियाँ सम्मिलित हैं। यह पद्धति एक विशिष्ट प्रक्रिया के माध्यम से पूर्ण की जाती है, जिसमें विभिन्न स्वरूपों में तैयार की गई मिट्टी की कलाकृतियाँ आग में पक जाने के बाद प्राकृतिक भूरे-नारंगी रंग की हो जाती हैं या उन्हे बाद में प्राकृतिक रंगों से रंगा जाता है। इस तरह के टेराकोटा पद्धति से निर्मित कलाकृतियों का उदाहरण गुजरात प्रदेश के थानागढ़ कच्छ, मुर्शिदाबाद वीर भूमि और हुगली में देखने को मिलते हैं, जहाँ की कलाकृतियाँ और शैली वहाँ के पारम्परिक लोककला की पहचान है। इसी प्रकार अगर सजावटी और विभिन्न उपयोग में आने वाली टेराकोटा कलाकृतियों की बात करें तो पंजाब के रोपड़ तथा लुधियाना के फूलदान, दीपक व खिलौनों के साथ ही मंदिरों की सूक्ष्म टेराकोटा, हरियाणा के हुक्का व चिलम हमारे देश की कुम्भकारी लोक कला परम्परा की अद्‌भुत मिसाल है।[10]

**अब** अगर उत्तर प्रदेश राज्य की कुम्भकारी कला पर दृष्टि डालें तो इसकी एक अलग और विशिष्ट पहचान दिखती है जिसमें खुर्जा, आजमगढ, चिनहट और गोरखपुर की कुम्भकारी कला की कलाकृतियों की अहम और अतुलनीय भूमिका है क्योंकि जहाँ खुर्जा की ग्लेज्ड मिट्टी की कलाकृतियाँ नक्काशी के लिए प्रसिद्ध हैं, तो आजमगढ़ की ब्लैक पाटरी फूलपत्तियों व ज्यामितीय रचनाओं के लिए जानी जाती है। नीले और भूरे रंग की सफेद पृष्ठभूमि के आकर्षक अलंकरण आधारित चमकदार कलाकृतियों के लिए चिनहट की ख्याति है, तो वही गोरखपुर ने सदियों से कुम्भकारी लोक कला को संजोये ही नहीं रखा है बल्कि समय और काल के साथ तकनीकी विकास के दौर में आधुनिकता से पोषित करके कुम्भकारी लोक कला की टेराकोटा कलाकृतियों को नए-नए आयाम भी दिए हैं, जिसने गोरखपुर की औरंगाबाद ग्राम पंचायत को ख्याति भी दिलाई है। गोरखपुर से मात्र 19 किलोमीटर की दूरी पर उत्तर दिशा में बसा एक छोटा सा गांव औरंगाबाद है। यहाँ के हस्तशिल्पी मूलतः कच्छ (गुजरात) के निवासी थे। 16वीं शताब्दी में मुगल काल में चार कुम्भकार कच्छ (गुजरात) से गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) आए, उन में से

तीन लोग आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश) जिले के जोधी का पुरा गाँव में चले गए और केवल एक कुम्भकार ने गोरखपुर मे रह कर मिट्टी के खिलौने बनाने शुरू किए।[11]

**वर्तमान** समय मे औरंगाबाद की समृद्ध कला से प्रभावित होकर आस-पास के गांव जैसे - भरवलिया, लंगडी, गुलरिहा, बुढ़ाडीह आदि में भी कुम्भकारों द्वारा टेराकोटा कलाकृतियों का निर्माण किया जा रहा है। गोरखपुर के सभी गांव को मिला कर लगभग 100 कुम्भकार परिवार अपनी कलाकृतियों के सृजन में इस तरह समर्पित भाव से लगे रहते हैं कि लगता है की वे इस कला को आने वाली पीढ़ियों के लिए सदियों तक संजो देना चाहते हैं। गाँव में हर ओर टेराकोटा कलाकृतियों का विस्तार देखने को मिलता है, तो इन रचनाकारों के गढ़े गए कलाकृतियों को विश्व के बाजारों में पहुंचाने वाले ग्राहक भी गांव में दिखते हैं। यहाँ यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि गोरखपुर जिले को विशिष्ट पहचान दिलाने वाली इस टेराकोटा कुम्भकारी कला को 30 अप्रैल, 2020 को ''बौद्धिक संपदा अधिकार'' का दर्जा प्राप्त हुआ। जिसके पश्चात सैकड़ों साल पुरानी इस टेराकोटा कुम्भकारी लोक कला को कानूनी रूप से एक नई पहचान मिल गई। जी0 आई0 यानी ''भौगोलिक संकेतक पंजीकरण'' की लंबी कानूनी प्रक्रिया पूरी करके इस कला ने नया दर्जा प्राप्त किया, जो जी0 आई0 पंजीकरण संख्या- 619 के साथ क्लास 21 के अंतर्गत पंजीकृत है। यह पहचान मिलने से जहां यह कला पहले से ज्यादा सशक्त और विकसित होगी, वहीं इस कला से जुड़े कुम्भकारों को नया वैश्विक बाजार में मिलने की उम्मीद भी जग गई है।[12]

**सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन-** प्रस्तुत शोध पत्र में विषय की प्रासंगिकता एवं औचित्य सिद्ध करने के लिए सर्वप्रथम इस विषय से सम्बन्धित आलेखों, शोध पत्रों, शोध-पत्रिकाओं आदि का अवलोकन किया गया है क्योंकि इसी अध्ययन को आधार बनाते हुए प्रस्तुत शोध पत्र के लिए उचित विषय, अध्ययन क्षेत्र, उद्देश्य, शोध प्रविधि एवं अध्ययन योजना का निर्धारण किया गया है। अतः अध्ययन से सम्बन्धित आलेखों, शोध पत्रिकाओं आदि के निष्कर्षों का विवेचन निम्नलिखित है-

**त्रिपाठी,** अनुराधा, 2012 ने अपने शोध प्रबन्ध, ''गोरखपुर एवं वाराणसी के मृण्मय कला में निहित अंलकारिक पक्ष का तुलनात्मक अध्ययन'' मे दोनों जिलों की भौगोलिकता एवं ऐतिहासिकता के बारे में विस्तृत रूप से वर्णन करने के साथ ही सामाजिक व सांस्कृतिक स्वरूप का भी अध्ययन प्रस्तुत किया है। अपने शोध प्रबंध में लेखिका ने गोरखपुर की टेराकोटा की मृण्मय कलाकृतियों के अलंकारिक तत्वों, स्वरूपों, माध्यमों, तकनीकों एवं व्यवसायीकरण का वाराणसी की मृण्मय कला की कलाकृतियों से तुलनात्मक अध्ययन करके यह निष्कर्ष प्राप्त किया, कि गोरखपुर की टेराकोटा मृण्मय कला प्लास्टिकरण के विकास से हुए परंपरागत कलात्मक गुणों के ह्रास से बचे हुए हैं, परंतु वाराणसी की मृण्मय कला प्लास्टिकरण से अत्यधिक प्रभावित हुई है, जिसका विपरित प्रभाव इस कला के व्यवसायीकरण पर पड़ा है। इसके साथ ही लेखिका ने यह भी बताया कि गोरखपुर की टेराकोटा मृण्मय कला, वाराणसी की मृण्मय कला की तुलना में अत्यधिक विकसित होती जा रही है, क्योंकि गोरखपुर के मृण्मय कलाकार नई-नई तकनीकों एवं उपकरणों का प्रयोग करके टेराकोटा की कलाकृतियों के कलात्मक और सौंदर्यात्मक तत्वों को वर्तमान धारा के संदर्भ में विश्लेषित कर रहे हैं, जिसके कारण यहाँ की कलाकृतियों का व्यवसायीकरण विदेशों तक पहुंच चुका है, किंतु वाराणसी की मृण्मय कलाकृतियों को अभी और रूपांतरित तथा समृद्ध करने की आवश्यकता है।[13]

**धन प्रजापति,** विजय कुमार, 2012 ने अपने लघु शोध प्रबन्ध, ''औरंगाबाद की पारम्परिक शिल्पकला'' मे गोरखपुर के औरंगाबाद जिले की पारंपरिक टेराकोटा शिल्पकला के विविध आयामों का अध्ययन किया और बताया कि यहाँ के शिल्पियों की निर्मित कलाकृतियाँ सौंदर्यीकरण और अलंकरण की दृष्टि से उच्च कोटि की हैं। हौदादार महावत सहित घोड़ा शिल्प जिसका धार्मिक महत्व है, हो या हाथी, कछुए आदि पशुओं का शिल्प सभी का अलंकरण तथा रंग विधान जनमानस को स्वतः ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यहाँ के शिल्पी कलाकृतियों का निर्माण आसपास के गांवों और वहां के समाज की आवश्यकताओं तथा मांगों को ध्यान में रखकर करते हैं, जैसे- दिए, कलश, फूलदान एवं झूमर आदि का निर्माण। इसी के साथ लेखकों ने औरंगाबाद की पारंपरिक टेराकोटा कला की समाज में क्या उपयोगिता है तथा इस कला की कलाकृतियों का प्रयोग करके वातावरण को प्रदूषित होने से किस प्रकार बचाया जा सकता है, इसके बारे में भी दिशा निर्देश प्रस्तुत किए हैं।[14]

**आचार्य,** राजेश्वर, 2000 ने अपने शोध पत्र ''टेराकोटा और पूर्वांचल'' मे पूर्वांचल में प्रसिद्ध टेराकोटा कला के

संबंध में गहन अध्ययन प्रस्तुत किया और बताया कि पूर्वांचल में गोरखपुर की टेराकोटा कला की सबसे विशेष और विश्व प्रसिद्ध पहचान है। इस कला के अंतर्गत निर्मित होने वाली कलाकृतियाँ सामाजिक, धार्मिक तथा मार्मिक सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम होती हैं। यहाँ निर्मित विभिन्न वस्तुओं जैसे- घोड़ा, हाथी आदि तथा सजावटी कलाकृतियाँ जैसे- झूमर, दिया स्टैंड, फव्वारा आदि यहाँ रहने वाले जनमानस के ग्राम जीवन के प्रतीक हैं। वर्तमान में इन कलाओं में विविधता के स्वरूप देखने को मिलते हैं जिसका समय के साथ संरक्षण और अध्ययन करना आवश्यक है।[15]

**निशांत,** 2015, ने अपने शोध पत्र, ''पत्थर के चाक और मिट्टी के घोड़े'' मे मिथिला के कुम्हारों की कला का सर्वेक्षण किस तरह किया है तथा वह इस शोध के लिए कैसे प्रेरित हुए यह वर्णित किया है। इसके साथ ही उन्होंने अपने शोध में मिथिला के कुम्हारों की कला का सर्वेक्षण किया। तुलनात्मक अध्ययन के लिए देश के कई भागों में गये और उत्तर से दक्षिण तक कुछ सजावटी अंतर को छोड़ उन्होंने कुम्हारों की कला में एक तकनीकी तथा सांस्कृतिक समानता पाई। लेखक ने अपने शोध में मिथिला में निर्मित होने वाली मिट्टी के घोड़े के सृजन के धार्मिक महत्व के बारे में भी बताया है कि यहाँ के गांव के लोग ग्राम देवता को प्रसन्न करने के लिए मिट्टी के घोड़े और घुड़सवार भेंट स्वरूप चढ़ाते हैं। इसी के साथ लेखक ने इन घोड़ों को तैयार करने की तकनीक, अलंकरण तथा रंग विधान की विधि पर भी प्रकाश डाला है।[16]

**प्रभात खबर** (2015), के आलेख,''क्या कहता है कुम्हार का चाक'' में लेखक ने कुम्भकारों के बारे में बताते हुए कहा है कि आज कुम्हार का ठहरा हुआ चाक आने जाने वाले हर इन्सान से निवेदन करता हुआ प्रतीत होता है, एक समय वह भी था जब ये चाक निरन्तर चलता रहता था। एक से एक सुन्दर व कलात्मक कृतियां गढ़ कर अपने को गौरवान्वित हो उठता था, परन्तु आज एक ऐसा समय भी है जब किसी को उसकी उतनी आवश्यकता भी नही। जीवन में समय के साथ तेजी से आगे बढ़ जाना ही बस महत्वपूर्ण नहीं है, कभी-कभी जीवन में ठहराव अपनी प्राचीन परंपराओं और प्रचलनों से जुड़े रहने के लिये भी अति आवश्यक है। इसके साथ ही लेखक कहते हैं कि, अब वक्त है कि जब हम सब मिलकर अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार इस कला को और इसकी परंपरा को जीवित रखें।[17]

**शोध का औचित्य-** किसी भी देश की कला, संस्कृति और परंपरा उस देश के सांस्कृतिक परिवेश का प्रतिबिम्ब होती हैं। यह गोरखपुर की कुम्भकारी कला भी प्राचीनकाल से लोक संस्कृति और परंपरा का हिस्सा रही है तथा मानव जीवन की खुशियों के साथ सीधा सरोकार रखती आयी है। दैनिक जरुरतों को पूरा करने के लिए विभिन्न आकार-प्रकार के बर्तन हों, दीपावली के दीप हों या दुर्गापूजा, गणेश चतुर्थी की मूर्तियाँ अथवा सामाजिक-धार्मिक व सांस्कृतिक प्रसंग की शुद्धता पूर्ण जरुरतें आदि चाहे वो किसी भी धर्म विशेष की क्यों न हों सभी में इनकी उपस्थिति दर्ज की जाती रही है तथा हमारी इस लोक संस्कृति और परंपरा को जीवंत बनाये रखनें में पारंपरिक कुम्भकारों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अतः इस शोध से प्राप्त निष्कर्षों से जहॉ एक ओर भारत सरकार को पारंपरिक कुम्भकारों के भविष्य के लिए, उनके समग्र विकास के लिए अनेक योजनाओं का सृजन करनें में मदद मिलेगी तो वहीं दूसरी तरफ प्रस्तुत शोध अध्ययन से पारम्परिक कुम्भकारी कला के विविध आयामों के महत्व के प्रति साधारण जनमानस, शोध छात्र-छात्राओं का ज्ञानवर्धन भी होगा।

**शोध समस्या मे प्रयुक्त शब्दावलियों की परिभाषाएँ -**

1. **पारंपरिक कुम्भकारी कला :** प्रस्तुत शोध अध्ययन में पारंपरिक कुम्भकारी कला से तात्पर्य पीढ़ी दर पीढ़ी पारंपरिक रूप से कुम्भकारों द्वारा निर्मित मिट्टी की कलाकृतियों जैसे- पात्र, मृण्मूर्तियां, खिलौने आदि से है। माटीशिल्प, माटीकला, मृतिकाशिल्प, मृण्शिल्प, कुम्हारी कला, मृदाशिल्प, टेराकोटा आदि यह सब कुंभकारी कला के ही विभिन्न नाम है।
2. **पारंपरिक कुम्भकार :** प्रस्तुत शोध अध्ययन में पारंपरिक कुम्भकारों से तात्पर्य मिट्टी के बर्तन या कलाकृतियों का सृजन करने वालों से है।
3. **टेराकोटा :** प्रस्तुत शोध अध्ययन टेराकोटा से तात्पर्य ऐसी कलाकृतियों से हैं, जो मिट्टी से निर्मित होती हैं तथा आग में पकने के बाद उनका रंग लाल हो जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में टेराकोटा कलाकृतियों के अंतर्गत बर्तनों, खिलौनों, मृण्मूर्तियों एवं सजावटी कलाकृतियों को रखा गया है।
4. **विविध आयाम :** प्रस्तुत शोध अध्ययन में विविध आयाम से तात्पर्य गोरखपुर की पारंपरिक कुम्भकारी कला

की टेराकोटा कलाकृतियों के सृजन में समावेशित तकनीकी और प्रचलित पद्धतियों के साथ-साथ गोरखपुर के कुछ प्रमुख पारंपरिक कुम्भकारों के योगदानों एवं सरकारी संस्थाओं के सहयोग के अध्ययन से है।

**5. उद्देश्य-** प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य गोरखपुर की पारम्परिक कुम्भकारी कला की टेराकोटा कलाकृतियों के विविध आयामों का अध्ययन करना है-

1. गोरखपुर के टेराकोटा कलाकृतियों के सृजन में समावेशित तकनीकी तथा प्रचलित पद्धतियों का अध्ययन करना-
1. मिट्टी की तैयारी एवं चाक द्वारा टेराकोटा कलाकृतियों की निर्माण प्रक्रिया का अध्ययन करना।
2. टेराकोटा कलाकृतियों के निर्माण में प्रयोग होने वाले उपकरणों का अध्ययन करना।
3. टेराकोटा कलाकृतियों का श्रृंगार तथा काबिज लगाने की विधि का अध्ययन करना।
4. टेराकोटा कलाकृतियों को आग मे पकाने के लिए भट्टी निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन करना।
5. टेराकोटा कलाकृतियों के आग मे पकने के पश्चात् भट्टी खोलने की प्रक्रिया का अध्ययन करना।
6. टेराकोटा कलाकृतियों के विविध स्वरुपों का अध्ययन करना।
7. टेराकोटा कलाकृतियों मे आने वाले नवाचार का अध्ययन करना।
2. गोरखपुर के टेराकोटा कलाकृतियों के बाजारीकरण का अध्ययन करना।
3. समकालीन गोरखपुर के पारम्परिक कुम्भकारों का टेराकोटा कलाकृतियों को राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्व दिलाने के योगदान एवं सरकारी संस्थाओं के सहयोग का अध्ययन करना।

**6. शोध प्रविधि-** प्रस्तुत शोध पत्र का प्रकार गुणात्मक तथा विधि वर्णनात्मक है। यह शोध पत्र प्राथमिक तथा द्वितीयक प्रकार के समंकों पर आधारित है जिसमें गोरखपुर के 50 कुम्भकारों को संभावित उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श विघि द्वारा चयनित करके उनसे साक्षात्कार उपकरण से तथा उनके द्वारा सृजित कुम्भकारी की टेराकोटा कलाकृतियों का अवलोकन उपकरण से किये गये व्यक्तिगत सर्वेक्षण से तथा शोध विषय से संबंधित आलेखों, पत्रिकाओं एवं पुस्तकों से जानकारियां एकत्रित की गई है। इसके अतिरिक्त विभिन्न वेबसाइट से भी जानकारियां ली गई है।

**7. गोरखपुर के टेराकोटा कलाकृतियों के विविध आयामों का विश्लेषण -**

**1. मिट्टी की तैयारी एवं चाक से कलाकृतियों की निर्माण प्रक्रिया -** गोरखपुर में टेराकोटा कलाकृतियों के निर्माण के लिए तालाब से लाई हुई मिट्टी का प्रयोग करते हैं। यहाँ यह बात जानने योग्य है, कि यहाँ के कुंभकार अप्रैल-मई के महीने में साल भर प्रयोग करने के लिए दो-तीन ट्राली मिट्टी एक साथ तालाब से लाकर सूखे स्थान पर भंडारित कर देते हैं। सर्वप्रथम तालाब से लाई हुई मिट्टी को धूप में अच्छी तरह सुखा लिया जाता है। सूखने पर उसे लकड़ी की मोगरी से कूटकर बारीक कर लिया जाता है। इस मिट्टी को लोहे के जाली से छान लिया जाता है। लोहे की जाली में शेष बची मिट्टी की मोटी-मोटी डलियों को मिट्टी के एक बड़े पात्र में भिगो दिया जाता है। एक रात भीगने पर मिट्टी की डलियां अच्छी तरह गल जाती हैं। इस गाढ़े घोल को मिट्टी के पात्र से बाहर निकाल कर बारीक छनी हुई मिट्टी के साथ गूंध कर लौंदा बना लिया जाता है। इस लौंदे को पैरों से अच्छी तरह गूंध कर पुनः इसके लौंदे बनाकर पॉलिथीन से ढक कर रख देते हैं। इससे लौंदे की मिट्टी गीली रहती है।

**चाक पर** बर्तन बनाने के लिए इस लौंदे को चाक पर रखा जाता है और उसे घुमाया जाता है। चाक पर विभिन्न कलाकृतियों को हाथ से रूप दिया जाता है, तत्पश्चात् विभिन्न भागों को जोड़कर कलाकृतियाँ तैयार की जाती है। इसके साथ ही जिन बर्तनों को पीट-पीटकर बड़ा करना होता है, उन्हें थोड़ा कठोर होने पर पुनः पॉलिथीन से ढक कर रख देते हैं। आवश्यकतानुसार उन्हें निकाल कर थापा की सहायता से पीट-पीटकर बड़ा कर लिया जाता है।[18]

**2- उपकरण**

| **उपकरण** | **प्रयोग** |
|---|---|
| **चाक** | यह कुम्भकार का मूलभूत औजार है। संपूर्ण कुम्भकारी इसी पर निर्भर करती है। यह चूना और सीमेंट का बना होता है। इसकी सहायता से विभिन्न मिट्टी की कलाकृतियों को आकार दिया जाता है। |
| **चाकू** | इस उपकरण का प्रयोग कलाकृतियों से अतिरिक्त मिट्टी को हटाने के लिए किया जाता है। |
| **ब्रश** | इसका प्रयोग कलाकृतियों के रंगाकंन |

| | |
|---|---|
| | एवं सफाई के कार्य में किया जाता है। |
| **स्पंज** | इसका प्रयोग कलाकृतियों के रंगाकंन कार्य में किया जाता है। |
| **तार** | इसका प्रयोग कलाकृतियों की सजावट में प्रयोग होने वाले मिट्टी की गोलियों को एकत्रित रखने के लिए किया जाता है।[19] |

**पात्रों एवं कलाकृतियों का श्रृंगार तथा काबिज लगाने की विधि-** बर्तनों एवं कलाकृतियों को अच्छी तरह से छाया मे सुखा कर इन पर ज्यामितिय आकारों में अलग से मिट्टी की पट्टियों को पानी की सहायता से चिपका कर, उनपर विभिन्न औजारों जैसे- चाकू , लोहे की पट्टी आदि से श्रृंगार किया जाता है तथा पुनः छाया में सुखाया जाता है। श्रृंगार के उपरान्त कलाकृतियों की रंगाई प्राकृतिक रंगों से की जाती है। इसमें महत्वपूर्ण अवयव काबिज मिट्टी है, जिसके प्रयोग से भट्टी में पकने के पश्चात कलाकृतियों का रंग लाल हो जाता है। यह  मिट्टी कुम्भकार ताल (बड़ा तलाब) से लाते हैं। काबिज मिट्टी का घोल तैयार करने के लिए 10 किलो काबिज मिट्टी मे 2 किलो आम के पेड़ की छाल तथा 1/2 किलो कास्टिक सोडा को छानकर चौबीस घंटे के लिए पानी मे भिगोकर बड़े स्थान रख दिया जाता है और दूसरे दिन जब मिट्टी का घोल फूल जाता है, तब उसे ओखली में कूटकर धूप मे सूखने के लिए रख दिया जाता है। धूप में सूखने के पश्चात् इस मिट्टी का भंडारण एक सूखे स्थान पर कर लिया जाता है। आवश्यकतानुसार जब कलाकृतियों का रंगाकंन कार्य करना होता है, तब इसी घोल मे कलाकृतियों को डुबा कर निकाल लेते हैं एवं सुखाकर भट्टी में पकाने के लिए रख देते हैं। अनुमानतः 100 कलाकृतियों का रंगाकंन करने के लिए 1 किलो काबिज मिट्टी का प्रयोग किया जाता है।

**भट्टी निर्माण-** गोरखपुर में भट्टी निर्माण का अपना शिल्प, विधान और क्रिया है। यहाँ खड़ी भट्टी का प्रचलन नहीं है अपितु, खुले स्थान पर जिसे मैदानी भट्टी कह सकते हैं, लगाई जाती है। भट्टी का आकार पकाए जाने वाले बर्तनों पर निर्भर करता है। यदि बर्तनों की संख्या अधिक है, तो भट्टी का आकार भी बड़ा हो जाता है और बर्तन कम हैं तो भट्टी का आकार भी छोटा हो जाता है। भट्टी लगाने के लिए निर्धारित स्थान पर सबसे पहले निचले स्तर पर खाली मिट्टी की तह के ऊपर राख की तह बिछाई जाती है, ताकि गर्मी जमीन मे ना जा सके। अब राख की तह के ऊपर गोबर के कंडे (उपले) की पर्त बाहर से मध्य की ओर बिछायी जाती है। इसके पश्चात् कलाकृतियाँ सजाई जाती है, जिसमें बड़ी कलाकृतियाँ नीचे और छोटी कलाकृतियाँ क्रमशः ऊपर रखी जाती हैं। बीच-बीच में रिक्त स्थान को टूटे मटकों के टुकड़ों से भर दिया जाता है और पुनः उनके ऊपर गोबर के कंडे (उपले) की तह बिछाई जाती है, जब कलाकृतियाँ अच्छी तरह से जम जाती हैं तो उस पर सरसों तथा गेहूं कटने पर जो सूखे तने के टुकड़े होते हैं या बाजरे की भूसी तथा खराब घास-फूस की परत बिछा दी जाती है और उनपर पानी का छिड़काव करके ऊपर से गीली मिट्टी की पर्त से ढक दिया जाता है। इसके बाद भट्टी के मध्य भाग मे छिद्र करके उसमें आग डाली जाती है तथा आग डालने के पश्चात् छिद्र बन्द कर दिया जाता है। धीरे-धीरे भट्टी सुलगने लगती है और मिट्टी के अंदर सभी जगह आग पहुंच जाती है। भट्टी की आग तीन-चार दिन तक जलती रहती है और धुआं निकलना बंद हो जाता है। परिणामस्वरूप भट्टी भी ठंडी हो जाती है। भट्टी के ठंडा होने पर ऊपर बिछी मिट्टी की परत नीचे धंसने लगती है। इसी से भट्टी पक कर तैयार हो जाने का अंदाजा लगता है। इस प्रकार एक भट्टी मे करीब आठ-दस दिन मे कलाकृतियाँ पक कर तैयार हो जाती हैं, जबकि छोटे आकार की भट्टी तो एक दिन में तैयार हो जाती है, किंतु बड़े आकार की भट्टी को जमाने में दो दिन तक लग जाता है। भट्टी में आग सामान्यतः संध्याकाल में लगाई जाती है ताकि आग की लपटों को देखकर भट्टी के ताप का अंदाजा लगाया जा सके। एक भट्टी में सामान्यतः चार-पाँच सौ छोटे-बड़े बर्तन एवं कलाकृतियों को पकाया जा सकता है।

**भट्टी खोलना-** भट्टी में बर्तनों एवं कलाकृतियों के पकने के बाद उसके खुलने का इंतजार कुम्भकार बेसब्री से करते हैं। क्योंकि यदि भट्टी अच्छी निकल गई, तो परिवार का खर्चा भी चल जाता है अन्यथा मुनाफा तो दूर उल्टा कर्जा सर पर चढ़ जाता है। भट्टी खोलते समय कुंभकार प्रत्येक कलाकृतियों को हाथ से बजा कर देखते हैं, यदि कलाकृतियाँ साबुत है, तो उनकी आवाज मधुर और विशेष प्रकार की कंपनयुक्त लयदार होती है और यदि कलाकृतियाँ टूटी हुयी है, तो उनकी आवाज बिना कंपन वाली, कर्कश होती है। साबुत कलाकृतियों को एक तरफ और टूटी हुयी कलाकृतियों को दूसरी तरफ रखा जाता है। टूटी हुयी कलाकृतियों में

अगर छोटी-मोटी क्षति अथवा दरार हुई है, तो उनकी फेवीक्विक मे लाल पानी मिलाकर मरम्मत कर दी जाती है और अधिक टूट-फूट वाली कलाकृतियों को तोड़कर ठीकरी बना दिया जाता है। यह ठीकरी भट्टी जमाते-पकाते समय काम आती है।

**उपरोक्त** प्रक्रिया के पश्चात् कलाकृतियाँ लाल रंग की रंगत लिए तैयार हो जाती हैं। यहाँ की कलाकृतियाँ केवल हाथ से बनाई जाती हैं एवं प्राकृतिक रंगों से रंगी जाती हैं, जिसका रंग सामग्री के ऊपर अन्त तक वैसे ही बना रहता है, अपनी इसी विशेषता के कारण यहाँ की टेराकोटा कलाकृतियाँ विश्व में प्रसिद्ध है।

**स्वरूप-** जैसा कि टेराकोटा कलाकृतियों के अन्य क्षेत्रों में रहा है, उसी तरह गोरखपुर में भी प्रारंभिक दौर में पारंपरिक कुम्भकार कुल्हड, मटके, सुराही और दिए आदि के निर्माण तक ही सीमित थे किंतु यहाँ कुम्भकारों ने इसे नया आयाम देना शुरु किया और वे बर्तनों के निर्माण तक ही नही रुके बल्कि विभिन्न आकर्षक मूर्तियों जिसमें छोटी-छोटी हौदादार आकृतियों का स्थान विशिष्ट है, का निर्माण करने लगे थे। यहाँ के कुम्भकार अब अपनी कलाकृतियों को विस्तार देते हुए, उसमें हौदादार हाथियों को महावत सहित, विभिन्न प्रकार से आकर्षक रूप प्रदान करके घोड़ा, हाथी, घोड़ा गाड़ी, ग्रामीण परिवेश के मानव कृषि के साथ ही धर्म क्षेत्र के महात्मा बुद्ध, कष्ट विनायक गणेश की प्रतिमा और सजावटी सामान झूमर, लैंपशेड, दीया स्टैंड, दीया के समूह और तरह-तरह के मृदभांडों का निर्माण वर्तमान में कर रहें हैं और यहाँ के कुम्भकारों के इसी क्रांतिकारी निर्माण परिवर्तन ने गोरखपुर को कुम्भकारी कला के विश्व पटल पर स्थापित कर दिया है।

**नवाचार-** गोरखपुर के कुम्भकारों ने समय के साथ विविध नवाचारों को भी अपनाया है। आधुनिक कलागत बदलाव और शिल्पमेलों में अन्य कुम्भकारों की नूतन कलाकृतियों को भी उन्होंने अपना कर माटी के शिल्प को नया मुहावरा दिया है। इससे उनकी कलाकृतियों में ना केवल विषय वैविध्य दिखाई देता है, अपितु आकार, रूप, सौंदर्य में कल्पनाओं का समावेश भी दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिए पहले यहाँ के कुम्भकार साधारण घोड़ा और हाथी बनाया करते थे, परंतु अब इन घोड़ों के अर्ध शरीर के साथ मटकेनुमा गमलों को जोड़कर एक नवीन कलाकृतियों, जिसको घोड़ा बग्गी या घोड़ा गमला नाम से जाना जाता है, का निर्माण करने लग गए हैं। मिट्टी का शंख बनाकर, हिरण की आकृति का पात्र बनाकर, चार कटोरदान परस्पर जोड़कर संयुक्त पात्र बना कर, दीवार पर टांगने वाली सूर्याकृति, छत पर टांगने वाले अलंकृत लालटेन, ऊंट पर पारंपरिक जलपात्र रखकर पुरानी जल परिवहन व्यवस्था को साकार करना, मिट्टी का विंड चेन बनाना, दो से तीन फीट के गुलदस्ते को अलंकरण करके निर्मित करना, यह सब गोरखपुर के कुंभकारी कला के नवाचार ही हैं, जो उन्हें परंपरागत कुंभकारी से अलग करते हैं। इसी प्रकार मंजीरा बजाती मानवकृतियां, बांसुरी वादक, तबला वादक, बोतलनुमा पात्र और उनका भांति-भांति का अलंकरण गोरखपुर के कुंभकारी कला में नवाचार के समावेश का ही द्योतक है। इस नवाचार कलाकृतियों के निर्माण की प्रक्रिया में आधुनिक पद्धतियों एवं उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। इन कलाकृतियों का कुछ भाग इलेक्ट्रिक चॉक के ऊपर बनाया जाता है तथा शेष भाग मिट्टी की टिप्पणियां, बत्तियां चिपकाकर तथा मिट्टी को बेल कर उसे मनचाही आकृति का रूप दिया जाता है। शिल्प के भिन्न-भिन्न हिस्सों को पानी से गिलाकर चिपका दिया जाता है। चिपकाए स्थान की पानी लगाकर उंगली से अच्छी तरह से घिसाई कर दी जाती है, जिससे सूखने पर उस जोड़ का पता भी नहीं चलता और सतह से चिपक कर मजबूत भी हो जाता है। उदाहरण के लिए अगर घोड़े की कलाकृति का निर्माण करना है, तो उसका पेट, पैर, मुंह अलग-अलग बनाए जाते हैं और उन्हें जोड़कर एक संपूर्ण कलाकृति का रूप दे दिया जाता है और फिर उनका श्रृंगार किया जाता है। श्रृंगार करने के पश्चात इन कलाकृतियों में आधुनिक रंगो से रंगांकन कार्य किया जाता है जिसमें एमल्शन पेंट को स्पंज से कलाकृतियों के ऊपर लगाते हैं, जिससे कलाकृतियाँ रंग-बिरंगे, लाल, पीले एवं हरे रंगों में रंग कर तैयार हो जाती हैं, जो यहाँ की पारंपरिक लाल टेराकोटा कलाकृतियों से अलग नवरुपों में प्रदर्शित होती हैं। इन कलाकृतियों में गोरखपुर के कलाधर्मियों ने अपनी कल्पनाओं को तो सजीव किया ही, साथ ही समाज की आवश्यकताओं को भी आकारित करने का उपक्रम किया तथा समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप कलाकृतियों को निर्मित करने के लिए नवाचार को भी अपनाया, जिसके कारण यहाँ निर्मित होने वाली कलाकृतियाँ लोकरुचि और लोक-आकर्षण के केंद्र बने हुए हैं, साथ ही इनकी ख्याति भी दूर-दूर तक फैली है।[20]

**गोरखपुर के टेराकोटा कलाकृतियों का बाजारीकरण -**

पहले जहाँ कुम्भकारों द्वारा निर्मित इन टेराकोटा कलाकृतियों को उचित बाजार उपलब्ध नहीं था, उन्हें अपनी कलाकृतियों के विक्रय के लिए स्थानीय बाजार, मेले, प्रदर्शनियों तक ही सीमित रहना पड़ता था, वहीं आज संचार क्रांति ने टेराकोटा कलाकृतियों को चार चांद लगा दिये हैं। आज यह न केवल देश-विदेश के सैलानियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन चुका है, बल्कि अब इंटरनेट ने इसे वैश्विक बाजार भी देना शुरू कर दिया है। इतना ही नहीं इस कुम्भकारी कला की टेराकोटा कलाकृतियों को समृद्ध और अक्षुण्य बनाए रखने के लिए अब सरकार भी इनके बाजारीकरण की तरफ ध्यान देने लगी है, इसके लिए विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत सरकार इन टेराकोटा कलाकृतियों को बाजार उपलब्ध कराने की व्यवस्था तथा शोरुम से कलाकृतियों को विक्रयकर लाभकारी बनाने की व्यवस्था आदि करने मे लगी है, साथ ही यहाँ तक पहुंचने के लिये सड़क निर्माण, विद्युतीकरण तथा नाली निर्माण आदि योजनाओं पर भी ध्यान देकर इन्हें पर्यटकों तथा ग्राहकों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनाने की कोशिश भी कर रही है।[21]

**गोरखपुर के टेराकोटा कलाकृतियों का राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्व एवं सरकारी संस्थाओं का सहयोग -**

भारत वर्ष विविध कलाओं के माध्यम से विश्व में अपनी पहचान बनाए हुए है, जिनमें गोरखपुर के औरंगाबाद ग्राम की टेराकोटा कलाकृतियाँ अपने कलात्मक सौंदर्य, तकनीक एवं रंग विधान के कारण लोकप्रिय रही हैं। यहाँ के कुम्भकारों की टेराकोटा कलाकृतियाँ लखनऊ के आंबेडकर पार्क की ही नही बल्कि राष्ट्रपति भवन के मुगल गार्डन की भी शोभा बढ़ा रही हैं। यहाँ की ये टेराकोटा कलाकृतियाँ भारतीय धरोहरों के रूप में भारत के साथ-साथ विदेशों जैसे- जापान, अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस, तुर्की आदि के संग्रहालयों में भी संग्रहित हैं। देश-विदेश में आयोजित हस्तशिल्प प्रदर्शनियाँ इन टेराकोटा कलाकृतियों के बिना अधूरी सी प्रतीत होती हैं। गोरखपुर के टेराकोटा कलाकृतियों के जन्म का श्रेय श्री श्याम देव जी को जाता है, इनकी टेराकोटा कलाकृतियों के सौंदर्य से प्रभावित होकर केंद्रीय डिजाइन केंद्र लखनऊ के अधिकारियों ने उनकी कलाकृतियाँ खरीदीं, तब से टेराकोटा को सरकारी तौर पर सम्मान प्राप्त हुआ और ये सिलसिला अब तक अनवरत जारी है। सबसे पहले 1966 में उनकी कलाकृति घोड़ा पर भारत सरकार द्वारा 20 पैसे का डाक टिकट जारी हुआ तथा 1980 में तत्कालीन राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी के हाथों मास्टर क्राफ्टमैन का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। इसके साथ ही विकास प्रशिक्षण केन्द्र गोरखपुर परियोजना प्रबंधक योगेश पाण्डेय निरन्तर 15 वर्षों तक द्वार-द्वार टेराकोटा को आगे बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम जैसे - कार्यशाला प्रदर्शनी, क्राफ्ट बाजार एवं स्थानीय स्तर पर अनेक सेमिनार करवाते रहे हैं।[22] इस क्राफ्टवर्क में कुम्भकारों के साथ अनुसूचित जाति के लोग भी बहुत अधिक संख्या में कार्य कर रहे हैं। इस कुम्भकारी कला का महत्व तब और बढ़ गया, जब कुम्भकारों ने राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यपाल, मुख्यमंत्री तथा अन्य विभूतियों से सम्मान पाकर गोरखपुर का नाम विश्व में स्थापित किया। भारत सरकार के वस्त्र मंत्रालय के विकास आयुक्त हस्तशिल्प कार्यालय सेवा केंद्र वाराणसी ने भी गोरखपुर के टेराकोटा को हर संभव सहायता, प्रशिक्षण, बाजार व प्रोत्साहन संसाधन दिया तथा देश-विदेश के स्तर पर होने वाली कार्यशालाओं और प्रदर्शनियों मे प्रमुख कुम्भकारों को भेजा भी जाता है। यहाँ के प्रमुख कुम्भकार गुलाबचंद्र, लक्ष्मीचंद्र, रामचंद्र आदि 1982, 86 व 88 में इंग्लैंड, सिडनी, ऑस्ट्रेलिया, हॉलैंड, बांग्लादेश सहित भारत मे कई पर्यटन व हस्तशिल्प महोत्सवों में शामिल हो चुके हैं तथा विश्व स्तरीय पुरस्कारों से सम्मानित भी हो चुके हैं। सरकार इन प्रमुख कलाकारों को मास्टर ट्रेनर का दर्जा देती है तथा 50 वर्ष की उम्र के बाद 1000 रुपए प्रतिमाह पेंशन भी दी जाती है। वर्तमान में श्याम देव जी के परिवार के 70 से 80 लोग 6 पुश्तों से इसी लोक कला को विकासशील बनाए रखने में लगे हैं। गोरखपुर में निजी स्तर पर टेराकोटा मूर्तियों का निर्माण करने वाले तो कई दर्जन लोग हैं, मगर इनमें छह संगठन स्वयं सहायता समूह के रूप में कार्य कर रहे हैं, जिनके नाम लक्ष्मी स्वयं सहायता समूह औरंगाबाद, महिला स्वयं सहायता समूह भरवलिया, डॉ. अम्बेडकर हस्तशिल्प टेराकोटा स्वयं सहायता समूह, गौतम बुद्ध हस्तशिल्प स्वयं सहायता समूह लगड़ी गुल्हरिया, वीर एकलव्य टेराकोटा स्वयं सहायता समूह, हस्तशिल्प टेराकोटा स्वयं सहायता समूह प्रमुख है।[23]

**निष्कर्ष :-** पारम्परिक कलाओं को जीवंत रखना सदा-सर्वदा चुनौती पूर्ण रहा है, जिसे गोरखपुर के कुम्भकारों ने स्वीकारा और समय, काल, परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए पारम्परिक कुम्भकारी कला की अपनी विधा टेराकोटा कलाकृतियों को उसके मौलिक आयामों के साथ वर्तमान में

प्रदेश से देश और देश से विश्व स्तर पर आधुनिक माध्यमों जैसे- इलेक्ट्रॉनिक चाक, इंटरनेट आदि के प्रयोग द्वारा स्थापित किया, जो प्रशंसनीय और सराहनीय कदम है। इसके साथ ही सरकार इन कलाकृतियों को जन जन तक पहुंचाने के लिए कई अन्य सहयोगी नीतियां भी तैयार कर रही है, जिसका हिस्सा उत्तर प्रदेश में कुम्भकारी कला के सर्वांगीण विकास के लिए गठित माटी कला बोर्ड भी है। सरकार की इन सहयोगी नीतियों से गोरखपुर की कुम्भकारी लोककला भविष्य में निश्चित रूप से चमत्कारी प्रतिफल देगी जो रोजगार के ज्यादा से ज्यादा अवसरों को बढ़ाएगा तथा कला के क्षेत्र में विश्व स्तर पर भारत की एक अनूठी पहचान बनाने में और सक्षम हो जाएगा।

## संदर्भ


1. मागो, पी0एन0, 'भारतीय पॉटरी का ऐतिहासिक परिपेक्ष्य', समकालीन कला पत्रिका, ललित कला अकादमी, दिल्ली, अंक-30, जुलाई 2006 - अक्टूबर 2006, पृ0 37-38
2. शर्मा, देवदत्त, 'राजस्थान का माटी शिल्प', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, ऑठवां संस्करण, 2010, पृ0 3
3. वही, पृ0 4
4. वही, पृ0 5-7
5. वही, पृ0 7-8
6. वही, पृ0 9-10
7. वही, पृ0 11-12
8. वही, पृ0 13
9. वही, पृ0 14
11. मिश्रा, रामानाथ, 'भारतीय मूर्तिकला का इतिहास', ग्रन्थ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, 2008, पृ0 4
12. http://terracottagorakhpur.org
13. त्रिपाठी, अनुराधा, 'गोरखपुर एवं वाराणसी के मृण्मय कला में निहित अंलकारिक पक्ष का तुलनात्मक अध्ययन', शोध प्रबन्ध, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, 2012, पृ0 4-10
14. प्रजापति धन, कुमार विजय, 'औरंगाबाद की पारम्परिक शिल्पकला' लघु शोध, दयालबाग शिक्षण संस्थान (डीम्ड विश्वविद्यालय), दयालबाग, आगरा, 2014, पृ0 3-15
15. आचार्य, राजेश्वर, 'टेराकोटा और पूर्वांचल', कला त्रैमासिक पत्रिका, राज्य ललित कला अकादमी, उत्तर प्रदेश, अंक- जुलाई-सितम्बर, 2000
16. http://www.abhivyakti-hindi.orgÌaladirgha/aalekh/pkch/pkch.htm
17. http://www.prabhatkhabar.com/news/dhanbad/story/594537.html
18. शर्मा, देवदत्त, पूर्वोक्त, पृ0 81-82
19. https://www.academia.edu/37440592/Terracotta_pottery_of_Gorakhpur_in_Crises_A_Case _ Study_ on_Issues_and_Challenges_of_Potters_ Community_in_Gorakhpur
20. शर्मा, देवदत्त, पूर्वोक्त, पृ0 89-90
21. https://www.hindi.nyoooz.com/news/gorakhpur/terracotta-artifacts-attract-tourists-from-gorakhpur_122766
22. http://terracottagorakhpur.org
23. http://prajapatimanthan.com

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# मैनपाट (फेंडलिंग) तिब्बती शरणार्थी सेटलमेंट, छत्तीसगढ़ में आर्थिक गतिविधियां एवं पलायन की समस्या

❑ ग्रेट गुलशन
❖ डॉ. मीताश्री श्रीवास्तव

मैनपाट छत्तीसगढ़ के उत्तरी भाग में स्थित एक कृषि आधारित तिब्बती शरणार्थी सेटलमेंट है। प्रस्तुत शोध अध्ययन का पहला उद्देश्य मैनपाट (फेंडलिंग) तिब्बती सेटलमेंट की भौगोलिक स्थिति का पता लगाना है। दूसरा उद्देश्य मैनपाट में तिब्बतियों की आर्थिक गतिविधियों को समझना है। अध्ययन का तीसरा और अंतिम उद्देश्य मैनपाट तिब्बती सेटलमेंट में पलायन की समस्या और उसके प्रभाव को जानना है। यह शोध पीएचडी के दौरान फील्डवर्क के माध्यम से एकत्र किए गए प्राथमिक डेटा पर आधारित है, द्वितीयक स्रोतों से डेटा एकत्र करने के लिए किताबों, अखबार के लेख, सरकारी और गैर-सरकारी वेबसाइट आदि का उपयोग किया गया है। शोध के दौरान अवलोकन और साक्षात्कार पद्धतियों का प्रयोग किया गया है और गैर-संभाव्य उद्देश्यपूर्ण सैंपलिंग तकनीक का उपयोग किया गया है। निष्कर्षों से पता चलता है कि मैनपाट में तिब्बती शरणार्थी मुख्य रूप से कृषि सम्बन्धी कार्यों में लगे हुए हैं और इसके अलावा आय के अन्य स्रोत के लिए वे छोटी दुकानें, रेस्तरां आदि चलाते हैं। वे सर्दी के मौसम में प्रतिवर्ष गर्म कपड़ों के कारोबार के लिए अन्य राज्यों में अल्पकालिक प्रवास के लिए जाते हैं। स्थायी प्रवास, सेटलमेंट में एक बड़ी समस्या है क्योंकि कई तिब्बतन शरणार्थी बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य अवसरों के लिए मैनपाट छोड़ रहे हैं और अन्य शहरों और देशों में बस रहे हैं। अतः मैनपाट सेटलमेंट के समग्र विकास की आवश्यकता है, जहां सभी तिब्बती शरणार्थियों को भविष्य में उनके कुशलता के अनुसार रोजगार और साथ ही साथ अन्य सुविधाएँ भी मिल सकें।

मैनपाट (फेंडलिंग) एक तिब्बती शरणार्थी सेटलमेंट है जोकि छत्तीसगढ़ के उत्तरी भाग में सरगुजा जिले में स्थित है। मैनपाट में तिब्बती शरणार्थी 1962 से बसे हुए हैं।[1] फेंडलिंग का शाब्दिक अर्थ 'शांति और सद्भाव के पोषण के लिए एक जगह है'।[2] तिब्बती शरणार्थी 'साइनो-तिब्बतन' भाषा परिवार के मूलतः तिब्बत के रहवासी हैं।[3] तिब्बत मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों में विभाजित है, उत्संग, खाम और आम्दो।[4] जब चीन ने तिब्बत पर 1959 में आक्रमण किया तब चीन के 'पीपल्स लिबरेशन आर्मी' के अत्याचार के भय से हिमालयन रेंज को पार करते हुए अपने धर्मगुरु 'परम पावन दलाई लामा' जी के साथ लगभग 80,000 तिब्बती शरणार्थी भारत सीमा पर पहुंचे और भारत सरकार से शरण की मांग की।[5] ''यूनाइटेड नेशन्स हाई कमिश्नर फॉर रियूजी'' के अनुसार शरणार्थी वह है जिसे उत्पीड़न, युद्ध या हिंसा के कारण उसके देश से भागने के लिए मजबूर किया गया है। एक शरणार्थी को एक विशेष सामाजिक समूह में नस्ल, धर्म, राष्ट्रीयता, राजनीतिक राय या सदस्यता के कारण उत्पीड़न का एक स्थापित भय होता है। सबसे अधिक संभावना है, वे घर नहीं लौट सकते हैं या ऐसा करने से डरते हैं। युद्ध और जातीय, आदिवासी और धार्मिक हिंसा शरणार्थियों के अपने देशों से भाग जाने का प्रमुख कारण होता है।[6] प्रारंभिक दिनों में तिब्बती शरणार्थी नेपाल सीमा होते हुए भारत में प्रवेश किये और अरुणाचल प्रदेश पहुंचे, और वहां पहुंचने के बाद उन्हें भारत सरकार ने गृह मंत्रालय से बातचीत करके सीमा पर ही अस्थायी शरण दी। जब तिब्बती भारत पहुंचे तब उनके धर्मगुरु 'परम पवन दलाई लामा' जी ने भारत सरकार से आग्रह किया कि उन्हें ऐसा जगह रहने के लिए जमीन उपलब्ध करायी जाए जहाँ का तापमान उनके लिए उपयुक्त हो, क्योंकि तिब्बत पठार एक उच्च भूमि है और वहां का तापमान कम होता है। अतः भारत सरकार द्वारा तिब्बतियों को भारत के विभिन्न राज्यों में उनके रहने के लिए अनुकूल जमीन आवंटित की गयी। बाद के दिनों में वहां से तिब्बतियों ने भारत के अलग-अलग राज्यों में जाकर अपना कैंप बनाया और रहना शुरू किया।[7] 'परम पावन दलाई लामा' जी तिब्बतन बुद्धिज़्म और तिब्बतियों के आध्यात्मिक गुरु

❑ शोध अध्येता, मानव विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
❖ असिस्टेंट प्रोफेसर, मानव विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

हैं और वर्तमान में धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश, भारत में रहते हैं।[8] भारत आगमन के समय तिब्बती शरणार्थियों की संख्या लगभग लगभग 80,000 के आसपास थी।[9] बाद के वर्षों में 1980 और 1990 के बीच तिब्बती शरणार्थियों के संख्या में वृद्धि हुई और तिब्बत से बाहर निर्वासन में रहने वालों की जनसँख्या बढ़कर पूरे विश्व में लगभग 150,000 हो गयी।[9]

**जनसांख्यिकीय** सर्वेक्षण, सेंट्रल टिबेटन एडमिनिस्ट्रेशन 2009 के अनुसार भारत में तिब्बती शरणार्थियों की संख्या 94,203, नेपाल में 13,514, भूटान में 12,98 और 18,999 लोग अन्य 27 देशों (मुख्यतः यूरोपियन देशों) में रह रहे हैं।[10] 'टिबेटन रिहैबिलिटेशन पालिसी, 2014' के अनुसार भारत में 45 तिब्बत सेटलमेंट हैं जो देश के मुख्यतः 12 राज्यों में है।[11] वर्तमान में दुनिया भर के विभिन्न देशों जैसे अमेरिका, स्विट्जरलैंड, नेपाल, भूटान और अधिकतर लोग यूरोपीय देशों में रह रहे हैं और चीन से तिब्बत को मुक्त कराने के लिए संघर्ष कर रहे हैं।[9] सेंट्रल टिबेटन एडमिनिस्ट्रेशन के अनुसार चीनी प्रशासित क्षेत्र तिब्बत की जनसँख्या लगभग 6 मिलियन है, इस क्षेत्र को चीन में 'टिबेट आटोनोमस रीजन' भी कहा जाता है।[12] सेंट्रल टिबेटन रिलीफ कमेटी, केंद्रीय तिब्बती प्रशासन के अनुसार भारत में 15 कृषि आधारित, 13 हस्तकला आधारित, और 11 क्लस्टर समुदाय तिब्बती सेटलमेंट है, और मैनपाट भी उनमे से एक कृषि आधारित सेटलमेंट है।[13] योजना आयोग, सेंट्रल टिबेटन एडमिनिस्ट्रेशन के अनुसार पूरे देश में भारत सरकार द्वारा तिब्बती शरणार्थियों को 25,000 एकड़ भूमि उपलब्ध करायी गयी है।[9]

**प्रवास** एक विश्वव्यापी समस्या है, दुनिया भर में लोग विभिन्न कारणों से एक स्थान से दूसरे स्थान पर बेहतर सुविधाओं और काम के तलाश में प्रवास करते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान प्रवास करने से उस स्थान पर जनसँख्या का बढ़ना उस स्थान के लिए लाभकारी और हानिकारक दोनों होता है। प्रवासी की कोई सार्वभौमिक रूप से सहमत परिभाषा नहीं हैं, लेकिन युनाइटेड नेशन्स एक प्रवासी को इस प्रकार परिभाषित करता है 'कोई भी व्यक्ति जो अपने देश से अपने सामान्य निवास को बदलता है।'[14] प्रवास विभिन्न प्रकार का होता है पर भारत में आतंरिक प्रवास, ग्रामीण से शहरी प्रवास एक प्रमुख समस्या है। ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में प्रवास करने वाले लोगों में अधिकतर श्रमिक वर्ग के होते हैं जो काम के तलाश में शहरों की ओर कूच करते हैं। प्रवास करने वालों में छात्र भी होते हैं जो बेहतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए शहरों की ओर पलायन करते हैं। यूनाइटेड नेशन के ''विश्व प्रवास रिपोर्ट 2020'' के अनुसार 2019 में विश्व स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय प्रवासियों की संख्या 272 मिलियन (दुनिया की आबादी का 3.5 प्रतिशत) है।[14] आंतरिक और अल्पावधि प्रवास में लोग कुछ समय के लिए अपना जन्म स्थान छोड़कर अन्य स्थान पर पलायन करते हैं और उनका निश्चित उद्देश्य पूरा होने पर अपने पैतृक या जन्म स्थान पर वापस आ जाते हैं।

**मैनपाट** में भी पलायन एक समस्या है और तिब्बती शरणार्थी वहां से पलायन कर रहे हैं। सेटलमेंट ऑफिस मैनपाट, सेंट्रल टिबेटन एडमिनिस्ट्रेशन के अनुसार प्रारंभिक दिनों में तिब्बतियों की जनसंख्या लगभग 2000 थी पर अब यह लगभग 1106 के आस-पास रह गयी है। यहाँ के तिब्बती लोग कुछ समय के लिए कारोबार के लिए अन्य शहरों में पलायन कर जाते हैं। उनका मुख्य व्यवसाय गर्म कपड़े बेचने का होता है जो सर्दियों के मौसम से शुरु होकर फरवरी महीने तक चलता है। तिब्बती युवा वर्ग भी अधिकतर मैनपाट से बेहतर जीवन-यापन, स्वास्थ्य सुविधा और उच्च शिक्षा के लिए पलायन कर जाते हैं। मौसमी प्रवास पर जाने वाले व्यवसायी तो कुछ महीनों में वापस आ जाते हैं पर अधिकतर युवा वर्ग दूसरे शहरों और देशों में बस जाते हैं। मैनपाट से तिब्बतियों के स्थायी पलायन से वहां की जनसंख्या दिन-प्रतिदिन घट रही है। 17 दिसंबर 2019 को तिब्बत सन वेबसाइट को दिए साक्षात्कार में योजना आयोग, केंद्रीय तिब्बती प्रशासन के प्रमुख कुंचोक त्सुंडे[9] ने भी कहा कि भारत में तिब्बतियों की संख्या में भारी कमी आई है।

**साहित्य समीक्षा :** प्रस्तुत शोध के लिए तिब्बती अध्ययन के क्षेत्र में प्रमुख अध्येताओं के कार्यों को सम्मिलित किया गया है। मेल्विन गोल्डस्टीन, ए. वी. अराकेरी, गिरिजा सकलानी, क्रिस्टोफ वॉन-फरेर-हैमंडोरफ, और एल. टी. ओमप्रकाश (समाजशास्त्री) आदि। **मेल्विन गोल्डस्टीन**[15] का लेख ''एथ्नोजेनेसिस एंड रिसोर्स कॉम्पिटिशन अमंग टिबेटन रिफ्यूजी इन साउथ इंडिया'' (1978) स्थानीय भारतीय लोगों और तिब्बती शरणार्थियों के बीच संबंधों से संबंधित है और दक्षिण भारतीय राज्य कर्नाटक में उनके

बीच संसाधन के लिए होने वाले प्रतिस्पर्धा पर केंद्रित है। **ए. वी. अराकेरी**[7] ने अपनी किताब में बाईलाकुप्पे, कर्नाटक, भारत में बसे तिब्बती शरणार्थी सेटलमेंट के पुनर्वास के दौरान होने वाली समस्याओं और उनके सामाजिक-आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है। **गिरिजा सकलानी**[16] भारत के एक प्रमुख समाजशास्त्री हैं जिन्होंने भारत में तिब्बतियों के बीच काम किया है, उनकी पुस्तक "द अपरूटेड टिबेटन्स इन इंडिया" में भारत और अन्य देशों में रह रहे तिब्बती शरणार्थियों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है जिसमें उन्होंने पवित्र भूमि तिब्बत का सांस्कृतिक इतिहास, निरंतरता और परिवर्तन के बारे में लिखा है। **फ्रांज माइकल**[17] ने अपने लेख 'सर्वाइवल ऑफ ए कल्चर टिबेटन रियूजीस इन इंडिया' में भारत में तिब्बतियों के इतिहास, संस्कृति और अस्तित्व की रणनीतियों पर चर्चा की है। **क्रिस्टोफ वॉन फरेर-हाइमेंडोर्फ**[18] का काम नेपाल, भूटान और भारत के सीमावर्ती राज्य में रहने वाले तिब्बती शरणार्थियों पर केंद्रित है, उन्होंने अपनी पुस्तक "द रेनैस्सेंस ऑफ टिबेटन सिविलाइजेशन" में उनके सामाजिक-आर्थिक जीवन, धर्म-सांस्कृतिक इतिहास आदि पर प्रकाश डाला है। **कैथरीन प्रैट इविंग**[19] ने अपनी पुस्तक "इमिग्रेंट आइडेंटिटीज एंड इमोशन" में अप्रवासी की पहचान और भावनाओं के मुद्दे पर प्रकाश डाला है। पुस्तक विदेशी भूमि या प्रवासित स्थान पर भावनाओं के सांस्कृतिक निर्माण से संबंधित है, जिसमें उन्हें स्थानीय लोगों की विशिष्टता का अहसास होता है, प्रवास के पीछे कारण जो भी हो सकता है। **एल.टी. ओमप्रकाश**[20] ने अपने लेख में बाईलाकुप्पे, कर्नाटक, भारत में तिब्बती शरणार्थियों के जीवन और आजीविका के बारे में संक्षेप में वर्णन किया है। **थॉमस कॉफमैन**[21] की किताब 'द अजेंडास ऑफ टिबेटन रिफ्यूजीस : सर्वाइवल स्ट्रेटेजीज ऑफ अ गवर्नमेंट-इन- एक्साइल इन अ वर्ल्ड ऑफ ट्रांसनेशनल आर्गेनाईजेशन्स' तिब्बती शरणार्थियों की उत्तरजीविता रणनीतियों और विदेशी भूमि में उनकी सफलता में योगदान करने वाले कारकों का पड़ताल करती है।

**शोध का उद्देश्य :** प्रस्तुत अध्ययन का पहला उद्देश्य मैनपाट (फेंडलिंग) तिब्बती सेटलमेंट की भौगोलिक स्थिति का पता लगाना है। दूसरा उद्देश्य मैनपाट में तिब्बतियों की आर्थिक गतिविधियों को समझना है। अध्ययन का तीसरा और अंतिम उद्देश्य मैनपाट (फेंडलिंग) तिब्बती सेटलमेंट में पलायन की समस्या और उसके प्रभाव को जानना है।

**शोध पद्धति :** यह अध्ययन प्रकृति में नृवंशविज्ञानी है और दोनों प्राथमिक और द्वितीयक डेटा का उपयोग उचित डेटा एकत्र करने के लिए किया गया है। शोध के दौरान अवलोकन और साक्षात्कार पद्धतियों का प्रयोग किया गया है और गैर-संभाव्य उद्देश्यपूर्ण सैंपलिंग तकनीक का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध के लिए 1 स्कूल शिक्षक, 3 दुकानदारों, 3 ऑफिस कर्मचारीयों (सेंट्रल टिबेटन एडमिनिस्ट्रेशन), 10 कृषकों एवं 10 अल्पअवधि व्यवसायी प्रवासियों के साक्षात्कार को शामिल किया गया है। द्वितीयक स्रोतों से डाटा एकत्रित करने के लिए किताबों, न्यूज पेपर लेख, और ऑनलाइन डेटा प्राप्त करने के लिए सेंट्रल टिबेटन एडमिनिस्ट्रेशन एवं अन्य सरकारी व गैर-सरकारी वेबसाइटों का उपयोग किया गया है।

**शोध क्षेत्र :** मैनपाट तिब्बती सेटलमेंट मध्य भारत में उत्तरी छत्तीसगढ़ के सरगुजा जिले में स्थित है। फेंडलिंग का शाब्दिक अर्थ 'शांति और सद्भाव के पोषण के लिए एक जगह' है और फेंडलिंग तिब्बत में स्थित 'लखा लामा' मोनेस्ट्री का भी नाम है।[1] मैनपाट सरगुजा जिले के अंबिकापुर उप-संभाग से लगभग 50 किमी दूर ऊँची पहाड़ी पर समुद्र तल से 3781 फीट ऊपर स्थित है।[22] मैनपाट तिब्बती सेटलमेंट एक कृषि आधारित सेटलमेंट है, वहां तिब्बती सेटलमेंट को 7 कैम्पों में विभाजित गया है, जोकि एक दूसरे से 5-12 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। तिब्बती सेटलमेंट का कार्यालय कैंप नंबर 1 में स्थित है जहाँ से सभी प्रशासनिक कार्य किये जाते हैं। कैंप नंबर 6 सबसे दूर में स्थित है जो कैंप नंबर 1 से लगभग 12 किलोमीटर दूर है। मैनपाट में तिब्बतियों के अलावा आदिवासी, यादव, मुस्लिम और अन्य जाति के लोग भी रहते हैं।[23] यह छत्तीसगढ़ के प्रमुख पर्यटक आकर्षण स्थलों में से एक है, इसके ऊँचे पहाड़ी पर और कम तापमान होने के कारण इसे छत्तीसगढ़ का 'मिनी-तिब्बत' और 'शिमला' के नाम से भी जाना जाता है।[23] यहाँ जुलाई से सितंबर महीने के बीच अधिकतम वर्षा होती है और सर्दियों की शुरुआत नवंबर से होती है और अंत मार्च के आखिरी सप्ताह में होता है। सर्दियों के मौसम में न्यूनतम तापमान 1 डिग्री तक भी हो जाता है। मैनपाट में तिब्बतियों के द्वारा बनाया गया बौद्ध मंदिर आकर्षण का केंद्र है और सैलानी पूरे वर्ष वहां प्राकृतिक दृश्यों का आनंद लेने आते रहते हैं। मैनपाट को उस समय ठंडे जलवायु परिस्थितियों के कारण तिब्बतियों के रहने के

लिए चुना गया था, जो उनके लिए उपयुक्त है, क्योंकि तिब्बती शरणार्थी दुनिया के सबसे ऊंचे पठार में से एक के निवासी थे।[24] मैनपाट (फेंडलिंग), छत्तीसगढ़ में चार बौद्ध मोनेस्ट्री (मठें) हैं जोकि तिब्बती बुद्धिज़्म की विभिन्न शाखाओं से सम्बंधित हैं। यह मठें अलग-अलग कैम्पों में क्रमशः 1, 2 और 3 में स्थित है और यह बौद्ध भिक्षुओं के लिए शिक्षा का केंद्र भी है जहाँ देश और विदेशों के भी बौद्ध भिक्षु आकर शिक्षा प्राप्त करते हैं। सबसे पुराना बौद्ध मठ कैंप नंबर 1 में स्थित है, जोकि तिब्बतन बुद्धिज़्म के 'गेलुग' सम्प्रदाय से सम्बन्धित है, जो चार तिब्बतन बुद्धिस्ट स्कूलों न्यिंगमा, कग्यू और साक्य के बाद चौथा और नवीनतम स्कूल है।[25]

**मैनपाट के तिब्बती शरणार्थियों का आर्थिक गतिविधियां**

**कृषि आधारित कार्य :** मैनपाट एक कृषि आधारित तिब्बती सेटलमेंट है। सेटलमेंट ऑफिस, सेंट्रल टिबेटन एडमिनिस्ट्रेशन के अनुसार भारत सरकार द्वारा तिब्बतियों को मैनपाट में 2,996 एकड़ जमीन उपलब्ध करायी गयी है।[23] यह जमीन छत्तीसगढ़ वन मंडल के अधीन है जोकि तिब्बती शरणार्थियों को उपलब्ध करायी गयी है। सेटलमेंट ऑफिस, सेंट्रल टिबेटन एडमिनिस्ट्रेशन के कृषि अनुभाग के अधिकारी के अनुसार शुरुआती दिनों में प्रत्येक परिवार को परिवार के सदस्यों के आधार पर भूमि उपलब्ध करायी गयी थी, उदाहरण के लिए परिवार में एक सदस्य होने पर 1 एकड़ भूमि दी गयी थी। स्थानीय तिब्बतियों के अनुसार प्रारम्भ में भूमि कृषि योग्य नहीं थी, भूमि पथरीली और जंगलों से घिरी हुई थी और बाद में तिब्बतियों ने इसे कृषि योग्य भूमि बनाया। सेटलमेंट में तिब्बतियों को भूमि आबंटन और प्रबंधन का कार्य कृषि विभाग, सेंट्रल टिबेटन एडमिनिस्ट्रेशन के द्वारा किया जाता है।

**कैंप नंबर 5** को जैविक खेती के लिए चुना गया है जो भूमि के प्रति उनके लगाव को दर्शाता है, वे कीटनाशकों का उपयोग नहीं करना चाहते हैं और भूमि को किसी भी प्रकार से नुकसान नहीं पहुंचाना चाहते हैं। मौसम के अनुसार वे अपनी भूमि पर रबी और खरीफ फसलों की खेती करते हैं। मैनपाट में तिब्बतियों के द्वारा ली जाने वाली मुख्य फसलें आलू, एक प्रकार का अनाज टाउ (बकव्हीट), धान, रागी, मक्का, लोबिया (काउपी), रामतिल (नाइजर), अदरक, गेहूँ, सूरजमुखी और सरसों है। इसके अलावा वे अपने खेतों में विशेष रूप से कैंप नंबर 5 में सब्जियों और फलों की भी खेती करते हैं। इस क्षेत्र में एक प्रकार का अनाज 'टाउ' (बकव्हीट) तिब्बती शरणार्थियों द्वारा अपने आगमन के साथ तिब्बत से लाया गया था, यह तिब्बतन पठार की फसल है। इसे स्थानीय भाषा में 'टाउ' नाम से जाना जाता है। वर्तमान में मैनपाट सहित आसपास के गावों में भी बकव्हीट की खेती की जाती है। इसकी खेती करना आसान होता है इसे ज्यादा पानी और देखभाल की जरुरत नहीं पड़ती है जिससे यह कृषकों के लिए सुविधाजनक होती है। इस फसल का बाजार मूल्य भी अधिक होता है जिससे कृषक अधिक लाभान्वित होते हैं। स्थानीय लोग भी इस फसल की खेती करते हैं और लाभान्वित हो रहे हैं, जोकि तिब्बती शरणार्थियों का ही देन है। एक तिब्बती कृषक के अनुसार तिब्बतियों के पास भारत की नागरिकता नहीं है जिसके कारण उन्हें केंद्र और राज्य सरकार द्वारा अनुदान, ऋण व अन्य सुविधाओं का लाभ नहीं मिल पाता है, पर वे किसी तरह स्वयं के खर्च पर कृषि कार्य करते हैं और कभी-कभी 'टिबेटन कोआपरेटिव सोसाइटी' से अल्पअवधि का ऋण लेते हैं। तिब्बतियों को खेतों में कार्य करने के लिए मैनपाट के स्थानीय लोग ही मदद करते हैं। मैनपाट एक जनजातीय बहुल इलाका है, जहाँ भूमिहीन लोगों को इनके खेतों में काम मिल जाता है। तिब्बती जब से मैनपाट आये हैं तब से एक दूसरे पर परस्पर निर्भर हैं, खेतों से लेकर घरेलू कार्यों में भी स्थानीय लोग तिब्बतियों का मदद करते हैं जो उनके बीच सकारात्मक सम्बन्ध को दर्शाता है।

**मैनपाट** के अधिकतर तिब्बती कृषि कार्यों के साथ अन्य व्यवसाय से भी किसी न किसी रूप से जुड़े हुए हैं। कृषि कार्य तिब्बती शरणार्थियों की आय का मुख्य स्रोत हैं, और यह मानसून की बारिश पर निर्भर करता है, क्योंकि इस क्षेत्र में सिंचाई सुविधा का विकसित स्रोत नहीं है।

**कालीन या गलीचा बनाने का कार्य :** तिब्बती शरणार्थी जब मैनपाट (फेंडलिंग) आये थे तब वे कालीन बनाने का काम करते थे, जोकि उन दिनों उनकी आय का प्रमुख स्त्रोत था। कालीन बनाने का काम तिब्बती उस समय परंपरागत रूप से हाथों से किया करते थे और स्थानीय लोगों को भी प्रशिक्षण दिया करते थे। वर्तमान में केवल कुछ तिब्बती ही कालीन बनाने का काम करते हैं, क्योंकि समय के साथ-साथ वे अन्य व्यवसाय भी शुरू कर दिए हैं, क्योंकि कालीन बनाने के लिए अधिक श्रम और समय की आवश्यकता होती है। मैनपाट में एक हस्तकला प्रशिक्षण केंद्र है जो छत्तीसगढ़ हस्तशिल्प विकास बोर्ड, छत्तीसगढ़

शासन का उपक्रम है। इस बोर्ड की स्थापना छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा सन 2001 में 'शबरी' के ब्रांड नाम में स्थापित किया गया था।[26] हस्तशिल्प केंद्र स्थानीय लोगों को कालीन बनाने का प्रशिक्षण देता है और अधिकांश प्रशिक्षण प्राप्त करने वाली आदिवासी महिलाएं हैं। प्रशिक्षण केंद्र में बनने वाली कालीन को 'तिब्बती कालीन' के नाम से जाना जाता है, क्योंकि कालीन बनाने का काम शुरुआत में मुख्य रूप से तिब्बतियों द्वारा शुरू किया गया था। हस्तशिल्प प्रशिक्षण केंद्र में कालीन को अलग-अलग डिजाइनों में बनाया जाता है, सबसे प्रसिद्ध डिजाइन 'ड्रैगन' मुद्रित कालीन का होता है, तिब्बतन बुद्धिज़्म के पौराणिक कथाओं में 'ड्रैगन' को शक्ति और सकारात्मक ऊर्जा के प्राणी के रूप में जाना जाता है। कालीन ग्राहकों के आदेशानुसार विभिन्न आकारों और रंगों में बनाया जाता है।

**कालीन** बनाने की परंपरा जो तिब्बतियों ने शुरू की थी वह आज मैनपाट की एक पहचान बन चुका है। तिब्बतियों के आने से स्थानीय लोगों को भी रोजगार का अवसर उपलब्ध हुआ है और लोग इस काम से आमदनी प्राप्त कर रहे हैं।

**अन्य कार्य के लिए प्रवास और उसका कारण :** मैनपाट (फेंडलिंग) के तिब्बती शरणार्थी प्रतिवर्ष सर्दियों के दिनों में देश के अन्य राज्यों के कई शहरों में प्रवास कर जाते हैं। प्रवास अस्थायी और सीमित अवधि के लिए होता है और प्रवास का कारण मुख्यतः आर्थिक गतिविधियां होता है। प्रवास की अवधि लगभग 4 महीने की होती है, वे नवंबर के महीने में प्रवास पर जाते हैं और फरवरी के अंत में तिब्बती त्यौहार 'लोसार' के पहले वापस आ जाते हैं। इस दौरान तिब्बती पंजाब के लुधियाना शहर से गर्म कपड़ों का खरीददारी करते हैं और अन्य राज्यों के अलग-अलग शहरों में जाकर बेचते हैं। प्रवास के दौरान तिब्बती अस्थायी टेंट लगाकर या किराये का मकान लेकर रहते हैं। जब वे मैनपाट से जाते हैं तब अपने साथ कुछ स्थानीय लोगों को भी साथ ले जाते हैं, जो उन्हें विभिन्न कामों में मदद करते हैं। इससे स्थानीय लोगों को भी कुछ समय के लिए रोजगार का अवसर प्राप्त हो जाता है। तिब्बतियों के साथ जाने वाले स्थानीय लोग मुख्यतः जनजातीय समुदाय से होते हैं, जोकि भूमिहीन होते हैं और रोजगार के लिए उनके साथ चले जाते हैं। जब स्थानीय तिब्बतियों के साथ प्रवास पर जाते हैं तब उनके परिवार की आवश्यकता पड़ने पर मैनपाट में रह रहे तिब्बती मदद करते हैं। व्यवसाय में लाभ हर वर्ष एक जैसा नहीं होता है, यह मौसम पर निर्भर करता है। एक तिब्बती कपड़ा व्यवसायी का कहना है कि हमारा व्यवसाय पूरी तरह मौसम पर निर्भर होता है, यदि किसी वर्ष अधिक सर्दी पड़ती है तो अच्छी आमदनी हो जाती है और किसी वर्ष कम सर्दी पड़ने से व्यवसाय में नुकसान भी होता है।

**कुछ तिब्बती** शरणार्थी मैनपाट (फेंडलिंग) से स्थायी रूप से पलायन कर रहे हैं और यह सिलसिला लगातार जारी है। एक भारतीय अंग्रेजी अखबार द इंडियन एक्सप्रेस में 11 सितम्बर, 2018 को छपे लेख के अनुसार तिब्बत मामलों में सरकार के सलाहकार अमिताभ माथुर ने बताया था कि भारत में तिब्बती शरणार्थियों की संख्या में भारी गिरावट दर्ज की गई है - पिछले सात वर्षों में 1.5 लाख से 85,000 तक - बड़ी संख्या में या तो अमेरिका की ओर पलायन कर रहे हैं या चीन या तिब्बत लौट रहे हैं।[27] तिब्बती 'रिफ्यूजी' होने के कारण भारत में न ही वे जमींन खरीद सकते हैं और न ही बेच सकते हैं, और न ही उन्हें सरकारी नौकरियों के लिए आवेदन करने का अधिकार है, यह तिब्बतियों का पलायन करने का मुख्य कारण माना जाता है। "टिबेटन रिहैबिलिटेशन पालिसी, 2014" के बाद से ही उन्हें कुछ जॉब सेक्टरों में आवेदन करने और काम करने का अधिकार मिला है।[11] प्राइवेट और गैर-सरकारी सेक्टर के नौकरी में भी आवेदन कर सकते हैं, ऐसा कोई भी क्षेत्र का काम जिसे करने में वो कुशल हैं। स्थायी प्रवास से मैनपाट के तिब्बतियों की जनसंख्या लगातार घट रही है जोकि तिब्बतियों के लिए भी चिंता का विषय बना हुआ है। स्थायी प्रवास करने वाले तिब्बती ज्यादातर अन्य देशों में जाकर बस जाते हैं। कुछ तिब्बतियों के अनुसार यहाँ से पलायन करने का मुख्य कारण रोजगार और उच्च शिक्षा है, लोग बेहतर शिक्षा और रोजगार के अवसर के लिए पश्चिमी और अमेरिकी देशों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, स्विट्ज़रलैंड, जर्मनी, फ्रांस और अन्य यूरोपीय देशो में बस जाते हैं। तिब्बतियों में पलायन की समस्या "टिबेटन-गवर्नमेंट- इन-एक्साइल" के लिए भी चिंता का विषय भी बनी हुई है।[28]

**तिब्बती शरणार्थियों के जीवन में प्रवास का प्रभाव :** प्रवास एक विश्वव्यापी समस्या है, लोग बेहतर स्वास्थ्य सुविधा, नौकरी और जीवन यापन के अवसर प्राप्त करने के लिए एक देश से दूसरे देश और ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में पलायन करते हैं। पलायन के पीछे मुख्य कारण रोजगार और बेहतर शिक्षा प्राप्त करना होता है दोनों

मैनपाट (फेंडलिंग) में उपलब्ध नहीं है। मैनपाट में तिब्बतियों का स्कूल भी सिर्फ 5वीं कक्षा तक है जिसके कारण से तिब्बती लोग अपने बच्चों को आगे की शिक्षा के लिए अन्य स्थानों पर भेज देते हैं। वर्ष 2016 तक यह स्कूल माध्यमिक स्तर तक था जो छात्रों की कम संख्या होने के कारण सिर्फ प्राथमिक स्तर तक कर दिया गया। "टिबेटन रिहैबिलिटेशन पालिसी 2014" जमीनी स्तर पर लागू नहीं होने के कारण तिब्बतियों को उनके जन्म स्थान पर सरकारी योजनाओं का लाभ नहीं मिल पाता है, जिससे बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है और लोग पलायन करने को मजबूर होते हैं। मैनपाट के तिब्बती शरणार्थी भी सीमित अवधि के लिए अन्य राज्यों के शहरी क्षेत्रों में व्यवसाय हेतु पलायन करते हैं। कुछ तिब्बती स्थायी रूप से मैनपाट छोड़कर बेहतर जीवन यापन और स्वास्थ्य सुविधा प्राप्त करने के लिए पलायन कर जाते हैं। इस दौरान उनके बच्चे और माता-पिता अपने घरों में रहते हैं। कुछ लोग अपने बच्चों को अपने पड़ोसी या रिश्तेदारों के पास छोड़ देते हैं, और कुछ लोग अपने बच्चों को छात्रावास में भेज देते हैं, जो "सेंट्रल टिबेटन एडमिनिस्ट्रेशन" के कार्यालय द्वारा छात्रों के लिए बनवाया गया है। कुछ घरों में सिर्फ बुजुर्ग लोग ही होतें है क्योंकि उनके बच्चे बेहतर शिक्षा और अन्य व्यवसाय के लिए भारत के अन्य शहरों और विदेशों में पलायन कर जाते हैं। अस्थायी प्रवासी कुछ महीनो में अपने घर वापस आ जाते हैं पर जो स्थायी प्रवासी होते हैं वे कुछ दिनों के लिए ही विशेष अवसरों पर अपने घर वापस आते हैं। स्थायी प्रवास से मैनपाट की जनसंख्या भी दिन प्रतिदिन घट रही है, जोकि तिब्बती शरणार्थियों के लिए भी चिंता का विषय बना हुआ है।[29] प्रवास से परिवार की संरचना बदल जाती है और संयुक्त परिवार तब टूट भी जाते हैं।

**तिब्बती** शरणार्थी तिब्बत की स्वतंत्रता के लिए दशकों से संघर्ष कर रहे हैं, और लोगों के अलग-अलग स्थानों में पलायन कर जाने से इस संघर्ष के कमजोर होने का भी खतरा होता है। तिब्बतियों के प्रवास कर जाने के बाद उनकी जमीन पर अन्य लोगों के द्वारा आंशिक रूप से कुछ भू-भाग पर अतिक्रमण का भी खतरा होता है। जनसंख्या कम होने से सामाजिक असुरक्षा की भावना भी होती है, क्योंकि तिब्बतियों के मामले में यह बताया गया है कि स्थानीय लोग कभी-कभी उन्हें 'नेपाली' कहते हैं और उन्हें स्थानीय संघर्ष में शामिल करने की भी कोशिश करते हैं, लेकिन इसे सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता है। अधिकतर तिब्बतियों द्वारा यह बताया जाता है कि तिब्बती और स्थानीय लोगों के रिश्ते अच्छे हैं और दशकों से वे साथ रह रहे हैं।

**मैनपाट में सुविधाएँ :** मैनपाट सेटलमेंट में कुछ बुनियादी सुविधाएँ जैसे स्कूल, अस्पताल, वृद्धाश्रम, मोनेस्टरी (मठ) और कोआपरेटिव सोसाइटी हैं। स्कूल किंडरगार्टन से लेकर प्राथमिक स्तर तक है जिसमें वर्ष 2019-20 में 20 छात्र (बालक एवं बालिका) किंडरगार्टन में और 40 छात्र (बालक एवं बालिका) प्राथमिक स्कूल में अध्ययनरत थे। सेटलमेंट में एक एलोपैथिक और एक तिब्बतन हर्बल मेडिसिन क्लिनिक है जिसमें तिब्बती शरणार्थियों के साथ अन्य स्थानीय लोगों का भी इलाज होता है। कैंप नंबर 1 में वृद्धाश्रम है जिसमें वर्तमान में 17 वृद्धजन रह रहे हैं, और इनमें से 15 महिलाएँ और 2 पुरुष हैं। सेटलमेंट में 4 मोनेस्ट्री है जोकि कैंप नंबर 1, 2 और 3 में स्थित है। कैंप नंबर 1 में "टिबेटन कोआपरेटिव सोसाइटी" है जिसके अंतर्गत 6 यूनिट्स हैं ट्रैक्टर और कार्यशाला अनुभाग, एसटीडी आईएसडी और फोटो कॉपी अनुभाग, हस्तशिल्प अनुभाग, उपभोक्ता दुकान विभाग, आटा चक्की खंड और जैविक खाद खंड।[29] कोआपरेटिव सोसाइटी समय-समय पर तिब्बतियों को जरुरत पड़ने पर कृषि या अन्य कार्यों में सहायता के लिए अल्पअवधि का ऋण भी प्रदान करती है। कोआपरेटिव सोसाइटी का मुख्य कार्य उन्नत किस्म के बीज की आपूर्ति करना, फर्टिलाइजर उपलब्ध कराना, कृषि कार्यों में ट्रैक्टर उपलब्ध करना इत्यादि होता है। सभी तरह की सेवाएं सोसाइटी एक निश्चित दर पर उपलब्ध करती है जोकि पहले से निर्धारित होता है। भारत देश में इस तरह की 15 टिबेटन कोआपरेटिव सोसाइटी है।[29]

**तालिका संख्या 1**
**सेटलमेंट में बुनियादी सुविधाएँ**

| सुविधाएँ | संख्या |
|---|---|
| स्कूल (किंडरगार्टन एवं प्राथमिक स्कूल) | 2 |
| स्वास्थ्य सुविधाएँ (अस्पताल) | 2 |
| वृद्धाआश्रम | 1 |
| मोनेस्ट्री (मठ) | 4 |
| कोआपरेटिव सोसाइटी | 1 |

Source: Primary (2019)

**तालिका संख्या 2**
**भारत में तिब्बती सेटलमेंट13**

| कृषि आधारित | हस्तकला आधारित | क्लस्टर कम्युनिटीज |
|---|---|---|
| चोएफिलींग, मिआओ, | बीर, देगे, बीर | बोमदिला, अरुणाचल प्रदेश |
| अरुणाचल प्रदेश | बीर चाउंतरा, बीर | दार्जिलिंग, पश्चिम बंगाल |
| धरगयेलिंग, तेजू | बीर टिबेटन सोसाइटी, बीर | धरमशाला, हिमाचल प्रदेश |
| धोंडेलिंग, कोलेगल | फुंत्सोकलिंग, डलहौजी | धोंदूपलिंग, क्लेमनटाउन |
| दीख्यि, लारसोइ, बाइलाकुप्पे | गपा टिबेटन सोसाइटी, कुमराओ | गंगटोक, सिक्किम |
| दोएगुएउलग्येल्लिंग, हरबर्टपुर | खाम खतोक, सतौन | कालिम्पोंग, पश्चिम बंगाल |
| दोएगुलिंग, मुंडगोड | पाओंटा चोएल्सूम, पाओंटा | लिंग्तसंग मुंडुवाला |
| कुनफेनलिंग, रवांगला | साक्य टिबेटन सोसाइटी, पुरुवाला | पलरब्लिंग, कुल्लू एवं मनाली |
| लुगसुंग, समदुप्लिंग, बाइलाकुप्पे | ताशीजोंग, बीर | सम्येलिंग दिल्ली |
| नोरगयेलिंग, भंडारा | ताशीलिंग, पंडोह | शिलोंग, मेघालय |
| फेंडलिंग, मैनपाट | ताशीलिंग, सोनादा | देक्यीलिंग, देहरादून |
| फुंत्सोकलिंग, ओड़िशा | टिबेटन बोम्पो फाउंडेशन, दोलांजी | |
| रबगयेलिंग, हुंसुर | यागचेन, गातसेलिंग, शिमला | |
| सोनमलिंग, लद्दाख | | |
| तेंजिनगैंग, अरुणाचल प्रदेश | | |
| तुतिंग, अरुणाचल प्रदेश | | |

Source: Department of Home, Central Tibetan Administration-

**निष्कर्ष** : मैनपाट (फेंडलिंग) एक सुन्दर पहाड़ी पर बसा तिब्बती शरणार्थी सेटलमेंट है, यहाँ की प्राकृतिक छटा देखते ही बनती है। मैनपाट में जाते ही एक अलग ही अनुभव होता है, ऐसा लगता है जैसे भारत में रहकर ही तिब्बत की सैर कर ली हो। सभी सातो कैम्पों में घरों के बाहर सुन्दर हवा में फहराते तिब्बतन 'प्रेयर लैग' एक अलग ही अहसास कराते हैं। पहाड़ी पर बने बौद्ध मोनेस्ट्री (मठों) में बौद्ध प्रतिमा को देखकर लगता है जैसे साक्षात् गौतम बुद्ध ही विराजमान हैं। मैनपाट एक उच्च पहाड़ी भूमि क्षेत्र है जिसके कारण वहां शुरुआती दिनों में कृषि कार्य करना संभव नहीं था, पर अब समय के साथ तिब्बतियों द्वारा पहाड़ी भूमि को कृषि करने योग्य बना लिया गया है। मैनपाट के तिब्बतियों का आर्थिक क्रियाकलाप मुख्यतः कृषि और अन्य व्यवसाय जैसे स्वेटर बेचना, गलीचा बनाना, छोटे रेस्टोरेंट संचालन करना आदि है। सर्दियों के मौसम के दौरान व्यवसाय लिए अधिकांश तिब्बती भी भारत के विभिन्न शहरों में चले जाते हैं। यह कृषि पद्धतियों के अलावा तिब्बतियों की आय का एक मुख्य स्रोत है।

**मैनपाट** को तिब्बती शरणार्थियों द्वारा विकसित किया गया है जो 1962 में यहां आकर बस गए थे और एक शांत जगह पर अपनी संस्कृति और पहचान को फिर से बनाया है। समय के साथ-साथ मैनपाट में कई परिवर्तन हुए हैं, पहले यहाँ पहुंचना बाहरी लोगों के लिए आसान नहीं था, क्योंकि सड़क मार्ग सुगम नहीं था और पहाड़ी रास्तों से वहां पहुंचने में 5 से 6 घंटे का समय लगता था पर 2016 के बाद रोड बन जाने से यहाँ पहुंचने में 2 घंटे से भी कम समय लगता है।[30] वर्तमान में यहाँ सभी सुविधाएं होने के बावजूद विकास की कमी है जिसके कारण यहाँ प्रवास एक मुख्य समस्या बना हुआ है। तिब्बती शरणार्थी अब उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं जिन्हे रोजगार की आवश्यकता है और यहाँ रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं है। शिक्षा भी पलायन का एक प्रमुख कारण है और बेहतर सुविधा के अभाव में तिब्बती दूसरे शहरों और देशों में पलायन कर रहे हैं। मैनपाट में तिब्बतियों का सिर्फ एक सेंट्रल स्कूल है जो प्राथमिक स्तर का है, यहाँ स्कूली शिक्षा का माध्यम तिब्बती है और साथ में अंग्रेजी भाषा भी पढ़ायी जाती है। आगे की शिक्षा के लिए छात्रों

को दूसरे शहरों जैसे धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश), देहरादून (उत्तराखंड), बाइलाकुप्पे (कर्नाटक) और अन्य शहरों में जाना पड़ता है और उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद बेहतर जीवन-यापन और रोजगार के अवसर लिए छात्र विदेश चले जाते हैं और साथ में अपने माता-पिता को भी लेकर चले जाते हैं जिससे मैनपाट (फेंडलिंग) सेटलमेंट का जनसंख्या लगातार घट रही है। मैनपाट की बेहतरी के लिए और तिब्बती बौद्ध संस्कृति के छत्तीसगढ़ में संरक्षण के लिए सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं को आगे आना चाहिए और इसे विकसित करना चाहिए जिससे रोजगार का अवसर उपलब्ध हो और निकट भविष्य में पलायन में कमी आये। 'टिबेटन रिहैबिलिटेशन पॉलिसी 2014' को भी राज्य सरकार और स्थानीय प्रशासन द्वारा सख्ती से लागू किया जाना चाहिए और मैनपाट के विकास को सुनिश्चित किया जाना चाहिए ताकि लोगों को दूसरी जगह पलायन करने से रोका जा सके।

## सन्दर्भ


1. https://centraltibetanreliefcommittee.org/settlements/tibetan-settlements-in-india/central-india/phendeling-mainpat/
2. https://richardmoss.com/locations/phendeling-center-for-tibetan-buddhisme/
3. https://www.britannica.com/topic/Sino-Tibetan-languages
4. https://freetibet.org/about/location
5. https://tibet.net/hosting-tibetan-refugees-for-over-six-decades
6. https://www.unrefugees.org/refugee-facts/what-is-a-refugee/
7. Arakeri, A. V., '*Tibetans in India: The uprooted people and their cultural transplantation'*, Reliance Publishing House, Delhi, 1998.
8. https://freetibet.org/about/dalai-lama
9. https://www.tibetsun.com/news/2019/12/18/demographic-survey-shows-exile-tibetan-exodus-to-west
10. https://tibet.net/about-cta/tibet-in-exile/
11. 'Tibetan Rehabilitation Policy- 2014', Retrieved September 2020 from https://sardfund.org/wp-content/uploads/tibetan-rehab-policy-2014.pdf
12. https://tibet.net/about-tibet/tibet-at-a-glance/
13. https://centraltibetanreliefcommittee.org/settlements/tibetan-settlements-in-india/
14. https://www.un.org/sites/un2.un.org/files/wmr_2020.pdf
15. Goldstein, Melvin (1978). *'Ethnogenesis and Resource Competition Among Tibetan Refugees in South India.'* In James Fisher (Eds.), Himalayan Anthropology: The Indo-Tibetan Interface (pp. 395-420). London: Mountain Publishers.
16. Saklani, Girija. *'The Uprooted Tibetans in India: A Sociological Study of Continuity and Change'*, Cosmo Publications, Delhi, 1984.
17. Michael, Franz, *'Survival of a Culture: Tibetan Refugees in India'*, Asian Survey, Vol. 25, No. 7, 1985, pp. 737-744.
18. Furer-Haimendorf, Christoph von. *'The Renaissance of Tibetan Civilization'*, Oxford University Press, Delhi, 1989.
19. Pratt Ewing, Katherine (2007). *'Immigrant Identities and Emotion.'* In Conerly Casy & Robert B. Edgerton (Eds), A Companion to Psychological Anthropology Modernity and Psychocultural Change (pp. 225-240). UK: Blackwell Publishing Ltd.
20. Omprakash, L. T., *'Tibetan Refugees in India: The Case of Bylakuppe in Karnataka'*, Indian Journal of Social Development, Vol.11, No.2, July-December 2011, pp. 503-515.
21. Kauffman, Thomas, *'The Agendas of Tibetan Refugees: Survival Strategies of a Government-in-Exile in a World of Transnational Organizations'*, Berghahn Books, New York, 2015.
22. https://surguja.gov.in/places-of-interest/
23. https://tibet.net/mainpat-phendeling-tibetan-settlement-an-emerging-tourist-destination/
24. Wu, Tianyi. *'The Qinghai–Tibetan Plateau: How High Do Tibetans Live?'* High Altitude Medicine & Biology, Vol. 2, No. 4, February 2001, pp. 489-99.
25. E. Farkas, Richard, *'Elements of Tibetan Budhhism'*, Cambridge University Press, Cambridge, 2014.
26. http://www.shabari.cg.gov.in/shabari-emporium
27. https://indianexpress.com/article/india/tibetan-refugees-down-from-1-5-lakh-to-85000-in-7-years-5349587/
28. https://tibet.net/the-dilemma-facing-a-dwindling-tibetan-population-in-india/
29. http://www.nyamdel.com/about-us/tibetan-co-operatives-in-india/
30. https://morth.nic.in/sites/default/files/PragatiKiNayiGati/pdf/chhattisgarh.pdf

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# कार्यस्थल पर लैंगिक असमानता से शिक्षकों की कार्य संतुष्टि और तनाव के स्तर पर प्रभाव

❑ डॉ. रंजना कुमारी
❑ डॉ. ऊषा

लैंगिक असमानता कार्यस्थल में निश्चित रूप से चिंता का विषय है। भारत में लिंग असमानता सदियों से अस्तित्व में है। लैंगिक असमानता का अर्थ लैंगिक आधार पर महिलाओं के साथ असमानता से है। पारंपरागत रूप से हमारे समाज में महिलाओं को कमजोर वर्ग के रूप में देखा जाता रहा है। कार्यस्थल में असमानता का विश्लेषण और मजदूरी, कार्य समाप्ति, पदोन्नति, काम पर रखने, अवकाश, और लाभों आदि सभी निर्णयों में भेदभाव किया जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र कार्यस्थल में लैंगिक असमानता से शिक्षक की कार्य संतुष्टि और तनाव के स्तर पर इसके प्रभाव की जांच का एक प्रयास है। अध्ययन के अंतर्गत सिंह और शर्मा (1986) द्वारा विकसित जॉब सैटिस्फैक्शन स्केल का उपयोग करके डेटा एकत्र किया गया है। शेल्डन कोहेन द्वारा विकसित परसिवड स्ट्रेस स्केल (1983) का उपयोग सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के कॉलेजों के शिक्षक के तनाव के स्तर का आकलन करने के लिए किया गया। अजीम, अजीमी, असरफ और रहमान (2005) द्वारा विकसित लिंग भेदभाव इन्वेंटरी उत्तरदाताओं पर प्रशासित की गई है।

**भारत** में लैंगिक असमानता विशेष रूप से सदियों से अस्तित्व में है। लैंगिक असमानता का अर्थ लैंगिक आधार पर महिलाओं के साथ असमानता से है। पारंपरागत रूप से हमारे समाज में महिलाओं को कमजोर वर्ग के रूप में देखा जाता रहा है। वे घर और समाज दोनों जगहों पर शोषण, अपमान और भेद-भाव से पीड़ित होती हैं। आमतौर पर उनके लिंग के आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव को परिभाषित किया जा सकता है। उसे पुरुषों के अधीनस्थ होना पड़ता है। हमारे घरों और बाहर की दुनिया में उसके साथ दुर्व्यवहार, बहस, अपमानित और भेदभाव किया जाता है। महिलाओं के खिलाफ इस विशेष प्रकार की असमानता दुनिया में हर जगह व्यापक है और भारतीय संस्कृति में अधिक है। भारत की श्रमशक्ति में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 29 प्रतिशत है, जबकि 2004 में यह आंकड़ा 35 प्रतिशत था। भारत में महिलाओं द्वारा किया जाने वाला आधे से अधिक श्रम अवैतनिक है और लगभग पूरा श्रम अनौपचारिक और असुरक्षित है। अधिकांश क्षेत्रों में महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता, जिसमें व्यापार जगत के उच्च पद भी सम्मिलित हैं। हालांकि महिलाएं खेती से जुड़े 40 प्रतिशत कार्य करती हैं, भारत में केवल 9 प्रतिशत भूमि पर उनका नियंत्रण है। महिलाएं औपचारिक वित्तीय प्रणाली से भी बाहर होती हैं। भारत की लगभग आधी महिलाओं का बैंक में या बचत खाता नहीं होता है, जिसे वे खुद नियंत्रित करती हों और 60 प्रतिशत महिलाओं के नाम पर कोई मूल्यवान परिसंपत्ति नहीं है। देश की जीडीपी में महिलाओं की हिस्सेदारी केवल 17 प्रतिशत है जबकि उनका विश्व औसत 37 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त आज महिलाएं शारीरिक रूप से अधिक असुरक्षित हैं। भारत में महिलाओं के खिलाफ अपराध की दर 53.9 प्रतिशत है। राजधानी दिल्ली में 92 प्रतिशत महिलाओं का कहना है कि उन्हें सार्वजनिक स्थानों पर यौन या शारीरिक हिंसा का सामना किया है।[1]

**लैंगिक असमानता के कारण**

**1.पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना–** हमारे समाज की ऐसी संरचना जिसमे महिलाओं को पुरुषों के अधीन रहना पड़ता, जिसमे पुरुष महिलाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है, उसका दमन करता है और उसका शोषण करता है।

2. **अत्यधिक गरीबी और शिक्षा की कमी–** गरीबी और शिक्षा की कमी के कारण बहुत सी महिलाएँ कम वेतन पर घरेलू कार्य करने, वैश्यावृत्ति करने या प्रवासी मजदूरों के रूप में कार्य करने के लिये मजबूर हो जाती हैं।

❑ सहायक प्राध्यापक (गैस्ट फैकल्टी) विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर मनोविज्ञान विज्ञान विभाग, पुर्णिया विश्वविद्यालय, पुर्णिया (बिहार)
❑ सहायक प्राध्यापक (गैस्ट फैकल्टी) विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर गृहविज्ञान विभाग, पुर्णिया विश्वविद्यालय, पुर्णिया (बिहार)

3. **रूढ़िवादी धार्मिक विचारधारा** के अन्तर्गत बालकों को कुल का दीपक माना जाता और माना जाता है कि वंश परंपरा बेटे से ही आगे बढ़ती है, जबकि बेटियों को पराया धन समझा जाता।
4. **पारिवारिक स्तर पर भेदभाव** – महिलाओं को भोजन के लिये वही मिलता है जो परिवार के पुरुषों के भोजन करने के बाद बच जाता है। अतः समुचित और पौष्टिक भोजन के अभाव में महिलाएँ कई तरह के रोगों से ग्रस्त हो जाती हैं।
5. **लड़की को बचपन से शिक्षित करना अभी भी एक बुरा निवेश माना जाता हैं** क्योंकि कहा जाता है कि लड़कियां पराया धन होती हैं एक दिन उसकी शादी होगी और उसे पिता के घर को छोड़कर दूसरे घर जाना पड़ेगा। इसलिये, अच्छी शिक्षा के अभाव में अधिकांश महिलाएँ वर्तमान में नौकरी के लिये आवश्यक कौशल की शर्तों को पूरा करने में असक्षम हो जाती हैं।

**कार्यस्थल** में लैंगिक असमानता भी एक प्रमुख समस्या है, जो निश्चित रूप से चिंता का विषय है। कार्यस्थल में असमानता का विश्लेषण मजदूरी, कार्य समाप्ति, पदोन्नति, काम पर रखने, अवकाश, और लाभों आदि सभी निर्णय में भेदभाव किया जाता है। लिंग या लिंग के आधार पर किए गए ये महत्वपूर्ण निर्णय राज्य और सरकार के कानून के अंतर्गत गैरकानूनी हैं।

**साहित्य समीक्षा** : लिंग भेदभाव विषय पर कई शोध अध्ययन उपलब्ध हैं। ये भेदभाव जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे शिक्षा, अर्थव्यवस्था, स्वास्थ्य देखभाल और कार्यस्थल आदि सभी जगह पर जो भेदभाव पाया जाता है उसकी चर्चा करते हैं।

**ब्रायन वेले,** मैडलिन ई. हेमैन[2] के अध्ययन ''कार्यस्थल पर महिलाओं के खिलाफ औपचारिक और अनौपचारिक भेदभाव'' उन रूढ़ियों के बारे में बात करता हैं जो एक महिला को आक्रामक, सख्त और प्रभावी प्रकृति होने से रोकती हैं। यदि वे इस प्रचलित संस्कृति के खिलाफ जाते हैं तो उन्हें अक्सर अस्वीकृत और सामाजिक दंड का सामना करना पड़ता हैं।

**केटी स्केयर**[3] ''कार्यस्थल में लिंग भेदभाव'', (ग्लास शिलिंग प्रभाव) इसका अर्थ यह था कि महिलाओं को किसी भी प्रबंधन या उच्च स्तर के नौकरी तक नहीं पहुंचने दिया जाये जिससे ये ग्लास शिलिंग प्रभाव खत्म हो। यह शब्द 1980 के दशक मे अस्तित्व में आया।

**एरिक एवं** उनके सहयोगी[4] ने लैंगिक भेदभाव पर शोध किया था और बताया कि स्वीडन में महिलाओं को निम्न पदों (स्टीकी लोर) और उच्च पदों (ग्लास सीलिंग) के प्रभावों के माध्यम से भेदभाव किया जाता है। उन्होंने पाया कि स्वीडन की महिलाएं उच्च पदों के प्रभाव की तुलना में निम्न पदों के प्रभाव से अधिक पीड़ित हैं। उनके अध्ययन से यह भी पता चला कि छोटे बच्चों वाली महिलाओं को कैरियर में सबसे ज्यादा लिंग भेदभाव किया जाता है। लिंग भेदभाव युवा और वृद्ध महिलाओं के लिए बड़ा है और मध्यम आयु वर्ग की महिलाओं के लिए कम है। उनके अध्ययन में कोई भी अनुभवजन्य समर्थन नहीं था कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं के पास सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना में निजी क्षेत्र में कैरियर के अवसर कम हैं।

**हबीब**[5] ने बांग्लादेश के सार्वजनिक प्रशासन में प्रवेश से लेकर और उच्च पदों (ग्लास सीलिंग) के प्रभावों का अध्ययन किया है। उनके विश्लेषण से पता चला है कि महिलाओं को बांग्लादेश के नागरिक सेवाओं में प्रवेश से लेकर उच्च पदों तक में भेदभाव किया जाता है। सामाजिक सांस्कृतिक कारक प्रमुख बाधाऐं हैं जो नागरिक सेवाओं में महिला के प्रवेश के लिए एक दीवार का काम करती हैं। उनका कैरियर मार्ग अव्यवस्थित और व्यवहारिक कारणों से बाधित था। इस संबंध में सरकारी कानून और नियम निष्प्रभावी साबित हो रहे हैं। हालाँकि, यह भेदभाव उच्च वर्ग से आने वाली महिलाओं के लिए नहीं था।

**उजमा**[6] ने पाया कि पहचान समाज, पर्यावरण और माता-पिता के माध्यम से बनाई जाती है। यह दो-तरफा प्रक्रिया है - लोग आपको कैसे देखते हैं और आप खुद को कैसे देखते हैं। अपने बच्चों के प्रति माता-पिता का दृष्टिकोण उनकी पहचान बनाता है। माता-पिता आमतौर पर अपनी बेटियों को असहाय, डरपोक और बहुत कमजोर मानते हैं। उनका मानना था कि उन्हें समाज के पुरुष सदस्यों द्वारा संरक्षित करने की आवश्यकता है। इस कारण से महिलाएं सुझाव या विरोध नहीं कर सकती हैं। यह अधीनता और दमन का पहला कदम है। उसके अनुसार शिक्षित महिलाओं की दोहरी पहचान होती है - पेशेवर और निजी। उनके शोध का एक और निष्कर्ष यह था कि महिलाओं की आय को परिवार के लिए मुख्य वित्तीय स्रोत के रूप में नहीं माना जाता है, बल्कि उनके पुरुषों की आय के पूरक के रूप में माना जाता है। उन्होने

यह भी पाया कि वे परिणाम उच्च और उन्नत परिवारों की महिलाओं लिए मान्य नहीं थे, ऐसी महिलाओं को हर कार्य मे पूरी स्वतंत्रता दी जाती है।

**लिंग भेदभाव** : वायने[7] का कहना है कि किसी भी कानून ने कभी भी कार्यबल के संदर्भ में 'भेदभाव' शब्द को ठीक से परिभाषित करने का प्रयास नहीं किया है, अन्य समूह के सदस्यों की तुलना में विशेष समूह के सदस्यों को अनुचित लाभ (या नुकसान) देने के रूप में परिभाषित किया है। न्यायालयों के निर्णयों का वर्णन करते हुए, इवेंसविच[8] लिखते हैं कि 1964 के नागरिक अधिकार अधिनियम और अन्य कानूनों के शीर्षक दण्ड की व्याख्या करते हुए, संयुक्त राज्य अमेरिका की अदालतों ने माना है कि दोनों जानबूझकर (असमान उपचार) और अनजाने (असमान प्रभाव) कवर किए गए कार्य संस्थाएं असमान अवैध रोजगार का गठन करती हैं।

**कार्यसंतुष्टि** : साधारण अर्थ में व्यक्ति अपने कार्य एवं परिस्थितियों के सम्बन्ध में कैसा अनुभव करता है इसको ही कार्यसंतुष्टि कहते हैं। कार्यसंतुष्टि एक मनोवैज्ञानिक घटना है और इसकी अवधारणा अत्यधिक जटिल और व्यक्तिपरक है। कार्यसंतुष्टि मनोवैज्ञानिक और पर्यावरणीय परिस्थितियों का संयोजन है जो किसी व्यक्ति को सच्चाई से प्रेरित करता है कि वह अपनी कार्य से संतुष्ट है। यह एक सकारात्मक स्थिति है जो किसी की स्थिति के मूल्यांकन से उत्पन्न होती है और एक काम की विशेषताओं और मांगों के साथ जुड़ा हुआ है।[9]

**तनाव** : तनाव मनुष्यों के साथ उनके उद्‌भव से जुड़ा है। तनाव के संदर्भ में एक बहुत ही आम और व्यापक रूप से चर्चा है की यह शब्द हर जगह देखने को मिलता हैं चाहे वह रसोई घर हो, या कॉफी हाउस, कॉलेज या कोई कार्यालय, आदि। तनाव हमारी आधुनिक जीवन शैली का एक हिस्सा बन गया है। लगभग हर कोई समय-समय पर तनाव का अनुभव करता है और जब छोटी मात्रा में तनाव हमें प्रेरित करता है तो उसका नुकसान नहीं है, पर जब यह बहुत अधिक या लंबे समय तक बना रहा तब तनाव हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा सकता है।

**हेन्स सेली के शब्दों में** "तनाव से तात्पर्य शरीर दवारा आवश्यकतानुसार किए गए अविशिष्ट अनुक्रिया से होता है।"[10] बैरोन के अनुसार "तनाव एक बहुआयामी प्रक्रिया है जो हम लोगों में वैसी घटनाओं के प्रति अनुक्रिया के रूप में उत्पन्न होती है जो हमारे दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्यो को विघटित करता हैं या विघटित करने की धमकी देता है।"[11]

**जैसा कि** हम जानते हैं कि तनाव किसी विशेष घटना या स्थिति के बारे में हताशा, क्रोध या चिंता का परिणाम है। जब हम स्थिति को नियंत्रित करने में असमर्थ होते हैं तो हम तनाव का आमंत्रित करते हैं। हम कह सकते हैं कि तनाव पर्यावरण और संसाधनों की मांग के बीच बेमेल प्रक्रिया है जो व्यक्ति को नुकसान पहुंचा सकता है। तनाव के सबसे महत्वपूर्ण स्रोतों में से एक तनावपूर्ण जीवन की घटनाएं हैं। हमारे जीवन में, हम कुछ सुखद और अप्रिय घटनाओं का अनुभव करते हैं, और हम इन परिस्थितियों के साथ बढ़ने की कोशिश करते हैं, लेकिन अगर हम इन घटनाओं के साथ समायोजित करने में सक्षम नहीं हैं तब हम तनाव विकसित करते हैं।

**कार्यस्थल** : कार्यस्थल से तात्पर्य उस स्थान से होता है जहां व्यक्ति अपने व्यवसाय से संबंधित जिम्मेदारियों को संपन्न करता है। यह स्थान उस व्यक्ति के लिए कार्यस्थल होता है। कार्यस्थल से संबंधित विभिन्न संप्रदाय हैं जो निम्नांकित है :-

1. **दूषित वातावरण** : धन, शक्ति, पद की दृष्टि से व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण प्रेरित कर्मचारियों का अधिकाधिक होने से इस तरह का वातावरण बनता है।
2. **धमकाना** : किसी एक सहकर्मी के प्रति अकारण तनावपूर्ण वातावरण उत्पन्न करना।
3. **भेदभाव** : कार्य प्रदान करना परिवेदना एवं शिकायत सुनना पदोन्नति इत्यादि पर पक्षपातपूर्ण व्यवहार।
4. **सशक्तीकरण** : कार्यस्थल पर यदि कर्मचारियों को सम्मान दिया जाता है तो इससे उनमें कार्यविकास एवं सशक्तीकरण के अवसर मिलते हैं उनकी कार्यक्षमता भी बढ़ती है।
5. **संवेदनाएं** : कार्यस्थल से जुड़ा संवेदनात्मक पक्ष पूर्ण रूप से प्रभावित करता है। यदि कर्मचारी संवेदनात्मक पक्ष से अपने कार्यस्थल से जुड़े होते हैं तो कार्यस्थल का वातावरण स्वयं ही सहज बन जाता है।
6. **तनाव** : शारीरिक एवं मानसिक रूप से तनाव भी कार्यस्थल पर उत्पन्न होता है। कार्य की मांग एवं व्यक्ति की क्षमता में स्त्रोत एवं मांग में असंतुलन के कारण भी कार्यस्थल पर तनाव उत्पन्न होता है।

**प्रस्तुत** अध्ययन कार्यस्थल पर लैंगिक असमानता और शिक्षक की कार्य संतुष्टि और तनाव के स्तर पर लैंगिक असमानता के प्रभाव की जांच करने का प्रयास है।

**अध्ययन के उद्देश्य** :

1. कार्यस्थल में लैंगिक भेदभाव का आकलन करना।
2. महिला कर्मचारियों पर लैंगिक भेदभाव के कारण कार्य संतुष्टि प्रभाव का अध्ययन करना।
3. कार्यस्थल में महिला कर्मचारियों में तनाव के स्तर का आकलन करना।

**परिकल्पना**

1. कार्यस्थल पर महिला श्रमिकों के साथ लिंग भेदभाव सार्वजनिक की क्षेत्र तुलना में निजी क्षेत्र में अधिक होगा।
2. लिंग भेदभाव से महिला श्रमिकों में कार्यसंतुष्टि कम होगी।
3. लिंग भेदभाव से महिला श्रमिकों में तनाव के स्तर में वृद्धि होगी।

**अध्ययन का क्षेत्र** : मुजफ्फरपुर जिला के शहरी क्षेत्र के सार्वजनिक और निजी शिक्षा संगठनों में कार्यस्थल में लैंगिक असमानता और शिक्षक की कार्यसंतुष्टि और तनाव के स्तर पर लैंगिक असमानता के प्रभाव का आकलन करने के लिए यह शोध किया गया है।

**अनुसंधान पद्धति**

**नमूने का आकार** : **इस अध्ययन** के लिए कुल नमूना आकार 240 है। इस शोध में शिक्षा विभागों को सार्वजनिक क्षेत्र पुरुष और महिला कर्मचारियों का एक नमूना आकार क्रमशः 60 और 60 और निजी क्षेत्र से पुरुष और महिला कर्मचारियों का एक नमूना आकार क्रमशः 60 और 60 है। डेटा एकत्र करने के लिए प्रायिकता के नमूने की स्तरीकृत विधि का उपयोग किया जाता है। इस शोध में शिक्षा विभाग, सार्वजनिक और निजी, दोनों को चार वर्गों में विभाजित किया गया है यानी शिक्षा में प्राथमिक विद्यालयों, उच्च विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों तथा तब प्रत्येक नमूने से यादृच्छिक नमूना तैयार किया गया है।

**स्टैण्डर्ड इंस्ट्रूमेंट** – प्रश्नावली का उपयोग चरों को मापने के लिए किया जाता है। प्रश्नावली के माध्यम से मापे गये पहलू हैं- लैंगिक असमानता, कार्यसंतुष्टि, और तनाव का स्तर। कार्यस्थल में लैंगिक असमानता अजीम, अजीमी, असरफ और रहमान[12] द्वारा विकसित लिंग भेदभाव इन्वेंटरी द्वारा पहचाने गए कार्यस्थल में लैंगिक असमानता के बारे में धारणाओं के आधार पर, प्रश्नों के माध्यम से सर्वेक्षण किया गया है। कार्यसंतुष्टि का मूल्यांकन सिंह और शर्मा[13] द्वारा विकसित जॉब सैटिस्फैक्शन स्केल द्वारा किया जाता है। शेल्डन कोहेन एवं उनके सहयोगी[14] द्वारा विकसित परसिवड स्ट्रेस स्केल का सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के कॉलेजों के शिक्षक के तनाव के स्तर का आकलन करने के लिए किया गया है।

**सांख्यिकीय विश्लेषण** : एकत्र आंकड़ों का विश्लेषण विभिन्न सांख्यिकीय उपायों जैसे कि माध्य, मानक विचलन, टी-टेस्ट, की मदद से किया गया है।, माइक्रोसॉट एक्सेल का उपयोग डेटा विश्लेषण के लिए किया गया है।

**परिकल्पना (H1)** : 'कार्यस्थल पर लैंगिक असमानता सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना में निजी क्षेत्र में अधिक होगा'। कार्यस्थल में लैंगिक असमानता का मूल्यांकन स्वतंत्र-नमूने टी-टेस्ट के माध्यम से किया गया है। इस परीक्षण के लिए दो चर का उपयोग किया जाता है, एक श्रेणीगत और दूसरा निरंतर। इस शोध के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले श्रेणीबद्ध चर का उपयोग किया जाता है लिंग (1 के रूप में पुरुष को अंकित और 2 के रूप में महिला को अंकित किया गया) और निरंतर चर का उपयोग " कार्यस्थल में लैंगिक असमानता'' है, जो कुल स्कोर है जो प्रतिभागियों ने 40 आइटम लैंगिक असमानता पैमाने पर दर्ज किया है।

**तालिका 1**

**सार्वजनिक संगठनों में लैंगिक असमानता**

| | Gender | N | Mean | SD | df | t-vaule | Level of significance |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कार्यस्थल में लैंगिक असमानता | महिला | 60 | 38.38333 | 4.210929 | 118 | 11.80 | 0.01 |
| | पुरुष | 60 | 27.11667 | 6.073258 | | | |

तालिका 1 – पुरुषों और महिलाओं का माध्य और मानक विचलन दर्शाती है। N कुल व्यक्तियो की संख्या दिखाता है जिसमें पुरुषों और महिलाओं की संख्या 60 और 60 हैं। पुरुषों और महिलाओं में लैंगिक असमानता स्कोर की

तुलना करने के लिए एक स्वतंत्र-नमूना परीक्षण किया गया था जिसमें पुरुषों और महिलाओं के स्कोर में महत्वपूर्ण अंतर है। (पुरुष शिक्षकों का माध्य= 27.11557, मानक विचलन = 6.073258) और महिलाएं (माध्य = 38. 3833, मानक विचलन = 4.210929) टी अनुपात=11. 80) इंगित करता है कि वहाँ सार्वजनिक संगठनों में कॉलेज के शिक्षकों पर लैंगिक असमानता का महत्वपूर्ण प्रभाव है।

**तालिका 2**

**निजी संगठनों में कॉलेज के शिक्षकों पर लैंगिक असमानता**

| कार्यस्थल में लैंगिक असमानता | Gender | N | Mean | SD | df | t-vaule | Level of significance |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | महिला | 60 | 38.8166 | 4.21 | 118 | 12.08 | 0.01 |
| | पुरुष | 60 | 27.11667 | 6.07 | | | |

**कार्यस्थल** में लैंगिक असमानता का मूल्यांकन स्वतंत्र-नमूने टी-टेस्ट के माध्यम से किया गया है।

**तलिका 2** - पुरुषों और महिलाओं का माध्य और मानक विचलन (पुरुष शिक्षकों का माध्य= 27.11, मानक विचलन = 6.07) और महिलाएं (माध्य = 38.81, मानक विचलन = 4.46) टी अनुपात=12.08) इंगित करता है कि वहाँ निजी संगठनों में कार्यस्थल पर कॉलेज के शिक्षकों पर लैंगिक असमानता का महत्वपूर्ण प्रभाव है।

**परिकल्पना (H2)** : 'लैंगिक असमानता से महिला श्रमिकों में कार्यसंतुष्टि कम होगी'।

**तालिका 3**

**सार्वजनिक संगठनों में कार्यसंतुष्टि पर लैंगिक असमानता**

| कार्यस्थल में लैंगिक असमानता | Gender | N | Mean | SD | df | t-vaule | Level of significance |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | महिला | 60 | 52-60 | 5.01 | 118 | 9.41 | 0.01 |
| | पुरुष | 60 | 62-25 | 6.16 | | | |

**कार्यस्थल** में लैंगिक असमानता से महिला श्रमिकों में कार्यसंतुष्टि का मूल्यांकन स्वतंत्र-नमूने टी-टेस्ट के माध्यम से किया गया है।

**तालिका 3** - पुरुषों और महिलाओं का माध्य और मानक विचलन दर्शाता है। (पुरुष शिक्षकों का माध्य = 62.25, मानक विचलन = 6.16) और महिलाएं (माध्य = 52. 60, मानक विचलन = 5.01); टी अनुपात = 9.41) इंगित करता है कि सार्वजनिक संगठनों में कार्यस्थल पर लैंगिक असमानता के कारण कॉलेज के पुरुषों और महिलाओं शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ रहा है।

**तालिका 4**

**निजी संगठनों में कार्यसंतुष्टि पर लैंगिक असमानता**

| कार्यस्थल में कार्य संतुष्टि पर लैंगिक असमानता का प्रभाव | Gender | N | Mean | SD | df | t-vaule | Level of significance |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | महिला | 60 | 51-68 | 4.62 | 118 | 14.62 | 0.01 |
| | पुरुष | 60 | 65-63 | 5.76 | | | |

**कार्यस्थल** में लैंगिक असमानता से महिला श्रमिकों में कार्य संतुष्टि का मूल्यांकन स्वतंत्र-नमूने टी-टेस्ट के माध्यम से किया गया है। उपर्युक्त तालिका में जिसमें पुरुषों और महिलाओं के स्कोर में महत्वपूर्ण अंतर है। (पुरुष शिक्षकों का माध्य = 65.63, मानक विचलन = 5.76) और महिलाएं (माध्य = 51.68, मानक विचलन = 4.62) टी अनुपात = 14.62) इंगित करता है कि निजी संगठनों में कार्यस्थल पर लैंगिक असमानता के कारण कॉलेज के पुरुष और महिला शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ रहा है।

**परिकल्पना (H3)** : 'लैंगिक असमानता से महिला श्रमिकों में तनाव के स्तर में वृद्धि होगी'।

**तालिका 5**

**सार्वजनिक संगठनों में तनाव के स्तर पर लैंगिक असमानता के प्रभाव**

| कार्यस्थल में तनाव के स्तर पर लैंगिक असमानता का प्रभाव | Gender | N | Mean | SD | df | t-vaule | Level of significance |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | महिला | 60 | 22.36 | 4.42 | 118 | 3.02 | 0.01 |
| | पुरुष | 60 | 19.96 | 4.27 | | | |

**तालिका 5**- N कुल व्यक्तियों की संख्या दर्शाता है। (पुरुष शिक्षकों का माध्य = 19.96, मानक विचलन = 4.27) और महिलाएं (माध्य = 22.36, मानक विचलन = 4.42) टी अनुपात = 3.02) इंगित करता है कि कार्यस्थल पर की कार्यस्थल पर महिला एवं पुरुष कर्मचारियों में लैंगिक असमानता के कारण तनाव के स्तर पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ रहा है।

**तालिका 6**

**निजी संगठनों में तनाव के स्तर पर लैंगिक असमानता के प्रभाव**

| कार्यस्थल में तनाव के स्तर पर लैंगिक असमानता का प्रभाव | Gender | N | Mean | SD | df | t-vaule | Level of significance |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | महिला | 60 | 17 | 3-93 | 118 | 5.15 | 0.01 |
| | पुरुष | 60 | 14-06 | 2-007 | | | |

**कार्यस्थल** में लैंगिक असमानता से महिला श्रमिकों का तनाव के स्तर का मूल्यांकन स्वतंत्र-नमूने टी-टेस्ट के माध्यम से किया गया था। प्रतिभागियों ने 10 आइटम शेल्डन कोहेन एवं उनके सहयोगी द्वारा विकसित परसिवड स्ट्रेस स्केल का पर अंकित किया है।

**तालिका 6**- पुरुषों और महिलाओं का माध्य और मानक विचलन दर्शाता है। N कुल व्यक्तियो की संख्या दिखाता है पुरुष शिक्षकों का माध्य = 14.06, मानक विचलन = 2. 007 और महिलाएं माध्य = 17, मानक विचलन = 3. 93; टी अनुपात = 5.15 इंगित करता है कि कार्यस्थल पर महिला एवं पुरुषों कर्मचारियों में लैंगिक असमानता के कारण तनाव के स्तर पर महत्वपूर्ण प्रभाव पर रहा है।

**परिणाम और चर्चा** : परिकल्पना (H1) में हमने यह परिकल्पना की है कि "कार्यस्थल पर महिला श्रमिकों के साथ लैंगिक असमानता सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना में निजी क्षेत्र में अधिक होगा।" लैंगिक असमानता की गणना टी-टेस्ट के माध्यम से की गई थी। सार्वजनिक संगठनों के लिए, जो परिणाम दिखाई दिए जिसमें महिलाओं एवं पुरुषों के माध्य में महत्वपूर्ण अंतर था (महिलाओं का माध्य = 38.38, मानक विचलन = 6.073, पुरुषों का माध्य = 27.11, मानक विचलन = 6.073 ) इससे यह स्पष्ट था कि महिला कर्मचारियों के साथ सार्वजनिक संगठनों में पुरुषों से अधिक भेदभाव किया गया। निजी संगठनों, परिणामों से पता चला कि महिलाओं एवं पुरुषों के माध्य में महत्वपूर्ण अंतर था (महिलाओं का माध्य = 38.81, मानक विचलन = 4.401, पुरुषों का माध्य = 27.11, मानक विचलन = 6.073) इसलिए यह स्पष्ट था कि इससे यह स्पष्ट था कि महिला कर्मचारियों के साथ निजी संगठन में पुरुषों से अधिक भेदभाव किया गया।

**जब हम** सार्वजनिक और निजी संगठनों के परिणामों की तुलना करते हैं, तो यह बहुत स्पष्ट था कि दोनों संगठनों में महिलाओं को कार्यस्थल पर पुरुषों की तुलना में अधिक भेदभाव किया गया था, लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र (38.38) की तुलना में निजी क्षेत्र (38.81) में भेदभाव का स्कोर अधिक था, इसलिए हमारी परिकल्पना (H1) को स्वीकार करते हैं।

**परिकल्पना** (H2) : में, यह परिकल्पना की गई थी कि लैंगिक असमानता से महिलाओं में कार्यसंतुष्टि का स्तर घट जाएगा। सार्वजनिक संगठनों के लिए, जो परिणाम दिखाई दिए जिसमें महिलाओं एवं पुरुषों के माध्य में महत्वपूर्ण अंतर था (महिलाओं का माध्य = 52.60, मानक विचलन = 5.01, पुरुषों का माध्य = 62.25, मानक विचलन = 6.16), इससे यह स्पष्ट था कि महिला कर्मचारियों के साथ सार्वजनिक संगठनों में पुरुषों से

अधिक भेदभाव के कारण महिला कर्मचारियों में कार्यसंतुष्टि का स्तर घट गया। उसी प्रकार निजी संगठनों के लिए, जो परिणाम दिखाई दिए जिसमे महिलाओं एवं पुरुषों के माध्य में महत्वपूर्ण अंतर था (महिलाओं का माध्य = 51.68, मानक विचलन = 4.62, पुरुषों का माध्य = 65.63, मानक विचलन = 5.76) इससे यह स्पष्ट था कि महिलाओं कर्मचारियों के साथ निजी संगठनों में पुरुषों से अधिक भेदभाव के कारण महिला कर्मचारियों में कार्य संतुष्टि का स्तर घट गया। जब हम सार्वजनिक और निजी संगठनों के परिणामों की तुलना करते हैं, तो यह बहुत स्पष्ट था कि दोनों संगठनों में महिलाओं को कार्यस्थल पर पुरुषों की तुलना में अधिक भेदभाव किया गया था जिससे महिला कर्मचारियों में कार्यसंतुष्टि का स्तर घट गया। इसलिए हमारी परिकल्पना (H2) को स्वीकार करते हैं ।

**परिकल्पना** (H3) में, यह परिकल्पना की गई थी कि लिंग भेदभाव से महिला कर्मचारियों में तनाव का स्तर बढ़ता है। शेल्डन कोहेन एवं उनके सहयोगी द्वारा विकसित परसिवड स्ट्रेस स्केल पर जो परिणाम दिखाई दिए जिसमे सार्वजनिक संगठन में महिलाओं एवं पुरुषों के माध्य में महत्वपूर्ण अंतर था (महिलाओं का माध्य = 22.36, मानक विचलन = 4.66, पुरुषों का माध्य = 19.96, मानक विचलन = 4.27) इसी निजी संगठन में महिलाओं एवं पुरुषों के माध्य में महत्वपूर्ण अंतर था (महिलाओं का माध्य = 17, मानक विचलन = 3.93, पुरुषों का माध्य = 14.06, मानक विचलन = 2.007) तरह इस परिणाम से यह स्पष्ट था कि सार्वजनिक संगठन में महिला कर्मचारियों के में पुरुषों से अधिक भेदभाव के कारण महिला कर्मचारियों में तनाव का स्तर अधिक बढ़ता पाया गया निजी संगठन में भी महिला कर्मचारियों में पुरुषों से अधिक भेदभाव के कारण महिला कर्मचारियों में तनाव का स्तर अधिक बढ़ता पाया गया पर निजी संगठन मे यह तनाव का स्तर महिला कर्मचारियों के में पुरुषों की तुलना अधिक अधिक बढ़ता पाया गया इससे हमारी जो प्राकल्पना (H3) स्वीकार होती हैं ।

**निष्कर्ष** : उपर्युक्त सांख्यिकीय विश्लेषण से इस लेख का जो निष्कर्ष आया है वह निम्न हैः

1. सांख्यिकीय विश्लेषण से पता चला है कि महिलाओं को निजी संगठनों ,सार्वजनिक संगठनों दोनों में, कार्य स्थल पर लैंगिक असमानता के व्यवहार का खतरा था। हालाँकि, सार्वजनिक संगठनों की तुलना में निजी संगठनों में पक्षपाती व्यवहार अधिक था।
2. लैंगिक असमानता के परिणामस्वरूप महिलाओं की कार्यसंतुष्टि मे कमी मिली।
3. लैंगिक असमानता जितनी अधिक थी, तनाव का स्तर उतना ही अधिक था

**सुझावः** देश की लगभग आधी आबादी के नाते यह अत्यंत आवश्यक है कि महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं विभिन्न क्षेत्रों में आवश्यक सुरक्षा प्रदान की जाए एवं उनकी भागीदारी सुनिश्चित की जाए। इसके लिए जनसंख्या के बड़े बड़े हिस्से के पितृसत्तात्मक सोच में बदलाव लाने की आवश्यकता है और सरकार को उचित रणनीतियां अपनाकर इसमें बदलाव लाने की सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। सरकार के द्वारा महिला सशक्तीकरण के लिए अनेक सकारात्मक कानून बनाए गए हैं यह कानून यथार्थ के धरातल पर उतने सफल नहीं हो पाए हैं और मात्र कानून बना देने से महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक सशक्तीकरण नहीं हो सकता है इसलिए आवश्यक है कि जो भी रणनीतियां बनाई जाए वह लचीली एवं प्रभावशाली हों। अगर महिलाओं के साथ भेदभाव नहीं किया जाए तो 2025 तक देश की जीडीपी में 700 बिलियन यूएस डॉलर की वृद्धि हो सकती है। आईएमएफ के अनुसार देश की श्रम शक्ति में अगर महिलाओं को समान रूप से भागीदारी का अवसर मिलता है तो भारत की जीडीपी में 27 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है निजी क्षेत्र के हर तीन में से एक शीर्ष पदाधिकारी का कथन है कि नए नए उभरते हुए बाजारों में महिलाओं को मजबूत और सशक्त करने के प्रयास के फलस्वरुप लाभ बढ़ा है। कहा भी गया है कि महिला और पुरुष एक गाड़ी दो पहिये हैं उनके साथ भेदभाव ना करके उनको हर क्षेत्र समान अवसर प्रदान किया जाए जिससे इस तरह की लैंगिक असमानता को पाटा जा सके। किसी भी राष्ट्र की परंपरा और संस्कृति उस देश की महिलाओं से परिलक्षित होती है क्योंकि महिलाएं किसी भी समाज की एक रचनात्मक शक्ति होती हैं इसलिए वर्तमान समय में समाज की परिस्थिति को समृद्ध करने एवं भविष्य को बेहतर से बेहतर बनाने के लिए हमें महिलाओं की स्थिति में सुधार लाना होगा। भारत में पूर्ण लैंगिक समानता की राह कठिन है लेकिन असंभव नहीं है। हमें अपने प्रयासों में ईमानदार होना चाहिए और महिलाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को बदलने पर काम करना चाहिए। भारत में लैंगिक

असमानता को दूर करने एवं पूर्ण लैंगिक समानता के लिए, पुरुषों और महिलाओं दोनों को एक साथ काम करना होगा और समाज में सकारात्मक बदलाव लाना होगा। विवेकानंद के उस कथन को स्मरण करना उपयुक्त होगा जब तक महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं होगा विश्व के कल्याण की संभावना नहीं है।[15]

## संदर्भ


1. https://in.one.un.org/unibf-hindi/gender-equality/
2. Brian Welle, M. E. Heilman (2005). *'Formal and Informal Discrimination Against Women at Work'*. [Cambridge, Mass.] : Center for Public Leadership,USA, Pp 24-30
3. Katie Scire, (2008) *'Gender Discrimination in work place'* Critical Feminist Web Paper-4
4. Erik, Bihagen. Marita Ohls. (2006). *'The Glass Ceiling-Where is it? Women's and men's career prospects in the private vs. the public sector in Sweden 1979-2000'*. The Sociological Review, 54(1), 20-47.
5. Habib, Zafarullah. (2000). *'Through the brick wall and the glass ceiling: women in the civil services in Bangladesh'*. Gender, Work and Organization, 7(3), 197-209.
6. Uzma Shoukat.(2004) *'Literacy and women's identity, Proceedings of the International Conference on Social Sciences: Endangered and Engendered'*, Fatima Jinnah Women University, Rawalpindi, Pakistan, 84-96.
7. Wayne, F. Casico. (1995). *'Managing Human Resource, Productivity, Quality of work-life, Profits'*, McGraw Hill Internationals (4th edition).
8. John, M. Ivancevich *'Human Resource Management'* (9th edition). McGraw Hill, USA. 2004
9. Evans, *'Delving deeper into morale, job satisfaction and motivating among education professionals: Re-examining the leadership dimension'*. Educational Management and administration (2001). 29(3), 291-306.
10. Hans Selye, *'The Stress of Life'*, McGraw Hill, 1950, p. 40-53
11. Robert A. Baron, *'Psychology'*: fifth ed., Pearson Prentice Hall, 2007 p. 494-500
12. Ashraf etal, *'Gender Discrimination Imentory Standardized'*, unpublished Gender Discrimination Measurement Scale, Muzaffarpur College, 2005.
13. Singh A and Sharma T.R., *'Manual For Job Satisfaction Scale'*, National Psychological Corporation, 1986.
14. Cohan S. Williamson G., *'Perceived Stress in a Probability sample of the United States in Spacapan S Oskamp, S. Editors. 'The Social Pshycology of Health : Claremont Symposium on Applied social Pshycology'*, Sage Newbury Park, CA, USA, 1988.
15. पाण्डेय जितेन्द्र कुमार, 'महिला सशक्तीकरण एवं पंचायती राज', राधा कमल मुखर्जी चिंतन परंपरा, वर्ष 21, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2019

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2020

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# राजस्थान के राजसमंद जिले के मार्बल उद्योग में कार्यरत श्रमिकों की प्रकृति एवं समस्याएँ

❑ डॉ. नेहा पालीवाल

❖ भरत सिंह राव

राजस्थान राज्य में राजसमंद जिला मार्बल भण्डार तथा उत्पादन की दृष्टि से प्रथम है। राजसमन्द जिले का मार्बल उद्योग कृषि से पलायित एवं बेरोजगार लोगों के लिए रोजगार का एक बड़ा स्त्रोत है जिसमें राजस्थान के अन्य जिलों एवं अन्य राज्यों से भी लोग रोजगार प्राप्त करने आते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र यहाँ रोजगार प्राप्त श्रमिकों की प्रकृति एवं उनकी समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन प्राथमिक समंकों पर आधारित है जिनके संकलन के लिए स्तरित दैव प्रतिचयन विधि से चयनित 54 मार्बल खनन इकाइयों तथा 16 मार्बल प्रसंस्करण इकाइयों से 280 श्रमिकों तथा 70 उद्यमियों के एक प्रतिदर्श का प्रयोग किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के मार्बल उद्योग में कार्यरत श्रमिकों की प्रकृति के सम्बन्ध में ली गई शून्य परिकल्पना की जांच काई-वर्ग परीक्षण के माध्यम से की गई। मार्बल उद्योग में श्रमिकों की शारीरिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं कुशलता की स्थिति का विश्लेषण कर यह शोध पत्र इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि इस उद्योग में भी अन्य असंगठित क्षेत्र के उद्योगों के समान सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े श्रमिक ही अधिक पाए जाते हैं जो अशिक्षित एवं असंगठित होने से कई समस्याओं का सामना कर रहे हैं।

**उद्योग** किसी भी क्षेत्र के विकास में मुख्य भूमिका निभाते हैं। एक ओर तो उत्पादन एवं राजस्व के माध्यम से ये उस क्षेत्र के विकास में प्रत्यक्ष योगदान देते हैं दूसरा रोजगार प्रदाता के रूप में ये उस विकास को गति भी प्रदान करते हैं। राजस्थान राज्य के राजसमन्द जिले का मार्बल उद्योग भी ऐसा ही एक उद्योग है। इसने राजसमन्द जिले की विश्व में पहचान स्थापित की है। राजस्थान राज्य में राजसमंद जिला मार्बल भण्डार तथा उत्पादन की दृष्टि से प्रथम है। वर्ष 2017-18 में यहाँ के मार्बल उद्योग ने राज्य के मार्बल उत्पादन में 49 प्रतिशत और मार्बल उत्पादन से प्राप्त राजस्व में 52 प्रतिशत योगदान दिया।[1] राजस्थान के खान एवं भूविज्ञान विभाग के अनुसार सम्पूर्ण राजसमन्द जिले में लगभग 1020 खनन इकाइयाँ तथा 500 छोटी-बढ़ी प्रसंस्करण इकाइयाँ अवस्थित हैं। यह उद्योग इस जिले का बड़ा रोजगार प्रदाता भी है जिसमें प्रदेश के ही नहीं वरन् अन्य राज्यों के लोग भी रोजगार प्राप्त करने आते हैं। किसी भी उद्योग में श्रमिकों की प्रकृति का अध्ययन उस उद्योग में रोजगार के स्वरुप का विश्लेषण करने में सहायता प्रदान करता है जिससे उस उद्योग द्वारा उस क्षेत्र में श्रमिकों के लिए रोजगार के अवसर एवं बदलते रोजगार परिदृश्य की पहचान की जा सकती है। इसलिए ही प्रस्तुत शोध पत्र राजसमन्द के मार्बल उद्योग के श्रमिकों की प्रकृति का विश्लेषण करता है। राजसमन्द के मार्बल उद्योग में छोटी-छोटी इकाइयाँ कार्यरत हैं तथा इसका वर्गीकरण असंगठित क्षेत्र के उद्योग के रूप में किया जा सकता है। मार्बल खनन एवं प्रसंस्करण का कार्य अत्यंत कठिन एवं जोखिम पूर्ण है। उस पर इसका असंगठित क्षेत्र में होना यहाँ के श्रमिकों के लिए कई समस्याएँ खड़ी करता है। सामान्यतया असंगठित क्षेत्र में सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ा वर्ग रोजगार प्राप्त करता है[2] तथा यहाँ के श्रमिकों को अस्थाई रोजगार, औपचारिक नियोक्ता-कर्मचारी संबंध की कमी और अपर्याप्त सामाजिक सुरक्षा की समस्या का सामना करना पड़ता है।[3] राजसमन्द जिले के मार्बल उद्योग में रोजगार प्राप्त श्रमिक इसकी पुष्टि करते हैं या नहीं यह जानने का प्रयास इस शोध पत्र के माध्यम से किया गया है।

**साहित्य समीक्षा** : पूर्व में भी खनन उद्योगों में रोजगार पर अध्ययन हुए हैं जो इन उद्योगों के महत्व, इनमें श्रमिकों की प्रकृति एवं श्रमिकों की समस्याओं

❑ सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)
❖ शोध अध्येता, अर्थशास्त्र विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

को परिलक्षित करते हैं।

**टांक**[4] **ने** उदयपुर जिले में खनन पर अपने शोध प्रबन्ध में बताया कि मानव जनित क्रियाओं में कृषि के बाद खनन ही सबसे प्राचीन प्रक्रिया है जिसमें मानव वर्षों से संलिप्त हैं। खनिज किसी भी देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। खनन समाज को आर्थिक आधार भी प्रदान करता है क्योंकि इसमें लाखों लोगों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्राप्त होता है। टांक के अनुसार वर्ष 2008 में अकेले राजस्थान में लगभग 5 लाख लोग खनन क्षेत्र से सीधे जुड़े हुए थे। खनन देश की अर्थव्यवस्था का मेरूदण्ड है जो देश को आर्थिक मजबूती प्रदान करता है।

**सती**[5] **ने** मध्यप्रदेश के शिवपुरी जिले में पत्थर खनन का अध्ययन किया और पाया कि वहाँ बहुत बड़ी संख्या में लोग पत्थर खनन गतिविधियों पर निर्भर हैं जो कृषि गतिविधियों के बाद सबसे अधिक है। वहाँ 60 प्रतिशत से अधिक पत्थर खदानें माधव राष्ट्रीय उद्यान और अन्य वन क्षेत्रों में स्थित हैं। इस क्षेत्र को प्रतिबन्धित करने से गरीब मजदूरों का सामाजिक-आर्थिक जीवन बुरी तरह प्रभावित हुआ है। उन्होंने बताया कि पत्थर खनन से जुड़े लोग मुख्यतः अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के हैं। ऐसे में खनन पर प्रतिबंध लगाने से उन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ा है, जैसे - भुखमरी, कुपोषण तथा खाद्य असुरक्षा आदि।

**खराड़ी**[6] ने उदयपुर के मार्बल उद्योग के अध्ययन में पाया कि खदानों में काम करने वाले श्रमिकों का बढ़ा भाग अशिक्षित था। खदानों के श्रमिकों में आपसी संगठन एवं श्रमिक संघों का भी अभाव था तथा सरकारी तौर पर उचित शिक्षा या निःशुल्क शिक्षा का विस्तार करने पर जोर दिया जिससे श्रमिक अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकें।

**वर्डिया एवं वर्गीय**[7] ने आदिवासियों के जीवन में संगमरमर (मार्बल) व्यवसाय के महत्व पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया कि मार्बल उद्योग के विकास से आदिवासियों को अपने गाँव के पास ही रोजगार मिल जाता है। नियमित आय होने से उनके आचार-विचार, रहन-सहन एवं सोच में परिवर्तन आया है और शिक्षा की तरफ भी रूझान बढ़ा है।

**राजसमन्द** जिले का मार्बल उद्योग कृषि क्षेत्र में रोजगार से वंचित एवं रोजगार के अभाव में पलायित श्रमिकों के लिए एक वरदान साबित हुआ है। राजसमन्द में बेरोजगारों के लिए रोजगार प्राप्ति का मार्बल उद्योग ही सर्वश्रेष्ठ विकल्प है।राजस्थान का यह जिला भी अनूसूचित जनजाति के बाहुल्य वाले दक्षिणी राजस्थान में स्थित है तथा इस जिले का कुछ हिस्सा अनूसूचित जनजाति उप-योजना क्षेत्र का भी भाग है। ऐसे में यह जानना कि क्या इस उद्योग में भी अनुसूचित जनजाति वाले लोगों की रोजगार में अधिकता है या नहीं महत्त्वपूर्ण है। किन्तु राजसमन्द के मार्बल उद्योग में श्रमिकों की प्रकृति एवं उनकी समस्याओं पर कोई शोध अध्ययन पूर्व में नहीं किया गया था। अतः यह अध्ययन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

**शोध पद्धति :** प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र राजस्थान का राजसमन्द जिला है। अध्ययन के मुख्य उद्देश्य अग्रलिखित हैंः

1) राजसमन्द के मार्बल उद्योग में रोजगार प्राप्त श्रमिकों की प्रकृति ज्ञात करना।
2) राजसमन्द के मार्बल उद्योग के श्रमिकों की समस्याओं का पता लगाना।

**शोध-परिकल्पना :** रोजगार प्राप्त श्रमिकों की प्रकृति के सम्बन्ध में मुख्य परिकल्पना है :

**शून्य परिकल्पना (Ho) :** अध्ययन क्षेत्र के मार्बल उद्योग में कार्यरत श्रमिकों में जाति, शिक्षा के स्तर, आयुवर्ग, तथा क्षेत्र के आधार पर कोई सार्थक अंतर नहीं है।

अन्य शब्दों में सभी जाति वाले, ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों के, सभी आयुवर्ग वाले तथा सभी स्तर की शिक्षा प्राप्त श्रमिक राजसमन्द के मार्बल उद्योग में कार्यरत हैं।

**वैकल्पिक परिकल्पना (HA) :** अध्ययन क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों में जाति, शिक्षा के स्तर, आयुवर्ग तथा क्षेत्र के आधार पर सार्थक अंतर है। (विश्लेषण के लिए आगे इस परिकल्पना को चार उप-परिकल्पनाओं में बांटा गया है।)

**शोध प्रविधि :** प्रस्तुत शोध वर्णनात्मक या विवरणात्मक है। साथ ही शोध में गुणात्मक तथा परिमाणात्मक दोनों प्रकार के समंकों का संकलन एवं विश्लेषण किया गया है। यह शोध अध्ययन मुख्यतः प्राथमिक समंकों पर आधारित है। समंक संकलन हेतु प्रतिदर्श विधि का प्रयोग किया गया है। राजसमन्द जिले को खनिज भण्डार एवं खनन की दृष्टि से खान एवं भू-विज्ञान विभाग द्वारा तीन क्षेत्रों में विभाजित किया गया हैः (1) खनिज अभियन्ता क्षेत्र आमेट (2) खनिज अभियन्ता क्षेत्र राजसमन्द-1 (3) खनिज अभियन्ता क्षेत्र राजसमन्द-2। इन तीनों क्षेत्रों से प्रतिदर्श का चयन किया गया है। प्रतिदर्श चयन हेतु इन तीन क्षेत्रों को स्तर मानकर प्रत्येक स्तर में उपलब्ध खानों

तथा प्रसंस्करण इकाइयों में से पाँच प्रतिशत इकाइयों का चयन दैव प्रतिदर्श विधि से किया गया है। वर्ष 2015-16 एवं 2016-17 में राजसमन्द में कार्यरत इकाइयों का औसत लेकर उसके पाँच प्रतिशत के आधार पर कुल 54 खानों तथा 16 प्रसंस्करण इकाइयों अर्थात् 70 मार्बल उपक्रमों का चयन किया गया है। श्रमिकों के प्रतिदर्श के लिए प्रत्येक उपक्रम से 4 श्रमिकों का चयन करते हुए कुल 280 श्रमिकों के प्रतिदर्श का चयन किया गया है। अध्ययन के लिए प्राथमिक आंकड़ों की संग्रहण अवधि दो भागों में रही है। वर्ष 2017-18 में अक्टूम्बर से दिसम्बर माह तक तथा वर्ष 2018-19 में नवम्बर से फरवरी माह प्राथमिक आंकड़ों का संकलन किया गया था। अध्ययन के लिए प्राथमिक समंकों का संग्रहण औपचारिक साक्षात्कार के माध्यम से किया गया है। श्रमिकों एवं उद्यमियों के औपचारिक साक्षात्कार के लिए अनुसूचियों का निर्माण किया गया। अध्ययन में अनुसूचियों से प्राप्त समंकों का आवश्यकतानुसार एकगुणी या द्विगुणि वर्गीकरण कर सारणियों के माध्यम से प्रस्तुतीकरण किया गया है। समंकों के विश्लेषण हेतु बारंबारता, संचयी बारंबारता तथा परिकल्पना की जांच हेतु काई वर्ग परीक्षण का भी प्रयोग किया गया है।

**राजसमन्द के मार्बल उद्योग में कार्यरत श्रमिकों की प्रकृति का विश्लेषण :** राजसमन्द जिले में मार्बल उद्योग में कार्यरत श्रमिकों की शारीरिक, सामाजिक, शैक्षिक स्थितियां, स्थानीयता एवं कुशलता का वर्णन शोध पत्र के इस भाग में किया गया है ताकि इस उद्योग में रोजगार प्राप्त श्रमिकों की प्रकृति को समझा जा सके। इसके लिए मार्बल उद्योग में कार्यरत श्रमिकों तथा इकाइयों के मालिकों की साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त जानकारी का विश्लेषण अग्रांकित बिन्दुओं में प्रस्तुत किया गया है।

**श्रमिकों की शारीरिक स्थिति :** श्रमिकों का जेंडर एवं आयु अनुसार विवरण

**राजसमन्द** के मार्बल उद्योग में काम करने वाले श्रमिकों में पूर्ण जेंडर विषमता है, अर्थात् सामान्यतया सिर्फ पुरुष श्रमिक ही पाये जाते हैं। इसका प्रमाण चयनित प्रतिदर्श के 280 श्रमिकों के लिंगानुसार वितरण के अध्ययन से मिलता है जो सारणी 1 में प्रदर्शित किया गया है।

**सारणी 1**

**चयनित प्रतिदर्श में पुरुष एवं महिला श्रमिकों का प्रतिशत**

| श्रमिक का जेंडर | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| पुरुष | 278 | 99.30 |
| महिला | 2 | 0.70 |
| कुल | 280 | 100 |

**सारणी 1** से स्पष्ट होता है कि मार्बल इकाइयों से लिए गए श्रमिकों के प्रतिदर्श में पुरुष श्रमिकों की संख्या 99.30 प्रतिशत है जबकि मात्र 0.70 प्रतिशत महिला श्रमिक ही मार्बल उद्योग में कार्यरत हैं। ये 2 महिला श्रमिक भी प्रसंस्करण इकाइयों में कार्यरत हैं क्योंकि उनके पति इस प्रसंस्करण इकाई में काम करते हुए दुर्घटना ग्रस्त हो गये थे और घर में कोई दूसरा कमाने वाला नहीं था। इन महिला श्रमिकों के द्वारा वर्तमान में भी कोई कठिन शारीरिक श्रम नहीं कराया जाता है। प्रसंस्कृत मार्बल लेने आये ग्राहकों के जलपान सम्बन्धी कार्य को करा लिया जाता है। खानों में श्रमिकों को अत्यधिक कठिन शारीरिक श्रम करना पड़ता है और खानें आवासीय क्षेत्र से दूर भी स्थित होती हैं इसलिए वहाँ महिला श्रमिकों की उपस्थिति नगण्य ही रहती है।

**सारणी 2**

**श्रमिकों का आयु-वर्गानुसार वितरण**

| | श्रमिकों की आयु (वर्षों में) | | | | कुल |
|---|---|---|---|---|---|
| | 19-26 | 26-46 | 46-60 | 60 एवं अधिक | |
| श्रमिकों की संख्या | 21 | 166 | 88 | 5 | 280 |
| प्रतिशत | 7.5 | 59.3 | 31.4 | 1.8 | 100 |

**सारणी 2** में श्रमिकों का आयु अनुसार विवरण दर्शाया गया है जिससे ज्ञात होता है कि प्रतिदर्श के 91 प्रतिशत श्रमिक 26 से 60 वर्ष की आयु वाले हैं जबकि उनमें से 59 प्रतिशत श्रमिक 26 से 46 आयु वर्ग वाले ही हैं। अतः राजसमंद के मार्बल उद्योग में बाल श्रमिक या युवा श्रमिक नहीं बल्कि व्यस्क श्रमिक ही कार्य करते हैं।

**श्रमिकों की सामाजिक स्थिति :** श्रमिकों की सामजिक स्थिति ज्ञात करने हेतु उनकी वैवाहिक, पारिवारिक एवं जातिगत स्थिति का विश्लेषण किया गया है।

**श्रमिकों की वैवाहिक स्थिति**

**सारणी 3**
**श्रमिकों की वैवाहिक स्थिति**

| वैवाहिक स्थिति | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| विवाहित | 267 | 95.40 |
| अविवाहित | 13 | 4.60 |
| कुल | 280 | 100 |

**सारणी 3** से स्पष्ट होता है कि कुल श्रमिकों में से 95.40 प्रतिशत श्रमिक विवाहित हैं तथा अविवाहित श्रमिकों की संख्या 4.60 प्रतिशत तुलनात्मक रूप से बहुत ही कम है।

**श्रमिकों की पारिवारिक स्थिति :** श्रमिकों से उनके परिवार की स्थिति का पता लगाने हेतु उनसे पूछा गया कि वे संयुक्त परिवार में रहते हैं या एकल परिवार में, जिसका वर्णन सारणी 4 की सहायता से किया गया है।

**सारणी 4**
**श्रमिकों की पारिवारिक स्थिति**

| परिवार | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| संयुक्त परिवार | 230 | 82.10 |
| एकल परिवार | 50 | 17.90 |
| कुल | 280 | 100 |

**सारणी 4** के अवलोकन से पता चलता है कि चयनित प्रतिदर्श के कार्यरत 82.10 प्रतिशत श्रमिक संयुक्त परिवार में रहते हैं जबकि 17.90 प्रतिशत श्रमिक एकल परिवार में रहते हैं। संयुक्त परिवार में रहने वाले श्रमिकों का प्रतिशत सर्वाधिक है। आगे श्रमिकों के साक्षात्कार के माध्यम से यह विदित हुआ कि मार्बल उद्योग में काम करने वाले श्रमिकों में ग्रामीण क्षेत्र के श्रमिकों की संख्या अधिक है। अतः यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रों के श्रमिक आज भी संयुक्त परिवार की परम्परा में विश्वास रखते हैं।

**एकल** परिवार के श्रमिकों के परिवार में 2-4 सदस्य बताने वाले श्रमिकों की संख्या 12.1 प्रतिशत है। जबकि संयुक्त परिवार में सदस्यों की संख्या 4-6 बताने वाले श्रमिकों की संख्या 39.3 प्रतिशत है। संयुक्त परिवार में 6 से अधिक सदस्य बताने वालें 48.6 प्रतिशत श्रमिक हैं। अतः 88 प्रतिशत श्रमिक बड़े परिवारों वाले हैं।

**सारणी 5**
**स्वयं श्रमिक के अतिरिक्त मार्बल उद्योग में परिवार के सदस्यों की संख्या**

| | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| केवल स्वयं | 248 | 88.50 |
| स्वयं के अलावा एक और सदस्य | 5 | 1.80 |
| स्वयं के अलावा दो और सदस्य | 2 | 8.60 |
| स्वयं के अलावा तीन और सदस्य | 3 | 1.10 |
| कुल | 280 | 100 |

**श्रमिकों** से उनके अलावा उनके परिवार से कितने सदस्य मार्बल उद्योग में काम करते हैं यह जानकारी भी ली गयी है। ऐसे श्रमिक जो अपने परिवार में केवल स्वयं ही मार्बल उद्योग में काम करते हैं 88.50 प्रतिशत हैं। (सारणी 5)। स्वयं श्रमिक के अलावा केवल एक सदस्य और काम करता है ऐसा बताने वाले श्रमिकों की संख्या 1.80 प्रतिशत है। जिनके परिवार से स्वयं श्रमिक के अलावा दो सदस्य और भी काम करते हैं उनकी संख्या 8.60 प्रतिशत है। जिन परिवारों से स्वयं श्रमिक के अलावा तीन और सदस्य काम करते हैं उनकी संख्या मात्र 1.10 प्रतिशत है। अर्थात् स्वयं श्रमिक के अलावा परिवार से अन्य सदस्यों के मार्बल उद्योग में काम करने को 11.5 प्रतिशत श्रमिक ही स्वीकार करते हैं।

**श्रमिकों का जाति अनुसार वर्गीकरण**

**सारणी 6 से** स्पष्ट होता है कि चयनित श्रमिकों में अन्य पिछड़ा वर्ग के श्रमिक सर्वाधिक हैं जिनकी संख्या 40.30 प्रतिशत है। उसके बाद सामान्य वर्ग के श्रमिक आते हैं जो संख्या में 32.50 प्रतिशत हैं। अनुसूचित जनजाति के श्रमिकों की संख्या 21.10 प्रतिशत है जो तीसरे स्थान पर आते हैं। अनुसूचित जाति के श्रमिकों की संख्या सबसे कम 6.10 प्रतिशत हैं। अतः मार्बल उद्योग में सभी जातियों के श्रमिकों को रोजगार प्रदान किया जाता है किन्तु उनकी संख्या समान नहीं है। हालांकि राजसमन्द जिले का कुछ भाग अनुसूचित जनजाति उप योजना क्षेत्र का हिस्सा है किन्तु यहाँ के खनन क्षेत्र उस उप योजना क्षेत्र में नहीं आते हैं ये खानें जहाँ स्थित हैं वहाँ भी अनुसूचित जनजाति के लोगों की संख्या अधिक नहीं होने से राजसमन्द के मार्बल उद्योग में अनुसूचित जनजाति के लोगों की संख्या कम ही है।

**सारणी 6**
**श्रमिकों का जातिगत वितरण**

| जाति वर्ग | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| सामान्य | 91 | 32.50 |
| अन्य पिछड़ा वर्ग | 113 | 40.30 |
| अनुसूचित जाति | 17 | 6.10 |
| अनुसूचित जनजाति | 59 | 21.10 |
| कुल | 280 | 100 |

**श्रमिकों की शैक्षिक स्थिति :** अध्ययन में मार्बल उद्योग में काम करने वाले श्रमिकों के शिक्षा के स्तर का पता लगाया गया है। श्रमिकों की शिक्षा के स्तर का वर्णन सारणी 7 की सहायता से किया गया है।

**सारणी 7**

**श्रमिकों की शिक्षा का स्तर**

| शिक्षा स्तर | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| अशिक्षित | 41 | 14.60 |
| प्राथमिक | 89 | 31.70 |
| उच्च प्राथमिक | 57 | 20.40 |
| माध्यमिक | 36 | 12.90 |
| उच्च माध्यमिक | 22 | 7.90 |
| स्नातक | 28 | 10 |
| स्नातकोत्तर | 7 | 2.50 |
| कुल | 280 | 100 |

**सारणी 7** के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि कुल श्रमिकों में से 14.60 प्रतिशत श्रमिक अशिक्षित हैं। प्राथमिक शिक्षा पाने वाले श्रमिकों की संख्या 31.70 प्रतिशत है जो कि सर्वाधिक है। प्राथमिक से उच्च प्राथमिक तक शिक्षा वाले पाने वाले कुल श्रमिक 52 प्रतिशत तथा प्राथमिक से उच्च माध्यमिक तक शिक्षा पाने वाले कुल श्रमिक 71.43 प्रतिशत हैं। स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त श्रमिक 12.5 प्रतिशत ही हैं। स्नातकोत्तर श्रमिकों का प्रतिशत सबसे कम है। स्नातक एवं स्नातकोत्तर श्रमिक मार्बल उद्योग में उच्च पदों पर स्थित हैं जैसे - मुनीम (प्रबंधक), श्रमिक ठेकेदार, मशीन ऑपरेटर आदि।

**श्रमिकों की स्थानीयता :** मार्बल उद्योग में कार्यरत ज्यादातर श्रमिक ग्रामीण क्षेत्र से आते हैं। चयनित प्रतिदर्श में 96.80 प्रतिशत श्रमिक ग्रामीण हैं जबकि 3.20 प्रतिशत श्रमिक ही शहरी हैं (सारणी 8)।

**सारणी 8**

**श्रमिकों का क्षेत्र के अनुसार वर्गीकरण**

| स्थानीयता | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| ग्रामीण | 271 | 96.80 |
| शहरी | 9 | 3.20 |
| कुल | 280 | 100 |

**ग्रामीण** क्षेत्र के लोगों के लिए राजसमन्द जिले का मार्बल उद्योग निश्चित तौर पर एक रोजगार प्रदाता के रूप में विकसित हुआ है। ग्रामीण क्षेत्र में श्रमिकों के लिए कृषि के अलावा कोई अन्य रोजगार का विकल्प नहीं रहता है ऐसे में मार्बल उद्योग द्वारा इतनी अधिक मात्रा में रोजगार देना बेरोजगारों के लिए वरदान से कम नहीं है। श्रमिकों की स्थानीयता का वर्णन सारणी 9 में किया गया है।

**सारणी 9**

**श्रमिकों की स्थानीयता**

| स्थानीयता | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| राजस्थान | 236 | 84.30 |
| उत्तरप्रदेश | 19 | 6.80 |
| बिहार | 9 | 3.20 |
| अन्य | 16 | 5.7 |
| कुल | 280 | 100 |

**सारणी 9** से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक श्रमिक राजस्थान राज्य से ही हैं। राजस्थान राज्य के कार्यरत श्रमिकों की कुल संख्या 84.30 प्रतिशत हैं जिनमें राजसमन्द के 161 श्रमिक व राजस्थान के अन्य जिलों से आए 75 श्रमिक सम्मिलित हैं। इसके बाद सर्वाधिक श्रमिक उत्तरप्रदेश व बिहार से क्रमशः 6.80 प्रतिशत एवं 3.20 प्रतिशत हैं अन्य राज्यों जैसे-कर्नाटक, केरल, पंजाब, हरियाणा एवं मध्यप्रदेश से आने वाले श्रमिकों की संख्या 5.7 प्रतिशत है।

**राजसमन्द** जिले के अलावा राजस्थान के अन्य जिलों व अन्य राज्यों से आये श्रमिकों को बाहरी श्रमिक माना गया है। साक्षात्कार के दौरान बाहरी श्रमिकों से उनके राजसमन्द जिले के मार्बल उद्योग में काम करने हेतु आने का कारण पूछा गया जिसके उत्तर में श्रमिकों का कहना था कि उनके स्थान के आस-पास पर्याप्त मात्रा में रोजगार नहीं मिल पाने के कारण यहाँ आने का रूख किया। बाहरी श्रमिकों ने राजसमन्द जिले के मार्बल उद्योग में आने के कई कारण बताये हैं जो सारणी 10 में प्रदर्शित है।

**सारणी 10**

**श्रमिकों के बाहर से आने के मूल कारण**

| कारण | हाँ | नहीं |
|---|---|---|
| पर्याप्त मात्रा में रोजगार | 119 | 0 |
| अधिक मजदूरी | 119 | 0 |
| आवासीय सुविधा | 115 | 4 |

**कुल 119** श्रमिक बाहरी है इसमें कुल 44 श्रमिक अन्य राज्यों (उत्तर प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, केरल एवं अन्य राज्यों) से है जबकि 75 श्रमिक राजस्थान के ही है जो कि राजसमन्द जिले के अलावा अन्य जिलों से हैं। शत प्रतिशत बाहरी श्रमिकों ने राजसमन्द जिले के मार्बल

उद्योग में आने का मूल कारण पर्याप्त रोजगार व अधिक मजदूरी मिलना बताया है। सभी बाहरी श्रमिकों में से 96.6 प्रतिशत श्रमिकों ने यह स्वीकार किया कि रोजगार के साथ आवासीय सुविधा भी मिल जाती है।

**सभी** बाहरी श्रमिकों से पूछा गया कि वे उनके परिवार के साथ आये हैं या अकेले तो इस पर सभी श्रमिकों ने यही स्वीकार किया कि वे अपने परिवार को साथ नहीं लाये हैं क्योंकि खान श्रमिकों को खनन क्षेत्र में ही निवास करना पड़ता है और खनन क्षेत्र पहाड़ी इलाकों एवं दुर्गम जगहों पर अवस्थित होने से परिवहन की समस्या रहती है ऐसे में यदि श्रमिक परिवार को साथ लाये तो बच्चों की शिक्षा बाधित होती है साथ ही महिलाओं का खनन क्षेत्र में कोई काम भी नहीं है कि वे कोई काम कर के आय सृजित करें। जबकि यदि परिवार स्थाई निवास पर ही है तो पुरुषों की अनुपस्थिति में महिलायें कृषि कार्य द्वारा आय सृजित करती हैं और बच्चों की शिक्षा भी बाधित नहीं होती है। अन्य कारण जैसे-रोजमर्रा के कार्य, सामाजिक कार्यकर्मों में उपस्थिति, आवागमन में परेशानी, परिवार में बुजुर्गों की उपस्थिति आदि परोक्ष कारण भी परिवार को साथ लाने से रोकते हैं। इसी कारण बाहरी श्रमिक अकेले ही राजसमन्द जिले के मार्बल उद्योग में काम करने आते हैं।

**(5) श्रमिकों की प्रकृति सम्बन्धी परिकल्पना का सांख्यिकीय परीक्षण** : शोध में यह शून्य परिकल्पना ली गई थी कि अध्ययन क्षेत्र के मार्बल उद्योग में कार्यरत श्रमिकों में जाति, शिक्षा के स्तर, आयुवर्ग, तथा क्षेत्र के आधार पर कोई सार्थक अंतर नहीं है अर्थात् सभी जाति वाले, ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों के, सभी आयुवर्ग वाले तथा सभी स्तर की शिक्षा प्राप्त श्रमिक लगभग समान संख्या में हैं। इस परिकल्पना को चार उप-परिकल्पनाओं में बांटा गया है। उनमें से प्रत्येक का परीक्षण आसंजन उत्कृष्टता (Goodness of Fit) की जांच के काई-वर्ग परीक्षण (Chi-Square Test) से किया गया है जिसमें अपेक्षित आवृत्तियाँ उस गुण विशेष के विभिन्न वर्गों के लिए समान मानी गई हैं। इस परीक्षण के परिणाम सारणी 11 में दर्शाए गए हैं।

**सारणी 11**
**श्रमिकों की प्रकृति सम्बन्धी परिकल्पना के काई-वर्ग परीक्षण के परिणाम**

| | आयु | जाति | शिक्षा | क्षेत्र |
|---|---|---|---|---|
| काई-वर्ग | 230.943 | 74.571 | 106.60 | 245.157 |
| स्वातंम्य अंश | 3 | 3 | 6 | 1 |
| पी-मान | .000 | .000 | .000 | .000 |

स्त्रोत : परिगणित

.0 कोष्ठों (0.0 प्रतिशत) का अपेक्षित मूल्य 5 से कम है।

**काई-वर्ग** परीक्षण के परिणाम दर्शाते हैं कि आयुवर्ग के लिए किए काई-वर्ग परीक्षण का पी-मान .01 से कम है अतः 1 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर शून्य परीकल्पना अस्वीकार होती है जिसका तात्पर्य है कि श्रमिकों में आयुवर्ग के अनुसार सार्थक अंतर है। इस शोध पत्र में श्रमिकों का आयुवर्ग अनुसार किया वर्णन भी यही दर्शाता है। इसी प्रकार जाति, शिक्षा के स्तर तथा क्षेत्र के समंकों पर प्रयुक्त किए काई वर्ग परीक्षण के परिणाम भी दर्शाते हैं कि 1 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है क्योंकि सभी में पी-मान .01 से कम है। अतः श्रमिकों में जाति, शिक्षा तथा क्षेत्र के अनुसार सार्थक अंतर है। शोध पत्र में आयुवर्ग के अनुसार श्रमिकों का विश्लेषण, शिक्षा के आधार पर श्रमिकों का विश्लेषण तथा क्षेत्र के आधार पर श्रमिकों का विश्लेषण भी इसी बात की पुष्टि करते हैं।

**यह स्पष्टतः** देखा जा सकता है कि सर्वाधिक श्रमिक अन्य पिछड़ा वर्ग के हैं जबकि अनूसूचित जाति एवं अनूसूचित जनजाति के श्रमिकों की संख्या लगभग एक चौथाई ही है, 26-46 आयु वर्ग वाले तथा प्राथमिक शिक्षा प्राप्त श्रमिक सर्वाधिक हैं और लगभग सभी (97 प्रतिशत) श्रमिक ग्रामीण क्षेत्र से हैं।

**मार्बल उद्योग में श्रमिकों की कुशलता** : उद्यमियों तथा श्रमिकों से यह जानने का प्रयास किया गया कि मार्बल उद्योग में रोजगार प्राप्त करने हेतु श्रमिक में किस प्रकार की कुशलता की आवश्यकता होती है। मार्बल उद्यमियों के बताए अनुसार श्रमिकों की कुशलता के मापदंड का वर्णन सारणी 12 में प्रदर्शित है।

**सारणी 12**

**मार्बल उद्यमियों के अनुसार श्रमिकों की कुशलता का मापदंड**

| मापदंड | खनन इकाइयों के मालिक ( n =54) | | प्रसंस्करण इकाइयों के मालिक ( n =16) | |
|---|---|---|---|---|
| | हाँ | नहीं | हाँ | नहीं |
| अनुभव | 54 | 0 | 14 | 2 |
| शिक्षा | 1 | 53 | 0 | 16 |
| प्रशिक्षण | 0 | 54 | 0 | 16 |
| शारीरिक दक्षता | 0 | 54 | 0 | 16 |
| अन्य | 0 | 54 | 0 | 16 |

**सारणी 12 के** विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि शत प्रतिशत (54) खान मालिकों तथा 87.5 प्रतिशत (14) प्रसंस्करण इकाइयों के मालिकों ने अनुभव को ही कुशल श्रमिकों का मापदंड माना है। मात्र 1.9 प्रतिशत खान मालिकों ने यह भी स्वीकार किया कि अनुभव के साथ-साथ शिक्षित होना भी कुशल श्रमिकों का मापदंड है।

**शत** प्रतिशत खान मालिकों तथा प्रसंस्करण इकाई मालिकों ने किसी श्रमिक के प्रशिक्षित होने को तथा शारीरिक दक्षता या फिर किसी अन्य योग्यता को कुशल श्रमिक का मापदंड नहीं माना है अर्थात् मुख्य रूप से अनुभव को ही मापदंड माना है। जिन श्रमिकों को उद्योग में काम करने का तीन से चार वर्ष का अनुभव हो जाता है उन्हें कुशल श्रमिक माना जाता है। इससे कम अनुभव वाले श्रमिक अर्द्धकुशल तथा अनुभवहीन श्रमिक अकुशल होते हैं।

**श्रमिकों** के अनुसार भी कुशलता का मापदंड जानने का प्रयास किया गया। उनसे पूछा गया कि उनके अनुसार कुशल श्रमिक किसे माना जाता है। इस प्रश्न के प्रत्युत्तर सारणी 13 में दिये हैं।

**सारणी 13**

**श्रमिकों के अनुसार कुशलता का मापदंड**

| कुशलता का मापदंड | हाँ | नहीं | कुल |
|---|---|---|---|
| अनुभव | 279 | 1 | 280 |
| वरिष्ठता (आयु अनुसार) | 0 | 280 | 280 |
| प्रशिक्षण | 0 | 280 | 280 |
| अन्य | 0 | 280 | 280 |

**सारणी 13** से ज्ञात होता है कि कुल श्रमिकों में से 99.6 प्रतिशत श्रमिक अनुभवियों को कुशल श्रमिक मानते हैं। कोई भी श्रमिक वरिष्ठता या प्रशिक्षण को कुशलता का मापदंड स्वीकार नहीं करता है। कुशलता के अन्य किसी मापदंड को कोई भी श्रमिक स्वीकार नहीं करता है। अतः मार्बल उद्योग में काम कर रहे अधिकांश श्रमिकों ने भी उद्यमियों की तरह अनुभव को ही कुशल श्रमिक का मापदंड माना है।

**पहली** बार कोई भी श्रमिक अकुशल श्रमिक के रूप में ही मार्बल उद्योग में कार्य प्रारंभ करता है एवं जैसे - जैसे उसे कार्य करने का अनुभव प्राप्त होता है वो अकुशल से अर्द्धकुशल श्रमिक और अर्द्धकुशल श्रमिक से कुशल श्रमिक की श्रेणी में आ जाता है।

**अतः** जिस किसी श्रमिक को मार्बल उद्योग में काम करने का अनुभव होगा वही कुशल श्रमिक की श्रेणी में आयेगा। शत-प्रतिशत उद्यमियों ने ऐसे ही श्रमिकों को रोजगार प्रदान करने में प्राथमिकता देना स्वीकार किया है और उन्हें रोजगार भी जल्दी प्राप्त हो जाता है।

**मार्बल** उद्योग में उद्यमियों द्वारा कुशल श्रमिकों को रोजगार देने में कितनी प्राथमिकता दी जाती है इस पर श्रमिकों से भी उत्तर प्राप्त किए गए जिसका वर्णन सारणी 14 की सहायता से किया गया है।

**सारणी 14**

**उद्यमियों द्वारा कुशल श्रमिकों को प्राथमिकता**

| प्राथमिकता | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| बहुत अधिक | 154 | 55 |
| अधिक | 123 | 43.9 |
| कम | 2 | 0.70 |
| बहुत कम | 1 | 0.40 |

**सारणी 14** से स्पष्ट होता है कि 55 प्रतिशत श्रमिकों ने यह स्वीकार किया की मार्बल उद्यमियों द्वारा कुशल श्रमिकों को बहुत अधिक प्राथमिकता दी जाती है और उन्हें अधिक प्राथमिकता दी जाती है ऐसा कहने वालों की संख्या 43.90 प्रतिशत है। अतः 99 प्रतिशत श्रमिक इस बात से सहमत हैं कि उद्यमियों द्वारा रोजगार प्रदान करने में

कुशल श्रमिकों को प्राथमिकता दी जाती है जो यह सिद्ध करता है कि मार्बल उद्योग में कुशल श्रमिकों की मांग सदैव रहती है।

**जब** मार्बल उद्यमियों से यह जानने का प्रयास किया गया कि मार्बल उद्योग में किस प्रकार की कुशलता वाले श्रमिक उपलब्ध हैं तो उद्यमियों द्वारा मुख्य रूप से कुशल व अर्द्धकुशल श्रमिकों के पाए जाने की बात स्वीकार की गई (सारणी 15)।

**सारणी 15**

**उत्पादन कार्य में संलग्न श्रमिकों का प्रकार**

| उत्पादन कार्य में संलग्न श्रमिकों का प्रकार | खनन इकाइयों के मालिक ( n =54) | | प्रसंस्करण इकाइयों के मालिक ( n =16) | |
|---|---|---|---|---|
| | हाँ | नहीं | हाँ | नहीं |
| कुशल श्रमिक | 54 | 0 | 16 | 0 |
| अर्द्धकुशल श्रमिक | 52 | 2 | 13 | 3 |
| अकुशल श्रमिक | 2 | 52 | 1 | 15 |
| अन्य | 0 | 54 | 2 | 14 |

**सारणी 15** से स्पष्ट होता है कि सभी शत प्रतिशत खान मालिकों व प्रसंस्करण इकाई मालिकों द्वारा यह स्वीकार किया गया कि उनके उद्यम में कुशल श्रमिक कार्य कर रहे हैं। साथ ही 96.3 प्रतिशत खान मालिकों तथा 81.3 प्रतिशत प्रसंस्करण इकाई मालिकों द्वारा स्वीकार किया गया कि उनके उद्योग में अर्द्‌ध कुशल श्रमिक भी कार्यरत हैं, जबकि 3.7 प्रतिशत खान मालिकों तथा 6.3 प्रतिशत प्रसंस्करण इकाई मालिकों ने यह स्वीकार किया कि उनके यहाँ अकुशल श्रमिक भी कार्य करते हैं।

**श्रमिकों से** साक्षात्कार के माध्यम यह जानने का प्रयास किया गया है कि श्रमिक कब से मार्बल उद्योग में काम कर रहें हैं। श्रमिकों के प्रत्युत्तरों का वर्णन सारणी 16 में किया गया है।

**सारणी 16**

**श्रमिकों के मार्बल उद्योग में कार्य प्रारम्भ करने का समय**

| कार्य प्रारम्भ वर्ष | श्रमिकों की संख्या |
|---|---|
| 1985–1995 | 14 |
| 1995–2005 | 121 |
| 2005–2015 | 131 |
| 2015 के बाद | 14 |

**सारणी 16** से स्पष्ट होता है कि वर्ष 1985 से 1995 की अवधि में मार्बल उद्योग में कार्य प्रारम्भ करने वाले श्रमिकों की संख्या 5 प्रतिशत थी। वर्ष 1995 से 2005 के दशक में मार्बल उद्योग से जुड़ने वाले श्रमिकों की संख्या 43.2 प्रतिशत थी। यह अवधि उत्तर-सुधार कालावधि के नाम से जानी जाती है। इस समय मार्बल उद्योग का बहुत तेजी से विकास हुआ। खनन पट्टों की संख्या में भारी वृद्धि होने के कारण श्रमिकों की मांग भी बढ़ गयी थी इसलिए इस समयावधि में श्रमिकों ने अधिक संख्या में मार्बल उद्योग में काम करना प्रारम्भ किया था। वर्ष 2005 से 2015 तक की समयावधि में मार्बल उद्योग अपने चरम पर था। इस अवधि में रोजगार प्राप्त श्रमिकों की संख्या प्रतिदर्श में 46.8 प्रतिशत है। वर्ष 2015 के बाद मार्बल उद्योग में काम प्रारंभ करने वाले श्रमिकों संख्या मात्र 5 प्रतिशत है। अतः मार्बल उद्योग में अनुभव के आधार पर अधिकाँश श्रमिक कुशल तथा अर्धकुशल श्रमिकों की श्रेणी में आते हैं।

**मार्बल उद्योग के श्रमिकों की समस्याएँ :** मार्बल उद्योग में कार्यरत श्रमिकों की परोक्ष समस्याएँ तो बहुत हैं परन्तु साक्षात्कार के दौरान ज्ञात हुई प्रत्यक्ष समस्याओं का वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

**अपर्याप्त वेतन एवं शोषण की समस्या :** अध्ययन के दौरान 46.8 प्रतिशत श्रमिकों ने यह स्वीकार किया कि मार्बल उद्यमियों द्वारा उनका शोषण किया जाता है। श्रमिक यहाँ शोषण से अपना आशय इस प्रकार स्पष्ट करते हैं कि निश्चित कार्यों के अलावा भी मार्बल उद्योग में छोटे-मोटे काम श्रमिकों से करवायें जाते हैं परन्तु उसका भुगतान अलग से नहीं किया जाता है या समय पर नहीं दिया जाता है। साथ ही श्रमिकों का कहना है कि मार्बल उद्योग में कार्य जोखिम पूर्ण है तथा श्रमिकों पर कार्यभार की अधिकता है परन्तु उद्यमियों द्वारा उसके अनुरूप वेतन एवं सुविधाएँ नहीं दी जाती हैं इसलिए

श्रमिक इसे अपना शोषण समझते हैं।

**समय पर वेतन न मिलना :** श्रमिकों से ज्ञात हुआ कि कुछ श्रमिकों को छोड़ कर लगभग सभी श्रमिकों को मजदूरी मासिक ही दी जाती है परन्तु श्रमिकों की समस्या यह है कि उन्हें मजदूरी समय पर नहीं मिलती है। इस उद्योग के श्रमिकों को दो या तीन माह का वेतन एक साथ मिलता है। श्रमिकों की प्रकृति के विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि मार्बल उद्योग में कार्य करने वाले श्रमिक बड़े परिवारों वाले हैं जिनके परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक है तथा ज्यादातर अपने परिवार में कमाने वाले भी वे अकेले ही हैं। ऐसे में समय पर वेतन न मिलने से उनके तथा उनके परिवार के लिए बड़ी आर्थिक समस्या खड़ी हो जाती है। इसीलिए श्रमिक इस प्रकार की वेतन प्राप्ति में अनिश्चितता को भी एक समस्या मानते हैं एवं समय पर वेतन की अपेक्षा रखते हैं।

**प्रतिवर्ष आय में वृद्धि एवं अतिरिक्त आय (बोनस) की समस्या :** श्रमिकों से यह ज्ञात हुआ कि मार्बल उद्योग में श्रमिकों की मजदूरी लम्बे समय से बढ़ी ही नहीं थी। पिछले 3 से 5 वर्षों में थोड़ी मजदूरी बढ़ाई गई वो भी पर्याप्त नहीं है। श्रमिक प्रतिवर्ष या कम से कम दो वर्षों में एक बार मजदूरी में वृद्धि चाहते हैं, परन्तु उद्यमियों द्वारा ऐसा नहीं किया जाता है। मार्बल उद्योग के 93.90 प्रतिशत श्रमिक यह स्वीकार करते हैं कि उन्हें पर्याप्त अतिरिक्त आय (बोनस) नहीं मिलती है। श्रमिक बताते हैं कि वर्ष में एक बार दीपावली के अवसर पर नाममात्र का बोनस दिया जाता है जिसमें बर्तन, कपड़े या बहुत कम रूपये (1100 या 2100 रूपये) सम्मिलित हैं। श्रमिक इस प्रकार के बोनस से प्रसन्न नहीं हैं।

**उचित आवास की व्यवस्था का अभाव :** शत प्रतिशत खान एवं 62.50 प्रतिशत प्रसंस्करण इकाइयों के उद्यमी यह स्वीकार करते हैं कि उनके द्वारा श्रमिकों को आवासीय सुविधा प्रदान की जाती है। चूँकि बाहरी श्रमिक खनन क्षेत्र में ही निवास करते हैं इसलिए खान उद्यमियों द्वारा उन्हें यह सुविधा देनी ही पड़ती है। परन्तु श्रमिकों का कहना है कि आवास की सुविधा के नाम पर केवल टीनशेड से बने अस्थाई घर एवं रेलवे के कंटेनर मिलते हैं जिनमें मूलभूत सुविधाओं का भी अभाव होता है। आवास के नाम पर श्रमिकों को स्थाई या पक्के मकान उपलब्ध नहीं होते जिनमें सभी प्रकार की मूलभूत सुविधाएँ हों। इस प्रकार श्रमिकों को उचित आवास के अभाव में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

**परिवहन सुविधा का अभाव :** शत प्रतिशत खान उद्यमी यह स्वीकार करते हैं कि उनके द्वारा श्रमिकों को परिवहन सुविधा उपलब्ध नहीं कराई जाती है। जबकि 56.25 प्रतिशत प्रसंस्करण इकाइयों के उद्यमी यह स्वीकार करते हैं कि वे अपने श्रमिकों को परिवहन की सुविधा प्रदान करते हैं। खान श्रमिक ज्यादातर वहीं रहने वाले हैं इसलिए उन्हें इस सुविधा की आवश्यकता नहीं है। किन्तु प्रसंस्करण इकाइयों के श्रमिकों का कहना है कि श्रमिक कार्यस्थल तक स्वयं की सुविधा से आते हैं, उद्यमियों द्वारा उनके लिए किसी यातायात के साधन की सुविधा प्रदान नहीं कि जाती है। यह सही है कि प्रसंस्करण इकाइयों के श्रमिकों को प्रतिदिन आना-जाना करने के लिए आधा किराया इकाई के उद्यमी द्वारा प्रदान किया जाता है। दूर दराज के क्षेत्रों से आने वाले श्रमिकों को मुख्य मार्ग तक आने के लिए लम्बी दूरी पैदल ही तय करनी पड़ती है जिससे श्रमिकों का समय नष्ट होता है और थकान भी होती है। उद्यमियों द्वारा परिवहन की सुविधाओं के नाम पर श्रमिकों को नाममात्र का किराया ही दिया जाता है।

**बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था का अभाव :** शत प्रतिशत खान एवं प्रसंस्करण इकाइयों के उद्यमी यह स्वीकार करते हैं कि उनके द्वारा श्रमिकों के बच्चों के लिए शिक्षा की सुविधा नहीं दी जाती है। उद्यमी प्रथमतया तो यही बताते हैं कि श्रमिक अपने परिवार को साथ लेकर आता ही नहीं है जिससे कि इस प्रकार की समस्या उत्पन्न हो। श्रमिक यदि परिवार को साथ लेकर आये भी सही, तो भी खनन क्षेत्र पहाड़ी इलाकों में इस प्रकार से अवस्थित है कि बच्चों के लिए वहाँ से विद्यालय तक जाना बड़ा कठिन होगा। इसलिए श्रमिक स्वयं भी बच्चों को अपने साथ लाने से परहेज रखते हैं।

**पर्याप्त विश्राम का अभाव :** प्रतिदर्श के 75 प्रतिशत श्रमिक बताते हैं कि उन्हें पर्याप्त विश्राम नहीं मिल पाता है। मार्बल उद्योग में काम करना अधिक परिश्रम युक्त है इस उद्योग में श्रमिक दिन भर कठोर शारीरिक परिश्रम करते हैं। संध्या काल या रात्रि तक श्रमिक अपने यथा स्थान पर पहुँचते हैं और पुनः प्रातःकाल मार्बल उद्योग में काम करने के लिए निकल जाते हैं इसलिए श्रमिकों का कहना है कि उन्हें पर्याप्त विश्राम मिल नहीं पाता है। श्रमिकों के लिए इस उद्योग में निश्चित साप्ताहिक अवकाश का भी कोई प्रावधान नहीं है। इस सम्बन्ध में प्रत्येक इकाई

के अपने-अपने नियम होते हैं। किसी मार्बल इकाई में महीने के दो अवकाश का प्रावधान है तो किसी में तीन या चार दिन का, परन्तु सप्ताह में कोई भी एक दिन अवकाश के लिए निर्धारित नहीं है जिससे श्रमिकों को समस्या होती है।

**स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव :** प्रतिदर्श के 85.71 प्रतिशत श्रमिक यह स्वीकार करते हैं कि उन्हें मार्बल उद्योग में काम करने से स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या का सामना करना पड़ता है। यह उद्योग बहुत अधिक कठोर परिश्रम एवं जोखिमों से पूर्ण है जैसे- अत्यधिक गहरी खानों में काम करना, हर दिन धूल भरे वातावरण में काम करना, प्रसंस्करण इकाइयों में पत्थर चिराई की तेज आवाज वाली मशीनों के बीच काम करना जिससे श्रमिकों में जल्दी थकान, बहरापन, चिड़चिड़ापन और श्वसन सम्बन्धी समस्या का होना आम बात है। इसलिए श्रमिक कहते हैं कि इस उद्योग में स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या का सामना हर श्रमिक को करना ही पड़ता है।

**श्रम कल्याण योजनाओं एवं सामाजिक सुरक्षा का लाभ नहीं :** मार्बल उद्योग में कार्यरत 99.28 प्रतिशत श्रमिकों ने यह स्वीकार किया कि उन्हें मार्बल उद्यमियों द्वारा किसी भी प्रकार की श्रम कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा योजना का लाभ प्रदान नहीं किया जाता है। केवल 0.72 प्रतिशत श्रमिक यह स्वीकार करते हैं कि उन्हें मार्बल उद्यमियों द्वारा भविष्य निधि और जीवन सुरक्षा बीमा योजना का लाभ दिया जा रहा है। ये दो श्रमिक वे हैं जो बड़ी लिमिटेड मार्बल कम्पनी में काम करते हैं। राजसमन्द जिले में ऐसी बड़ी लिमिटेड मार्बल कम्पनियों की संख्या भी दो ही है जिनका मार्बल उत्पादन में बहुत अधिक योगदान है। श्रम अधिनियमों से भी ज्ञात हुआ कि जिस किसी इकाई में श्रमिकों की संख्या 10 से अधिक है उसमें श्रमिकों को भविष्य निधि और जीवन सुरक्षा बीमा योजना का लाभ दिया लाभ दिया जाना चाहिए परन्तु अधिकाँश उद्यमी अपनी इकाई में श्रमिकों की संख्या 10 से अधिक बताते ही नहीं है। दूसरा स्वयं श्रमिक भी वर्तमान आय का उसी समय उपभोग करने के लिए इस प्रकार की सुविधाओं का लाभ लेना ही नहीं चाहते हैं क्योंकि उनकी आय इतनी अधिक भी नहीं होती है कि वर्तमान उपभोग का त्याग करके आय का कुछ भाग इन सुविधाओं के लिए रखा जाये। अधिकांश श्रमिकों को श्रम अधिनियमों की जानकारी ही नहीं है जिससे कि वे इस तरह की सुविधाओं की लाभदायकता को समझ सकें, इसलिए मार्बल उद्योग में अधिकांश श्रमिक श्रम कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा योजनाओं से वंचित हैं। 1991 के अपने अध्ययन में सोडानी[8] ने यह पाया था कि सरकारी प्रयासों के बावजूद खनन क्षेत्र की दुर्गम स्थिति के कारण यह प्रशासनिक-तंत्र की नजर से बचा हुआ है। नियोजक इस प्राकृतिक सीमा का लाभ उठाते हुए श्रमिकों को विधानतया देय न्यूनतम सुविधाएँ भी प्रदान नहीं कर रहे हैं परिणाम स्वरूप श्रमिक शोषित होने के लिए विवश हैं। इतने वर्षों बाद वर्तमान अध्ययन में भी यही परिणाम प्राप्त होना इस ओर इंगित करता है कि सरकारी योजनाओं और कानून बना देने के बाद भी न तो उद्यमियों में श्रमिकों को श्रम-कल्याणकारी योजनाओं का लाभ देने के प्रति कोई रूचि पैदा हुई है न ही श्रमिकों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आई है। अतः इस दिशा में मात्र योजना बना देना या कानून बना देना इस समस्या का समाधान नहीं है। मार्बल उद्योग में इतना जोखिम भरा काम करने के बावजूद भी श्रमिकों के कल्याण के लिए किसी प्रकार की योजना का लागू न होना किसी अभिशाप से कम नहीं है।

**प्रशिक्षण का अभाव :** प्रशिक्षण न केवल ''कार्य अनुभव'' की कमी को पूरा कर सकता है बल्कि अनुभवी श्रमिकों की उत्पादन कुशलता को और बढ़ा कर लागत में कमी कर सकता है। मार्बल उद्यम, विशेषकर खानों में काम करना जोखिम भरा कार्य है। खानों में श्रमिकों के साथ दुर्घटनाएं घटित होती रहती हैं। सर्वेक्षण के दौरान 39 श्रमिकों ने कार्य के दौरान उनके साथ दुर्घटना का घटित होना बताया जिससे उनको शारीरिक तथा मानसिक क्षति पहुंची। अतः प्रशिक्षण के माध्यम से श्रमिकों को सतर्क रहकर सही तरीके से कार्य करना सिखाया जाना अत्यंत आवश्यक है किन्तु मार्बल उद्यमियों द्वारा किसी भी प्रकार के औपचारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था श्रमिकों के लिए नहीं की जाती है। इसे शतप्रतिशत श्रमिकों तथा 96.3 प्रतिशत खान मालिकों तथा शतप्रतिशत प्रसंस्करण इकाई मालिकों ने स्वीकार किया है। जबकि मात्र 3 खान मालिकों ने यह स्वीकार किया है कि उनके द्वारा तो कभी भी प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है किन्तु श्रमिकों के हित के लिए खान एवं भू-विज्ञान विभाग के खान सुरक्षा विभाग, उदयपुर द्वारा सुरक्षा योजना के अंतर्गत प्रशिक्षित कर्मचारी भेजे जाते हैं जो उद्योग में कार्यरत श्रमिकों को सुरक्षा सम्बंधी जानकारी एवं नवीन तकनीकि से उत्पादन करने पर प्रशिक्षण देते

हैं। इसके अलावा अन्य किसी भी प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था मार्बल उद्योग में नहीं की जाती है। श्रमिकों की सुरक्षा के लिए तथा मार्बल उद्योग में उत्पादन की गुणवत्ता बढाने के लिए इस दिशा में सरकार एवं मार्बल उद्यमियों दोनों के द्वारा विशेष प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

**निष्कर्ष** : राजसमन्द के मार्बल उद्योग में अन्य उपलब्ध रोजगार अवसरों की तुलना में अच्छी मजदूरी मिलने से राज्य के अन्य जिलों तथा राज्य के बाहर से भी श्रमिक रोजगार प्राप्त करने आते हैं। किन्तु अन्य असंगठित उद्योगों के सामान ही यहाँ कार्यरत श्रमिक सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। मार्बल उद्योग में लगभग सभी श्रमिक ग्रामीण क्षेत्र से ही आये हैं। इस उद्योग में श्रमिक ज्यादा पढ़े लिखे नहीं हैं। आधे से अधिक श्रमिक प्राथमिक या उच्च प्राथमिक शिक्षा वाले हैं। यहाँ वयस्क तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के श्रमिकों की अधिकता है। अधिक शारीरिक श्रम वाले एवं जोखिमपूर्ण होने के कारण श्रमिकों के रूप में यहाँ मुख्यतया पुरुषों को ही रोजगार प्राप्त है। इस उद्योग में कार्य के अनुभव को ही कुशलता का मापदंड माना जाता है। यहाँ कार्यरत कई श्रमिक वर्षों से इन्हीं उद्योगों में कार्य कर रहे हैं। अतः उद्यमियों को कुशल श्रमिकों की उपलब्धता को लेकर कोई समस्या नहीं है। यहाँ कार्य करना काफी जोखिम पूर्ण है एवं कार्य की अधिकता भी है किन्तु श्रमिकों को उसके अनुरूप प्रशिक्षण, वेतन एवं अन्य सुविधाएँ नहीं मिलती हैं। इसका मुख्य कारण श्रमिकों का अशिक्षित एवं असंगठित होना है। मार्बल उद्यमियों ने तो अपने हित के लिए मार्बल संघ बना रखा है किन्तु श्रमिकों का कोई संघ नहीं होने से उनका शोषण होता है। ज्यादातर श्रमिकों के कम पढ़े-लिखे नहीं होने से उन्हें अपने अधिकारों तथा श्रम कल्याण योजनाओं की भी जानकारी नहीं है। अतः सरकार द्वारा श्रमिकों को जागरूक तथा प्रशिक्षित किए जाने की महती आवश्यकता है। इस दिशा में सार्थक कदम उठाकर ही राजसमन्द के इस असंगठित क्षेत्र के उद्योग में रोजगारप्राप्त श्रमिकों की स्थिति को सुधारा जा सकता है।

## सन्दर्भ


1. DMG, Rajasthan (DataAccessed from http://www.mines.rajasthan.gov.in/dmgcms on 15 February, 2020 ).
1. Government of India, Report on Employment-Unemployment survey, Vol.I, Ministry of LabourAnd Employment, (2013-14) p.5.
3. Labour Bureau (GOI), *'SpecialArticle: Sixty Seven Years of Independence-A Kaleidoscopic View of LabourActivities'*, Indian Labour Journal,Vol.55, 9 (2014) p.930.
4. टांक, नीलम 'खनन उद्योग का पर्यावरण पर प्रभाव एवं प्रदूषण एक सामाजिक आर्थिक अध्ययन', अप्रकाशित शोध-प्रबंध, माणिक्यलाल वर्मा श्रमजीवी महाविद्यालय जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर(राज.), 2008
5. सती, प्रसाद विश्वाम्बर, 'शिवपुरी जिले में पत्थर खनन के सामाजिक-आर्थिक एवं पर्यावरणीय प्रभाव', जर्नल ऑफ सोशल रिसर्च, 4(1), 2015, पृ. 47-54
6. खराडी, सूरजमल, 'मार्बल खदानों में कार्यरत श्रमिकों की दशा का अध्ययन (उदयपुर जिले के ऋषभदेव क्षेत्र का सूक्ष्म अध्ययन)', अप्रकाशित शोध-प्रबंध, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.), 2003
7. वार्डिया एवं वर्गीय, 'जनजाति विकास में खनिजों की सहभागिता', राजस्थान बुलेटिन, खान एवं भू विज्ञान विभाग, 21(4), 2000
8. सोडानी, कैलाश, 'संगमरमर खदानों में श्रम अधिनियमों का श्रमिकों के संदर्भ में एक अध्ययन (द. राजस्थान)', अप्रकाशित शोध-प्रबंध, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.), 1991

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2020

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# उत्तर भारत में व्यक्तिगत भूमि दानों का आभिलेखिक अध्ययन (छठी शताब्दी ईस्वी से 12वीं शताब्दी ईस्वी तक )

❑ डॉ. शोभा मिश्रा

भारतीय संस्कृति धर्मनिष्ठ संस्कृति रही है, जिसमें धर्म-कर्म, दान-दक्षिणा आदि का अतिशय महत्व रहा है और इसमें भूमि दानों को श्रेष्ठ दानों में गणित किया गया है। मूलतः भूमि दानों को धार्मिक उद्देश्यों से ब्राह्मणों को दिया जाता था जो परती, जंगली भूमि को आबाद कर ब्राह्मणीय संस्कृति का विस्तार करने का महत्वपूर्ण कार्य करते थे। प्रस्तुत शोध पत्र में साहित्यिक स्रोतों के माध्यम से भूमि दानों की पृष्ठभूमि समझते हुये अधीतव्य काल में अभिलेखों के आधार पर व्यक्तिगत भूमि दानों की चर्चा की गई है। भूमिदानों की प्रकृति, उद्देश्य, वैधानिकता तथा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिदृश्य में उनके प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इतिहास लेखन में अभिलेख ठोस व प्रमाणिक स्रोत के रूप में प्रयुक्त होते हैं। अध्ययन का क्षेत्र उत्तरी भारत रखते हुए मुख्यतः चाहमानों, पालों, प्रतिहारों, गहड़वालों और गंग राजवंशों के समय जारी किये गए अभिलेखों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य राजकीय अनुदानों, जो कि किसी सीमा तक सामंती व्यवस्था के लिए उत्तरदायी थे, को छोड़कर समाज के अन्य वर्गों जैसे राजपरिवार के सदस्य, सामंतों, प्रशासनिक अधिकारी, धनी व श्रेष्ठ वर्ग व साधारण लोगों द्वारा दिए गए अनुदानों का अध्ययन करना है, इसमें जहाँ दान लेने व देने वाले दोनों की सामाजिक आर्थिक स्थिति का पता चलता है वहीं भू-स्वामित्व व भोग अधिकार जैसे प्रश्नों के उत्तर भी मिलते हैं। भूमि दान में दान ग्रहीताओं के अधिकारों में शनैः शनैः वृद्धि होती चली गई और एक ही भूमि पर भोक्ताओं के कई स्तर बन गए जो अंततः निचले स्तर के लोगों की दुर्दशा के भी कारण बनें। इस प्रकार भूमि दान जहाँ कुछ लोगों की जीविका व धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बने, वहीं कर वृद्धि, कृषकों, शिल्पियों की गतिशीलता में प्रतिबंध और सामंत-उपसामंतीकरण के कारक भी बने।

**सनातन** धर्म, संस्कृति और सभ्यता में दान का महत्वपूर्ण स्थान है, चाहे वह वस्तु, संपत्ति, भूमि, ज्ञान किसी भी रूप में हो। इन में भूमि दान वस्तुतः राज्य या धनिक वर्ग द्वारा ही संभव था। प्रारम्भ में भूमि की गणना संपत्ति में नहीं होती थी, विधि व्यवस्था में जैसे ही भूमि संपत्ति की श्रेणी में आयी, भूमि का हस्तांतरण, बँटवारा, पट्टे पर देना, दान लेना-देना धीरे-धीरे प्रचलन में आने लगा। प्राचीन काल में भूमि दान शुद्ध रूप से धार्मिक कृत्यों से जुड़ा था, जब यज्ञ आदि के अवसर पर पुरोहितों, ब्राह्मणों को भूमि-दान दिया जाता था। धीरे-धीरे भूमि दान का महत्व बढ़ने लगा और इसे अनंत काल तक पुण्यदायी और स्वर्ग प्राप्ति का साधन माना जाने लगा।[1] स्मृतियों और पुराणों में भूमि दान की महत्ता बढ़-चढ़कर बताई गई और कहा गया कि दान किया गया भूमि का छोटा सा टुकड़ा (गौ चर्म के बराबर) भी पापों से पूर्ण मुक्ति दिलवा सकता था। भूमि दान आयु, पुत्र,धन, स्वास्थ्य, सौभाग्य, यश और स्वर्ग प्राप्ति का साधन माना जाने लगा[2], दान ग्रहीता इसका उपभोग सूर्य चंद्रमा के अस्तित्व तक कर सकता था। भविष्य में कोई अनुदान ग्राही के अधिकारों में विघ्न ना डालें इसके लिए अनुदान पत्रों में निषेधात्मक वाक्यों का प्रयोग किया गया है। धर्म शास्त्रों में दान के अवसर और स्थान के बारे में भी विधान किया गया है, जैसे उत्तरायण के पहले दिन, सूर्य अथवा चंद्र ग्रहण के अवसर पर, शुक्ल पक्ष की पहली या बारहवीं तिथि पर, संक्रांति आदि पर दिया गया दान महत्वपूर्ण बताया गया है। यदि दान गौशाला में दिया जाए तो उसका फल सौ गुना, तीर्थों में हजार गुना और शिवलिंग के समीप दान दिया जाता है तो उसका फल अनंत काल तक पुण्यदायी माना जाता था। कुछ तीर्थ स्थल देवप्रयाग, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, काशी और गंगा, यमुना, नर्मदा जैसी पवित्र नदियों के किनारे दिए गए दान भी अनंत काल तक पुण्यदायी माने गए[3]।

**भूमि** दान के साहित्यिक साक्ष्य उत्तर वैदिक काल से मिलने लगते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है कि विश्वकर्मन भुवन ने भूमि दान दिया था[4]। कौटिल्य विहित करते हैं कि ब्राह्मण, क्षोत्रिय और राजकीय अधिकारियों को भूमि दान देना चाहिए[5]। बौद्ध और जैन साहित्य से भी भूमि दान के उदाहरण मिलते हैं[6]। जैमिनी के मीमांसा सूत्र (चौथी से तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व) में कहा गया कि सम्राट संपूर्ण भूमि का दान इसलिए नहीं कर सकता क्योंकि भूमि सब की है, काशी प्रसाद जायसवाल ने अपनी

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय सांध्य कालीन अध्ययन विभाग, शिमला (हि.प्र.)

किताब हिंदू पॉलिटी में 'सब की भूमि' का अर्थ भूमि पर प्रत्येक व्यक्ति का अलग-अलग अधिकार लगाया है[7]। मनु स्मृति में भी धार्मिक और प्रशासनिक उद्देश्यों से भूमि दान की व्यवस्था का उल्लेख है। नए ग्रामों को बसाने, वन्य क्षेत्र को साफ कर अधिक से अधिक कृषि भूमि का विस्तार करने के लिए भी भूमि दानों का विकल्प लिया जाता था। इसलिए प्रारंभ में जो पहली बार भूमि को जोतता - बोता था, वही उसका स्वामी मान लिया जाता था[8]।

**भूमि दान** का सीधा संबंध भू-स्वामित्व और उस पर भोग के अधिकार से जुड़ा है। धर्म-शास्त्रों के अनुसार दान उसी वस्तु का किया जा सकता है जिस पर अपना स्वामित्व और भोग अधिकार हो। धर्म-शास्त्रों में इस पर भी विचार किया गया है कि कौन सी वस्तुएं दान में नहीं दी जा सकतीं जैसे उधार में ली हुई वस्तु, संतान, पत्नी, संयुक्त स्वामित्व की जायदाद या संपूर्ण जायदाद दान में नहीं दी जा सकती थी[9]। अधीत कालखंड की बात करें तो भारत आए चीनी यात्री फाह्यान (चौथी श.ईस्वी) और ह्वेनसांग (छठी श.ईस्वी) मानते हैं कि राजा संपूर्ण भूमि का स्वामी होता है। नारद स्मृति पर असहाय की टीका (लगभग 750 ईस्वी ) में भूमि को 'नरेंद्र धन' कहा गया है[10]। याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका मिताक्षरा में विज्ञानेश्वर (ई.1070 - ई. 1100 ) कहते हैं कि केवल राजा को ही भूमि दान का अधिकार है क्योंकि वह भूमि का स्वामी है[11]। मिताक्षरा के अनुसार राजा भूमि दान के साथ ही भूमि पर अपने समस्त अधिकारों का त्याग कर देता था और अनुदान की हुई भूमि को किसी अन्य को हस्तांतरित करने का अधिकार भी दे देता था[12]। यही विचार और आगे बढ़ता है जब अर्थशास्त्र पर भट्ट स्वामी (12वीं शताब्दी) टीका करते हुए कहते हैं कि राजा जल और भूमि दोनों का स्वामी है,लोग अन्य किसी भी वस्तु पर अपना अधिकार प्रदर्शित कर सकते हैं किन्तु इन दोनों को छोड़कर[13]। बारहवीं शताब्दी में लिखी गई पुस्तक मानसोल्लास में राजा को प्रमुख सामंतों, मंत्रियों, रिश्तेदारों, अनुचरों, सैन्य सहायता व परामर्श देने वालों को भेंट, पुरस्कार व भूमि अनुदान में देने को कहा गया है[14]। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि प्रारंभिक अनुदान में राजा भूमि पर से सिर्फ राजस्व का अधिकार दान ग्रहीता को देता था, जिससे प्रतीत होता है कि राजा का भूमि पर सिर्फ भोग अधिकार था, बाद में राजा भूखंड के दान के समय, राजस्व लेने के अधिकार के साथ-साथ, अपना भूमि पर से अधिकार, लकड़ी, खजाने, खानें, चारागाह और उस पर स्थित प्रजा से भी अपना अधिकार छोड़ देता है। इससे लगता है कि राजा सबसे बड़ा भूस्वामी था[15]। दान ग्रहीता को उस पर खेती करने या करवाने तथा फिर से दान देने का अधिकार मिलने से एक ही भूमि पर स्वामित्व के कई स्तर बनने लगे, मिताक्षरा में भूमि पर अधिकार के चार स्तर बताए गए हैं महीपति (राजा), क्षेत्र स्वामी (भू स्वामी), कर्षक (किसान) और मजदूर।

**पूर्वी बंगाल** से सातवीं -आठवीं शताब्दी के अशरफपुर ताम्रपत्र से पता चलता है कि एक खेत जिसका उपयोग सर्वान्तर नामक व्यक्ति करता था, उस पर शिखर और अन्य किसान खेती करते थे, राजा द्वारा संघमित्र नामक बौद्ध भिक्षु को दान में दे दिया गया अर्थात दान से पहले कम से कम 3 पक्ष -राजा, सर्वांतर, शिखर आदि किसानों का उस पर अधिकार था[16]। इसी प्रकार अनेक अभिलेखों और साहित्य से पता चलता है कि स्वामित्व और भोग के अधिकार के आधार पर भूमि के एक ही टुकड़े पर राजकीय, व्यक्तिगत और सामुदायिक अधिकार हो सकता था।

**उत्तर** भारत में छठी से बारहवीं शताब्दी के मध्य शासकों ने अनेक भूमि अनुदानों को जारी किया जिनका उद्देश्य धार्मिक और प्रशासनिक दोनों ही होता था। मुद्रा की कमी के कारण भूमि अनुदान वेतन की तरह भी दिए जाते थे। दसवीं से बारहवीं शताब्दी के मध्य अनेक पुस्तकों में दान की महत्ता का वर्णन किया गया जैसे लक्ष्मीधर की कृत्य 'कल्पतरु', पाल शासक बल्लाल सेन की 'दान सागर', हिमाद्री की 'दानखंड', चंडेश्वर की 'विवाद रत्नाकर', विश्वभट्ट की 'दानसार', गोविंदनंद की 'दान क्रिया कौमुदी' और भट्ट नीलकंठ की 'दानमयूख' आदि[17]। भूमि दान की प्रकृति और उद्देश्य तथा उनके राजनीतिक प्रभाव को लेकर विद्वानों के विचार अलग-अलग हैं जैसे ओम प्रकाश का मानना है कि पूर्व मध्यकालीन समाज और अर्थव्यवस्था में भूमि अनुदान के कारण ग्रामीणीकरण, क्षेत्रीयकरण, गतिहीनता और पिछड़ेपन को बढ़ावा मिला[18]। बी.डी. चट्टोपाध्याय का मानना है कि भूमि अनुदान राज्य का बाहरी क्षेत्र में विस्तार और उसे विधिक व्यवस्था के अंतर्गत लाने का जरिया बने थे[19]। आर.एस. शर्मा का मानना है कि भूमि दान सामंती और उप सामंतीकरण की प्रक्रिया के लिए जिम्मेदार बने[20]।

**प्रस्तुत** शोध पत्र में हम उन भूमि दानों की चर्चा करेंगे जो राजकीय नहीं थे अथवा शासकों द्वारा नहीं दिए गए थे,अपितु व्यक्तिगत रूप से दिए गए थे। अध्ययन का क्षेत्र उत्तरी भारत है, गुप्त साम्राज्य के पराभव के बाद राजनीतिक रूप से छोटे-छोटे राज्यों का अभ्युदय हो गया था और सामंतीकरण की प्रक्रिया लगातार पुष्पित पल्लवित होती जा रही थी। शोधपत्र में अध्ययन के लिए मुख्यतः प्रतिहारों, पालों, गंगों, गहड़वालों के शासनकाल से प्राप्त अभिलेखों का प्रयोग किया गया है।

**इन राज्यों** से अनेक ऐसे अभिलेख प्राप्त होते हैं जिसमें शासकों द्वारा विभिन्न अवसरों पर भूमिदान दिए गए साथ ही कुछ अभिलेख ऐसे भी प्राप्त होते हैं जबकि भूमिदान समाज के अन्य वर्गों से दिए गए, जैसे- राजपरिवार के सदस्य, सामंत, प्रशासनिक अधिकारी, श्रेष्ठी व सामान्य धनी वर्ग। यद्यपि ये संख्या में कम हैं फिर भी महत्वपूर्ण हैं। शासकीय अनुदानों से पृथक, मुख्य रूप से अनुदान धार्मिक उद्देश्यों से, शासक की पूर्व अनुमति के बाद किए जाते थे तथा इनका पंजीकरण करवाना भी आवश्यक था। कभी-कभी शक्तिशाली और स्वतंत्र स्थिति को प्राप्त सामंत, अधिकारी राजकीय अनुमति के बिना भी भूमि दान करते थे जो, केंद्रीय प्रशासन की दुर्बल स्थिति को दर्शाते हैं। यदि संपूर्ण भूमि का स्वामी राजा माना जाए तो यह दान भूमि के पुनरूदान माने जा सकते हैं। आगे हम समाज समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा व्यक्तिगत रूप से दिए गए भूमि अनुदानों की चर्चा करेंगे।

**राज परिवार के सदस्यों द्वारा दिए गए भूमि दान :** साधारणतया राज परिवार के सदस्यों के निजी खर्चे के लिए राजस्व का कुछ भाग या भूमि का अनुदान शासक द्वारा दिया जाता था। प्राप्त अनुदान की मात्रा राज परिवार में सदस्य की हैसियत को भी इंगित करती होगी। रानियों की अपनी जागीरें होती थीं, उदाहरण के लिए उड़ीसा के भौमकर शासकों के अभिलेखों से ज्ञात होता है वहां छह महिला शासक हुई थीं[21]। पाली अनुदान पत्र में राजा गोविंद चंद्र के 1133 ईस्वी के अभिलेख में उल्लेख है कि राजा ने अपनी माता रन्हल देवी को दस नालुक भूमि उपहार में दी जिसे राजमाता ने ठाकुर जयपाल शर्मा के पक्ष में अनुदान कर दी थी[22] और गोविंद चंद्र की पत्नियों नएकेली देवी और गोशल देवी ने राजा की अनुमति से ग्रामों का दान दिया[23]। भेड़ाघाट अभिलेख के अनुसार रानी अन्हलदेवी ने 2 ग्रामों का राजस्व शिव मंदिर के लिए दान दिया था[24]। इसी प्रकार बरसुर अभिलेख के अनुसार रानी गंग महादेवी ने करमोबाल्क नामक ग्राम दो शिव मंदिरों के खर्च के लिए दान में दिया[25]। यहाँ हम देखते हैं कि यह दान मुख्य रूप से धार्मिक और लोक कल्याण के लिए किए गए थे।

**राजकीय** परिवार में राजकुमारों द्वारा भी दान दिए जाने के उल्लेख मिलते हैं, जैसे अनंतवर्मन के पुत्र मधुकार्वण ने गंग संवत 526 में तीन ग्रामों का एक वैश्य अग्रहार बनाकर वैश्य जाति के अप्पानायक, जो कि मंची नायक का पुत्र था, को अनुदान में दे दिया। अग्रहार वैसे तो ब्राह्मण ग्रामों को कहा जाता था पर यहां पर वैश्य के लिए अग्रहार बनाया गया है। गहढ़वाल राज्य के विजयचंद्र और जयचंद्र के कमौली अभिलेख से पता चलता है कि राजा की अनुमति से राजकुमार ने एक ग्राम का दान दिया था। गहढ़वाल गोविंदचंद्र के अभिलेखों में उल्लेख है कि राजकुमार राज्यपाल ने चमरवानि नामक ग्राम दामोदर शर्मा नामक ब्राह्मण को दान में दिया था[27]।

**सामंतों द्वारा दिए गए दान :** शासकों द्वारा सामंतों को वेतन के रूप में कई ग्रामों का अनुदान दिया जाता था। इन अनुदानों के प्रतिदान स्वरूप वे राज्य को राजस्व और सैन्य दोनों ही प्रकार की सहायता देते थे[28]। कभी-कभी अनुदान ग्राही सामंत अपनी-अपनी जागीरों में राज परिवारों की तरह व्यवहार करते थे और अनुदत्त भूमि में से भूमि दान देने लगे थे यद्यपि इसके लिए उन्हें अपने स्वामियों से पूर्व अनुमति लेनी आवश्यक होती थी। दान का उद्देश्य मुख्य रूप से धार्मिक व अपना सामर्थ्य प्रदर्शन होता था।

**उत्तर प्रदेश** के गोरखपुर से 10 वीं सदी का अभिलेख मिला है जिसमें सामंत और मंत्री कृतकीर्ति के पुत्र सचिव मदोलि का उल्लेख है जिसने एक ग्राम देवी दुर्गा को अनुदान में दिया था। यह ग्रामदान उसे गुर्जर प्रतिहारों के सामंत जयादित्य से प्राप्त हुआ था और जयादित्य को भी यह अपने स्वामी से मिला होगा। यह स्पष्ट रूप से एक ही यह भूमि के बार-बार दान का उदाहरण है[29]। परमार शासक यशोवर्मन के समय में सामंत राणक ने एक जैन मंदिर को चार अलग-अलग जगहों पर भूमि का दान दिया था, इन भूमि के टुकड़ों में से एक उसे राजकुमार कक्कपैराज और एक टुकड़ा किसी नागरिक से प्राप्त हुआ था[30], यहां भी एक ही भूमि का बार-बार दान में देना प्रमाणित होता है। सुंदरवन ताम्रपत्र (1116 ईस्वी) सामंत मम्मोदपाल का उल्लेख करता है, जिसने एक विद्यार्थी

वासुदेवशर्मन को एक ग्राम दान में दिया जो यजुर्वेद की काण्व शाखा का अध्ययन कर रहा था[31]। इसी प्रकार चालुक्यों के सामंत मेहर राज जगमल्ल (1207 ईस्वी) ने तलाझा नगर में 2 शिवलिंगों की स्थापना की, जिनकी देखभाल के लिए 2 ग्रामों में भूमि के दो खंडों का दान किया और उसमें तीन कृषकों को खेती करने के लिए भी नियुक्त कर दिया[32]।

**कभी-कभी** अधिक शक्तिशाली सामंत केंद्रीय सत्ता के दुर्बल होने पर स्वतंत्र शासक की तरह बिना अनुमति के ही भूमि दान दे दिया करते थे, जैसे 959 ईस्वी में अलवर क्षेत्र के गुर्जर मथनदेव ने किसी की अनुमति लिए बिना अपनी भूमि में से एक ग्राम एक मठ के गुरु और उनके शिष्यों को दान में दिया और साथ ही उस ग्राम में खेती करने या करवाने का अधिकार भी दे दिया (कुर्बत करयातोवा)[33]। इसी प्रकार पूर्वी काठियावाड़ के प्रतिहारों के सामंत ने 914 ईसवी में अपने स्वामी से अनुमति लिए बिना एक शिक्षक को ग्राम अनुदान में दिया और यह अधिकार भी दिया कि यदि वह चाहे तो इस संपत्ति को किसी और को भी दान में दे सकता है[34]। भोज परमार (1047 ईस्वी) के सामंत यशोराज ने बिना अनुमति लिए एक ग्राम और सौ एकड़ भूमि किसी और ग्राम में शैव देवता घंटेश्वर के लिए दान में दी थी[35]।

**सामंत** अवनिवर्मन के भूमि अनुदान पत्र में उल्लेख है कि उसने अभलुक नामक ग्राम अंतपाल धीयक की अनुमति से दिया था[36]। राजा के स्थान पर किसी अधिकारी की अनुमति से ग्राम दान करना शासक की दुर्बलता को प्रदर्शित करता है। इसमें सामंत अधिक स्वतंत्रता का उपभोग करने लगते थे और दान पत्रों के नियमों का भी उल्लंघन कर देते थे। इस प्रकार इन सामंती अनुदान के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट, प्रतिहार, परमारों के समय में दानग्रहीता पुनः भूमिदान देकर उप सामंत भी बना सकते थे। जिन मंदिरों, मठों, पुरोहितों को भूमि दान में मिलती थी वे उस पर स्वयं खेती न करके गृहस्थ, बटाईदारों, श्रमिकों द्वारा कृषि कार्य करवाते थे। उन्हें यह भी अधिकार प्राप्त होता था चाहे तो वे स्वयं उपभोग करें या दूसरों को दे दे, खेती स्वयं करें या करवाएं[37]।

**राजकीय अधिकारियों द्वारा दिए गए भूमि दान :** स्थानीय और राज्य के अधिकारी वेतन, पुरस्कार या अनुदान में प्राप्त भूमि में से कभी-कभी दान करते थे और दान करने के लिए वे भूमि खरीदते भी थे। दान का उद्देश्य धार्मिक ही होता था। गुप्तकालीन साँची अभिलेख में सेनापति आम्रकार्दव द्वारा धार्मिक उद्देश्य से भूमि दान का उल्लेख है (सांची अभिलेख)। चाहमानों के महाराज राजसिंह राज (973 ईस्वी) के सेनापति धन्धुक ने अपने स्वामी की अनुमति से शिव मंदिर के लिए खट्टकूप विषय में स्थित ग्राम दान में दिया था[38]। धन्धुक ने यह दान छह अन्य लोगों के साथ सम्मिलित रूप से दिया था जिसमें स्वयं महाराज व राज परिवार के अन्य सदस्य भी शामिल थे। बिहार और बंगाल के पाल शासकों के समय विग्रहपाल द्वितीय (1055-70 ई.) के घंटूश नामक ब्राह्मण राज्य अधिकारी ने अनुमति लेकर अपने निजी अधिकार में से कुछ हल भूमि अनुदान में दे दी थी[39]। इसे भी हम पुनर्दान का उदाहरण मान सकते हैं।

**ऐसे भी** उदाहरण मिलते हैं जब अधिकारियों ने राजा की अनुमति लिए बिना ग्राम दान में दिये, जैसे कि पाल वंश के कुमार पाल का मंत्री वैद्यरेव बहुत शक्तिशाली हो गया था, उसने राजा की अनुमति लिए बिना प्राकज्योतिषभुक्ति में 2 ग्राम दान में दिए। पहले इन ग्रामों का भोक्ता गंगाधर भट्ट था ,जिसे यह ग्राम पाल शासकों या अधिकारियों से मिले होंगे, जो कि मंत्री ने अपने अधिकार में ले कर फिर से दान में दे दिए[40]। इसी प्रकार उड़ीसा में गंगराज वज्रहस्त (1038-70 ई.) के समय पाँच जिलों के शासक पंचविषयाधिप दारपराज ने बिना राजा की अनुमति लिए अपनी कन्या के विवाह के अवसर पर पांच कर मुक्त ग्रामों का दान अपने जमाता, जो कि एक राजपुत्र था, के पक्ष में कर दिया[41]। यहाँ विवाह के अवसर पर धन-धान्य आदि के साथ भूमि दान का प्रचलन भी उच्च परिवारों में था इसकी पुष्टि इस अभिलेख से होती है।

**साधारण व्यक्तियों द्वारा दिए गए भूमि अनुदान :** कुछ अभिलेख हमें ऐसे भी मिलते हैं जबकि साधारण व्यक्तियों द्वारा धार्मिक उद्देश्यों से भूमि अनुदान दिए गए, यद्यपि यह अनुदान समाज के सक्षम वर्ग द्वारा दिये गए और संख्या में बहुत कम हैं। इसमें एक उदाहरण राजस्थान के उदयपुर से मिलता है जहां पर गीयक नाम के एक कायस्थ ने दो मंदिरों के लिए कुछ भूमि दान में दी थी, गीयक और उसके परिवार के लोग वैद्यकी और लेखन का कार्य करते थे। अभिलेख बताता है कि यह भूमि उसके परिवार के सदस्यों को उनके कार्य के बदले उनके स्वामी से मिली थी[42]। इसी प्रकार चालुक्य भीमदेव द्वितीय के शासनकाल में एक कायस्थ द्वारा जनहितार्थ सिंचाई हेतु एक कुँए और

नहर का निर्माण कराया गया और इनकी देखभाल में होने वाले व्यय के लिए उसने कुछ जमीन प्राग्वत गोत्र वाले किसी व्यक्ति को अनुदान में दी, इस अनुदान के द्वारा इस कायस्थ ने पूर्त कर्म भी कर लिया और भूमि अनुदान का भी पुण्य प्राप्त कर लिया[43]। गंग शासक वज्रहस्त (1038-70 ईस्वी) के समय में किसी धनी वर्ग ने यौतुक नामक स्थान पर एक राजपुत्र को एक कर मुक्त ग्राम दान में दिया, ऐसा संभवत शासक वर्ग को प्रसन्न करने के प्रयत्न में किया गया होगा[44]। प्रतिहार शासक वत्सराज के समय में एक दान दाता ने गुर्जरस्तरा ग्राम में,अनुदान में प्राप्त,अपनी भूमि में से छठा हिस्सा भट्ट विष्णु को दान कर दिया[45]। राजस्थान का भरतपुर राज्य, जो कभी प्रतिहार साम्राज्य के अधीन था, से प्राप्त कमन शिलालेख (लगभग 905 -6 ईस्वी) के छठे अनुभाग में उदभट्ट नामक व्यक्ति का उल्लेख है जिसने अपने अधिकार वाले ग्राम में से तीन हल भूमि ,जो कि पहले ब्राह्मणों द्वारा और जिसे बाद में एड्डुवाक नामक हालिक जोतता था, दान कर दी थी[46]। **इन** कुछ उदाहरणों को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि व्यक्तिगत दान धनी लोगों द्वारा किए जाते थे, व्यक्तिगत भूमि में से दिए जाते थे और अनुदान देने से पहले राजा की अनुमति लेनी पड़ती थी। एक बार दान की प्रक्रिया पूर्ण होने के बाद इसकी सूचना ग्राम प्रधान, ब्राह्मणों, सम्मानित नागरिकों और अधिकारियों को देना आवश्यक थी[47]।

**अनुदानों के लिए विधान** : इन सभी अनुदानों को देखकर, चाहे वह राज परिवार के सदस्यों द्वारा दिया गया हो, सामंतों, राज्य अधिकारियों अथवा धनी लोगों द्वारा दिया गया हो, पता चलता है कि दान देने और लेने के समय कुछ निश्चित विधान और नियमों का पालन किया जाता था। जब भूमि का कोई खंड या ग्राम किसी एक या अनेक लोगों को दान में दिया जाता था तो इसकी सीमाओं का वर्णन स्पष्ट रूप से किया जाता था, साथ ही जमीन की कीमत, क्षेत्रफल और प्रत्येक दान ग्रहीता के हिस्से का भी उल्लेख होता था। मनु स्मृति[48] का विधान था कि राजा को सीमांकन ऐसी वस्तुओं से करना चाहिए जिन पर मिट्टी और जंग का प्रभाव ना हो। याज्ञवल्क्य के अनुसार राजा को स्थाई दान पत्र किसी कपड़े के टुकड़े या ताम्रपत्र पर जारी करने चाहिए जिसमें सबसे ऊपर उसकी सील हो और नीचे दान ग्रहीता और स्वयं के पूर्वजों के नाम लिखे हों उसके पश्चात दान की हुई वस्तु के बारे में स्पष्ट वर्णन हो और अंत में भावी शासकों के लिए एक खंड इस आशय से लिखना चाहिए कि भविष्य में इस दान को वापस नहीं लिया जा सकता[49] व्यक्तिगत दान पत्रों में भी धर्म-शास्त्र के नियमों का पालन सभी दानदाताओं द्वारा किया जाता था। भूमरा अभिलेख[50] में स्तंभों द्वारा सीमा विभाजन का उल्लेख है। खोह अभिलेख के अनुसार ग्रामों के बीच खाई खोदी जाती थी जिससे सीमा का स्पष्ट विभाजन रहे[51]। कभी-कभी भूमि अनुदान पत्र में ग्रहीता का नाम और व्यवसाय का विवरण भी लिखा जाता था जिससे भूमि के स्वामित्व की स्थिति स्पष्ट रहे, क्योंकि अधिकतर दान धार्मिक उद्देश्यों से किये गए इसलिए जब कभी गैर धार्मिक दान भी दिये गए तो भी दान पत्र की शब्दावली वही रही, जिसमें दान की अवधि और दाता का पुण्य लाभ "सूर्य और चंद्रमा के अस्तित्व तक रहे", ऐसा वर्णित रहता था तथा भविष्य में भी कोई इस दान में विघ्न ना डालें इसलिए बहुत से श्लोक पाप से डराने के लिए लिखे गए हैं।

**राष्ट्रकूट** अभिलेखों के संदर्भ में अल्तेकर[52] का मत है कि भूमि अनुदान पत्रों का प्रारूप महासांधिविग्रहिक की निगरानी में ही बनता होगा, क्योंकि उसे दानदाता के पराक्रम और वंश वृक्षों के बारे में सही और ताजा जानकारी रहती थी, जिन्हें अनुदान पत्रों में सम्मिलित किया जाता था, वहीं राजस्व विभाग का भी योगदान रहता होगा क्योंकि दानग्रहीता के बारे में, ग्राम की सीमा, नाम-पता, करों की संख्या व मात्रा इत्यादि का लेखा-जोखा राजस्व विभाग के पास रहता होगा।

**लेखपद्धति** नामक पुस्तक 12वीं 13वीं शताब्दी में गुजरात के चालुक्यों के समय में लिखी गई थी, इसमें पहली बार अनुदान प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के कर्तव्य के बारे में भी लिखा गया है और गैर धार्मिक दान पत्रों में धार्मिक शब्दावली का प्रयोग भी नहीं किया गया है[53]। इसमें तीन प्रकार के अनुदानों का उल्लेख है और भोजपत्र पर लिखे होने के कारण इन्हें पत्तला कहा गया है। (1) राजभुर्ज पत्तला- जो राजा द्वारा दिया जाता था (2) महामात्य पत्तला- जो कि अमात्य द्वारा राणक के नाम जारी किया जाता था और राणक अपनी स्वामी भक्ति और धर्मनिष्ठता का वचन देता था, साथ ही सभी कर प्रदान करने का भी वचन देता था। (3) राणक पत्तला में अनुदानग्रहीता राजस्व वसूलने,शांति व्यवस्था बनाए रखने के साथ-साथ राणक की सेवा के लिए 100 पदाति और 20 अश्वारोहियों

को राजधानी में लाने का वचन देता है[54]। इन पत्रों में दानग्रहीता पर यह भी प्रतिबंध लगाया गया था कि वह मंदिरों और ब्राह्मणों को अनुदान में परती जमीन नहीं दे सकते[55]। अनुदान देने की यह व्यवस्था पुरानी व्यवस्था के बिलकुल विपरीत थी जब ब्राह्मणों और मंदिरों को परती भूमि दान में दी जाती थी जिससे कि अधिक से अधिक भूमि कृषि भूमि के अंतर्गत आ जाए अर्थात इस समय कृषि भूमि का अभाव था अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि बंजर भूमि को आबाद कराने में भूमि अनुदानों का महत्व कम हो रहा था। अनुदान के कारण-सामंतवादी राज्य पद्धति का विकास हो रहा था जिसमें महामात्य राणा को जमीन दान में देते थे और राणा राज पुत्रों को जागीर में दे देते थे। यह उपसामंतीकरण की प्रथा का उदाहरण प्रस्तुत करता था। राजपुत्र लोग भी कभी-कभी ग्राम में व्यापारियों या अन्य लोगों को भूमि शर्तों के साथ पट्टे पर दिया करते थे जिस पर लगान देकर किसान खेती किया करते थे[56]। इस काल में रचित ग्रंथ मानसार के 42 वें अध्याय में और इसी समय की भट्ट भुवन देव की अपराजित पृच्छा में राजाओं की नौ श्रेणियों का वर्णन प्राप्त होता है जिसमें निम्नतर श्रेणी का राजा अपने से ऊपर की श्रेणियों के राजा के अधीन होता था तथा उसे निर्धारित कर व सैन्य सहायता उपलब्ध कराता था।

**भूमि** दान की प्रकृति तब और जटिल होती चली गई जब दाता भूमि दान के साथ-साथ सामुदायिक सुविधाओं, कृषकों, शिल्पियों, खासतौर से कर दाता वर्ग सहित दान में भूमि देने लगे। अग्नि पुराण कहता है कि भूमि दान कृषकों, शिल्पियों सहित देना चाहिए और मंदिरों को भूमि दान सेवकों, संगीतकारों, नर्तकी सहित दान में देना चाहिए।

**भूमि दानों के प्रकार :** दान ग्रहीता को दानदाता से कितने प्रकार के अधिकार और उन्मुक्तियाँ मिली हुई थीं, इस आधार पर हम भूमि दान को विभिन्न वर्गों में बांट सकते हैं। जैसे कि पहले वर्ग में वे भूमि अनुदान आते थे जिन पर से दानदाता अपने राजस्व का अधिकार छोड़ देता था और ग्राम के निवासियों को यह निर्देश दिया जाता था कि वे ग्रहीता के आदेश को सुनें। यह प्रथा उत्तर भारत में 11 वीं 12 वीं शताब्दी तक खासतौर से राजस्थान, गुजरात, मध्य भारत के अभिलेखों में प्रदर्शित होती रही, उदाहरण के लिए बांसखेड़ा और कमौली अभिलेख[57]।

**दूसरे** वर्ग में वे भूमि अनुदान आते थे जिसमें दान ग्रहीता भूमि पर सभी अधिकारों का उपभोग करता था, किंतु उसे अपने स्वामी को निर्धारित कर इत्यादि देने पड़ते थे। उड़ीसा से प्राप्त ग्रामदान के अभिलेख में यह व्यवस्था की गई थी कि दान ग्रहीता स्वामी को करों का भुगतान करेगा[58]।

**तीसरी** श्रेणी में दानदाता भूमि पर अपने जुताई के अधिकार को भी त्याग देता है और अन्य लोगों को आदेश देता है कि दान ग्रहीता के कृषि कार्यों में कोई विघ्न ना डालें। (सिमरा दान पत्र)[59]।

**चौथी** श्रेणी के अनुदान में दानदाता उस ग्राम से अपने न्याय और दंड देने के अधिकार का भी त्याग कर देता था। धर्मपाल की खालिमपुर दान अभिलेख और गोविंद चंद्र चतुर्थ के अभिलेख में 'सदशापराध' शब्द का प्रयोग हुआ है[60]।

**पांचवी** श्रेणी में अनुदान श्रमिकों और सहायकों के साथ दिए जाने लगे। बल्लभ सेन के असम भूमि अनुदान पत्र में एक गांव का दान सहायकों के साथ देने का उल्लेख है, वही दूसरे अभिलेख में उल्लेख है कि ग्रामदान बुनकरों और शिल्पियों के समूह के साथ दिया गया[61]।

**छठी** श्रेणी में वे अनुदान आते हैं जबकि ग्रामों का दान उसके निवासियों सहित कर दिया जाता था ,इसका उदाहरण सातवीं शताब्दी में कांगड़ा से प्राप्त अभिलेख से होता है जबकि एक सामंत ने ग्राम उसके निवासियों सहित दान में दे दिया था[62]। दसवीं शताब्दी के चंबा अभिलेख में 'समस्त-जनपदेन' शब्द का प्रयोग हुआ है[63]।

**सातवीं** श्रेणी में वे अनुदान आते हैं जबकि दानदाता अपने विष्टि लेने का अधिकार भी छोड़ देता है। पूर्व मध्यकालीन अभिलेखों में राजस्थान, उड़ीसा, आसाम के सामंत भूमि, कृषकों और शिल्पियों सहित दान में दे देते थे, साथ में उन पर यह प्रतिबंध भी लगाया जाता था कि वे अपने खेतों को छोड़कर या ग्रामों को छोड़कर कहीं और नहीं जा सकते हैं, इस व्यवस्था के लिए 'धनजन सहित जनता समृद्धि' व 'सप्रतिवासीसमेत' इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है[64]।

**भूमि** अनुदानों की इन श्रेणियों से स्पष्ट होता है कि धीरे-धीरे दान ग्रहीता के भूमि पर अधिकारों में वृद्धि होती गई और कृषकों और शिल्पिओं, जो कि भूमि से सीधे तौर पर जुड़े थे, पर प्रतिबंध लगते चले गए।

**उपसंहार :** उपर्युक्त अध्ययन काल में हम देखते हैं कि समाज के विभिन्न वर्गों ने धार्मिक मान्यताओं से प्रेरित

होकर लोक-परलोक में अपना यश और स्थान सुरक्षित रखने के लिए भूमि दान दिए, भूमिदानों की महत्ता और बढ़ाने के लिए दान ग्राहीताओं को अनेक उन्मुक्तियाँ प्रदान की जाने लगीं। दान ग्रहीता को भूमि पर धीरे-धीरे ज्यादा से ज्यादा अधिकार मिलते चले जा रहे थे, और जहाँ भोक्ताओं के कई स्तर बनने से भूमि पर करों की मात्रा और किसानों पर प्रतिबंध बढ़ता चला जा रहा था, वहीं दान ग्रहीता की निकट उपस्थिति से स्थानीय निवासियों पर इस प्रकार के प्रतिबंध कड़ाई से लागू किए जा सकते थे। इन सभी कारणों से मध्यम वर्ग और निचले वर्ग के लोगों का सामाजिक और आर्थिक स्तर गिरता चला गया। हम देखते हैं कि इस समय वैश्यों को भी शूद्रों के स्तर पर गिना गया। वृहद स्तर पर भूमि दान की परंपरा के कारण बारहवीं शताब्दी तक उत्तर भारत सामंतीकरण की प्रक्रिया में फंसकर छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया था। छठी से बारहवीं शताब्दी ईस्वी की इस विशेष समाजार्थिक व्यवस्था में राजकीय भूमि अनुदानों के साथ-साथ व्यक्तिगत अनुदानों का भी महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है।

## संदर्भ


1. लक्ष्मीधर, 'कृत्यकल्पतरू', सम्पा.-के.वी.रंगा स्वामी आयंगर, जी. ओ. एस., बड़ोदा, 1943, दानकाण्ड, पृ. 187 (षष्ठि वर्ष सहस्त्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः)
2. IndianAntiquary, Vol- & 2, p107
   (आयुः पुत्रं धनं सौरच्यम सौभाग्यम. यशःस्वर्ग भूमिदो लभते फलम)
3. काणे, पी. वी., 'हिंदू धर्म शास्त्र', अंक 2, भाग 2, भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे, 1974, पृ. 851 - 53
4. ऐतरेय ब्राह्मण, 8-21, उद्धृत - रामशरण शर्मा, 'भारतीय सामंतवाद', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृ. 122
5. अर्थशास्त्र, भाग - 2,19.1; 5,19.3, संपादित- आर. शामशास्त्री, मैसूर, 1929
6. जातक कथा, 4.281
7. Jaiswal, K.P., *'Hindu Polity'* p. 345; R. S. Sharma op.cit. p. 136
8. मनुस्मृति, भाग 2. 246; 7. 118, संपादित- वी. एन. मांडलिक, मुंबई ,1886, अनुवाद- जी.ब्यूलर, ऑक्सफोर्ड, 1886.
9. काणे, पी. वी., पूर्वोक्त, पृ. 848-49
10. Narad Smriti, 4.93, Cited & B.N.S. Yadav, *'Society And Culture In Northern India in Twelfth Century'*, Central Book Depot, Allahabad, 1973, p. 252
11. मिताक्षरा, विज्ञानेश्वर, 1.318, चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1930
12. यादव, बी. एन. एस., पूर्वोक्त, पृ. 252
13. वही, पृ. 252
14. मानसोल्लास, 2.1006-7, उद्धृत आर. एस. शर्मा, 'भारतीय सामंतवाद', पृ. 171, पाद टिपण्णी - 207, 208.
15. वही, पृ. संख्या - 127
16. *'Memoirs of Asiatic Society of Bengal'*, 1, No. & 6, p. 90, plate - A, Line - 8-9, pre cited, Sharma, p. 138
17. Nath Vijay, *'Gift System in Ancient India :A Socio Economic Perspective'*, Munshi Ram Manohar Lal, Delhi, 1987, p. 9
18. Om Prakash, *'Early Medieval Land Grants and Study Economy'*, Excellence Publisher, Allahabad, 1988, p.1
19. Chattopadhyay, B. D., *'Making of Early Medieval India'*, Oxford University Press, Delhi, 1994
20. Sharma, R. S., *'Early Medieval Indian Economy; Study in Utilisation'*, Orient Longman, Haidarabad, 2001.
21. शर्मा, आर. एस. , भारतीय सामंतवाद, पृ. 240
22. Epi. Indica, 5-113
23. Epi. Indica, 5.116; 4.107
24. वही, 2.7
25. वही, 9.162
26. *'Madras Report Epigraphy'*, 1918-19, Pre- cited, Sharma, page - 241,footnote - 31, 32
27. Epi. Indica, 5-155
28. Altekar, A. S.; *'Rashrakuta's and Their Times'*, Poon, 1934, page No. - 245
29. Epi. Indica, 21, pp. 170 - 71 (ग्रामोराजप्रसादसम्प्राप्त)
30. वही, 11, पृ. 2 - 4
31. वही, 17, पृ. 119
32. वही, 2,पृ. 337- 40
33. वही, 3, नं. 1-16, पंक्ति - 17
34. *Indian Antiquary*, Vol. - 12, page - 195, Plate - 2, Line - 1-24
35. Epi. Indica, 14, page - 10

36. वही, 9, पृ. सं. 2-4
37. वही, 159 पंक्ति - 49 - 50; 12, 184 - 85, प्लेट - 3, पंक्ति - 1
38. वही 2 , नं. 8, श्लोक - 49
39. वही, 29, नं. 8, पंक्ति - 49-51
40. वही, 2, नं. 28, प्लेट 2'बी' पंक्ति -15
41. वही, 3, नं. 31, पंक्ति - 26-33
42. वही, 20, पृ. - 123
43. वही, 18, पृ. - 113, पंक्ति - 24-25
44. वही, 3, नं. 47, पंक्ति - 9-15
45. वही, 5, नं. 24, पंक्ति - 6-9
46. वही, नं. 45, पंक्ति - 19-20
47. ओमप्रकाश, 'प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास', विली ईस्टर्न लिमिटेड, नई दिल्ली, 1996, पृ. 61
48. मनु स्मृति, 8, 250-51
49. याज्ञवल्क्य स्मृति, उद्धृत - पी. वी.काणे, हिंदू धर्म शास्त्र, पृ.-861
50. Fleet, J. F.; *'Carpus Inscriptions Indicarum'*, p. 110, Khoh Inscription of Maharajr Hastin and Bhoomara Inscription of Sharvva Nath.
51. वही, पृ. - 93, महाराज हस्तिन का खोह ताम्रपट्ट
52. अल्तेकर, ए.एस., पूर्वोक्त, पृ. - 166
53. लेख पद्धति, संपादित - सी. डी. दलाल एवं जी. के. श्रीगोंडकर, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज, 1925, पृ. - 7
54. वही, पृ. 7
55. वही, पृ. 7, (नवतर भूमि शासने कस्यापि देवस्य विप्रस्य वा ना दातव्य), उद्धृत - आर. एस. शर्मा, भारतीय सामंतवाद, पृ. - 182, पाद टिप्पणी - 200
56. अग्नि पुराण, 211.34, 213.9, 211.72, 222.13-14, शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 197
57. Pandey, Rajbali; *'Historical and Literary Inscriptions'*, Banaras, 1962, p.146.
58. Epi. Indica, 29, p. 167
59. वही, 33, पृ. - 121य 4, पृ. 153
60. पाण्डेय, राजबलि, पूर्वोक्त, पृ. 153
61. Epi. Indica, 5, page - 181; 4
62. ओमप्रकाश, पूर्वोक्त, पृ. 43
63. Epi. Indica, 28, pp. 5-6
64. ओमप्रकाश, पूर्वोक्त, पृ. 43

# आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद के उत्थान की प्रक्रिया का ऐतिहासिक विश्लेषण

❑ चन्दन कुमार

भारत राष्ट्र की अवधारणा में एक अति महत्वपूर्ण अर्थबोध को समाहित करने वाला वैचारिक और ऐतिहासिक संप्रेषण भारतीय राष्ट्रवाद है। भारतीय राष्ट्रवाद का आधार आधुनिकता पर पुरातनता और नवीन पर मृत का संघात था। यह भारतीय राष्ट्रवाद उस पुनर्जागरण के माध्यम से आया जिसने पश्चिमी सभ्यता से तर्क, समानता और स्वतंत्रता की भावना प्राप्त करके भारत के प्राचीन गौरव को स्थापित करने का प्रयास किया है। प्राचीन भारतीय समाज के अंतर्गत राष्ट्रवाद की भावना एवं देशभक्ति के मौलिक तत्व प्रतिमान आदि किसी न किसी रूप में सदैव रहे हैं। 18वीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य ने देश में विदेशी शोषणपूर्ण नीति एवं कूटनीति अपनाकर भारत की राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्थिति को जर्जर एवं दयनीय बना दिया था। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार एवं संचार के परिणामस्वरूप भारत की बौद्धिक शक्ति का जागरण हुआ। यहीं से भारतीय राष्ट्रवाद का उदय हुआ। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दो विरोधी दृष्टिकोण सामने आते हैं– विकासवादी और प्रक्रियावादी लेकिन इन दोनों ही स्वरूपों ने राष्ट्रवाद के जन्म में सहायता प्रदान की। इसी राष्ट्रवाद के कारण जो राष्ट्रीय आंदोलन का आरंभ हुआ अपने आप में एक अनूठा आंदोलन था फलस्वरूप भारत में राजनीतिक जागृति के साथ-साथ सामाजिक तथा धार्मिक जागृति का सूत्रपात हुआ।

**मुख्य शब्दः** भारतीय राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय आन्दोलन, भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के कारण।

**विदेशी** शासन अंततः एक राष्ट्रवाद को जन्म देता है अर्थात भारतीय राष्ट्रवाद का उदय राजनीतिक परतंत्रता के समय में हुआ। भारतीय परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रवाद का अवधारणात्मक स्वरूप अवश्य ही अनिवार्य चरण के रूप में स्थापित रहा, किंतु राष्ट्रवाद के संकल्प से पूर्व सामाजिक शक्ति, विश्वास और आस्था के क्षेत्रों में उन्नयन को निर्णायक प्राथमिकता दी गई। ब्रिटिश भारत की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण तथा भारतीय समाज में उत्पन्न और विकसित सामाजिक कारकों की अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रवाद विकसित हुआ। राष्ट्रीयता के उत्थान की प्रक्रिया भारत में बहुत ही जटिल एवं बहुआयामी रही है। भारत का विशाल जनसमुदाय लगभग सभी विषयों जैसे भाषा, धर्म, राजनीति इत्यादि पर विभाजित था। राष्ट्र निर्माण की ऐतिहासिक प्रक्रिया देश और काल की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न रही है। 18वीं शताब्दी में राष्ट्रीयता शासक वर्ग की आकांक्षा और प्रयास का विषय थी। 19 वीं सदी की राष्ट्रीयता ने मध्यम वर्ग के साथ-साथ बुर्जुआ आंदोलन का स्वरूप ग्रहण किया। बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता जनमानस का आंदोलन है जिसके अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में सहभागिता का दावा करता है। अंग्रेजों के शासन काल में नवीन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था तथा नवीन प्रशासनिक प्रणाली और नई शिक्षा के विचार से नए वर्गों का उदय हुआ। इस नवीनता की विशिष्ट प्रकृति के कारण कालांतर में ब्रिटिश साम्राज्य से टकराव आरंभ हुआ। यही भारतीय राष्ट्रवाद के उत्थान की प्रक्रिया की आधारशिला ही नहीं प्रेरणा स्त्रोत भी बना।

**अध्ययन की आवश्यकता :** राष्ट्रवाद की अवधारणा और संदर्भ परिधि आधुनिक, नवविकसित और औपनिवेशिक दासता से मुक्त परंपरागत समाजों की राजनीतिक विचार एवं क्रिया व्यवस्था में रखी जा सकती है। आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद के उत्थान की प्रक्रिया का ऐतिहासिक विश्लेषण के अध्ययन का तात्पर्य है– एक ऐसी आधुनिक काल की संकल्पना जिसमें राष्ट्र के प्रति समर्पण एवं त्याग की भावना विद्यमान थी, जिसमें राष्ट्रीय हित सर्वोपरि था। वर्तमान समय में भी मानव प्रगति की दिशा में राष्ट्रवाद के महत्व को समझा जा सकता है।

**अध्ययन का उद्देश्य :** प्रस्तुत शोध पत्र के आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद के उत्थान की प्रक्रिया का ऐतिहासिक विश्लेषण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:-

1. राष्ट्रवाद का अभिप्राय क्या है?
2. भारतीय संदर्भ में राष्ट्रवाद के सैद्धांतिक पहलू क्या

❑ **पूर्व शोध अध्येता इतिहास, सी.एम.जे.यूनिवर्सिटी, जोराबाट (मेघालय)**

हैं?

3. भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में सहायक तत्वों की क्या भूमिका रही है?

**उपकल्पना :** किसी भी शोध समस्या के लिए सुझाया गया वह उत्तर है जिसकी तर्कपूर्ण वैधता की जांच की जाती है। प्रस्तुत शोध विषय की निम्नलिखित उपकल्पनाएं हैं:-

1. राष्ट्रवाद देश के प्रगति के लिए आवश्यक हैं।
2. राष्ट्रवाद की अवधारणा एवं विकास की प्रक्रिया अलग-अलग देश काल में भिन्न-भिन्न तरीकों से अभिव्यक्त होती है।
3. राष्ट्रवाद के उत्थान के अनेक तत्वों में मूल तत्व राष्ट्रीय एकता है।
4. राष्ट्र निर्माण एक सतत एवं सापेक्षिक प्रक्रिया है।

**शोध पद्धति :** आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद के उत्थान की प्रक्रिया के ऐतिहासिक विश्लेषण को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न इतिहासकारों की रचनाएं, पत्र-पत्रिकाओं में छपे लेखों तथा विद्वानजनों के लेखों को आधार बनाया गया है। प्रस्तुत शोध की प्रकृति ऐतिहासिक और व्याख्यात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। इस पद्धति में अतीत की घटनाओं, विकास क्रमों तथा विगत अनुभूतियों का वैज्ञानिक अध्ययन या अन्वेषण किया जाता है।

**साहित्यावलोकन-** आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद के उत्थान की प्रक्रिया के ऐतिहासिक विश्लेषण के संदर्भ में किए गए इस शोध के उद्देश्यों, उपकल्पना तथा शोध पद्धति का विवरण प्रस्तुत करते हुए इस विषय पर लिखे गए साहित्य का अवलोकन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है यथा-

**ए. आर. देसाई**[1] की पुस्तक 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि' में लेखक ने भारतीय राष्ट्रवाद के उदय की जटिल और बहुरंगी प्रक्रिया और उसके विभिन्न रूपों का शब्द चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। साथ ही साथ ब्रिटिश शासन के प्रभाव का तथा भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में सामाजिक शक्तियों तथा सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन की भूमिका का मूल्यांकन किया है।

**सत्या एम. राय**[2] (सं), भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद में कहते हैं कि भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद लगभग 200 वर्षों तक रहा और भारतीय जीवन एवं समाज पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। पुस्तक के लेखकों ने ब्रिटिश भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला है। पुस्तक में लेखकों ने साम्राज्यवाद के सिद्धांत, भारतीय अर्थव्यवस्था, समाज, राजनीति, शिक्षा एवं संस्कृति पर उपनिवेशवाद का प्रभाव, संविधानिक विकास, राष्ट्रवाद के उदय के प्रमुख तत्व, राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न चरणों का वर्णन किया है।

**राजेंद्र** नाथ तिवारी[3] की पुस्तक 'राष्ट्रवाद चिंतन एवं विकास' राष्ट्रवाद जैसे गूण विषय को समझने के लिए लेखक का प्रयास सराहनीय है। पुस्तक में राष्ट्रवाद शब्द की उत्पत्ति और वास्तविक अर्थ को वैदिक काल से आधुनिक काल के बीच एक कड़ी के रूप में दर्शाया गया है। दस अध्यायों में वर्णित पुस्तक निःसंदेह रूप से राष्ट्रवाद को लेकर भारतीय बोध को सुदृढ़ और मजबूत आधार देती है।

**शेखर** बंधोपाध्याय[4] की पुस्तक, 'प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद', ब्रिटिश हुकूमत, भारतीय शासकों और उसकी नीतियों के बजाय भारत के लोगों, उनकी आकांक्षाओं, उनके प्रतिरोध और संघर्ष को चित्रित करती है। पुस्तक का प्रारंभ 18 वीं सदी में भारत के राजनीतिक रूपांतरण की एक विवेचना से होता है। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य, भारतीय राष्ट्रवाद का उदय और विस्तार, गांधी युग तथा राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न कारकों को इस पुस्तक में जगह दी गई है।

**राम लखन** शुक्ला[5] की पुस्तक 'आधुनिक भारत का इतिहास', का प्रारंभ आधुनिक भारत में इतिहास लेखन की समग्रता से किया गया है। 18 वीं शताब्दी में भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति तथा ब्रिटिश शासन के राजनैतिक, प्रशासनिक और आर्थिक प्रभावों का वर्णन सम्मिलित है। राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय आंदोलन में गांधी जी के नेतृत्व, संविधानिक विकास (1885-1935), देश विभाजन तथा स्वतंत्रता प्राप्ति का लेखक ने विस्तृत रेखांकन किया है।

**भारतीय राष्ट्रवाद- प्रमुख उपागम :** राष्ट्रवाद अपने वर्तमान स्वरूप में आधुनिक यूरोप की देन है। इसके तार औद्योगिक क्रांति से किसी न किसी रूप में जुड़े हैं। हम जानते हैं कि औद्योगिक क्रांति की प्रक्रिया में समाज में व्याप्त परंपरागत पहचान और अस्मिता बिखर गयी। फलतः एक नयी और व्यापक अस्मिता और पहचान की जरूरत लगने लगी। धर्म और धार्मिक संस्थाओं की भूमिका हाशिए पर जाने से भी राष्ट्र और राष्ट्रवाद की

महत्ता बढ़ गयी। इस प्रक्रिया में अपने लोगों के साथ जुड़ाव और दूसरे लोगों के साथ अलगाव की प्रक्रिया साथ-साथ चलने लगी। इस क्रम में राष्ट्रवाद का संबंध एक केन्द्रीय और सार्वभौमिक राष्ट्र-राज्य की कल्पना से जुड़ गया।[6] यूरोप में राष्ट्रवाद की भूमिका वहाँ स्वतंत्र राज्यों के उदय में रही। लेकिन दूसरी तरफ उसका तार उपनिवेशवाद और फासीवाद से जुड़ गया। लेकिन इतना तो मानना ही होगा कि इसका प्रभाव उपनिवेशवाद-विरोधी आन्दोलन के रूप में भी उभरा। अंततः इसी क्रम में एशिया-अफ्रीका के लोग स्वतंत्र हुए।[7]

**भारतीय** राष्ट्रवाद अंग्रेजी शासन के विरुद्ध स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान विकसित हुआ, जिसे देखने के अनेक दृष्टिकोण हैं। भारतीय राष्ट्रवाद पर इतिहास लेखन की कई परंपराएं हैं जिसमें मुख्य रूप से कैंब्रिज स्कूल, राष्ट्रवादी स्कूल, मार्क्सवादी स्कूल, और सबआल्टर्न स्कूल प्रमुख हैं। कैंब्रिज स्कूल के लोग यह मानते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद सभी लोगों की बजाय एक छोटे से अभिजन वर्ग की लड़ाई है। इसके अलावा, राष्ट्रवाद यदि विकसित भी हुआ है तो वह ब्रिटिश शासन की ही देन है क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने ही भारतीय महाद्वीप को एकता प्रदान की। भारतीय राष्ट्रवादी इसकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि भारत में राष्ट्रवाद का विकास ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लोगों के संघर्षों का परिणाम है। वहीं, मार्क्सवादी इसकी आलोचना करते हुए पूरे भारतीय आंदोलन को बुर्जुआ वर्ग का आंदोलन मानते हैं जो वे स्वयं अपने हितों की रक्षा के लिए कर रहे हैं न कि आम लोगों के लिए।[8] इन तीनों इतिहासलेखन से अलग, सबआल्टर्न समूह यह मानता है कि उपरोक्त तीनों दृष्टिकोण केवल अभिजन वर्गों के योगदान को ही मानते हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि समाज के सीमांत लोगों की भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में एक अहम भूमिका रही है, जो दूसरों से स्वायत्त एवं स्वतंत्र अस्तित्व रखती है। रणजीत गुहा, जो सबआल्टर्न स्कूल से संबंधित हैं, मानते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद पर इतिहास लेखन हमेशा से अभिजनवादी प्रवृति से प्रभावित रहा है - चाहे वह कैंब्रिज स्कूल हो या राष्ट्रवादी - दोनों का जन्म विचारधारा के रूप में भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान हुआ है।[9]

**भारतीय राष्ट्रवाद के स्वरूप व उत्थान की प्रक्रिया :** 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से औपनिवेशिक नीतियों और भारत के आर्थिक शोषण के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना का विकास प्रारंभ हो गया। मुख्य रूप से ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीतियों की चुनौती के प्रत्युत्तर में भारतीयों ने एक राष्ट्र के रूप में सोचना प्रारंभ किया। निःसंदेह, भारत विविधताओं का देश रहा है उसके विस्तृत आकार और उदार विचारधारा के अंतर्गत विभिन्न धर्म, भाषाएं, रीति-रिवाज आदि पनपते रहे हैं, परंतु फिर भी इन विविधताओं के पीछे हम एकता पाते हैं। भारतीय राष्ट्रवाद अर्वाचीन तथ्य है। ब्रिटिश शासन और विश्व शक्तियों के कारण तथा भारतीय समाज में उत्पन्न और विकसित अनेक भावना एवं वस्तुनिष्ठ कारकों की क्रिया प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ब्रिटिश काल में भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।[10]

**राष्ट्रवाद** का अर्थ होता है कुछ लोगों का समूह जो एक निश्चित भौगोलिक सीमाओं में निवास करते हों, जिनकी एक भाषा, एक रीति-रिवाज तथा एक विचारधारा हो अर्थात् राष्ट्रों के रूप में जन समुदायों का एकीकरण दीर्घकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया की परिणति है।[11] राष्ट्रवाद की अवधारणा किसी राष्ट्र के सदस्यों में पाई जाने वाली सामुदायिक भावना है जो उनका संगठन मजबूत करती है। अतः हम कह सकते हैं कि राष्ट्र की राजनीतिक अभिव्यक्ति का आधुनिक और अंतिम लक्ष्य राष्ट्रवाद है। सैद्धांतिक दृष्टि से राष्ट्रवाद मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक विचार हैं। राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए एकता का आधार प्राप्त होना आवश्यक है। भाषा, जाति, धर्म, संस्कृति, भौगोलिक एकता तथा आर्थिक हित आदि ऐसे कई तत्व हैं, जिसकी सहायता से राष्ट्र का विचार उत्पन्न होता है और अंत में राष्ट्र की भावना उत्पन्न होती है। एक बार इस भावना को उत्पन्न होने के बाद फिर यह निरंतर बलवती होती जाती है और वह राष्ट्र स्वतंत्रता प्राप्त करता है और उसे बनाए रख सकता है।

**भारत में** विविधता के अनेक कारण रहे हैं फिर भी धार्मिक एवं ऐतिहासिक कारणों से राष्ट्रीयता की भावना प्रारम्भ से ही बनती रही है। टॉयनबी के अनुसार, ''राष्ट्रवाद एक शक्ति है जो समाज या जाति को राज्य के अंतर्गत एक निश्चित तौर में निरंकुश शक्तियों के विरुद्ध अपने अधिकारों की रक्षा के लिए एक साथ रहने को बाध्य करती है।''[12] मूलतः राष्ट्रवाद के प्रकटीकरण में व्यक्ति के भावनात्मक प्रेम की दो अनुभूतियों का संयोजन होता है प्रथम व्यक्ति की मातृभूमि पर आधारित देशभक्ति, द्वितीय व्यक्ति का किसी राजनीतिक इकाई से व्यक्तिगत

जुड़ाव, मानव की इन दोनों अनुभूतियों का संयोजन ही राष्ट्रवाद है। जॉन स्टूअर्ट मिल ने लिखा है, ''मानव जाति का कोई हिस्सा एक राष्ट्र की स्थापना की बात कह सकता है यदि उसके लोग उस समान अनुभूति के आधार पर आपस में जुड़ते हैं जिनका उनमें और दूसरों में अस्तित्व ही नहीं होता है।''[13]

**जब कोई** जनसमूह केवल भाषा, धर्म, इतिहास, जाति आदि तत्वों के फलस्वरुप भावनात्मक एकता में बद्ध रहता है और अपने को उसी प्रकार के जनसमूह से भिन्न समझता है उसे राष्ट्रवाद की संज्ञा देते हैं। लेकिन यदि उस जनसमूह में राजनीतिक रूप से संगठन की भावना आ जाती है या वह राजनीतिक रूप से संगठित हो जाता है तब उसे राष्ट्र कहते हैं। राष्ट्रवाद राष्ट्र की प्रारंभिक स्थिति है राष्ट्रवाद मूल रूप से आधुनिक काल की संकल्पना है जिसमें व्यक्ति स्वयं को उस से जोड़कर देखता है, जो उसके अपने राष्ट्र के प्रति समर्पण एवं त्याग के रूप में परिलक्षित होता है।

**अंग्रेजों के** आगमन से पूर्व भारत की अर्थव्यवस्था ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर आधारित थी। उन्होंने संपूर्ण आर्थिक संसाधनों का प्रयोग अपने आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए किया। ग्रामीण आर्थिक जीवन की मूल व्यवस्था का श्रम विभाजन निम्न कोटि का था यह कृषि और उद्योग के अपर्याप्त विभाजन पर आधारित था।[14] विभिन्न जातियों में बंटे होने के कारण गांव में व्यक्तिगत पहल शक्ति दुस्साहस की भावना और नए रास्तों की खोज करने की आकांक्षा को कोई प्रश्रय नहीं मिल सका। राष्ट्रवाद के लिए सारे समुदाय को एकता में पिरोये जाना आवश्यक है। राष्ट्रवाद तत्व वर्गों की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को दर्शाते हैं, जिसमें सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पहलू भी होते हैं। भारत में विभिन्न समुदाय और संस्कृतियों के मिलन से ही भारत एक राष्ट्र के रूप में पहचान पाया है।

**उन्नीसवीं सदी** के पूर्वार्ध में अंग्रेजों ने अंग्रेजी शिक्षा का प्रोत्साहन स्वार्थवश दिया। शिक्षा नीति के निर्माण में भारत के अंग्रेजी शासकों ने इस सिद्धांत का अक्षरतः पालन किया कि, ''यदि किसी देश को दास रखना है तो उसके साहित्य और संस्कृति का विनाश कर देना चाहिए।''[15] आधुनिक शिक्षा के कारण सामाजिक गतिशीलता, वैज्ञानिक वैचारिक एवं औद्योगिक आंदोलन का सूत्रपात हुआ। अंग्रेजों को ऐसा प्रतीत होता था कि भारत पूर्णतः परिवर्तित राष्ट्र बन जाएगा। धर्म के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन होगा और हिंदूवाद का स्थान यूरोपीय ज्ञान को प्राप्त होगा। जनमत पर नियंत्रण केवल एक धार्मिक वर्ग के पास नहीं होगा। ज्ञान और शक्ति जनता के हाथ में होगी जो धार्मिक और सामाजिक सुधारों में सहयोग देंगे।[16] आधुनिक शिक्षा का प्रसार भारतियों द्वारा भी किया गया राजा राममोहन राय भारत में आधुनिक शिक्षा के अग्रणी थे उनके अनुसार पाश्चात्य साहित्य, विज्ञान एवं दर्शन द्वारा भारतियों का नैतिक सुधार हो सकता है और भारत खोए हुए गौरव को पुनः प्राप्त करेगा।[17] जहां एक तरफ अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली ने प्राचीन परंपराओं और स्थापित विश्वासों को कमजोर किया और एक नई सभ्यता और संस्कृति का मार्ग प्रशस्त किया[18] वहीं दूसरी तरफ से अंग्रेजी शिक्षा ने राष्ट्रवाद के उत्थान में प्रगतिशील भूमिका का निर्वहन किया। अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा भारतीय एक भाषा संपर्क के रूप में राष्ट्रवादी विचारों का आदान प्रदान कर सके।

**कंपनी ने** अंग्रेजी राज्य की स्थापना, प्रसार एवं नियंत्रण रखने के लिए तथा भारतीय व्यापार पर एकाधिकार कायम रखने के लिए परिवहन में सुधार आवश्यक समझा इसी उद्देश्य से रेलों का विकास, डाक तार की व्यवस्था तथा सड़कों का निर्माण किया गया।[19] लेकिन आवागमन के ये नवीन साधन ही भारतीय जनता को सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर एक सूत्र में बांधने में सहायक सिद्ध हुए। राष्ट्रवादी विचारों का आदान-प्रदान हुआ जिससे राष्ट्रीय आंदोलन को शक्ति प्राप्त हुई निःसंदेह यातायात के नवीन और आधुनिक साधनों का भारतीय राष्ट्रवाद के उदय में सशक्त योगदान रहा है।

**राष्ट्रीय** जीवन में जनजीवन को प्रभावित करने वाली शक्ति के रूप में समाचार पत्र और साहित्य का योगदान अद्वितीय है। समाचार पत्रों ने राष्ट्रवादी विचारों का प्रचार-प्रसार कर भारतीय जनता को राजनैतिक रूप से शिक्षित किया जिससे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का राजनीतिक स्वरूप उभरकर सामने आया। ए.आर. देसाई लिखते हैं, ''सत्तरहवीं, अठारहवी और उन्नीसवीं शताब्दियों में समन्वित होने के लिए, सामंती अभिजात्य द्वारा परिपोषित सामंती अनैक्य के विरुद्ध संघर्ष के लिए, राष्ट्रीय राज्य, समाज और संस्कृति की स्थापना के लिए यूरोप के देशों ने समाचार पत्रों के दुर्जेय अस्त्र का उपयोग किया।[20] भारत की राजनीतिक जीवन पर गहरी छाप छोड़ने वाले अखबारों और पत्रिकाओं में प्रमुख थे- संवाद कौमुदी,

ब्रह्मानीकल, मिरातुल अखबार, समाचार चंद्रिका, प्रभाकर पत्र, मुंबई समाचार, अमृत बाजार पत्रिका आदि।[21]

**भारतीय** राष्ट्रवाद के उत्थान में अनेक कारकों के साथ-साथ सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलन ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सामाजिक और धार्मिक नवजागरण ने भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया यह भारत की एक राष्ट्रीय जागृति थी जिसने पश्चिमी सभ्यता से तर्क, समानता और स्वतंत्रता की भावना प्राप्त करके भारत के प्राचीन गौरव को यथावत स्थापित करने का प्रयत्न किया तथा प्राचीन भारतीय सभ्यता के दोषों को दूर कर एक नवीन राष्ट्रीय आधार प्रदान किया।[22] भारत में फैली बुराइयों जैसी बाल विवाह, दहेज प्रथा तथा छुआछूत जैसे जटिल और ज्वलंत समस्याओं के समाधान के लिए ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन तथा थियोसोफिकल सोसायटी ने सराहनीय कार्य किए जिससे समाज में जनजागृति पैदा हुई।[23] अंततः भारतीय समाज में आत्म बल एवं विश्वास पुनः स्थापित हुआ और राष्ट्रीयता की भावना को जागृति मिली।

**जिस समय** भारतीय राष्ट्रवाद उत्थान की प्रक्रिया से गुजर रहा था उसी समय अंग्रेजों ने ब्रिटेन के कारखानों में बने माल की बिक्री के लिए भारत को एक उपयोगी मंडी बनाने के लिए तथा ब्रिटेन के कारखाना के लिए भारत से सस्ता कच्चा माल प्राप्त करने के उद्देश्य से भारत के प्राचीन हस्तशिल्प और उद्योगों को नष्ट कर दिया।[24] ऐसी स्थिति में राष्ट्रवादियों द्वारा आर्थिक परिवर्तन के माध्यम से उत्पन्न सामाजिक वर्ग ने भी राष्ट्रवाद को प्रेरित किया। ब्रिटिश साम्राज्य की एकीकृत प्रशासन व्यवस्था भी कालांतर में राष्ट्रवाद के उदय का कारण बनी। अंग्रेजों की एकीकृत प्रशासनिक व्यवस्था से, भारत में भौगोलिक तथा सांस्कृतिक एकता (जो करीब करीब पहले भी थी) के साथ राजनैतिक एकता स्थापित हुई, जिसने भारतीयों को भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर एक सूत्र में बांधा, जिससे राष्ट्रीय चेतना विकसित हुई।

**सामाजिक** और धार्मिक संस्थाओं की ही तरह 19वीं शताब्दी में कुछ राजनीतिक संगठनों ने भी भारत में राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ऐसी संस्थाओं में लैंडहोल्डर्स सोसायटी, ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन, मद्रास नेटिव एसोसिएशन, बम्बई एसोसिएशन इत्यादि प्रमुख हैं।[25] राष्ट्रवादी गतिविधियों की सक्रियता के कारण राष्ट्रीय आंदोलन लगातार मजबूत होते जा रहा था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद भारत में राजनीतिक जागृति का नया अध्याय आरंभ हुआ। कांग्रेस के मंच से देश के सभी प्रतिभाशाली बुद्धिजीवियों ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई तथा राष्ट्रवाद को एक नई दिशा दी।[26] अंग्रेजों की प्रजातिगत विभेद की नीति से भारतीय जनमानस प्रभावित हुआ। फलतः उनमें राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई और वे ब्रिटिश साम्राज्य को धृणा के दृष्टि से देख लगे। भारतीय राष्ट्रीयता के उत्थान और विकास में लीटन और रिपन की प्रतिक्रियावादी नीतियां भी कम उत्तरदाई नहीं हैं। लिटन के साम्राज्य हित कार्यों के कारण भारतीय चेतना की उदासीनता दूर हुई, जिससे राष्ट्रवाद पनपने में सहायक हुआ वहीं दूसरी तरफ से रिपन के काल में इल्बर्ट बिल विवाद से भारतीयों में राष्ट्रीय आंदोलन को तीव्र करने की प्रेरणा मिली।[27]

**निष्कर्ष :** आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद के उत्थान की अवधारणा आधुनिक, नवविकसित और उपनिवेश की दासता से मुक्त परंपरागत समाजों की राजनीतिक एवं क्रिया व्यवस्था में रखी जा सकती है। राष्ट्रवाद ने आधुनिक मानव समुदाय के आंतरिक संबंधों, विचारों, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रघटनाओं और सर्वांगीण विकास के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है। भारत के संदर्भ में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जिन आंदोलनों का सहारा लिया गया, उसका ऐतिहासिक महत्व यह है कि उन्होंने सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं में जो परिवर्तन किया है, उसकी आंतरिक सूत्रबधता के कारण राष्ट्रवाद का उत्थान होता रहा। ब्रिटिश शासन के विकासशील स्वरूप ने यदि राष्ट्रवाद के जन्म के लिए अप्रत्यक्ष रूप से योगदान किया तो उसके प्रतिक्रियावादी स्वरूप ने इस प्रक्रिया को तेज किया। भारतीय राष्ट्रवाद की निर्माण-प्रक्रिया में विभिन्न उपराष्ट्रीय आंदोलन एवं प्रतिरोधात्मक संघर्ष भी रहे हैं। क्षेत्रीय अवविकास उत्पाद साधनों एवं संसाधनों के असमान वितरण एवं राज्यों द्वारा अधिकतम स्वायत्तता की माँगों के संदर्भ में विभिन्न आंतरिक संघर्ष देखे जा सकते हैं। औपनिवेशिक बंधनों में विकसित राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीयता की भावना स्वतंत्रता के पश्चात् वास्तविक धरातल पर एक सुदृढ़ केन्द्र के कारण जीवित है। राष्ट्रवाद की जिस विचारधारा का प्रादुर्भाव साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रतिरोध में हुआ था, वह आंतरिक शक्तियों में एकादम्ता स्थापित करने में विफल हो रही है।

## संदर्भ


1. देसाई ए.आर., 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि', ट्रिनिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2014
2. सत्या एम राय (सं.) 'भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2013
3. तिवारी राजेन्द्र नाथ, 'राष्ट्रवाद चिन्तन एवं विकास', समदर्शी प्रकाशन, हरियाणा, 2019
4. बंधोपाध्याय शेखर, 'प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद', ओरियंट ब्लेकस्वान, नई दिल्ली, 2016
5. शुक्ला रामलखन (सं.), 'आधुनिक भारत का इतिहास', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2008
6. प्रधान, रामचंद्र, 'राज से स्वराज (भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद का इतिहास)', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 48.
7. वही
8. सरकार, सुमित, 'समाज इतिहास लेखन की चुनौती', ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, 2001, पृ.105
9. Guha, Ranjeet (Ed.) *'Sabaltern Studies'*, Oxford University Press, New Delhi, 1988, p. 403.
10. देसाई, ए. आर., पूर्वोक्त, पृ. 4
11. सिंह, ए.पी. (सं), 'भारत में राष्ट्रवाद', ओरियंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2014, पृ. 5
12. Toynbee, A, *'Nationality in History and Politics'*, Third Edition, London, 1949, p.12
13. Hubbson, J, *'Imperialism'*, Ganrab Publications, Delhi, 1979, p. 3
14. राय, सत्या एम., पूर्वोक्त, पृ. 110
15. शुक्ला, आर. पूर्वोक्त, पृ. 294
16. लुणिया, बी.एन., 'आधुनिक भारत का इतिहास-जनजीवन और संस्कृति', कमल प्रकाशन, इंदौर, 2005, पृ. 572
17. भट्ट, जी., 'भारतीय नवजागरण प्रणेता तथा आंदोलन', साहित्य सदन देहरादून, 1968, पृ. 211
18. श्याम, सीताराम झा, 'भारतीय स्वतंत्र संग्राम की रूपरेखा', बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2000, पृ. 6-7
19. Kumar, D. (Ed.) *'The Cambridge Economic History in Inida'*, Dant 2, Cambridge University Press, Cambridge, p. 736
20. देसाई, ए. आर., पूर्वोक्त, पृ. 177
21. राय, सत्या एम.(सं), पूर्वोक्त, पृ. 222
22. चंद्र, विपिन, 'आधुनिक भारत का इतिहास', ओरियंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2012, पृ. 115
23. सिंह अयोध्या, 'भारत का मुक्ति संग्राम' ग्रंथ शिल्पी दिल्ली 2012 पृष्ठ 41-42
24. पाण्डेय, डी. 'आधुनिक भारत का इतिहास', मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 2015, पृ. 67
25. सरकार, एस., 'आधुनिक भारत (1885-1947)', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ. 120-121
26. बंधोपाध्याय, एस., पूर्वोक्त, पृ. 214
27. चंद्र, विपिन, 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष', हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2010, पृ. 47

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2020

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# सांख्यदर्शन सम्मत कार्यकारणवाद : एक समीक्षात्मक विवेचन

❑ मोहन सिंह भदौरिया

**कूट शब्द :** सांख्यदर्शन, कार्यकारणवाद, सृष्टि, असत्कार्यवाद, सत्कार्यवाद।

दर्शनशास्त्र में 'कार्यकारणवाद' की समस्या के अन्तर्गत सृष्टि के उद्भव सम्बन्धी प्रश्नों पर विमर्श किया जाता है। सृष्टिशास्त्र दार्शनिक जिज्ञासा का महत्त्वपूर्ण पहलू है, इसलिये दार्शनिक चिन्तन में इसका बड़ा महत्त्व है। प्रस्तुत शोध आलेख ''सांख्य दर्शन सम्मत कार्यकारणवाद:एक समीक्षात्मक विवेचन'' में सांख्यदर्शन के परिप्रेक्ष्य में 'कार्यकारणवाद' का विमर्श किया गया है। इस शोध आलेख में तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है। शोध आलेख का उद्देश्य 'असत्कार्यवाद' या 'आरम्भवाद' के स्थान पर सांख्य सम्मत 'सत्कार्यवाद' की स्थापना करना है। आधुनिक विज्ञान जड़ शक्ति से सृष्टि की उत्पत्ति को स्वीकार करने के साथ ही विकासवाद (परिणामवाद) के रूप में, सांख्य दर्शन के समान ही सत्कार्यवाद को भी स्वीकार करता है। अतएव वर्तमान वैज्ञानिक संदर्भ में, सांख्य दर्शन के 'कारणता-सिद्धान्त'की चर्चा प्रासंगिक है।

**कोई भी** दर्शन अथवा विज्ञान 'कार्यकारणवाद' को स्वीकार किये बिना प्रगति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। प्राकृतिक घटनाओं एवं लौकिक व्यवहार में भी बौद्धिक आधार पर 'कारणता' का सिद्धान्त दृष्टिगोचर होता है। कोई भी प्राकृतिक घटना बिना कारण के नहीं होती। 'कार्यकारणवाद' प्रकृति का अबाध्य नियम है। दर्शनशास्त्र में 'कार्यकारणवाद' का सिद्धान्त मुख्यतः सृष्टि की उत्पत्ति से सम्बन्धित है। सृष्टि की उत्पत्ति किस कारण से होती है ? वह कारण एक है अथवा अनेक ? उसका स्वरूप क्या है ? वह प्रधान कारण जड़ है अथवा चेतन ? क्या कारण एवं कार्य (उत्पाद या प्रभाव) एक दूसरे से पृथक् हैं ? क्या कारण से पृथक् कार्य एक नवीन सृष्टि है अथवा कार्य पहले से ही कारण में विद्यमान है ? क्या कार्य, कारण का अवस्था परिवर्तन मात्र है ? ऐसे अनेक प्रश्न 'कार्यकारणवाद' की समस्या में विद्यमान रहते हैं। प्रत्येक दार्शनिक सम्प्रदाय अपने तत्त्वमीमांसीय स्वरूप के आधार पर 'कार्यकारणवाद' की व्याख्या करता है। इसी क्रम में सर्वप्रथम भारतीय दर्शन में प्रचलित 'कार्यकारणवादी' सिद्धान्तों का समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। तदुपरान्त सांख्य दर्शन सम्मत 'सत्कार्यवाद' की स्थापना की जायेगी।

**भारतीय दर्शन में कार्यकारणवाद :–** भारतीय दर्शन में 'कार्यकारणवाद' के दो मुख्य सिद्धान्त विद्यमान हैं। पहला 'सत्कार्यवादी' है एवं दूसरा 'असत्कार्यवादी'। इनमें भिन्नता इस बिन्दु पर है कि उत्पत्ति के पूर्व कार्य अपने कारण में विद्यमान है अथवा नहीं। सत्कार्यवादी उत्पत्ति के पूर्व कारण में कार्य की सत्ता स्वीकार करते हैं, जबकि असत्कार्यवादी उत्पत्ति के पूर्व कार्य को असत् मानते हैं। उनके अनुसार कार्य एक नवीन सृष्टि है, जो पहले से ही अपने कारण में विद्यमान नहीं रहता है। कार्य उत्पन्न होने से ही अस्तित्त्व में आता है, इसलिये असत्कार्यवाद को 'आरम्भवाद' भी कहा जाता है। आरम्भवाद के अनुसार उत्पत्ति के पहले यदि कार्य विद्यमान है, तो वह अस्तित्त्वमान होने से पहले से ही 'उत्पन्न' है, इसलिये उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। फिर से उसकी उत्पत्ति पुनरुत्पत्ति है, उत्पत्ति नहीं, जो कि व्यर्थ तथा अनावश्यक है। निदानतः कार्य का अस्तित्त्व उसके उत्पन्न होने से ही आरम्भ होता है। कार्य एक नवीन सृष्टि है, जो अपने कारण में पूर्व से विद्यमान नहीं होता है। यदि घड़ा मिट्टी में तथा दही दूध में पहले से ही विद्यमान है, तो कुम्हार को मिट्टी से घड़ा बनाने के लिये मेहनत करने की क्या आवश्यकता है? यदि कारण में कार्य पहले से ही विद्यमान होता, तो दूध एवं दही में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता और दूध का स्वाद भी दही जैसा ही होता।[1]

**भारतीय** दर्शन के कुछ सम्प्रदाय 'आरम्भवाद' या 'असत्कार्यवाद' को मानते हैं एवं कुछ 'सत्कार्यवाद' को मानते हैं। हीनयानी बौद्ध दर्शन, वैशेषिक दर्शन, न्याय दर्शन तथा मीमांसा दर्शन के कुछ सम्प्रदाय 'असत्कार्यवाद'

❑ **शोध अध्येता, भारतीय दर्शन विभाग, सनातन धर्म एवं भारतीय ज्ञान अध्ययनशाला, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन (म.प्र.)**

या 'आरम्भवाद' को मानते हैं। कार्यकारणवाद के रूप में असत्कार्यवाद को मानने के उपरान्त भी कारण के भेद से इनमें परस्पर भिन्नता है। हीनयानी बौद्ध मत 'अनित्यपरमाणुकारणवाद' या 'क्षणभंगवाद' को स्वीकार करता है तथा वैशेषिक, नैयायिक और कुछ मीमांसक 'नित्यपरमाणुकारणवाद' को स्वीकार करते हैं।

**सत्कार्यवाद,** असत्कार्यवादके ठीक विपरीत है। इसके अनुसार कार्य उत्पत्ति के पहले भी अपने कारण में विद्यमान रहता है। कार्य उत्पन्न होने के पहले भी 'सत्' है, इसे मानने के कारण इस सिद्धान्त का नाम 'सत्कार्यवाद' है। कारण, कार्य की बीजावस्था है एवं कार्य में भी कारण स्वभावतः विद्यमान रहता हैं। कार्य कोई नवीन सृष्टि नहीं, बल्कि कारण का अवस्था परिवर्तन मात्र है। उत्पन्न होने का अर्थ बिल्कुल 'नवीन उत्पत्ति' नहीं है एवं विनाश का अर्थ 'सर्वथा विनाश' नहीं है। उत्पत्ति का अर्थ है, कारण में बीज रूप से विद्यमान रहने वाले कार्य का व्यक्त रूप में दिखाई देना तथा विनाश का अर्थ है, उस व्यक्त कार्य का पुनः कारण में विलीन हो जाना। सांख्य दर्शन, 'उत्पत्ति' का अर्थ 'सर्ग' के रूप में प्रकट होना तथा विनाश का अर्थ 'तिरोभाव' या 'लयावस्था' के रूप में स्वीकार करता है। कारण एवं कार्य एक ही वस्तु के दो रूप हैं, कारणावस्था अव्यक्त रूप है तथा कार्यावस्था व्यक्त रूप है।

**इस स्थल** पर सत्कार्यवादियों में भी भेद उत्पन्न हो जाता हैजो कारण से कार्य के परिवर्तन को वास्तविक या तात्त्विक मानते हैं, उन्हें 'परिणामवादी' कहा जाता है एवं जो इस परिवर्तन को अवास्तविक या अतात्त्विक (आभासिक) मानते हैं, उन्हें 'विवर्तवादी' कहा जाता है। सांख्य-योग और रामानुज वेदान्त परिणामवादी हैं। लेकिन, जहाँ सांख्य-योग 'प्रकृति-परिणामवाद' को स्वीकार करता है, वहीं रामानुज वेदान्त 'ब्रह्मपरिणामवाद' को मानता है। शांकर वेदान्त 'विवर्तवादी' है एवं 'ब्रह्मविवर्तवाद' को स्वीकार करता है।[2]

**'परिणामवाद'** और 'विवर्तवाद' में मुख्य अन्तर कार्य के स्वरूप के कारण है। जहाँ सांख्य मूल तत्त्व के निरन्तर परिवर्तन एवं विकृति को 'परिणाम' की संज्ञा देकर इसे सत् स्वीकार करता है, वहीं अद्वैत वेदान्त मूल कारण को सदा एक जैसा ही मानता है और कार्य को केवल नाम-रूप के कारण मिथ्या आभास मात्र मानता है, जिसे सत् नहीं कहा जा सकता। सांख्य एवं अद्वैत वेदान्तियों के कार्यकारणवाद में समानता 'कारण' की एकता को लेकर है। दोनों इस बात से तो सहमत हैं कि सृष्टि का कारण 'एक' है, किन्तु सांख्य सूक्ष्म अव्यक्त 'प्रकृति' को जगत् के पदार्थों का 'वास्तविक कारण' स्वीकार करता है, जबकि अद्वैत वेदान्त इसका कारण 'ब्रह्म' को स्वीकार करता है और कार्य को वास्तविक न मानकर 'प्रतीति मात्र' स्वीकार करते हुये, जगत् को 'ब्रह्म' की 'विकृति' स्वीकार नहीं करता। सांख्य के लिए 'कारण' एवं 'कार्य' दोनों सत् हैं, जबकि अद्वैत वेदान्त केवल 'कारण' को ही सत् मानता है। अतएव कुछ विद्वान् अद्वैत वेदान्त के 'कार्यकारणवाद' को 'सत्कार्यवाद' के स्थान पर 'सत्कारणवाद' कहना उचित समझते हैं। एस. एन. दासगुप्त ने अपने चिरप्रतिष्ठित ग्रन्थ 'भारतीय दर्शन का इतिहास' में दोनों दर्शनों के इस सूक्ष्म अन्तर की ओर हमारा ध्यान अग्रलिखित शब्दों के माध्यम से स्पष्ट किया है -''बहुधा सांख्य और वेदान्त दोनों के कार्य कारण सिद्धान्त को सामान्य भाषा में सत्कार्यवाद कह दिया जाता है, किन्तु सही मायनों में जैसा कि प्रबुद्ध टीकाकारों ने स्पष्ट किया है, वेदान्त के कारण-सिद्धान्त को 'सत्कारणवाद' कहना चाहिए। क्योंकि उसकी मान्यता है कि केवल कारण ही सत् (विद्यमान) है, कार्य तो केवल कारण के ही मायात्मक आभास हैं। सांख्य के मतानुसार कार्य कारण के अन्दर विद्यमान रहता है और बीज रूप में कारण में कार्य की सत्ता होने से वह भी सत् है।''[3]

**वेदान्त-** परिभाषाकार के 'परिणाम' एवं 'विवर्त' शब्दों के अर्थ निरूपण से भी 'सत्कार्यवाद' एवं 'सत्कारणवाद' का यह भेद स्पष्ट हो जाता है। वेदान्त- परिभाषा का यह कथन द्रष्टव्य है - ''परिमाणोनाम उपादान समसत्ताककार्यापत्तिः। विवर्तोनाम उपादान विषमसत्ताककार्यापत्तिः।।''[4] - अर्थात् उपादान की जैसी सत्ता हो ठीक वैसी सत्ता से युक्त कार्य की उसे (उपादान को) प्राप्ति होना परिणाम कहलाता है और उसकी (उपादान की) सत्ता की अपेक्षा विषम सत्ता से युक्त कार्य की प्राप्ति होना विवर्त कहलाता है।

**यदि कार्य** अपने उपादान कारण का समसत्ताक है, तो वह परिणाम कहलायेगा और यदि कार्य अपने उपादान कारण का विषमसत्ताक है, तो वह विवर्त कहलायेगा। सांख्य के अनुसार समस्त कार्यजगत् प्रकृति का कार्यव्यापार है। प्रकृति का परिणाम यह समस्त कार्यजगत् है जो जड़ होने से उसका समसत्ताक है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार विवर्त वह कार्य है, जो अपने उपादान कारण से भिन्न (विषम)

है। अविद्या का कार्य होने से यह जगत् उसका परिणाम है, जबकि स्वयं अविद्या का अधिष्ठान ब्रह्म होने से यह जगत् ब्रह्म का विवर्त है।

**उपर्युक्त** वर्णन से किंचित भिन्न, एक अन्य दृष्टि से श्री वाचस्पति मिश्र ने सांख्यकारिका पर अपनी टीका 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' में, भारतीय दर्शन में प्रचलित 'कारणता' से सम्बन्धित चार सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। प्रथमतः, बौद्धों के अनुसार 'असतः सज्जायते' असत् से सत् उत्पन्न होता है। द्वितीयतः, अद्वैतवादियों के अनुसार 'एकस्य सतो विवर्तः कार्यजातं, न वस्तुसत्' समग्र कार्य समूह या प्रपंच एक सत् का अतात्त्विक या अवास्तविक रूप से अन्यथा आभास या प्रतीति है। वह वस्तुसत् नहीं है। तृतीयतः, नैयायिकों एवं वैशेषिकों के अनुसार 'सतः असत् जायते' सत् से असत् उत्पन्न होता है एवं चतुर्थतः, सांख्य दर्शन के अनुसार 'सतःसत् जायते' सत् से सत् उत्पन्न होता है।[5]

**सांख्य** दर्शन के अनुसार यदि कार्य को उत्पन्न होने के पूर्व ही कारण में विद्यमान न माना जाये तो कार्य एवं कारण में अभेद नहीं होगा एवं जगत् के कार्यों को देखकर इसके प्रधान कारण प्रकृति का अनुमान नहीं किया जा सकेगा। अतएव सांख्य दर्शन उपर्युक्त अन्य तीन मतों को उपयुक्त नहीं मानता। वाचस्पति मिश्र इस उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुये इन मतों के खण्डन में प्रवृत्त होते हैं। वे शून्यवादी बौद्ध मत का खण्डन अग्रलिखित शब्दों में करते हैं –''यदि पुनरसतः सज्जायेत, असत् निरूपाख्यं कारणं सुखादिरूपशब्दाद्यात्मकं कथं स्यात् ? सदसतोस्तादात्म्यानुपपत्तेः।''[6]– अर्थात् यदि यह माना जाये कि असत् से सत् उत्पन्न होता है, तो निरूपाख्य या स्वरूपशून्य असत् कारण सुख आदि रूप वाले शब्द आदि के स्वरूप वाला कैसे हो सकता है, क्योंकि सत् और असत् का तादात्म्य या अभेद उपपन्न नहीं।

**इसका** अभिप्राय यह है कि भाव रूप जगत् के कार्यों का कारण अभावरूप शून्य कैसे हो सकता है ? भाव एवं अभाव का अभेद सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त यदि यह माना जाये कि लोक में अभाव से भी भाव उत्पन्न होते हुये देखा जाता है, जैसे बीज एवं मिट्टी के पिण्ड आदि के प्रध्वंसाभाव या विनाश के बाद अंकुर एवं घट आदि की उत्पत्ति दृष्टिगोचर होती है। किन्तु यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उनकी उत्पत्ति में प्रध्वंसाभाव या विनाश कारण नहीं, बल्कि बीज आदि का अवयव रूप भाव ही कारण है। फिर यदि अभाव से भाव की उत्पत्ति मानी जाये, तो अभाव के सभी कालों में या सभी स्थानों से सभी कार्यों की उत्पत्ति का प्रसंग उपस्थित हो जायेगा। अतःअभाव से भाव उत्पन्न नहीं हो सकता।

**अद्वैतवादी** ब्रह्म को 'परमार्थ सत्' स्वीकार करते हैं एवं जगत् को ब्रह्म का 'विवर्त' या 'आभास' मानते हैं। सांख्य दार्शनिकों के अनुसार यह मत भी उचित नहीं है, क्योंकि निर्गुण ब्रह्म का इस विविधता पूर्ण जगत् से अभेद सम्भव नहीं है। जगत् को केवल भ्रमात्मक स्वीकार करना उचित नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रपंच को तब तक भ्रम नहीं कहा जा सकता, जब तक कि असत्य सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण न हो इस पर वाचस्पति मिश्र के यह कथन द्रष्टव्य हैं –''अथैकस्यसतो विवर्तः शब्दादिप्रपंचः, तथापि सतः सज्जायेत इति न स्यात्। न चास्याद्वयस्य प्रपंचात्मकत्वम्, अपि त्वप्रपंचस्य प्रपंचात्मकतया प्रतीतिर्भ्रम एव।''[7]– अर्थात् यदि यह माना जाये कि शब्द आदि प्रपंच एक सत् का विवर्त है, तब भी यह नहीं माना जा सकता कि सत् से सत् उत्पन्न होता है। यह अद्वैत सत्प्रपंचात्मक या प्रपंच का स्वरूप रखने वाला नहीं है, अपितु प्रपंच स्वरूप न होते हुये भी उसकी प्रपंच के रूप में प्रतीति केवल भ्रम ही है।

**न्याय-वैशेषिक** दर्शन सत् से असत् की उत्पत्ति मानते हैं। उनके अनुसार नित्य परमाणुओं से अनित्य द्वयणुक कार्यों की उत्पत्ति होती है। इसके खण्डन में वाचस्पति मिश्र का तर्क है कि अनित्य की उत्पत्ति नित्य से कैसे हो सकती है? वे कहते हैं –''असत् चेत् कारणव्यापारात् पूर्वं कार्यम् सत्त्वं नास्य सद्रूवं कर्तुं केनापि शक्यम्। न हि नीलं शिल्पिसहस्रेणापि पीतं कर्तुं शक्यते। सदसत्वे घटस्य...... ततः प्रागपि सदेव कार्यमिति।''[8]– अर्थात् यदि कारण-व्यापार से पूर्व कार्य असत् हो, तो फिर इसको सत् कोई नहीं बना सकता। हजारों शिल्पियों के द्वारा भी नीला-पीला नहीं किया जा सकता। यदि यह कहा जाये कि सत्त्व और असत्त्व घट के धर्म हैं, तो भी धर्मी या धर्माश्रय के न होने पर उसका धर्म नहीं रह सकता। अतः धर्मी घट का सत्त्व अर्थात् सत्ता यथावत् मानना होगा और इस प्रकार यह घट असत् नहीं है। घट से असम्बद्ध और घट से तादात्म्य न रखने वाले अर्थात् अघटात्मक अथवा अघट रूप असत्त्व के आधार पर घट असत् कैसे हो सकता है ? इसलिये कारण-व्यापार से बाद के समान उसके पहले भी कार्य सत् ही है।

**कारण** में पहले से ही विद्यमान 'सत् कार्य' की अभिव्यक्ति ही 'कारण' में शेष है, जो कि उपादान कारण की क्रिया-शक्ति के उन्मुक्त होने पर प्रकाश में आती है, जैसे तिलों को पेरने से, तिलों में पहले से ही विद्यमान तेल की अभिव्यक्ति एवं दुहने से गायों में रहने वाले दूध की अभिव्यक्ति होती है। इसके विपरीत असत् के उत्पन्न होने में तो कोई उदाहरण दिखाई नहीं देता। ऐसा नहीं है कि कार्य पहले से कारण में विद्यमान नहीं था। अभिप्राय यह है कि कार्य अपने कारण में पहले 'असत्' नहीं है।

**सांख्य दर्शन सम्मत सत्कार्यवाद :-** सांख्य दर्शन को 'सत्कार्यवाद' स्वीकार्य है और इसके 'कार्यकारणवाद' के सिद्धांत को 'प्रकृति-परिणामवाद' कहा जाता है। सत्कार्यवाद के अनुसार कारण-व्यापार के पश्चात्, कार्य जिस प्रकार विद्यमान रहता है उसी प्रकार, कारण-व्यापार के पूर्व भी अपने कारण में विद्यमान रहता है। वस्तुतः कार्य एवं कारण में अभेद है। कार्य, कारण की ही अभिव्यक्ति है। सत्कार्यवाद के अनुसार कार्य एवं कारण दोनों सत् हैं। यह जगत् इसके मूल कारण, प्रकृति का कार्य है। कार्य एवं कारण दोनों के सत् होने के कारण ही जगत् के पदार्थों से इसके मूल कारण प्रकृति का अनुमान सम्भव है। प्रकृति की सिद्धि केवल 'सत् से सत् के उत्पन्न' होने पर ही हो सकती है। अतएव सत् से सत् उत्पन्न होता है। इस कार्यकारणवाद के सिद्धांत 'सत्कार्यवाद' की सिद्धि के लिए सांख्यकारिकाकार प्रवृत्त होते हैं। वे सत्कार्यवाद को पाँच हेतुओं द्वारा सिद्ध करते हैं। ये पाँच हेतु अग्रलिखित कारिका में निहित हैं -''असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।।''[9]- अर्थात् असत् को उत्पन्न न कर सकने से, उपादान के ग्रहण करने से, सब कारणों से सब कार्यों की उत्पत्ति न होने से, जो जिसके उत्पादन में समर्थ है, उस कारण से वही कार्य होने से और कारण की सत्ता होने से कार्य सत् है। सांख्यकारिका की प्राचीन टीकाओं में आचार्य माठर कृत 'माठरवृत्तिा', आचार्य गौणपाद कृत 'गौणपादभाष्य', आचार्य शंकर कृत 'जयमंगला' एवं आचार्य वाचस्पति मिश्र कृत 'सांख्यतत्तवकौमुदी'के नाम अग्रगण्य हैं। इन्हीं टीकाओं में प्रतिपादित तर्कों के आधार पर ही, इन पाँचों हेतुओं का विवेचन निम्नवत् है -

**(1) असदकरणात् -** इस हेतु का अभिप्राय यह है कि जो पूर्व से ही अविद्यमान है, उसकी उत्पत्ति असम्भव है, क्योंकि जो पूर्व से विद्यमान नहीं है वह असत् है और जो असत् है, वह कभी सत् नहीं हो सकता। सत् से ही सत् उत्पन्न हो सकता है असत् से नहीं। जिस प्रकार बन्ध्या-पुत्र, शश-श्रृंग, गगन-पुष्प आदि ये सभी असत् हैं, इसलिये ये कभी उत्पन्न नहीं हो सकते।

**कार्य** आवश्यक रूप से कारण से जुड़ा हुआ है। कार्य यदि उत्पत्ति के पूर्व कारण में विद्यमान नहीं है, तो वह बाद में उत्पन्न नहीं हो सकता। यही 'असदकरणात्' पद का अभिप्राय है। सांख्य दर्शन उत्पत्ति के पहले भी कार्य को कारण में सत् मानता है। यही सत्कार्यवाद की मान्यता है। इसके ठीक विपरीत न्याय-वैशेषिक दर्शन की 'असत्कार्यवाद' की मान्यता है, जिसके अनुसार 'कार्य' उत्पत्ति के पूर्व 'कारण' में असत् है। इस हेतु के द्वारा मुख्यतः न्याय-वैशेषिक दर्शन के इस सिद्धांत का ही खण्डन किया गया है।

**(2) उपादानग्रहणात् -** इस हेतु का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक कार्य का अपने उपादान से नियत सम्बन्ध रहता है। 'उपादान' का अर्थ है कारण और उनके 'ग्रहण' का अर्थ है उनका कार्य से सम्बन्ध होना। उपादान कारण एवं उसके कार्य के सम्बन्ध में जयमंगलाकार ने लिखा है कि -''यदुपादीयते तस्य तादुपादान कारणम्, यथा तैलस्य तिलाः, दध्नः क्षीरम्।''[10]- अर्थात् जिससे जो उत्पन्न होता है उसका वह उपादान कारण होता है, जैसे तेल का तिल से और दही का दूध से नित्य सम्बन्ध है, क्योंकि तिल से ही तेल बन सकता है और दूध से ही दही बन सकता है, किसी अन्य वस्तु से नहीं। इसका कारण यह है कि तेल (कार्य) तिल (कारण) से ही सम्भव है और दही (कार्य) दूध (कारण) से। अगर तिल में तेल और दूध में दही पूर्व से ही विद्यमान न होता, तो कैसे इनको दोनों का उपादान कह सकते हैं। इससे सिद्ध है कि प्रत्येक कार्य का एक नियत कारण होता है और वही उस कार्य को करने में सक्षम होता है। सम्बद्ध कारण से सम्बद्ध कार्य उत्पन्न होता है, असम्बद्ध कारण से असम्बद्ध कार्य नहींकारण एवं कार्य के मध्य परस्पर सम्बद्धता अनिवार्य है। अगर ऐसा न हो तो कोई भी वस्तु किसी भी कार्य को उत्पन्न कर सकती थी। कारण एवं कार्य के मध्य सम्बद्धता को स्पष्ट करते हुये जयमंगलाकार कहते हैं -''अन्यथा सिकतासलिलयोरपि ग्रहणं स्यात्।''[11]- अर्थात् फिर तो बालू से तेल और जल से भी दही बन सकता था लेकिन ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि तेल पूर्व से ही तिल में विद्यमान होता है और दही दूध में। अतः नियत उपादान कारण होने से भी कार्य सत् है यह प्रमाणित होता है।

**(3) सर्वसम्भवाभावात्** – सभी कारणों से सभी कार्यों की उत्पत्ति सम्भव नहीं। जिस प्रकार किसी जुलाहे को कपड़ा तैयार करना हो तो वह तन्तुओं को ही लेगा, क्योंकि उसको ज्ञात है कि कपड़ा तन्तुओं से ही बन सकता है, अन्य किसी वस्तु से नहीं। जिस कार्य को करने की क्षमता जिस कारण में विद्यमान होगी, वही उस कार्य को कर सकता है। तिल से ही तेल निकल सकता है, बालू से नहीं। यदि कारण एवं कार्य के मध्य सम्बद्धता न हो तो सभी से सभी कुछ उत्पन्न हो जायेगा, किन्तु ऐसा नहीं है। इसी असम्बद्धता पर प्रकाश डालते हुये आचार्य गौणपाद कहते हैं कि –''सर्वस्य सर्वत्र सम्भवो नास्ति। यथा सुवर्णस्य रजतादौ, तृणपांशुसिकतास। तस्मात् सर्वसम्भवाभावात् सत्कार्यम्।''[12]– अर्थात् सबकी सभी जगह उत्पत्ति सम्भव नहीं है। जैसे सुवर्ण की उत्पत्ति चांदी में, धूल या बालू में नहीं हो सकती। अतः सब से सब वस्तु उत्पन्न न होने से भी यह सिद्ध होता है कि कार्य सत् है।

**(4) शक्तस्य शक्यकरणात्** – समर्थ वस्तु ही अपने योग्य समर्थ कार्य को उत्पन्न कर सकती है। कार्य के अवलोकन द्वारा ही कारण की शक्ति का अनुमान हो पाता है। विशेष कारणों से विशेष कार्यों की उत्पत्ति का जो नियम है, वह इसी शक्ति के कारण सम्भव हो पाता है। एक विशेष कार्य उत्पन्न करने की शक्ति केवल शक्त कारण में ही विद्यमान होती है। अगर प्रत्येक कारण में उस शक्ति का होना माना जाये तो, विशेष कारण से विशेष कार्य के होने का नियम भंग हो जायेगा और किसी भी कारण से कोई भी कार्य उत्पन्न हो सकेगा। अगर शक्ति, शक्त कारण में ही होती है, तो कार्य से उसका सम्बन्ध मानना होगा। जिस कारण शक्ति का एक कार्य विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं है, उससे वह कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता, इसलिये कारण में रहने वाली उत्पन्न करने के सामर्थ्य से युक्त शक्ति का कार्य से सम्बन्ध होना चाहिये और कार्य का कारण में पूर्व से अस्तित्त्व भी होना चाहिये। अगर कार्य पहले से कारण में नहीं है, तो कारण शक्ति का उससे सम्बन्ध नहीं हो सकता और अगर कारण शक्ति से उसका सम्बन्ध नहीं है तो, कोई भी कार्य किसी भी कारण से उत्पन्न किया जा सकेगा। अतः कार्य का किसी समर्थ कारण में पूर्व से होना आवश्यक है।

**इस हेतु** पर टिप्पणी करते हुये आचार्य माठर लिखते हैं कि– ''इह लोके शक्तः शिल्पी करणादिकारणोपादन-कालोपायसम्पन्नः शक्यादेव शक्य कर्म आरभते नाशक्यमशक्यात्। तद्यथा-शक्तः कुम्भकारः शक्यादेव मृत्पिण्डात् शक्यदण्डचक्रसूत्रोदकविदलतलादिभिः सम्पन्नो घटशरावोदंचनादीन्यारभमाणो दृष्टः। न च मणिकादि, अशक्यत्वात्तावता पिण्डेने तस्य। यदि पुनः करणनियमो न स्यादशक्यादप्यशक्यमारभ्येत। तस्मात् सत् कार्यं स्यान्नासत्।''[13]– अर्थात् इस लोक में देखा जाता है कि समर्थ शिल्पी ही उपादानादि कालोपाय साधन सम्पन्न समर्थ सामग्री से ही समर्थ कार्य को प्रारम्भ करता है न कि असमर्थ सामग्री से। जैसेकि कुम्भकार समर्थ मृत्पिण्ड से, समर्थ सामग्री दण्ड, चक्र, रस्सी, जल आदि से सम्पन्न होकर घड़ा, प्याला आदि को बनाता हुआ देखा गया है, न कि मणिक आदि, क्योंकि उसके लिए मृत्पिण्ड असमर्थ है। यदि यह योग्य करण नियम न होता तो असमर्थ कारण सामग्री से भी असम्भावित कार्य उत्पन्न हो जाते। अतएव कार्य सत् है न कि असत्।

**(5) कारणभावात्** – कार्य तथा कारण अभिन्न हैं, इसलिये जब कारण सत् होगा तो कार्य भी सत् ही होगा। वस्तुतः कार्य कारण की व्यक्त अवस्था है और कारण कार्य की अव्यक्त स्थिति मात्र है। यह लोक व्यवहार में भी अनुभूत किया जाता है कि कारण जैसा होगा कार्य भी वैसा ही होता है, क्योंकि बबूल के पेड़ पर कभी आम नहीं लगते। इस हेतु पर तर्क स्वरूप आचार्य गौणपाद लिखते हैं कि –''कारणं यल्लक्षणमेव कार्यमपि, यथा यवेभ्यो यवाः ब्रीहिभ्यो ब्रीहयः। यदाऽसत्कार्यं स्यात्ततः कोद्रेवेभ्यः शालयः स्युः, न च सन्तीति, तस्मात् सत्कार्यम्।''[14]–अर्थात् कारण जिस लक्षण का होता है, वैसा ही कार्य भी होता है। जैसे, जौ बोने से जौ ही उत्पन्न होते हैं और धान बोने से धान ही उत्पन्न होती है। यदि कार्य असत् होता, तो कोदों से भी धान उत्पन्न हो सकता था, लेकिन ऐसा नहीं होता। अतः यह सिद्ध होता है कि कार्य सत् है।

**कार्य के** कारण से अभेद को सिद्ध करने के लिये वाचस्पति मिश्र सम्मत प्रमाण इस प्रकार दिये जा सकते हैं कि पट तन्तुओं से भिन्न नहीं, क्योंकि वह तन्तुओं का धर्म है। यहाँ जो जिससे भिन्न होता है, वह उसका धर्म या अवस्था विशेष नहीं होता, जिस प्रकार बैल, अश्व का धर्म या अवस्था विशेष नहीं। पट तन्तुओं का धर्म है, अतः वह तन्तुओं से भिन्न या भिन्न पदार्थ नहीं है। तन्तुओं और पट का आपस में उपदानोपादेयभाव होने से भी अर्थात् तन्तुओं के पट का उपादान होने और पट के तन्तुओं का उपादेय होने से भी इन दोनों में भिन्नता नहीं

है, क्योंकि जिससे भिन्नता होती है, उनमें उपदानोपादेयभाव नहीं होता। जैसे, घट और पट में उपदानोपादेयभाव नहीं है, इसलिये तन्तु और पट में उपदानोपादेयभाव है। अतः इन दोनों में भिन्नता या भेद नहीं है। इसलिये भी तन्तु और पट में भेद नहीं है कि इन दोनों में आपस में संयोग और अप्राप्ति का अभाव है। एक पदार्थ के दूसरे से अलग होने पर दोनों का संयोग देखा जाता है। जैसे पात्र और बेर नामक फल का अथवा अप्राप्ति या विभाग देखा है, जैसे कि हिमालय और विन्ध्याचल का। तन्तु और पट में न संयोग है और न अप्राप्ति या विभाग है। अतः इन दोनों में भेद नहीं है। इसलिये पट तन्तुओं से भिन्न नहीं है कि तन्तुओं के गुरुत्व या भार से भिन्न पट के भार का कार्य दृष्टिगोचर नहीं होता, जैसा कि तराजू के पलड़े का नीचा या ऊँचा होना है। इस संसार में जो जिस से भिन्न होता है, उसके भार से भिन्न भार का कार्य उसमें प्राप्त होता है, जैसे एक परिमाण विशेष के स्वास्तिक नामक अलंकार के भार के द्वारा किया जाने वाला, जो अवनति विशेष या झुकाव होता है उससे दो पल के स्वास्तिक के भार के द्वारा किया जाने वाला झुकाव अधिक होता है। किन्तु इस प्रकार तन्तुओं के कार्य के भार से पट के भार का कार्य भिन्न नहीं दिखाई देता, अतः पट तन्तुओं से भिन्न नहीं हैं।[15]

**अभेद** को सिद्ध करने वाले ये पूर्वोक्त अवीत अनुमान के उदाहरण हैं। इस प्रकार अभेद के सिद्ध होने पर यह मानना होगा कि तन्तु ही उस-उस संस्थान भेद या आकृति-विशेष के रूप में परिणत होकर पट हो जाते हैं, पट तन्तुओं से कोई भिन्न पदार्थ नहीं है। तन्तु और पट के अभिन्न होने पर भी उनमें जो उत्पन्न और विनष्ट होने के सम्बन्ध में इस प्रकार का बुद्धि भेद होता है कि पट उत्पन्न या विनष्ट हो रहा है, तन्तु नहीं, उनमें जो इस प्रकार का व्यपदेश-भेद या नाम-भेद होता है कि ये तन्तु हैं और यह पट है। उनमें जो इस प्रकार का कार्य-भेद या प्रयोजन-भेद होता है कि तन्तुओं से सिलाई आदि कार्य होते हैं और पट से शरीर ढकना एवं ओढ़ना-बिछाना आदि कार्य होते हैं, उनमें जो इस प्रकार का व्यवस्था-भेद होता है कि तन्तुओं से नियमतः अमुक-अमुक कार्य ही सम्पादित हो सकते हैं। ये सब भेद तन्तुओं और पट के भेद को एकान्तिक या अनिवार्य रूप से सिद्ध नहीं कर सकते हैं, क्योंकि एक ही वस्तु में उन-उन विशेषताओं के आविर्भाव और तिरोभाव से लुप्त,उक्त भेदों के होने में कोई विरोध नहीं है।

**जिस प्रकार** कछुवे के अंग उसके शरीर में प्रविष्ट होते हुये छिप जाते हैं और उसके शरीर से निकलते हुये प्रकट हो जाते हैं। कछुवे से उसके अंग न तो उत्पन्न होते हैं और न विनष्ट होते हैं। इसी प्रकार एक मिट्टी या सोने के घट एवं मुकुट आदि रूप निकले या प्रकट होते हुये, उत्पन्न होते हुये कहे जाते हैं और समाते या छिपते हुये, विनष्ट होते हुये कहे जाते हैं। न तो असत् घट आदि का उत्पाद होता है और न सत् घट आदि का विनाश होता है, जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है -''नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।''[16]-अर्थात् न असत् का भाव या उत्पाद होता है और सत् का अभाव या विभाग होता है। जिस प्रकार कछुवा संकुचित एवं विकसित होने वाले अपने अवयवों या अंगों से भिन्न नहीं है, उसी प्रकार घट एवं मुकुट आदि भी मिट्टी एवं सुवर्ण से भिन्न नहीं है।

**इस प्रकार** 'इन तन्तुओं में पट है, यह व्यवहार, इस वन में वृक्ष विशेष है', इस व्यवहार के समान सिद्ध है। अर्थ क्रिया या प्रयोजनवती क्रिया का भेद भी, भेद को सिद्ध नहीं कर सकता है, क्योंकि एक ही व्यक्ति या पदार्थ आदि की अनेक प्रयोजनवती क्रियायें देखी जाती हैं। जैसे एक ही अग्नि जलाने वाली, पकाने वाली एवं प्रकाश करने वाली होती है। अर्थ क्रियाओं या प्रयोजनवती क्रियाओं की व्यवस्था भी वस्तु के भेद में कारण नहीं है, क्योंकि उन्हीं के समस्त एवं व्यस्त रूपों में अर्थ क्रियाओं की व्यवस्था देखी जाती है। जिस प्रकार कहार एक-एक करके या अलग-अलग मार्ग दर्शन रूप अर्थ क्रिया को करते हैं, पालकी को नहीं ढोते हैं, किन्तु वे सब मिलकर पालकी ही ढोते हैं, इसी प्रकार तन्तु एक-एक करके या अलग-अलग ढकने के कार्य को नहीं करते हुये भी मिलकर पट रूप से आविर्भूत हो ढकने का कार्य करेंगे।

**इस पर** नैयायिकों का कहना है कि अच्छा यह सही है, किन्तु पट का आविर्भाव कारण-व्यापार से पूर्व सत् या असत् है? यदि असत् है, तो यह बात सिद्ध हुई कि असत् की उत्पत्ति होती है और यदि सत् है, तो कारण-व्यापार व्यर्थ है, क्योंकि कार्य के सत् होने पर कारण-व्यापार का कोई प्रयोजन दिखाई नहीं देता है। पट का आविर्भाव का भी आविर्भाव करने के लिये यदि कारण-व्यापार को प्रयुक्त करने की कल्पना की जायेगी तो अनवस्था का प्रसंग होगा। इस प्रकार तन्तुओं में पट रूप आविर्भूत किया जाता है या तन्तु आविर्भूत पट रूप वाले किये जाते हैं, यह कथन अर्थ शून्य है इस पर सांख्यवादी उत्तर देते हैं

कि ऐसा नहीं है, क्योंकि, तो फिर यह बताओ कि 'असत्' उत्पन्न होता है, इस मत में असत् की यह उत्पत्ति कैसी है ? सत् है या असत् है। यदि सत् है तो कारण व्यर्थ है, यदि असत् है तो उसकी भी उत्पत्ति होनी चाहिये, इस प्रकार ज्यों ही यह कहा जाता है कि पट, त्यों ही यह कथन हो जाता है कि उत्पन्न होता है। इस प्रकार फिर 'पट', यह कहने पर उत्पन्न होता है, यह नहीं कहना चाहिये, क्योंकि ऐसा कहने से पुनरुक्ति होगी। विनष्ट होता है, यह भी नहीं कहना चाहिये, उत्पत्ति और विनाश का एक साथ एक स्थान पर विरोध है। इसलिये यह पटोत्पत्ति या घटोत्पत्ति, या तो पट का अपने कारण, तन्तुओं में समवाय है या अपने में सत्ता का समवाय है। दोनों ही प्रकारों से उत्पत्ति अर्थात् समवाय के नित्य होने के कारण उत्पन्न नहीं होती, फिर भी उसके लिये कारणों को काम में लिया जाता है। इसी प्रकार कारण-व्यापार से पूर्व भी सत् रहने वाले पट आदि के आविर्भाव के लिये कारण की अपेक्षा होती है, यह बात युक्तियुक्त है। पट के रूप के साथ ही कारण का सम्बन्ध नहीं होता है, क्योंकि पट का रूप, क्रिया नहीं है और कारण, क्रिया से सम्बद्ध होते हैं,अन्यथा वे कारण ही नहीं रहेंगे। अतएव कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व भी सत् है, यह पूर्णतया पुष्ट है।[17]

**उपसंहार** :- इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन में 'कार्यकारणवाद' एक अतीव महत्त्वपूर्ण बिन्दु है, जिसकी सभी सम्प्रदायों ने अपनी तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से व्याख्या प्रस्तुत की है। प्रस्तुत शोध आलेख में 'कार्यकारणवाद' की भारतीय दर्शन में प्रमुखतया प्रचलित सभी दृष्टियों को समाहित किया गया है। इन प्रस्थानों में बौद्ध दर्शन का 'शून्यवाद', जो असत् से सत् की उत्पत्ति मानता है। अद्वैत वेदान्त का 'विवर्तवाद',जिसके अनुसार समग्र कार्य समूह या प्रपंच एक सत् का अतात्त्विक या अवास्तविक रूप से अन्यथा आभास या प्रतीति है, वह वस्तुसत् नहीं है। न्याय-वैशेषिक का 'असत्कार्यवाद' या 'आरम्भवाद',जो सत् से असत् की उत्पत्ति मानता है और सांख्य का 'सत्कार्यवाद'जो सत् से सत् की उत्पत्ति स्वीकार करता है, आदि शामिल हैं।उपर्युक्त वर्णित सिद्धान्तोंमें से, सांख्य सम्मत 'सत्कार्यवाद' के परिप्रेक्ष्य में अन्य सभी की समीक्षा प्रस्तुत की गई है। समीक्षा के दौरान सांख्य दर्शन के विभिन्न आचार्यों, विशेषकर वाचस्पति मिश्र द्वारा प्रदत्त अनेक तार्किक युक्तियों, के सम्प्रयोग द्वारा यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्य, कारण-व्यापार के पूर्व भी अपने कारण में विद्यमान रहता है। कार्य कारण से भिन्न नहीं, अपितु दोनों ही अभिन्न हैं।'कार्य' कारण का व्यक्त रूप होता है और 'कारण', कार्य का ही अव्यक्त रूप। कार्य अगर कारण में पूर्व से विद्यमान न हो तो उसकी उत्पत्ति किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है। यही 'सत्कार्यवाद' है, जो कि 'असत्कार्यवाद' या 'आरम्भवाद' के ठीक विपरीत है। अतः शोध आलेख के उद्देश्यानुरूप 'असत्कार्यवाद' के स्थान पर 'सत्कार्यवाद' की स्थापना सिद्ध है।

## सन्दर्भ


1. शर्मा, चन्द्रधर, 'भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2013, पृ. 141
2. वही
3. दासगुप्त, एस. एन., 'भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-1', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2011, पृ. 242.
4. मुसलगाँवकर, गजाननशास्त्री (व्या.), धर्मराजाध्वरीन्द्र (लेखक), 'वेदान्त-परिभाषा', चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2015, पृ. 107
5. मणि, रविकान्त (व्या.), वाचस्पति मिश्र(टीका.), ईश्वरकृष्ण (लेखक), 'सांख्यकारिका', हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2012, पृ. 106
6. वही
7. वही
8. वही, पृ. 107
9. षड़ंगी, सुधांशु कुमार(व्या.), शंकराचार्य (टीका.), ईश्वरकृष्ण (लेखक), 'सांख्यकारिका', चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016, पृ. 42
10. वही, पृ. 44.
11. वही
12. शास्त्री, जगन्नाथ(अनु.), गौणपादाचार्य (टीका.), ईश्वरकृष्ण (लेखक), 'सांख्यकारिका', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2014, पृ.18
13. उप्रेति, थानेशचन्द्र (व्या.), माठराचार्य (टीका.), ईश्वरकृष्ण (लेखक), 'सांख्यकारिका', चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2011, पृ. 51
14. शास्त्री, पूर्वोक्त, पृ. 18
15. मणि, पूर्वोक्त, पृ. 110-111
16. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/16
17. मणि, पूर्वोक्त, पृ. 113-114

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2020
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्यों की जनांकिकीय संरचना में जन्म दर एवं मृत्यु दर की प्रवृत्तियों का एक तुलनात्मक विश्लेषण

❑ डॉ. राजकुमार नागवंशी

किसी भी देश एवं राज्य के आर्थिक विकास में उस देश व राज्य की जनसंख्या की विशेष व महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वहां की जनसंख्या का आकार, संरचना एवं संगठन आदि विशेषताएँ उसके विकास को काफी हद तक प्रभावित करती हैं और साथ ही साथ जनांकिकीय विशेषताओं में परिवर्तन उस क्षेत्र विशेष के सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक विकास को भी काफी हद तक प्रभावित करता है। इसी संदर्भ में प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से दो राज्यों मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के मध्य जनांकिकीय संरचना में जन्म एवं मृत्यु दरों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है साथ ही जन्म दर एवं मृत्यु दर के संदर्भ में दोनों राज्यों में एक दशकीय समय अवधि में हुए परिवर्तनों की वृद्धि दर एवं प्रवृतियों को भी जानने की कोशिश की गई है। आकड़ों के आधार पर दोनों राज्यों के मध्य बहुत अधिक या विशेष अधिक अंतर नहीं है परन्तु दोनों राज्यों की तुलना की जाये तो स्पष्ट है की मध्य प्रदेश की अपेक्षा छत्तीसगढ़ राज्य की जन्म एवं मृत्यु दरें बेहतर व कम हैं। वर्ष 2007 से 2016 के उपलब्ध समंको की सहायता से ज्ञात होता है कि वर्ष 2007 में मध्य प्रदेश राज्य में जन्म दर 28.5 एवं मृत्यु दर 8.7 प्रति हजार थी एवं वर्तमान वर्ष 2016 में जन्म दर एवं मृत्यु दर में कमी होकर क्रमशः 25.1 व 7.1 प्रति हजार हो गयी है अर्थात दोनों दरों में कमी आयी है वहीं छत्तीसगढ़ राज्य में वर्ष 2007 में जन्म दर 26.5 एवं मृत्यु दर 8.1 प्रति हजार थी एवं वर्तमान वर्ष 2016 में 22.8 जन्म दर व 7.4 मृत्यु दर प्रति हजार हो गयी है। इस प्रकार मध्यप्रदेश राज्य की भांति छत्तीसगढ़ राज्य में भी दोनों दरों में कमी आयी है। यदि अध्ययन के प्रत्याशित मापों को देखें तो मध्यप्रदेश में वर्ष 2031 मे जन्म दर 19.5 तथा मृत्यु दर 4.9 होने की संभावना है वही छत्तीसगढ़ राज्य में वर्ष 2031 मे 16.6 जन्म तथा मृत्यू दर 6.3 होने की पूर्ण संभावना है। इस प्रकार दोनों राज्यों में जन्म एवं मृत्यु दरों में एक अंतर दिखाई देता है जो जनसंख्या में अधिक वृद्धि दर की ओर संकेत करता है, इसलिए वर्तमान में दोनों राज्यों को जन्म दर एवं मृत्यु दर अर्थात दोनों दरों के मध्य समानता व स्थिरता लाने की आवश्यकता है।

**शब्द कुंजी** – जन्मदर एवं मृत्युदर, जनांकिकीय संरचना, शिशु मृत्यु दर, जनसंख्या वृद्धि दर, प्रजनन दर, शिशु मृत्यु दर।

**कुल जनसंख्या** के आधार पर विश्व में चीन के बाद भारत का स्थान द्वितीय है जो विश्व स्तर पर एक बड़ी आबादी है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 121 करोड़ है। मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ राज्यों की जनसंख्या क्रमशः भारत की कुल जनसंख्या का 6 प्रतिशत और 2.11 प्रतिशत है। मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ राज्य भारत के लगभग मध्य में स्थित हैं एवं दोनों राज्यों में जलवायु व प्राकृतिक रूप से भी लगभग समान परिस्थितियां हैं। सन 2000 से पहले, छत्तीसगढ़ राज्य मध्यप्रदेश राज्य का एक हिस्सा था परन्तु 1 नवम्बर 2000 को मध्यप्रदेश राज्य से अलग कर एक अलग राज्य के रूप में छतीसगढ़ राज्य की स्थापना की गई। किसी भी देश एवं राज्य की जनसंख्या की देश व राज्य के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वहां की जनसंख्या का आकार, संरचना एवं जनांकिकीय विशेषताएं देश व राज्य के विकास को काफी हद तक प्रभावित करती हैं और साथ ही साथ जनांकिकीय विशेषताओं में परिवर्तन वहां के सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक विकास के परिवर्तन को भी दर्शाता है। जनांकिकीय विशेषताओं में मुख्य रूप से जनसंख्या, लिंगानुपात, साक्षरता दर, जनसंख्या घनत्व, जन्म और मृत्यु दर, शिशु मृत्यु दर और जीवन प्रत्याशा आदि कारकों को सम्मिलित किया जाता है। इन्ही जनसांख्यिकीय विशेषताओं के आधार पर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सुधार व समाधान के लिए नीतियाँ बनायी जाती हैं एवं नीतियाँ बनाने में महत्वपूर्ण सहायक होते हैं, भविष्य में किसी भी देश व राज्य की जनसंख्या का आकार व संरचना को भी सुनिश्चित करने में सहायक होती हैं। वर्तमान समय में भारत की जनसंख्या को देखते हुए भविष्य में जनसंख्या के आकार एवं संरचना को जानना अतिआवश्यक है क्योंकि देश में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण देश के समक्ष कई समस्याएं उत्पन्न हुई हैं जिसमे मुख्य रूप से जनसंख्या में क्षेत्रीय असामनता, असाक्षरता, लिंग असमानता, बेरोजगारी एवं जन्म व मृत्यु दरों में क्षेत्रीय असमानता आदि हैं। इन समस्याओं को दूर करने के लिए शक्तिशाली और प्रभावशाली नीतियां बना सकें और भविष्य में स्वास्थ्य, चिकित्सा, खाद्य उत्पादन, रोजगार और शिक्षा आदि जैसे गंभीर

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (मध्यप्रदेश)

मामलों पर बहुत प्रभावी ढंग से निर्णय ले सकें इसके लिए हमें जनसांख्यिकीय आंकड़ों का अध्ययन करना अति महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ़ राज्य की जनांकिकीय संरचना को समझने के लिए मुख्य रूप से दो कारकों जन्म दर व मृत्यु दर को लिया गया है साथ ही देश के दो महत्वपूर्ण राज्य मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ राज्यों के मध्य जन्म एवं मृत्यु दरों में अंतर व प्रवृत्ति को समझने की कोशिश की गई है साथ ही जन्म एवं मृत्यु दरों के माध्यम से दोनों राज्यों की जनसंख्या के आकार, संरचना एवं भविष्य में जनांकिकीय प्रवृत्तियों में पड़ने वाले प्रभावों का भी अध्ययन करने का प्रयास किया गया है एवं दोनों दरों के माध्यम से दोनों राज्यों के बीच तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

**साहित्य समीक्षा :** चार्ल्स वोल्फ एवं सह लेखकों[1] के द्वारा अपने लेख में कहा है कि भविष्य में भारत की जनसांख्यिकीय संरचना चीन की तुलना में अधिक अनुकूल होने की संभावना है परन्तु यह जनसांख्यिकीय लाभांश प्राप्त करने में कितनी सक्षम होगी यह आर्थिक विकास पर निर्भर करेगा एवं साथ ही अध्ययन में बताया गया है कि भारत में सामाजिक बुनियादी ढांचे में परिवर्तन, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं महिलाओं के स्तर में सुधार की आवश्यकता है।[1]

**वी. सी.** सिन्हा[2] के अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या एक ऐसी स्थिति को संदर्भित करती है जहां जनसंख्या सामाजिक रूप से वांछनीय स्तर से न तो अधिक हो और न ही कम होती है। इस प्रकार अनुकूलतम जनसंख्या एक ऐसी जनसांख्यिकीय सरंचना की और संकेत करती है जिसमें जन्म एवं मृत्यु दर दोनों दरें संतुलित होती हैं।

**ओ. एस.** श्रीवास्तव[3] ने अपने अध्ययन में बताया है कि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को ZPG (Zero Population Growth) की आवश्यकता है अर्थात् विकासशील देशों में शून्य जनसंख्या वृद्धि दर होनी चाहिये। इसका मतलब है कि कुल जनसंख्या में स्थिरता बनी हुई रहनी चाहिए जिसमें मुख्य रूप से मृत्यु और जन्म दर लगभग बराबर होना चाहिए। इस अध्ययन में स्पष्ट कहा है कि विकासशील देशों के लिए स्थिर जनसँख्या वाली स्थिति होनी अति आवश्यक है।

**रामु रावत**[4] के अनुसार भारत में कुछ दशकों से मृत्यु दर में काफी गिरावट हुई है अर्थात् लगभग आधी दर पर पहुँच गई है और देश की मृत्यु दर का स्तर स्वास्थ्य सेवाएं, लोगों का स्वास्थ्य एवं लोगों का बेहतर जीवन स्तर आदि काफी हद तक प्रभावित करती है। किसी भी देश एवं राज्य की बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं मृत्यु दर को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं अर्थात् देश व राज्य को मृत्यु दर को कम करने के लिए स्वास्थ्य सेवाओं को अधिक प्राथमिकता देना चाहिए।

**सी. एम.** लक्ष्मण[5] के अनुसार जनांकिकी परिवर्तन एवं लिंग असामनता के रूप में मध्यप्रदेश एवं कर्नाटक राज्य के मध्य तुलनात्मक अध्ययन करने पर लिंगानुपात एवं प्रत्याशित आयु के संदर्भ में मध्यप्रदेश की अपेक्षा कर्नाटक राज्य में अधिक बेहतर परिणाम प्राप्त हैं अर्थात् कर्नाटक राज्य में लिंगानुपात में समानता व प्रत्याशित आयु में अधिकता बताया गया है।

**अध्ययन का उद्देश्य**

1. मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्यों के मध्य जनांकिकीय संरचना का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. दोनों राज्यों के मध्य जन्म दर एवं मृत्यु दर की प्रवृत्तियों एवं स्तर का अध्ययन करना।
3. जन्म एवं मृत्यु दरों के आधार पर भविष्य में जनांकिकीय संरचना में होने वाले परिवर्तनों का मूल्यांकन करना।
4. अध्ययन क्षेत्र में अनुकूलतम जनसंख्या हेतु उपयुक्त सुझाव देना।

**शोध प्रविधि** : प्रस्तुत शोध पत्र में पूर्ण रूप से द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। इन आंकड़ों को मुख्य रूप से दोनों राज्यों की सांख्यिकीय पुस्तिका, नीति आयोग द्वारा प्रकाशित जनांकिकीय आंकड़े, सेम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम एवं भारतीय राज्यों पर सांख्यिकीय पुस्तिका, भारतीय रिजर्व बैंक 2018-19 आदि से द्वितीयक आंकड़ें प्राप्त किये गए हैं एवं इन द्वितीयक आंकड़ों के माध्यम से दोनों राज्यों की जनांकिकीय संरचना में मुख्य रूप से जनसंख्या दशकीय वृद्धि दर के आधार पर भविष्य की जनसंख्या का अनुमान लगाया गया है साथ ही जन्म एवं मृत्यु दर का तुलनात्मक विश्लेषण व भविष्य में दोनों दरों की प्रवृत्ति व स्तर का अनुमान लगाया गया है।

**अध्ययन क्षेत्र** : मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्य देश के लगभग मध्य में स्थित हैं एवं दोनों राज्यों में सामाजिक संरचना, जलवायु व प्राकृतिक रूप से भी लगभग समानता देखी जा सकती है। प्रस्तुत शोध लेख में मुख्य रूप से मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ दो राज्यों को अध्ययन के लिये लिया गया है जिसमें राज्यों के मध्य जनांकिकी संरचना की प्रवृत्ति का अध्ययन एवं साथ ही मुख्य रूप से जन्म दर

एवं मृत्यु दर की प्रवृत्तियों एवं स्तर का तुलनात्मक विश्लेषण व अध्ययन किया गया है।

**मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्य का मानचित्र**

**मध्यप्रदेश**

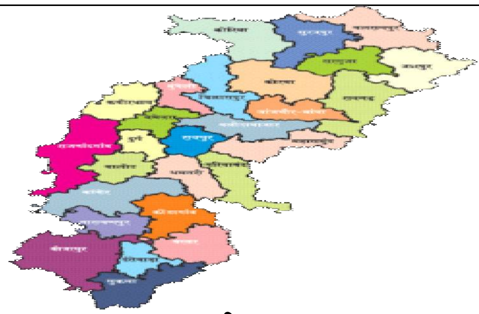

**छत्तीसगढ़**

**राज्यों की कुल जनसंख्या :** किसी देश या प्रदेश के विकास में वहां की कुल जनसंख्या जिसे मानव संसाधन के रूप में भी जाना जाता है की अहम भूमिका होती है अर्थात किसी देश या प्रदेश के आर्थिक विकास की गति को वहाँ की जनसंख्या काफी हद तक प्रभावित करती है परन्तु निर्भर करता है की वहाँ की जनसंख्या की मुख्य विशेषताएं क्या हैं। जनांकिकीय विशेषताओं में मुख्य रूप से साक्षरता दर, कार्यशील जनसंख्या, रोजगार का स्तर, श्रमिकों का कार्य स्तर, कार्य क्षमता, जीवन स्तर, जीवन प्रत्याशित आयु, गरीबी का स्तर एवं स्वास्थ्य स्तर आदि मानकों के आधार पर किसी देश या प्रदेश की जनसंख्या का आर्थिक विकास में वहाँ की जनसंख्या के द्वारा उनके योगदान का अनुमान लगाया जा सकता है।

**तालिका 1**

**मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्य की जनसंख्या**

| जनगणना | मध्यप्रदेश | | छत्तीसगढ़ | |
|---|---|---|---|---|
| | कुल जनसंख्या (हजार में) | दशकीय वृद्धि दर (प्रतिशत में) | कुल जनसंख्या (हजार में) | दशकीय वृद्धि दर (प्रतिशत में) |
| 1951 | 18615 | ....... | 7457 | ....... |
| 1961 | 23218 | 2.47 | 9154 | 2.27 |
| 1971 | 30017 | 2.92 | 11637 | 2.71 |
| 1981 | 38169 | 2.71 | 14010 | 2.03 |
| 1991 | 48566 | 2.71 | 17615 | 2.57 |
| 2001 | 60348 | 2.42 | 20838 | 1.82 |
| 2011 | 72627 | 2.03 | 25545 | 2.25 |

**तालिका 1** के अनुसार दोनों राज्यों में कुल जनसंख्या एवं दशकीय वृद्धि दर के आधार पर अध्ययन करने से ज्ञात होता है की जनगणना 1961 एवं 1971 में दोनों राज्यों में लगभग काफी हद तक एक समान दर से जनसंख्या में वृद्धि हुई है। 1971 की जनगणना के बाद दोनों राज्यों की जनसंख्या वृद्धि दर में कमी आई है परन्तु मध्यप्रदेश राज्य की तुलना में छत्तीसगढ़ राज्य की जनसंख्या दशकीय वृद्धि दर में अधिक कमी आयी है। फिर छत्तीसगढ़ राज्य की जनसंख्या दशकीय वृद्धि दर में वृद्धि होती है और फिर दोनों राज्यों की दरों में समानता आ जाती है इस प्रकार दोनों राज्यों की दशकीय दरों के आधार पर मध्यप्रदेश राज्य की दर में लगभग समान स्तर से निरंतर कमी आई

है परन्तु छत्तीसगढ़ राज्य की दशकीय वृद्धि दर में काफी हद तक परिवर्तन व उतार चढ़ाव देखने को मिला है। वर्तमान जनगणना 2011 में मध्यप्रदेश की दशकीय वृद्धि दर 2.03 प्रतिशत हो गई है एवं छत्तीसगढ़ राज्य की दशकीय वृद्धि दर 2.25 प्रतिशत हो गई है इस प्रकार छः दशकों में पहली बार छत्तीसगढ़ राज्य की दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर में वृद्धि होकर मध्यप्रदेश से अधिक हो गई है। राज्यों में भविष्य की जनसंख्या का अनुमान लगाने पर ज्ञात होता है की वर्ष 1951 में देश की कुल जनसंख्या 36 करोड़ थी जिसमें मध्यप्रदेश की 1 करोड़ 80 लाख ओर छत्तीसगढ़ की लगभग 74 लाख है जो कुल जनसख्ंया का 5 व 2 प्रतिशत का हिस्सा था जो वर्ष 2011 में मध्यप्रदेश की कुल जनसँख्या 7.2 करोड़ एवं छत्तीसगढ़ राज्य की कुल जनसँख्या 2.5 करोड़ जनसंख्या हो गयी किंतु प्रतिशत माप आज भी वही है। 6 प्रतिशत मध्यप्रदेश और 2 प्रतिशत छत्तीसगढ़ राज्य की है जबकि इनकी संख्यात्मक माप में मध्यप्रदेश में 5.4 करोड़ एवं छत्तीसगढ़ राज्य मे 1.8 करोड़ की मात्रात्मक वृद्धि हुई है। दोनों राज्यों क्रमशः वर्ष 1951 से 61 के मध्य 24.7 प्रतिशत मध्यप्रदेश एवं 22.7 छत्तीसगढ़ राज्य की है जो वर्ष 2001 से 2011 के दौरान 20.1 प्रतिशत मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्य की 22.4 प्रतिशत है। दोनों राज्यों की अनुमानित कुल जनसंख्या वर्ष 2021 में मध्यप्रदेश की कुल जनसंख्या लगभग 8 करोड़ तथा छत्तीसगढ़ कुल जनसँख्या लगभग 3 करोड़ होने की संभावना है।

**जन्म एवं मृत्यु दर की प्रवृत्तियां :** किसी देश या राज्य में एक वर्ष में प्रति हजार व्यक्तियों पर जन्म लेने वाले बच्चों की संख्या जन्म दर कहलाती है वहीं मृत्यु दर के संदर्भ में किसी देश में एक वर्ष में प्रति हजार व्यक्तियों पर मरने वाले व्यक्तियों की संख्या मृत्यु दर कहलाती है।[6] किसी देश व राज्य की जनसंख्या की वृद्धि दर एवं स्तर वहाँ की जन्म दर व मृत्यु दर पर निर्भर करती है अर्थात जहाँ जन्म दर अधिक व मृत्यु दर कम हो वहाँ जनसंख्या वृद्धि दर अधिक होती है और जिस क्षेत्र में जन्म दर व मृत्यु दर बराबर हो तो वहा जनसंख्या वृद्धि दर स्थिर होती है इसलिए हर देश की आवश्यकता होती है कि उन्हें जन्म दर एवं मृत्यु दर को बराबर करने का प्रयास किया जाना चाहिए और उपयुक्त व उचित जनसंख्या नीति की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

**तालिकाः 2**

**मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्य की जन्म दर एवं मृत्यु दर**

| वर्ष | मध्यप्रदेश | | छत्तीसगढ़ | |
|---|---|---|---|---|
| | जन्म दर (प्रतिशत) | मृत्यृ दर (प्रतिशत) | जन्म दर (प्रतिशत) | मृत्यृ दर (प्रतिशत) |
| 2007 | 28.5 | 8.5 | 26.5 | 8.1 |
| 2008 | 28.0 | 8.6 | 26.1 | 8.1 |
| 2009 | 27.7 | 8.5 | 25.7 | 8.1 |
| 2010 | 27.3 | 8.3 | 25.3 | 8.0 |
| 2011 | 26.9 | 8.2 | 24.9 | 7.9 |
| 2012 | 26.6 | 8.1 | 24.5 | 7.9 |
| 2013 | 26.3 | 8.0 | 24.4 | 7.9 |
| 2014 | 25.7 | 7.8 | 23.4 | 7.7 |
| 2015 | 25.5 | 7.5 | 23.2 | 7.5 |
| 2016 | 25.1 | 7.1 | 22.8 | 7.4 |

**जन्म दर एवं मृत्यु दर का तुलनात्मक विश्लेषण :** जन्म एवं मृत्यु के बीच का संख्यात्मक माप समान हो तो जनसंख्या स्थिर अवस्था में होने लगती है। जबकि जन्म दर में वृद्धि एवं मृत्यु दर में कमी जनसंख्या के विस्फोट की ओर बढ़ता है। वर्ष 2007 से 2016 के उपलब्ध समंकों की सहायता से ज्ञात होता है कि वर्ष 2007 में मध्यप्रदेश में जन्म दर 28.5 तो मृत्यु दर 8.7 प्रति हजार थी जो वर्ष 2016 में कम होकर 25.1 से 7.1 के स्तर पर हो गयी है वही छत्तीसगढ़ में वर्ष 2007 में जन्म दर 26.5 एवं मृत्यु दर 8.1 से वर्ष 2016 में 22.8 एवं 7. 4 हो गयी है। यदि अध्ययन के प्रत्याशित मापों को देखें तो मध्य प्रदेश में वर्ष 2031 मे जन्मदर 19.5 तथा मृत्यु दर 4.9 होने की सम्भावना है वही छत्तीसगढ़ में वर्ष 2031 मे 16.6 जन्म तथा मृत्यु दर 6.3 होने की पूर्ण संभावना है।

**मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्य में प्रजनन दर :** सामान्य रूप से प्रजननशीलता दर का अर्थ किसी स्त्री या किसी स्त्री समूह द्वारा किसी समय विशेष में कुल सजीव जन्में बच्चों की वास्तविक संख्या से है।[7] इस प्रकार प्रजननशीलता दर की माप किसी समय विशेष में सजीव जन्में बच्चों की आवृत्ति से की जा सकती है। कुल प्रजनन दर बच्चों की वह संख्या है जो किसी भी स्त्री के सम्पूर्ण प्रजनन अवधि में जन्म लेते हैं।

**तालिकाः 3**

**मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्य में प्रजनन दर**

| वर्ष | मध्यप्रदेश | छत्तीसगढ़ |
|---|---|---|
| | कुल प्रजनन दर (प्रतिशत) | कुल प्रजनन दर (प्रतिशत) |
| 2007 | 3.4 | 3.1 |
| 2008 | 3.3 | 3.0 |
| 2009 | 3.3 | 3.0 |
| 2010 | 3.2 | 2.8 |
| 2011 | 3.1 | 2.7 |
| 2012 | 2.9 | 2.7 |
| 2013 | 2.9 | 2.6 |
| 2014 | 2.8 | 2.6 |
| 2015 | 2.8 | 2.5 |
| 2016 | 2.8 | 2.5 |

स्रोतःNITIAayog & Sample Registration System

**प्रजननशील** दर के संदर्भ में दोनों राज्यों के बीच सामान्य अंतर देखने को मिला है, जिसमे वर्ष 2007 में मध्यप्रदेश राज्य की कुल प्रजनन दर 3.4 प्रतिशत थी वहीं छत्तीसगढ़ राज्य की 3.1 प्रतिशत थी इस प्रकार दोनों राज्यों के मध्य मात्र 0.3 प्रतिशत का अंतर था जो बहुत कम है। निरन्तर आगे बढ़ते हुए वर्षो में दोनों राज्यों की कुल प्रजननशील दर में निरंतर कमी आई है और वर्ष 2016 में मध्यप्रदेश राज्य की कुल प्रजनन दर घटकर 2.8 प्रतिशत हो गई वही छत्तीसगढ़ राज्य की 2.5 प्रतिशत हो गई इस प्रकार इन दोनों राज्यों की कुल प्रजनन दर में पुनः 9 वर्षो के बाद भी 0.3 प्रतिशत का ही अंतर रहा है। दोनों राज्यों में कुल प्रजनन दर के संदर्भ में तुलनात्मक दृष्टि से छत्तीसगढ़ राज्य की तुलना में मध्यप्रदेश राज्य की दर अधिक है। परन्तु यह अंतर मात्र 0.3 प्रतिशत है जो सामान्य रूप से दोनों राज्यों में कुल प्रजनन दर के संदर्भ में कोई अधिक अंतर नहीं कहा जा सकता है।

**शिशु मृत्यु दर :** शिशु मृत्यु दर को मुख्य रूप से जन्में बच्चे की प्रथम वर्ष के अन्दर (0-12 माह) में होने वाली मृत्यु से लगाया जाता है। इस प्रकार शिशु मृत्यु दर किसी निश्चित समय और किसी निश्चित क्षेत्र में एक वर्ष से कम आयु (0-12 माह) वाले जन्में बच्चों की होने वाली मृत्यु संख्या को उस निश्चित समय व क्षेत्र के सम्पूर्ण जन्में बच्चों की संख्या से निकाला जाता है एवं यह दर प्रति एक हजार जन्में बच्चों के विरुद्ध मृत्यु होने वाले बच्चों के औसत में ज्ञात किया जाता है।

**तालिकाः 4**

**मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्य की शिशु मृत्यु दर**

| वर्ष | मध्यप्रदेश | छत्तीसगढ़ |
|---|---|---|
| | शिशु मृत्यु दर (प्रति हजार ) | शिशु मृत्यु दर (प्रति हजार ) |
| 2007 | 72 | 59 |
| 2008 | 70 | 57 |
| 2009 | 67 | 54 |
| 2010 | 62 | 51 |
| 2011 | 59 | 48 |
| 2012 | 56 | 47 |
| 2013 | 54 | 46 |
| 2014 | 52 | 43 |
| 2015 | 50 | 41 |
| 2016 | 47 | 39 |

स्रोतः NITIAayog & Sample Registration System

शिशु मृत्यु दर के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि जिस देश या राज्य में शिशु मृत्यु दर अधिक होती है इसका सीधा सम्बन्ध वहां की स्वास्थ्य सुविधाओं से जोड़ा जाता है अर्थात जहाँ स्वास्थ्य सुविधाएं कम होती हैं वहां की शिशु मृत्यु दर अधिक होती है। प्रत्येक देश व प्रदेश द्वारा शिशु मृत्यु दर में कमी के लिए हमेशा स्वास्थ्य सुविधाओं में प्रगति की ओर और अधिक ध्यान दिया जाता है। दोनों राज्यों के बीच तुलनात्मक अध्ययन करने पर मुख्य रूप से यह देखने को मिला है की वर्ष 2007 में मध्यप्रदेश की कुल शिशु मृत्यु दर प्रति एक हजार बच्चों के विरुद्ध मात्र 72 थी वहीं छत्तीसगढ़ राज्य की दर 59 प्राप्त हुई है दोनों राज्यों के बीच छत्तीसगढ़ राज्य की दर कम है। शिशु मृत्यु दर कम होना कहीं न कहीं मध्यप्रदेश से छत्तीसगढ़ राज्य की स्वास्थ्य सुविधाओं को बेहतर दिखाता है। वर्षानुसार शिशु मृत्यु दर में दोनों राज्यों में निरंतर कमी आयी है वर्ष 2016 में मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ़ राज्यों की शिशु मृत्यु दर क्रमशः 47 व 39 है जो यह स्पष्ट करता है कि दोनों ही राज्यों में स्वास्थ्य सुविधाओं में विस्तार किया जा रहा है एवं स्वास्थ्य क्षेत्र में आधुनिकीकरण के साथ साथ शिशु मृत्यु दर पर नियंत्रण के लिए विशेष प्रयास किये जा रहे हैं, परन्तु अभी भी शिशु मृत्यु दर को शून्य तक लाने के लिए दोनों राज्यों को विशेष कदम उठाने की आवश्यकता अनुभव की जा सकती है। तालिका 4 के अनुसार शिशु मृत्यु दर का वर्षानुसार आंकड़ों के आधार पर यह प्राप्त होता है कि छत्तीसगढ़ राज्य की शिशु मृत्यु दर मध्यप्रदेश राज्य की दर से कम रही है।

**जनसंख्या संरचना व जन्म एवं मृत्यु दर के संदर्भ में सुझाव**

1. जनसंख्या वृद्धि दर के विषय में कहा जा सकता है की अभी भी दोनों राज्यों में जनसंख्या वृद्धि दर में निरंतरता बनी हुई है। जनसंख्या वृद्धि दर में नियंत्रण के लिए सरकार को प्रदेश में परिवार नियोजन कार्यक्रम, लोगो में जनसंख्या के प्रति जन जागरूकता का प्रसार, छोटे परिवार की महत्ता आदि पर अधिक जोर देने की आवश्यकता है।
2. जन्म दर के संदर्भ में दोनों राज्यों में अभी भी जन्म दर में कमी लाने की आवश्यकता है। जन्म दर में कमी लाने के लिए दोनों राज्यों को परिवार नियोजन की नीति को प्रभावी रूप से लागू करने की आवश्यकता है एवं जनसामान्य में परिवार नियोजन को अपनाने के लिए सरकार की ओर से सरल एवं उचित नीतियों को बढ़ावा दिए जाने की जरुरत है।
3. मृत्यु दर के संदर्भ में दोनों राज्यों में वर्तमान वर्षो के आधार पर देखने से स्पष्ट होता है की मृत्यु दर स्थिर दिखाई दे रही है उनमे कुछ वर्षो से कोई गिरावट नहीं आई है जो कहीं न कहीं उसे कम करने की जरुरत है और उसके लिए स्वास्थ्य सुविधाओं को और अधिक मजबूत करने की आवश्यकता है। दोनों राज्यों में ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाली जनसंख्या अधिक है इसलिए स्वास्थ्य सुविधाओं को ग्रामीण स्तर पर प्रसार एवं अधिक बल देने की आवश्यकता है।
4. प्रजनन दर को दोनों राज्यों में अभी भी कम करने की आवश्यकता है प्रजनन दर 2 तक लाने की आवश्यकता है। छत्तीसगढ़ राज्य से मध्यप्रदेश राज्य को अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि दोनों राज्यों में मध्यप्रदेश की प्रजनन दर अधिक है। प्रजनन दर को कम करने के लिए सरकार द्वारा बाल विवाह पर नियंत्रण, जनसामान्य में पुत्र मोह को कम करना, मातृत्व मृत्यु दर में कमी, ग्रामीण महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि, ग्रामीण स्तर पर छोटे परिवार के प्रति जागरूकता लाना आदि कदम उठाने की जरुरत है जिससे प्रजनन दर को नियंत्रित किया जा सकता है।
5. शिशु मृत्यु दर को और कम करने की आवश्यकता है इसके लिए अधिक से अधिक ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य स्तर को बढ़ावा, कुपोषण से मुक्ति एवं मातृत्व स्वास्थ्य सेवाओं में वृद्धि करने की आवश्यकता है।
6. मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ दोनों राज्यों में जनसँख्या वृद्धि दर को अनूकूलतम दर में लाने के लिए जन्म दर एवं मृत्यु दर अर्थात दोनों दरों में समानता एवं स्थिर करने की आवश्यकता है। जनसंख्या अनूकूलतम दर के संन्दर्भ में दोनों राज्यों में विशेष प्रयास करने की आवश्यकता है एवं इस हेतु स्वास्थ्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है साथ ही जनसँख्या के जीवन स्तर में वृद्धि करने की आवश्यकता है।
7. किसी भी राज्य या देश की जनसँख्या का आकार व

संरचना वहाँ के आर्थिक विकास को सीधा प्रभावित करती है एवं उसी प्रकार आर्थिक विकास भी जनसँख्या की गुणवत्ता को सीधा प्रभावित करता है। इसलिए सर्वप्रथम देश एवं राज्यों के द्वारा प्रतिव्यक्ति आय को अधिक से अधिक करने का प्रयास किया जाना चाहिए जो अंततः जनसँख्या की गुणवत्ता को बढ़ाने मे सहायक होगी। इस संदर्भ में दोनों राज्यों में प्रति व्यक्ति आय जनसँख्या के आधार पर कम पायी गई है जिसमें दोनों राज्यों को वृद्धि करने की आवश्यकता है।

8. मध्यप्रदेश एंव छत्तीसगढ़ राज्यों में अधिकांश रूप से जनसँख्या ग्रामीण क्षेत्रों मे निवास करती है एवं ग्रामीण क्षेत्र मुख्य रूप से अधिकांश शहरों की अपेक्षा पिछड़े होने के कारण वहां की जनसँख्या अधिकतर अशिक्षित, बेरोजगार, गरीबी कुपोषित एवं निम्न सामाजिक स्तर आदि पिछड़ापन कही न कही प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप सें जन्म व मृत्यु दर को असंतुलित एवं वृद्धि करने में महत्वपूर्ण भमिका होती है जिसें पूरी तरह से हल करने में जन्म व मृत्यु दर को संतुलित एवं दोनों में कमी लायी जा सकती है।

**निष्कर्ष** : उपरोक्त अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि अध्ययन क्षेत्र में आज भी जनांकिकीय सरंचना में बहुत अधिक अंतर न होने के साथ साथ कुछ जैसे दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर के आधार पर वर्तमान में अचानक छत्तीसगढ़ राज्य की जनसंख्या में वृद्धि हुई है। जन्म दर एवं मृत्यु दर के संदर्भ में दोनों राज्यों में कोई विशेष अधिक अंतर नहीं है, मृत्यु दर में जरुर अचानक छत्तीसगढ़ राज्य की वर्तमान वर्ष में वृद्धि हुई है परन्तु दोनों राज्यों की तुलना की जाये तो स्पष्ट है की मध्यप्रदेश की अपेक्षा छत्तीसगढ़ राज्य की दोनों दरें बेहतर व कम हैं। जन्म दर एवं मृत्यु दरों को कम करने के लिए दोनों राज्यों को ग्रामीण स्तर पर स्वास्थ्य सुविधाओं, महिला शिक्षा का प्रसार एवं परिवार नियोजन को ओर अधिक प्रभावी ढंग से लागू करने की आवश्यकता है। प्रजनन दर के सन्दर्भ में भी दोनों राज्यों में वर्तमान प्राप्त आकड़ों के आधार पर परिवार नियोजन द्वारा निर्धारित बच्चों की संख्या के अनुकूल प्रजनन दर अधिक है और साथ ही शिशु मृत्यु दर के विषय में भी दोनों राज्यों में काफी अंतर है और छत्तीसगढ़ राज्य की दर मध्यप्रदेश से अच्छी है। इस प्रकार सम्पूर्ण रूप से कहा जा सकता है की जनांकिकीय संरचना के संदर्भ में मध्यप्रदेश से छत्तीसगढ़ राज्य की जनांकिकीय संरचना बेहतर है।

## संदर्भ


1. Charles Wolf, Dalal S., Vanzo J. D., Larson E. V.,Akhmedjonov A., Dogo H., Huang M.And Montoya S. *'China And India, 2025:A ComparativeAssessment'*, RAND Corporation, Pittsburgh, 2011, p. 35.
2. Sinha V. C. *'Elements of Demography'* Mayur Paperbacks, Noida, 2009, p. 267.
3. Shrivastava O. S. *'Demography Population Studies'* Quaslity Publishing Company, Bhopal, 2004, p. 66.
4. Rawat R. *'Levels, Trends And Mortality Differentials in Two Major States in India: A Comparative Analysis'* AASCIT Journal of Bioscience, Issue 1(4), 2015, p. 65-71.
5. Lakshmana C. M. *'Demographic Change And Gender Inequality:A Comparative study of Madhya Pradesh And Karnataka'* Institute for SocialAnd Economic change, Bengaluru, Working Paper 183, 2007, p. 1-18.
6. मिश्रा, जयप्रकाश, 'जनांकिकी', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2013, पृ. 126
7. Jhingan M. L., Bhatt B. K. And Desai J. N. *'Demography'* Vrinda Publications, Delhi, 2019, p. 19.
8. Yadava K. N. S. And Yadava S. S. *'Women's Status And Fertility in Rural India'* The History of the Family:An International Quarterly, Elsevier, 1999, Volume 4, Number 2, p. 209-228.
9. Meitei M. H. *'Demographic Situation of Manipur, India'* Handbook of Statistics, Elsevier, Vol. 40, 2019.
10. Rele J. R. *'Planning for Development And Population Growth in India'* Journal of Human Evaluation, Elsevier, Vol. 7, 1978.
11. गुप्ता, एस. एन., 'जनांकिकी के मूलतत्व' वृंदा पब्लिकेशन प्रा. लि., दिल्ली, 2017
12. Misra S. K.And Puri V. K. *'Indian Economy'* Himalaya Publishing House, New Delhi, 2019.
13. Joshi H. P., Bhavisha And Singh K. *'An Analysis of Levels And Trends InInfant And Child Mortality Rates in India'*, Project Study, National Institute of Public CooperationAnd Child Development, New Delhi, 2014.
14. https://niti.gov.in/content/birth-rate
15. https://niti.gov.in/content/death-rate
16. http://niti.gov.in/content/infant-mortality-rate-imr-1000-live-births
17. http://niti.gov.in/content/total-fertility-rate-tfr-birth-woman

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# उत्तर प्रदेश में आपदा प्रबन्धन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

❑ भूपेन्द्र प्रताप सिंह
❖ डॉ. रूपेश कुमार सिंह

आपदा उत्तर प्रदेश के लिए कोई नई घटना नहीं है, उत्तर प्रदेश का अधिकांश हिस्सा सूखा, बाढ़, भूकम्प, ओलावृष्टि एवं अग्निकाण्ड जैसी अनेक आपदाओं को सदियों से झेलता आ रहा है। उत्तर प्रदेश के 240.93 लाख हे0 भूमि में से 73.06 लाख हेक्टेयर भूमि बाढ़ प्रभावित क्षेत्र है।[1] उत्तर प्रदेश के लगभग 50 जिलों में सूखे की आशंका मंडराती रहती है। वर्ष 2002 एवं 2004 में हुए भयंकर सूखे से इन दोनों वर्षों में क्रमशः 7540 करोड़ एवं 7292 करोड़ की आर्थिक क्षति हुई।[2] उत्तर प्रदेश का लगभग साठ प्रतिशत से ज्यादा भू-भाग विभिन्न तीव्रताओं के भूकम्प संभावना वाला क्षेत्र है। उत्तर प्रदेश के अनेक जिलों में प्रतिवर्ष ओलावृष्टि की घटना घटती रहती है। गर्मियों में अग्निकाण्ड की घटना गाँवों में अधिक होती है। आपदाएं समुदाय की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक स्थिति में ह्रास के साथ-साथ सम्पूर्ण जीवनशैली, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं व्यवसाय सभी पर व्यापक दुष्प्रभाव डालती हैं। आपदायें प्रभावित क्षेत्र में सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर देती हैं। आपदा प्रबन्धन एक बहुआयामी विषय है। इसमें मौसम पूर्वानुमान, पूर्व चेतावनी, बचाव, राहत और पुनर्वास सन्निहित हैं। उत्तर प्रदेश में विभिन्न स्तरों पर यथा राज्य स्तर पर राज्य आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण, जिला स्तर पर जिला आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण एवं स्थानीय स्तर पर स्थानीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण के माध्यम से विभिन्न कार्यक्रमों, सेवाओं एवं कार्यकलापों के द्वारा आपदाओं का प्रबन्धन किया जाता है। बेहतर आपदा प्रबन्धन प्रणाली होने पर आपदा के कारण क्षतिग्रस्त सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ कर लिया जाता है एवं समाज में सामान्य सेवा प्रणाली विकसित हो जाती है।

**मानव** जीवन में पर्यावरण का एक अहम स्थान है। मनुष्य के पर्यावरण से अन्तःक्रिया के फलस्वरूप पर्यावरणीय साम्यता स्थापित होती होती है। समाज के लिए यह अत्यन्त ही आवश्यक है कि यह अर्न्तसम्बन्ध हमेशा कायम रहे। लेकिन इस सम्बन्ध में व्यवधान उत्पन्न होता है या सम्बन्ध टूट जाता है तो कहीं न कहीं यह टूटा हुआ सम्बन्ध आपदाओं को आमंत्रित करता है।[3] वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में उत्तर प्रदेश ही नहीं वरन् पूरा विश्व ही विकास के अन्धाधुन्धकरण में पर्यावरणीय महत्त्व को बिल्कुल भूल ही गया है जिसके परिणामस्वरूप पूरे विश्व में आपदा की तीव्रता एवं बारम्बारता में बहुत ही द्रुत गति से वृद्धि हो रही है। इन आपदाओं से केवल आर्थिक या भौतिक नुकसान ही नहीं होता अपितु असंख्य मानव जीवन इनका शिकार बन जाते हैं।[4]

**राष्ट्रीय** आपदा प्रबन्धन अधिनियम 2005 के अनुसार[5]– ''आपदा किसी समुदाय या समाज के कामकाज में एक गंभीर बाधा या व्यवधान है जिसके कारण बड़े पैमाने पर मानवीय, आर्थिक, पर्यावरणीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षति होती है जो उस समुदाय या समाज द्वारा अपने संसाधनों का उपयोग करते हुए इससे सामना करने की क्षमता से परे है।''

**विश्व** स्वास्थ्य संगठन[6] ने आपदा को इस प्रकार से परिभाषित किया है– कोई भी घटना जिसके कारण भौतिक क्षति, पर्यावरणीय अवनति, मानव जीवन की क्षति एवं स्वास्थ्य या स्वास्थ्य सेवाओं का विघटन उस विस्तृत पैमाने पर होता है, जब प्रभावित सामुदायिक क्षेत्र को विशेष रूप से बाह्य हस्तक्षेप की जरूरत होती है, आपदा की संज्ञा दी जाती है।''

**टी. नन्दकुमार**[7] ने आपदाओं के सन्दर्भ में उल्लेख किया है कि आपदायें चाहें मानव निर्मित हों या प्राकृतिक, व्यापक सामाजिक व्यवधान उत्पन्न करती हैं। आपदाओं के कारण समुदाय का कोई एक पक्ष ही नहीं वरन् सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, शिक्षा, स्वास्थ्य, आदि सभी पक्ष प्रभावित होते हैं।

**कैनन**[8] ने आपदाओं का अध्ययन किया और यह कहा कि आपदा उस परिस्थिति को इंगित करती है जब समाज का एक बड़ा पक्ष प्रकोप से प्रभावित होता है जिसकी वजह से आजीविका, जीवन तथा परिसम्पत्तियों का व्यापक नुकसान होता है।

**लिंडैल एवं** प्रैटर[9] ने आपदा के प्रभाव को भौतिक एवं सामाजिक प्रभाव के रूप में वर्गीकृत किया है। भौतिक पक्ष में जनहानि एवं सम्पत्ति के नुकसान को सम्मिलित किया है तथा सामाजिक

❑ शोध अध्येता समाजशास्त्र, सामाजिक विज्ञान एवं समाजकार्य विभाग, डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
❖ असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, सामाजिक विज्ञान एवं समाजकार्य विभाग, डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास वि.वि., लखनऊ (उ.प्र.)

पक्ष में मनोवैज्ञानिक प्रभाव, जनांकिकी प्रभाव एवं सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों को सम्मिलित किया है।

**सत्ता**[10] का अध्ययन उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के सन्दर्भ में है। इन्होंने आपदाओं की प्रकृति के बारे में अध्ययन किया और बताया कि आपदा का प्रभाव बहुआयामी होता है। आपदा प्रभावित क्षेत्र के लोगों की सामाजिक, आर्थिक जीवन एवं व्यक्ति के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती है। इन्होंने बताया कि एक अच्छी आपदा प्रबन्धन प्रणाली विकसित करके आपदाओं के प्रभाव को सीमित किया जा सकता है।

**पवन**[11] ने अपने शोध में यह उल्लेख किया है कि प्राचीन भारत संस्कृतिपरक था इसलिए आपदाओं का सामना और समाधान भी वह संस्कृति एवं समाज के आधार पर ही करने में सक्षम था किन्तु वर्तमान समाज सभ्यतापरक है जिसमें व्यक्ति विशेष के हितों का संरक्षण समाज की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। फलतः आपदाओं की संख्या एवं उनके नये-नये प्रकार बढ़ते जा रहे हैं जिसकी रोकथाम के लिए विशेष प्रकार की आपदा प्रबन्धन प्रणाली की आवश्यकता है।

**सिन्हा**[12] ने आपदा के बारे में अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन निकाय, राज्यस्तरीय आपदा प्रबन्धन निकाय तथा जिला आपदा प्रबन्धन निकाय की आपदा प्रबन्धन में महत्वपूर्ण भूमिका है, जो पारस्परिक रूप से राहत केन्द्रित उपागम के स्थान पर आपदा से निपटने की तैयारी, आपदा के प्रभाव को कम से कम करना, आपदा से प्रभावित लोगों के पुनर्वास और पुनर्निमाण तथा आपातकालीन जैसे मुद्दों को सुदृढ़ करने के समग्र एवं सम्बन्धित उपागम पर अधिक ध्यान देते हैं।

**नरेन्द्र**[13] ने अपने शोध में आपदा प्रबन्धन में समुदाय के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि सरकारी अधिकारियों एवं ग्रामवासियों के बीच आपदा जोखिम की अच्छी समझ आपदा प्रबन्धन में एक महत्वपूर्ण कदम होता है।

**बन्दोपाध्याय**[14] (1997) ने आपदा प्रबन्धन विषय पर अध्ययन किया एवं निष्कर्ष निकाला कि सरकारी संस्थायें दावा करती हैं कि वे आपदा शमन के लिए पूरा प्रयास करती हैं लेकिन उनका प्रयास बिल्कुल ही संगठित एवं टाप-डाउन उपागम के साथ तकनीकी किस्म का होता है जो कि आपदा प्रबन्धन के सामुदायिक अनुभव को उपेक्षित करता है।

**मानव** समाज के विकास के अन्धाधुन्धकरण के कारण प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले नुकसान, उसकी तीव्रता एवं बारम्बारता में तेजी से वृद्धि हो रही है। प्राकृतिक आपदाओं की मारक क्षमता तथा आपदाओं से होने वाली क्षति के प्रति चिन्ता निरन्तर बढ़ती जा रही है तथा इनसे उत्पन्न जान-माल की क्षति दिनों-दिन बढ़ती जा रही है।

**अध्ययन का उद्देश्य**

1. उत्तर प्रदेश में घटित होने वाली प्रमुख आपदाओं की जानकारी प्राप्त करना।
2. आपदा पीड़ितों की मुख्य समस्याओं को समझने का प्रयास करना।
3. उत्तर प्रदेश में आपदा प्रबन्धन के लिए चलाई जा रही सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों की योजनाओं, कार्यक्रमों एवं प्रयासों की जानकारी प्राप्त करना।
4. उत्तर प्रदेश की आपदा प्रबन्धन प्रणाली को समझना।

**अध्ययन पद्धति :** प्रस्तुत शोध अध्ययन गुणात्मक एवं गणनात्मक अध्ययन पद्धति पर आधारित है। मुख्यतया द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त आँकड़ों के उपयोग के साथ-साथ अवलोकन विधि के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से आपदा पीड़ितों के जीवन स्तर एवं रहन सहन तथा आपदा पीड़ितों की वर्तमान स्थिति एवं उनके द्वारा झेली जा रही समस्याओं को समझने का प्रयत्न किया गया है। समूह चर्चा के माध्यम से सरकार एवं अन्य संस्थाओं के द्वारा चलाई जा रही पुनर्वास सम्बन्धी कार्यक्रमों एवं योजनाओं एवं उनकी गुणवत्ता के सन्दर्भ में सूचनाएँ एकत्र की गई हैं। जन सूचना अधिकार के माध्यम से भी अनेक सरकारी संस्थाओं से आपदा से सम्बन्धित तथ्यों को प्राप्त किया गया है।

**आपदा** के संदर्भ में उत्तर प्रदेश अत्यन्त ही संवेदनशील राज्य है। समय के साथ आपदाओं की तीव्रता एवं बारम्बारता में भी बढ़ोत्तरी हुई है। नदियों से घिरे होने के कारण उत्तर प्रदेश हमेशा से ही बाढ़ प्रभावित क्षेत्र रहा है। पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक बड़ा भू-भाग प्रत्येक वर्ष जलमग्न हो जाता है जिससे बड़े पैमाने पर जन एवं धन की क्षति होती है। पूर्वी उत्तर प्रदेश की घाघरा एवं राप्ती नदियाँ कटान एवं मार्ग परिवर्तन हेतु कुख्यात हैं। इन नदियों ने कई जिलों में अनेक गाँवों का अस्तित्व ही समाप्त कर दिया है।[15]

**उत्तर** प्रदेश में बाढ़ के अतिरिक्त सूखा एक ऐसी आपदा है जिसमें कोई त्वरित बचावकारी कार्य संभव नहीं हो पाता है। अन्य शब्दों में कहा जाय तो सूखा एक ऐसी स्थिति है जिसके अन्तर्गत एक क्षेत्र विशेष में वर्षा की कमी के चलते दीर्घ समय के लिए जल तथा नमी की कमी हो जाती है जिसके कारण वनस्पतियाँ नष्ट होने लगती हैं, मिट्टी में दरारें

पड़ जाती हैं एवं भूमि फट जाती है। इससे उस क्षेत्र के लोग बुरी तरह से प्रभावित होना शुरू हो जाते हैं फलस्वरूप क्षेत्र से पलायन प्रारम्भ हो जाता है। उत्तर प्रदेश का बुन्देलखण्ड क्षेत्र वर्षा की कमी के चलते सूखे से बुरी तरह से प्रभावित है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश भूक्षरण, ओलावृष्टि, जलभराव, लू एवं गर्म हवाएँ, सर्दियों में शीत लहर, चक्रवात एवं गर्मियों में आग लगने की घटना से भी प्रत्येक वर्ष बुरी तरह से प्रभावित होता है।

**प्राकृतिक** आपदाएँ अर्थव्यवस्था, खाद्य सुरक्षा, कृषि, जल, पर्यावरण, स्वच्छता एवं स्वास्थ्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। उत्तर प्रदेश आर्थिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ है। यहाँ की अर्थव्यवस्था कमोवेश कृषि पर ही आधारित है। कृषि पर प्राकृतिक आपदाओं का सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ता है, आपदाओं के कारण लोगों की फसलें नष्ट हो जाती हैं जिससे यहाँ के लोग जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से ही वंचित हो जाते हैं। उचित प्रबन्धन के अभाव में उत्तर प्रदेश में प्रत्येक वर्ष अपार मानवीय जन-धन की हानि होती है। यद्यपि प्राकृतिक आपदा को एकाएक रोका नहीं जा सकता एवं समाप्त नहीं किया जा सकता फिर भी आपदा के उचित प्रबन्धन के द्वारा इसके प्रभाव को कम या न्यूनतम स्तर पर लाया जा सकता है।

**उत्तर प्रदेश में आपदाओं से निपटने की रणनीति :**

**बाढ़ से निपटने की रणनीति :** बाढ़ के संदर्भ में उत्तर प्रदेश की स्थिति अन्य प्रदेशों की अपेक्षा अत्यन्त गम्भीर है क्योंकि भौगोलिक क्षेत्रफल की दृष्टि से उत्तर प्रदेश देश का चौथा सबसे बड़ा राज्य होने के साथ-साथ देश का सर्वाधिक जनसंख्या वाला प्रदेश है।[16] पिछले कुछ वर्षों में प्रदेश में बाढ़ के क्रम में वृद्धि के साथ-साथ उसकी तीव्रता में बढ़ोत्तरी हुई है जिसका सीधा प्रभाव प्रदेश में निवास कर रहे आम समुदाय विशेषकर ग्रामीण समुदाय के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति में ह्रास के रूप में निरन्तर देखने को मिलता है। बाढ़ के संदर्भ में पूरे उत्तर प्रदेश की स्थिति एक समान नहीं है, उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में जहाँ सूखे की प्रबल आशंका बनी रहती है वहीं उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में प्रत्येक वर्ष भयंकर बाढ़ आती है।

**विश्व** स्वास्थ्य संगठन के अनुसार उत्तर प्रदेश के 240.93 लाख हेक्टेयर भूमि में से 73.06 लाख हेक्टेयर भूमि बाढ़ प्रभावित क्षेत्र है। भारत के कुल बाढ़ के संदर्भ में उत्तर प्रदेश का हिस्सा 21.90 प्रतिशत है। नदियों से घिरे होने के कारण पूर्वी उत्तर प्रदेश हमेशा से बाढ़ प्रभावित क्षेत्र रहा है। पूर्वी उत्तर प्रदेश, घाघरा, राप्ती, सरयू, गंडक, गंगा एवं इनकी सहायक नदियों से घिरे होने के कारण पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक बड़ा भू-भाग प्रत्येक वर्ष एक लम्बे समय के लिए जलमग्न हो जाता है। इसके कारण इस क्षेत्र में पूरा जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है और इसका सीधा प्रभाव आम वर्ग विशेषतया ग्रामीण जीवन पर देखने को मिलता है। ग्रामीण समुदाय की आजीविका का मुख्य स्रोत कृषि होने के कारण ग्रामीण समुदाय पर बाढ़ का सीधा एवं प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। बाढ़ के दौरान इनकी आधारभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा एवं मकान पर ही संकट मंडराने लगता है।

**बाढ़** की रोकथाम के लिए उत्तर प्रदेश के प्रत्येक जिले में जिला कलेक्टर अपने जिले के लिए योजना बनाते हैं। इस योजना में उन स्थानों को चिन्हित करने का प्रयास किया जाता है जहाँ बाढ़ आने का खतरा रहता है। बाढ़ से निपटने के लिए वह सभी प्रयत्न किए जाते हैं जिससे कि बाढ़ का पानी मानव आवासित इलाकों में अचानक से न आने पाये जिससे लोगों को डूबने से बचाया जा सके। बरसात प्रारम्भ होने से पहले ही तटबन्धों की मरम्मत, नदियों की सफाई, जल निकास के अन्य माध्यमों की सफाई कर ली जाती है। साथ ही साथ बाढ़ आने की स्थिति उत्पन्न होने से पूर्व ही लोगों को ठहराने के लिए सुरक्षित भवनों का भी चयन कर लिया जाता है। बाढ़ की स्थिति उत्पन्न होने के बाद साफ-सफाई, पेयजल व्यवस्था, विद्युत, सफाई व्यवस्था, आवास एवं सड़कें क्षतिग्रस्त हो जाती है।[17] इसके लिए सम्बन्धित विभाग उन सारी व्यवस्थाओं को युद्धस्तर पर ठीक कर जनता को राहत प्रदान करने की व्यवस्था करते हैं।

**उत्तर प्रदेश में बाढ़ क्षेत्र से संलग्न विभिन्न विभाग एवं उनके कार्य**

| विभाग | कार्य |
|---|---|
| सीमा सुरक्षा बल | आपदा के प्रभाव को न्यूनतम करना, राहत सामग्री वितरित करना, बाढ़ में फंसे लोगों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाना आदि। |
| मृदा संरक्षण विभाग | मिट्टी उर्वरता की जाँच करना, भूक्षरण एवं मिट्टी को उर्वर बनाने के लिए किसानों को तकनीकी सलाह प्रदान करना |

| | |
|---|---|
| | आदि। |
| पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास विभाग | सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों को लागू करना, मनरेगा के द्वारा रोजगार प्रदान करना, बाढ़ के दौरान स्थानीय व्यक्ति का त्वरित उपयोग करना आदि। |
| स्वास्थ्य विभाग | बीमारियों की रोकथाम, जागरुकता का प्रसार, स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना आदि। |
| शिक्षा विभाग | मिड-डे मील की व्यवस्था, पठन-पाठन की व्यवस्था आदि। |
| राजस्व विभाग | क्षेत्र की पहचान, भू सुधार आदि। |
| कृषि विभाग | फसलों की क्षति के लिए मुआवजा प्रदान करना, बीज एवं उर्वरक छूट पर प्रदान करना आदि। |
| खाद्य एवं रसद विभाग | खाद्यान्न आपूर्ति से सम्बन्धित कार्य। |
| विद्युत विभाग | विद्युत एवं प्रकाश की व्यवस्था। |
| राहत एवं पुनर्वास विभाग | राहत एवं पुनर्वास सम्बन्धी सेवाएँ प्रदान करना |
| राज्य आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण | आपदा जोखिम को कम करना, आपदा के समय विभिन्न सेवाएँ उपलब्ध कराना, पुनर्निर्माण करना। |
| पशुपालन विभाग | टीकाकरण, चारे की व्यवस्था, पशुओं में फैलने वाली विभिन्न बीमारी एवं उनसे बचाव की जानकारी प्रदान करना। |

Source : http//rahat.up.nic.in

**बाढ़ के** दौरान तात्कालिक राहत के लिए नावों, पानी निकालने के लिए पम्पिंग सेट, गोताखोरों की व्यवस्था, यातायात साधनों की व्यवस्था, बाढ़ प्रभावित लोगों को सुरक्षित जगह पर पहुँचाने के लिए रणनीति तैयार की जाती है। बाढ़ के समय सुरक्षित पेयजल, भोजन, दवाएँ एवं मवेशियों के लिए चारे की व्यवस्था की भी रणनीति तैयार की जाती है। भविष्य में उत्तर प्रदेश की जनसंख्या बाढ़ से न प्रभावित हो इसके लिए प्रशासन यह कोशिश करता है कि लोग निचले क्षेत्रों, नदियों एवं नालों के किनारे न बसने पायें तथा जिन लोगों के मकान ऐसे संवेदनशील इलाकों में बने हैं उन्हें चरणबद्ध तरीके से सुरक्षित स्थान पर बसने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसके लिए लोगों को प्रशासन की तरफ से निःशुल्क भूखण्ड भी प्रदान किये जाते हैं।[18]

उत्तर प्रदेश में बाढ़ नियंत्रण एवं बचाव के लिए सिंचाई विभाग को नोडल एजेन्सी बनाया जाता है।[19] सिंचाई विभाग समय-समय पर बाढ़ नियंत्रण एवं रोकथाम के लिए सम्बन्धित जिला कलेक्टरों को दिशा निर्देश प्रदान करता है। बाढ़ खत्म होने के बाद प्रत्येक जिले में बाढ़ द्वारा क्षति का आकलन किया जाता है। क्षति के हिसाब से लोगों को मुआवजा प्रदान किया जाता है।

**सूखा से निपटने की रणनीति :** सूखा एक प्रकार की विशिष्ट आपदा है क्योंकि इसमें कोई त्वरित बचावकारी कार्य संभव नहीं है। परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि सूखा कभी भी अचानक से नहीं आता। इसके लक्षण पहले से ही दृष्टिगोचर होने लगते हैं। प्रमुख लक्षण मानसून का देर से आगमन, मानसून की कमजोर स्थिति, तापमान की विसंगति आदि है। ऐसी स्थिति में सूखे से निपटने के लिए तैयारी काफी समय पूर्व ही प्रारम्भ हो जानी चाहिए। वैज्ञानिकों के अनुसार सूखा वह अवस्था या स्थिति है जिसमें एक क्षेत्र विशेष में वर्षा के लम्बे समय तक अभाव के चलते नमी की मात्रा निम्न हो जाती है। इस स्थिति में प्राकृतिक वनस्पतियाँ तो नष्ट ही होती हैं साथ ही जीव-जन्तु एवं मानव जगत के जीवन पर भी खतरा मंडराने लगता है। जलस्तर इतना ज्यादा गिर जाता है कि जल का विदोहन करना असंभव होता है। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग के अनुसार सूखा उस दशा को इंगित करता है जब किसी विशेष क्षेत्र में वास्तव में हुई वर्षा सामान्य वर्षा से 75 प्रतिशत कम हो। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग ने सूखे के स्वरूप को दो वर्गों में विभक्त किया है। पहला प्रचंड सूखा है जिसमें वर्षा सामान्य वर्षा से 50 प्रतिशत कम होती है। दूसरा सामान्य सूखा है इसमें वर्षा सामान्य वर्षा से 25-50 प्रतिशत कम होती है।[20]

**भारत में सूखा प्रभावित क्षेत्र (2015-16)**

| प्रदेश का नाम | कुल जिलें | सूखा प्रभावित |
|---|---|---|
| कर्नाटक | 30 | 27 |
| छत्तीसगढ़ | 27 | 25 |
| मध्य प्रदेश | 51 | 46 |
| महाराष्ट्र | 36 | 21 |

| | | |
|---|---|---|
| उड़ीसा | 30 | 27 |
| आन्ध्र प्रदेश | 13 | 10 |
| उत्तर प्रदेश | 75 | 50 |
| तेलंगाना | 10 | 7 |
| झारखण्ड | 24 | 22 |
| राजस्थान | 33 | 19 |

स्रोत : लोकसभा में तारांकित प्रश्न संख्या-21 का उत्तर द्वारा कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री श्री राधा मोहन सिंह, दिनांक 26.04.2016

**उत्तर प्रदेश** के कई क्षेत्र जहाँ एक ओर बाढ़ से ग्रसित हैं वहीं दूसरी ओर अनेक जिले प्रतिवर्ष सूखे से बुरी तरह से प्रभावित होते हैं। जहाँ ज्यादा वर्षा के क्षेत्र में वर्षा की सकारात्मक विचलनशीलता से बाढ़ की समस्या उत्पन्न हो जाती है वहीं अपेक्षाकृत निम्न वर्षा के क्षेत्रों में नकारात्मक विचलनशीलता सूखे का कारण बनती है। सूखे का उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था के कई क्षेत्रों पर नकारात्मक असर पड़ता है। सूखे का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार का प्रभाव होता है। प्रत्यक्ष प्रभाव को खाद्यान्नों के उत्पादन में कमी, अग्नि दुर्घटना में वृद्धि, घटता जल स्तर, जीव जन्तुओं की तीव्र मृत्युदर आदि के रूप में देखा जा सकता है। अप्रत्यक्ष प्रभाव को कृषकों की घटती आय, घटता हुआ कृषि उद्योग, बढ़ती हुई खाद्यान्न कीमतें, बेरोजगारी का बढ़ता हुआ स्तर, घटती हुई क्रयशक्ति क्षमता, कृषि ऋण का न चुका पाना, बढ़ता हुआ प्रवास आदि के रूप में देखा जा सकता है। साथ ही हाल के वर्षों में सूखा प्रभावित क्षेत्रों में किसानों द्वारा आत्महत्याओं की घटना देखने में आ रही है और इसमें तेजी से वृद्धि भी हो रही है।

**उत्तर प्रदेश** में देश के कुल खाद्यान्न का लगभग 21 प्रतिशत खाद्यान्न में उत्पादित होता है यही कारण है कि कृषि की दृष्टि से उत्तर प्रदेश एक महत्वपूर्ण राज्य है। यद्यपि उत्तर प्रदेश में कुल शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल 25.30 मिलियन हेक्टेयर में से 17.69 मिलियन हेक्टेयर सिंचित है परन्तु इस क्षेत्र में भी अधिकांश भाग मानसून पर निर्भर रहता है।[21] जिस वर्ष अच्छा मानसून हुआ फसलें अच्छी होतीं परन्तु जिस वर्ष मानसून कमजोर हुआ सूखे की स्थिति पैदा हो जाती है। दूसरी तरफ सिंचाई के लिए भूमिगत जल के लगातार विदोहन से जलस्तर तेजी से नीचे गिरता जा रहा है। वर्ष 2002 एवं 2004 में उत्तर प्रदेश भयंकर सूखे के चपेट में रहा इन दोनों वर्षों में सूखे के कारण क्रमशः 7540 करोड़ एवं 7292 करोड़ की आर्थिक क्षति हुई।[22]

**सूखा** प्रबन्धन के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश सरकार सूखे की स्थिति प्रारम्भ होने से पहले ही रणनीति तैयार करती है। सूखा घोषित हो जाने के बाद रोजगार सृजन, पशु संरक्षण, पेयजल की व्यवस्था, अनुग्रह सहायता, खाद्य सुरक्षा एवं स्वास्थ्य से सम्बन्धित पहलुओं पर एक विस्तृत कार्ययोजना तैयार की जाती है। इसके अलावा सूखे के निर्मूलन हेतु दीर्घकालीन कार्ययोजनाएँ भी तैयार की जाती हैं। उदाहरणस्वरूप जल के समुचित उपयोग एवं संग्रहण के लिए ढेर सारे सेमिनार एवं कार्यशालाएँ होती हैं। लोगों को पानी बचाने के लिए अभिप्रेरित किया जाता है। कृत्रिम पुनर्भरण एवं कम पानी के उपयोग के लिए लोगों को प्रशिक्षित किया जाता है। निःशुल्क वृक्षों के वितरण के साथ लोगों को और अधिक वृक्ष लगाने के लिए प्रेरित किया जाता है। पुराने जलाशयों की मरम्मत, उनका पुनरुद्धार एवं नये का निर्माण भी किया जाता है। अनेक नदियों से नहरें निकालकर सूखे क्षेत्र को जोड़ने का भी प्रयास किया जा रहा है।

**भूकम्प से निपटने की रणनीति :** भूकम्प धरातल पर होने वाला आकस्मिक कम्पन है। यह प्रकृतिजन्य एवं मानवजनित दोनों कारणों से होता है। प्राकृतिक कारकों में ज्वालामुखी विस्फोट, भ्रंशन, वलन, प्लेट विवर्तन आदि सम्मिलित होते हैं। मानवजनित कारकों में बड़ी सड़कों, ऊँचे बांधों एवं विशाल जलाशयों के निर्माण को सम्मिलित किया जाता है। इसके अतिरिक्त परमाणु परीक्षण भी भूकम्प के लिए उत्तरदायी है। जिस स्थान से भूकम्पीय तरंगों का जन्म होता है उसे भूकम्प मूल कहते हैं तथा जिस स्थान पर भूकम्पीय लहरों का सर्वप्रथम अनुभव किया जाता है उसे भूकम्प केन्द्र कहते हैं। भूकम्प के दौरान उत्पन्न होने वाली ऊर्जा को प्रत्यास्थ उर्जा कहते हैं। भूकम्प के दौरान तीन प्रकार की तरंगें प्राथमिक तरंगें, द्वितीयक तरंगे एवं धरातलीय तरंगे उत्पन्न होती हैं। भूकम्प को मरकेली स्केल एवं रिक्टर स्केल पर मापा जाता है तथा मापने वाले यंत्र को सिस्मोग्राफ कहते हैं।

**उत्तर प्रदेश** में भूकम्प आने का मुख्य कारण भारतीय प्लेट का एशियाई प्लेट के साथ टकराना है। भारतीय प्लेट एशियाई प्लेट के नीचे लगातार क्षेपित हो रही है जिसके कारण धरातलीय हलचलें उत्पन्न हो रही हैं। हिमालय के पर्वतीय भाग के नवीन संरचना होने के कारण भी उत्तर प्रदेश में भूकम्प आते हैं क्योंकि उत्तर प्रदेश हिमालय से सटा हुआ है एवं हिमालय निर्माणकारी प्रक्रम से गुजर रहा है।

**उत्तर प्रदेश के भूकम्पीय क्षेत्र का वर्गीकरण**

| जोन | तीव्रता (m.m.) | क्षेत्र |
|---|---|---|
| जोन-II कम तीव्रता | 6 या कम | ललितपुर, झांसी, महोबा, बांदा, चित्रकूट, कौशाम्बी, इलाहाबाद, फतेहपुर, हमीरपुर, जालौन, कानपुर देहात, औरैया, इटावा |
| जोन-III मध्यम तीव्रता | 7 | आगरा, फिरोजाबाद, मैनपुरी, कन्नौज, उन्नाव, कानपुर नगर, रायबरेली, प्रतापगढ़, जौनपुर, वाराणसी, भदोही, चन्दौली, मिर्जापुर, सोनभद्र, गाजीपुर, बलिया, मऊ, आजमगढ़, सुल्तानपुर, अम्बेडकरनगर, फैजाबाद, बाराबंकी, लखनऊ, गोण्डा, बस्ती, हरदोई, सीतापुर, फरूखाबाद, शाहजहाँपुर, एटा, बदायूँ, हाथरस, अलीगढ़ |
| जोन-IV अति तीव्र | 8 | गौतमबुद्ध नगर, बुलन्दशहर, मेरठ, गाजियाबाद, बागपत, मुरादाबाद, रामपुर, जे.पी. नगर, बिजनौर, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बरेली, पीलीभीत, खीरी, बहराइच, श्रावस्ती, बलरामपुर, सिद्धार्थनगर, महराजगंज, कुशीनगर, संतकबीरनगर, गोरखपुर, देवरिया |

Source : http//upsdma.up.nic.in

**तालिका** में प्रदर्शित उपर्युक्त जिलों में भूकम्प से होने वाली क्षति की रोकथाम के लिए उत्तर प्रदेश सरकार के द्वारा एक कार्ययोजना तैयार की गई है। भूकम्प संभावित क्षेत्रों में भवनों के निर्माण में भूकम्प अवरोधी सामग्री एवं प्रौद्योगिकी के प्रयोग के लिए निर्देश दिए गए हैं। लोगों को भूकम्परोधी भवन निर्माण के लिए निर्देशित किया गया है। सार्वजनिक निर्माण विभाग, उत्तर प्रदेश इन भवनों के लिए मापदण्ड निर्धारित करता है। भूकम्प की समस्या से निपटने के लिए तकनीकी की समीक्षा प्रत्येक वर्ष की जाती है। इस समीक्षा से प्राप्त निष्कर्षों को उन सभी संस्थाओं को प्रेषित कर दिया जाता है जो भवन निर्माण के कार्य से सम्बन्धित है।

**भूकम्प** सम्भावित जिलों के सभी विद्यालयों, सार्वजनिक भवनों, अस्पतालों, अन्य कार्यालयों, बस स्टेशनों, रेलवे स्टेशनों आदि की रेट्रोफिटिंग की कार्यवाही सम्बन्धित विभाग अपने विभागीय बजट से समयबद्ध तरीके से करने के लिए जिम्मेदार बनाये गये हैं। निजी क्षेत्र में रेट्रोफिटिंग को सुलभ बनाने के लिए अनेक वित्तीय संस्थाओं द्वारा ऋण मकान मालिकों को उपलब्ध कराये जाते हैं। इसके पीछे मूल भावना यह निहित है कि मकान मालिक अपने आवास को भूकम्परोधी बना सकें। भूकम्प संवेदनशील जिलों में लोगों को बीमा कराने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता है। प्रत्येक भूकम्प संभावित जिले में भूकम्प बचाव एवं राहत टीमों का गठन किया गया है। भूकम्प से होने वाली क्षति, बचाव, राहत, प्राथमिक उपचार, प्रशिक्षण, क्षमता निर्माण कार्य राज्य सरकार द्वारा किए जाते हैं। अनेक विभागों के समन्वय के द्वारा सभी कार्यों को संपादित किया जाता है।

**ओलावृष्टि से निपटने की रणनीति :** वर्षण मौसम विज्ञान की एक प्रचलित शब्दावली है। वायुमण्डल का जल जब संघनित होकर वापस धरातल पर आता है तो उसे वर्षण की संज्ञा दी जाती है। वर्षण के कई स्वरूप हो सकते हैं जैसे वर्षा, फुहार, हिमवर्षा और ओलावृष्टि आदि। अतः ओलावृष्टि वर्षण का एक स्वरूप या प्रकार है। वर्षा की बूंदों के साथ-साथ कई बार अचानक से ओले या बर्फ के टुकड़े गिरने लगते हैं और जब यह बर्फ के टुकड़े एक बड़ी मात्रा में एवं स्तरों में पृथ्वी पर गिरते हैं तो इसे ओलावृष्टि की संज्ञा दी जाती है। ओले का व्यास 5 मिलीमीटर या उससे बड़ा हो सकता है।

**उत्तर** प्रदेश में ओलावृष्टि की घटनाएँ अनेक जिलों में बार-बार होती रहती हैं। लगभग हर वर्ष राज्य में विभिन्न स्थानों पर ओलावृष्टि होती है। इस कारण से उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से ओलावृष्टि से निपटने के लिए एक पुख्ता रणनीति तैयार की गई है। यह सर्वविदित है कि ओलावृष्टि का सबसे ज्यादा प्रभाव कृषि फसलों पर होता है इसलिए ओलावृष्टि से सबसे ज्यादा नुकसान किसानों को उठाना पड़ता है। ओलावृष्टि की घटना होने के तुरन्त बाद जिला कलेक्टर के निर्देशानुसार सम्बन्धित जिले का सर्वे कराकर हुई क्षति का आकलन किया जाता है। सम्पूर्ण क्षति के आकलन के बाद सहायता प्रदान की जाने वाली

राशि की शासन से स्वीकृति प्रदान की जाती है। स्वीकृत धनराशि को किसानों के खातों में उनकी क्षति के हिसाब से भेज दी जाती है। साथ ही किसानों को फसल बीमा कराने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता है। किसान क्रेडिट कार्ड सुविधा लेने वाले कृषकों की फसलों का अनिवार्य रूप से फसल बीमा किया जाता है।

**अग्नि दुर्घटना से निपटने की रणनीति :** आग लग जाना एक प्राकृतिक दुर्घटना भी हो सकती है अथवा मानवीय भूल या लापरवाही से भी अग्नि दुर्घटनाएँ हो जाती है। मनुष्यों के भवनों, घरों, कार्यालयों, सिनेमा हालों, शॉपिंग मॉल, कोचिंग संस्थान, कारखाना, मिल आदि में अग्नि दुर्घटना से भारी जन-धन की क्षति होती है। प्रायः गर्म होने वाले स्रोतों, हीटर, अग्नि स्थल, खाना पकाने वाले स्थलों, विद्युतीय उपकरणों, ज्वलनशील पदार्थ, पटाखें, बिजली से स्पार्क, जलती हुई मोमबत्ती या लालटेन से आग अनियंत्रित होकर फैल जाती है और अग्नि दुर्घटना घटित हो जाती है।

**शुष्क** प्रदेश होने एवं गर्मियों में विशेष रूप से लू चलने के कारण उत्तर प्रदेश में आये दिन अग्नि दुर्घटना घटित होती रहती है। उत्तर प्रदेश गाँवों का प्रदेश है। उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या का 77.73 प्रतिशत भाग गाँवों में निवास करती है। गर्मियों में तेज लू चलने के कारण गाँवों में अग्निकाण्ड बिल्कुल ही आम बात है। इसके अलावा शहरों में भी आये दिन अग्निकाण्ड की घटना होती रहती है।

**अग्निकाण्ड** की स्थिति में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा आमजनों को राहत पहुँचाने के लिए एक योजना निर्मित की गई है। आग लगने की वजह से घर जलने, पशुओं के मरने तथा सम्पत्ति की क्षति के साथ कहीं-कहीं मानव क्षति की घटना भी घटित हो जाती है। ऐसी स्थिति में उत्तर प्रदेश शासन द्वारा सभी जिले के अधिकारियों को निर्देश है कि वे अग्नि दुर्घटना के बाद सर्वे कराकर तत्काल लोगों को सहायता उपलब्ध करायें। अग्नि दुर्घटना की स्थिति में तत्काल भोजन, राहत सामग्री, तिरपाल, दवाएँ एवं दैनिक उपभोग की वस्तुओं जैसे चायपत्ती, चीनी आदि लोगों को अविलम्ब उपलब्ध कराया जाता है। साथ ही अग्निकाण्ड की घटनाओं की रोकथाम के लिए लोगों को जागरुक करने का भी काम किया जाता है। नगरीय क्षेत्रों में भवन निर्माण एवं कल कारखानों के निर्माण के समय उन मानकों को अनिवार्य रूप से पालन करना होता है जो अग्निकाण्ड की घटना को रोकने में सहायक होते हैं। साथ ही तैयार भवनों में अग्निशामक यंत्र भी रखने अनिवार्य होते हैं।

**उपरोक्त** विवेचन से स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश प्रतिवर्ष अनेक प्रकार की आपदाओं का शिकार होता रहता है। इन आपदाओं से निपटने के लिए उत्तर प्रदेश में एक बहुआयामी रणनीति तैयार करके पूर्वानुमान, सचेत करना, बचाव, राहत, पुनर्निर्माण एवं पुनर्वास आदि का प्रयास किया जाता है।

**आपदा प्रबन्धन चक्र :** पूर्व में आपदा प्रबन्धन के अन्तर्गत आपदा के उपरान्त लोगों का पुनरुत्थान एवं आपदा से पूर्व न्यूनीकरण की योजना को अलग-अलग देखा जाता था। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से यह महसूस किया जा रहा है कि ये अलग-अलग पहलू नहीं है ये दोनों परस्पर अन्तर्सम्बन्धित हैं। वस्तुतः आपदा प्रबन्धन एक बहुआयामी क्षेत्र है इसमें पूर्वानुमान, चेतावनी, बचाव, राहत, पुनर्वास सम्मिलित हैं। आपदा प्रबन्धन चक्र की अवधारणा ने आपदा प्रबन्धन के प्रति चरणबद्ध दृष्टिकोण को सुगम बनाया है। इसमें आपदा न्यूनीकरण से लेकर आपदा पुनर्वास तक के सभी चरणों को अलग-अलग न देखकर समन्वित या सम्बद्ध रूप से देखा जाता है।

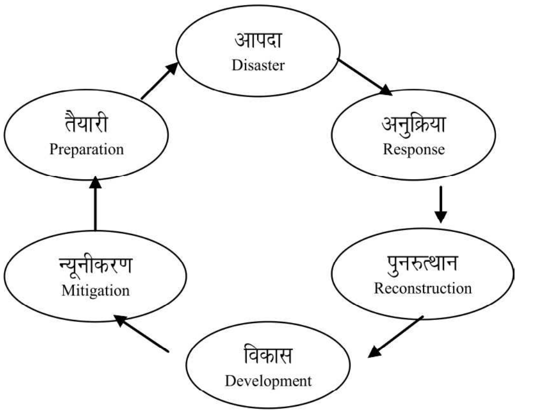


आपदा प्रबन्धन चक्र

**उत्तर प्रदेश में आपदा प्रबन्धन की वर्तमान स्थिति -** उत्तर प्रदेश आपदा की दृष्टि से एक संवेदनशील राज्य है। प्रदेश में आपदाओं का प्रभाव कम से कम पड़े तथा आपदा से प्रभावित जनसंख्या का पुनरूत्थान समयबद्ध एवं चरणबद्ध तरीके से हो सके इसके लिए अनेक स्तरों पर निम्नलिखित संस्थागत व्यवस्थायें निर्मित की गयी हैं।

अनेक स्तरों पर आपदा प्रबन्धन के लिए निर्मित व्यवस्थायें निम्न प्रकार से हैं-

**राज्य स्तर पर आपदा प्रबन्धन-** उत्तर प्रदेश में राज्य स्तर पर राज्य आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण की व्यवस्था की गई है। यह आपदा तैयारी के लिए प्रावधानों की सिफारिश, न्यूनीकरण एवं शासन उपायों का एकीकरण सुनिश्चित करने हेतु राज्य के विभिन्न विभागों की योजनाओं की समीक्षा करता है। राज्य आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण की अध्यक्षता मुख्यमंत्री करते हैं। प्राधिकरण आपदा प्रबन्धन के लिए नीतियाँ एवं योजनाएँ भी तैयार करता है। प्रदेश स्तर पर राज्य राहत आयुक्त आपदा प्रबन्धन के कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। यह मुख्यमंत्री के परामर्श से कार्यों को सम्पन्न करता है। राज्य आपदा प्रबन्धन कमेटी में उत्तर प्रदेश के राजस्व मंत्री, प्रमुख सचिव शासन, प्रमुख सचिव गृह, प्रधान सचिव, लोकनिर्माण, प्रधान सचिव स्वास्थ्य, पुलिस महानिदेशक, सचिव राजस्व सदस्य होते हैं।

**जिला स्तर पर आपदा प्रबन्धन-** उत्तर प्रदेश के प्रत्येक जिले में जिला स्तर पर जिला आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण की स्थापना की गई है। इस प्राधिकरण का अध्यक्ष जिला मजिस्ट्रेट होता है। यह प्राधिकरण जिला स्तर पर आपदा प्रबन्धन के लिए पूर्व तैयारी, योजना, समन्वय और कार्यान्वयन निकाय के रूप में कार्य करता है। समय-समय पर राष्ट्रीय आपदा प्राधिकरण एवं राज्य आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण द्वारा दिए गए निर्देशों का भी अनुपालन करता है एवं निर्देशों के अनुरूप जिले में व्यवस्था सुदृढ़ करने का प्रयास करता है। जिला आपदा प्रबन्धन समिति में जिलाधिकारी, पुलिस अधीक्षक, स्वास्थ्य विभाग, अग्निशमन विभाग, सिंचाई विभाग, राजस्व विभाग, शिक्षा विभाग आदि के उच्चाधिकारी सम्मिलित होते हैं।

**खण्ड स्तर पर आपदा प्रबन्धन-** उत्तर प्रदेश में प्रत्येक विकास खण्ड स्तर पर आपदा प्रबन्धन की जिम्मेदारी खण्ड विकास अधिकारी की होती है। यह खण्ड स्तर पर बनाई गई समिति का अध्यक्ष भी होता है। समिति में अन्य विभागों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, कल्याण, पुलिस, पंचायतीराज, ग्रामीण विकास, विद्युत विभाग आदि के अधिकारी भी सम्मिलित होते हैं। इस समिति का मुख्य कार्य आपदा प्रबन्धन के लिए योजना तैयार करना, बचाव के लिए समुचित सुझाव प्रस्तुत करना, आपदा दल में सम्मिलित लोगों को प्रशिक्षित करना आदि है।

**ग्राम स्तर पर आपदा प्रबन्धन-** आपदा प्रबन्धन नीति के अनुसार स्थानीय प्राधिकरण के अन्तर्गत पंचायती राज संस्थाओं को सम्मिलित करते हुए स्थानीय स्तर पर भी आपदा प्रबन्धन के लिए व्यवस्था निर्मित की गयी है। इसके अंतर्गत ग्राम स्तर पर ग्रामीण आपदा प्रबन्धन समिति का गठन किया गया है। ग्रामीण आपदा प्रबन्धन समिति आपदा प्रबन्धन का सबसे निचला स्तर है। इस समिति का अध्यक्ष गांव का प्रधान/मुखिया होता है। इस समिति में ग्राम पंचायत सदस्यों एवं गांवों के अन्य वरिष्ठतम सदस्यों को जो आपदा का पूर्व अनुभव रखते हैं को भी सम्मिलित किया जाता है। इस समिति का प्रमुख कार्य गांव के लिए आपदा प्रबन्धन योजनाओं को तैयार करना, गांव के लोगों को आपदा के विषय में प्रशिक्षण देना, आपदा से निपटने का पूर्वाभ्यास कराना आदि है। इसके अलावा यह समिति प्रभावित क्षेत्रों में राहत पुनर्वास तथा पुनरूत्थान गतिविधियां भी संचालित करती हैं। इस समिति द्वारा स्थानीय स्तर पर स्थानीय लोगों का आपदा के समय त्वरित उपयोग किया जाता है।

**इस प्रकार** उत्तर प्रदेश में राज्य स्तर से लेकर स्थानीय स्तर तक आपदा प्रबन्धन के लिए व्यवस्थायें निर्मित की गयी हैं। राज्य स्तर पर राज्य आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण, जिला स्तर जिला आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण, स्थानीय स्तर पर ग्राम आपदा प्रबन्धन समिति आपदा के समय बचाव, राहत एवं पुनर्वास के लिए कार्य करती है।

**निष्कर्ष :** आपदा प्रबन्धन सामाजिक सरोकार का विषय है क्योंकि आपदायें, सामाजिक विकास की प्रक्रिया को दीर्घकालिक रूप से बड़े पैमाने पर प्रभावित करती हैं। आपदा प्रबन्धन द्वारा व्यक्ति के विभिन्न सामाजिक पक्षों को ह्रास से बचाया जाता है साथ ही व्यक्ति के सामाजिक पुनर्वास को भी सम्भव बनाया जाता है। एक अच्छी एवं सुदृढ़ आपदा प्रबन्धन प्रणाली से आपदाओं के कारण समाज में होने वाली क्षति को न्यून स्तर पर लाया जाता है। आपदा प्रबन्धन प्रणाली को अच्छी बनाने के लिए सामाजिक अनुभवों एवं स्थानीय लोगों को आपदा प्रबन्धन तन्त्र में सम्मिलित किया जाना एक पूर्व शर्त है। सामाजिक अनुभवों के बिना आपदा प्रबन्धन प्रणाली को सुदृढ़ नहीं बनाया जा सकता।

**यद्यपि** आपदा प्रबन्धन की दिशा में उत्तर प्रदेश में राज्य स्तर, जिला स्तर एवं स्थानीय स्तर पर अनेक प्रयास किए गए हैं फिर भी इस दिशा में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ

है। उत्तर प्रदेश में दिनोंदिन आपदा के कारण जनधन की क्षति बढ़ती ही जा रही है। आपदा प्रभावित क्षेत्रों में पूर्व चेतावनी संयंत्रों का पूर्णतः अभाव है। आपदा प्रबन्धन की दिशा में अभी भी एक स्पष्ट नीति का अभाव है। आपदा प्रबन्धन के लिए आपदा से पहले जो तैयारियाँ करनी चाहिए वे बिल्कुल भी नहीं हो पातीं। इसलिए आपदा की मारक क्षमता पहले से अधिक बढ़ चली है। उत्तर प्रदेश में कोई भी ऐसा सूचना तंत्र नहीं है जो इस बात की शीघ्र जानकारी दे सके कि आपदा में कितने लोग फंसे हैं।

**फिर भी** बीते वर्षों में आपदा प्रबन्धन के तौर पर तरीकों में काफी तेजी से प्रयास किये जा रहे हैं और यह घटनाओं के प्रबन्धन से आगे बढ़कर जोखिम के प्रबन्धन में बदल चुका है। अब आपदा प्रबन्धन घटनाओं के प्रभाव को रोकने तक ही सीमित नही है बल्कि उनमें अन्तर्निहित कमजोरियों का वैज्ञानिक दृष्टि से मूल्यांकन करने का प्रयास किया जा रहा है। प्रशासक, वैज्ञानिक, योजनाकार, स्वयंसेवक एवं समुदाय सभी इस बहुआयामी प्रयास में सम्मिलित होते हैं। अब नीति केवल राहत पहुँचाने तक सीमित नहीं है बल्कि आपदाओं से निपटने की तैयारियों, उनमें शमन, बचाव एवं पुनर्निर्माण पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है।

**उपरोक्त** तथ्यों के बावजूद आपदा प्रबन्धन को अधिक प्रभावी बनाने हेतु कुछ क्षेत्रों में सुधार की नितान्त आवश्यकता है। राष्ट्रीय स्तर से लेकर स्थानीय स्तर तक बेहतर समन्वय एवं सूचना तंत्र विकसित किए जाने की आवश्यकता है। उत्तर प्रदेश में आवास, फसल, जीवन प्रत्येक क्षेत्र में बीमा कराने की प्रथा काफी कमजोर है। लोगों को सभी क्षेत्रों में बीमा कराने के लिए जागरुक करने की आवश्यकता है। पूर्व चेतावनी तंत्र को मजबूत किए जाने की आवश्यकता है। आपदा प्रबन्धन में सोशल नेटवर्किंग एवं इंटरनेट की सुविधाओं के समावेश की आवश्यकता है। नवीन प्रणालियों, तकनीक और प्रविधियों को अपनाने की आवश्यकता है।

## सन्दर्भ


1. खान राशिदा, 'उत्तर प्रदेश में बाढ़ : एक भौगोलिक अध्ययन', शोध प्रबन्ध, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, 1994, पृ. 28–42
2. गुप्ता, संजय, 'पर्यावरण अध्ययन एवं आपदा प्रबन्धन', एजुकेशन ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 2015, पृ. 260–285.
3. Sulphey M.M., *'Disaster Management'*, PHI Learning Private Limited, Delhi, Pp. 3-7
4. Bestor T.C., *'Disasters: Natural and Unnatural Reflections'*, The Journal of South Asian Studies, 72, Pp. 763-782
5. Eyre A., *'Remembering: Community Commemoration after Disaster'*, Springer, New York, Pp. 442-454
6. Satta Ram, *'Rural Copping Pattern in Flood Prone Areas of Jaunpur District U.P.'*, Vol.42,Pp. 82-90
7. De U.S. and Dandekar M., *'Natural Disaster in Urban Areas'*, Research Journal of the Decan Geographical Society, Vol.39,Pp. 01-10
8. Sinha Anil, *'Natural Disaster Management in India'*, Relief Administration in India, Pp. 01-20
9. Rana Narendra Kumar and Tyagi Nutan, *'Assesment of Flood Risk Zone using R.S. AND G.I.S.: A Study of Gorakhpur, Geographical Review of India'*, Vol.70, Pp. 202-214
10. Bandopadhyay Subhajit, *'Role of State Disaster Management Athorities in India'*, Researchgate Publication, 2014, Pp. 6-14
11. तिवारी ए.आर., 'जियोग्राफी ऑफ उत्तर प्रदेश', रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1971, पृ. 22–47.
12. मामोरिया चतर्भुज, 'मानव भूगोल', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ. 363–374.
13. मेनन विनोद चन्द्र, 'आपदा प्रबन्धन की समस्याएँ एवं चुनौतियाँ', योजना, वर्ष 56, अंक 03, मार्च 2012, पृ. 6–8.
14. द्विवेदी धीप्रज्ञ, 'भारत में प्राकृतिक आपदा प्रबन्धन', योजना, वर्ष 61, अंक 01, जनवरी 2017, पृ. 29–32.
15. सिंह एस.पी., 'उत्तर प्रदेश में आपदा प्रबन्धन', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2003, पृ. 93–98.
16. गौतम अलका, 'संसाधन एवं पर्यावरण', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007, पृ. 42–56.
17. कुमार राकेश, 'उत्तर प्रदेश में कृषि विपणन की स्थिति एवं समस्याएँ', शोध प्रबन्धन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 2002, पृ. 154–162.
18. उत्तर प्रदेश राज्य आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण की वेबसाइट, उ0प्र0 की आपदा प्रोफाइल 2016.
19. सिंह सवीन्द्र, 'भौतिक भूगोल', वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, पृ. 128–145.
20. सिंहल जे.पी., 'आपदा प्रबन्धन', सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी एजुकेशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 97–123.
21. ओझा एस.के., 'जनसंख्या एवं नगरीकरण', बौद्धिक प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 53–61.
22. चक्रवर्ती पी.जी. धर, 'भारत में सतत विकास व आपदा जोखिम प्रबन्धन', योजना, वर्ष 61, अंक 01, जनवरी 2017, पृ. 13–16.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2020
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# मध्य प्रदेश के श्योपुर जिले में जनजातीय आजीविका समस्या का प्रबंधन

❑ मनीष त्यागी
❖ डॉ. सौभाग्य रंजन पाढ़ी

**मुख्य शब्दः** आजीविका, प्रबंधन, आदिवासी

आजीविका किसी भी परिवार को अपने पारिवारिक जीवन को जीने के लिए एक बुनियादी आवश्यकता है। यह इतिहास में मानव अस्तित्व के लिए हमेशा महत्वपूर्ण रही है। आदिवासियों की आजीविका अतीत से बहुत हद तक जंगल, प्रकृति और भूमि पर निर्भर करती है। समय के साथ, आधुनिक विकास की आवश्यकता के कारण इन आजीविका संसाधनों में किसी न किसी प्रकार के कम या ज्यादा बदलाव हुआ है।[1] परिणामस्वरूप, आदिवासी आजीविका के इन प्राकृतिक और पारिस्थितिक ठिकानों को गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यह अध्ययन श्योपुर जिले की सामान्य रूप से और विशेष रूप से आदिवासियों की आजीविका समस्या को उजागर करने का प्रयास करता है। यह द्वैतीयक स्रोतों की मदद से समस्या के कारणों की विस्तृत रूप से परिकल्पना करता है। इसके अंतर्गत प्राथमिक जनगणना सार और जिला सांख्यिकीय, विभिन्न विद्वानों के लेखों, रिपोर्टों से एकत्रित किया गया हैं और साथ ही जिला और आदिवासियों पर केंद्रित पिछले अध्ययनों का उपयोग किया है। समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया कई रूपों में परिलक्षित होती है, आर्थिक गतिविधि उनमें से एक है। इसलिए, जिले में आदिवासियों की आजीविका समस्या के प्रबंधन के अध्ययन की आवश्यकता है और यह विषय विशेष महत्वपूर्ण हो जाता है। आजीविका समस्या के प्रबंधन को सुनिश्चित करने के लिए, समस्या का विश्लेषण और आजीविका समस्या के कारणों का उद्घाटन करना भी उतना ही प्रासंगिक है। इसमें जिले में आजीविका समस्या के कारणों का भी विश्लेषण करने का प्रयास भी किया गया है।

**आजादी** के बाद से आदिवासी विकास सरकार के प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में से एक रहा है।[2] इन कमजोर समुदायों के लिए अलग आजीविका के रास्ते बनाकर जनजातीय क्षेत्रों में समग्र विकास लाने पर ध्यान केंद्रित किया गया है। हालाँकि वास्तविकता से पता चलता है कि विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी विभागों के बीच उचित कार्यान्वयन और समन्वय की कमी के कारण कई विकास कार्यक्रम विफल रहे हैं।[3] प्रस्तुत शोध लेख में मध्य प्रदेश के श्योपुर जिले में विभिन्न आजीविका कार्यक्रमों के माध्यम से आदिवासी विकास के उभरते मुद्दों और संभावनाओं का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

**श्योपुर** आदिवासी बहुल और मध्य प्रदेश के आदिवासी जिलों में से एक है, जो लगातार गरीबी, कुपोषण, उच्च शिशु और मातृ-मृत्यु दर जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। संविधान (म.प्र.) अनुसूचित जनजाति आदेश 1976 के अनुसार, मध्य प्रदेश अनुसूचित क्षेत्रों में से एक है। आदिवासी समुदायों की सबसे बड़ी आबादी और विविधता के लिए मध्य प्रदेश भारत के नृवंशविज्ञान मानचित्र में एक अद्वितीय स्थान रखता है।

**2011 की** जनगणना[4] के अनुसार, मध्य प्रदेश राज्य में अनुसूचित जनजाति (एसटी) की आबादी 15,316,784 है। इसमें राज्य की कुल आबादी का 21.1 प्रतिशत और देश की कुल जनजातीय आबादी का 14.70 प्रतिशत हिस्सा है। यह आदेश फिर से निर्दिष्ट करता है कि श्योपुर जिला सामान्य रूप से जनजाति का प्रमुख निवास स्थान है और विशेष रूप से सहारिया जनजाति। जनसंख्या की दृष्टि से मध्य प्रदेश में जिलों के बीच श्योपुर जिला 48 वें स्थान पर है[5] और इसमें राज्य की कुल जनसंख्या का 0.94 प्रतिशत है। 2011 की जनगणना[6] के अनुसार, श्योपुर जिले की 84.39 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है और केवल 15.61 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में निवास करती है। यह दर्शाता है कि जिले की अधिकांश ग्रामीण आबादी है।

**आदिवासी** जनसंख्या जिले की लगभग एक चौथाई आबादी का गठन करते हैं, जो आत्म सम्मान से रहने से वंचित हैं और दयनीय परिस्थितियों में रहने के लिए मजबूर हैं। दशकों की गरीबी और आजीविका सुविधाओं की कमी आदिवासी लोगों की सामाजिक-आर्थिक और स्वास्थ्य स्थितियों को कमजोर करती है। अधिकांश आदिवासी या तो सीमांत श्रमिकों के रूप में काम करते हैं या गैर-श्रमिकों के रूप में वर्गीकृत हैं।

❑ **शोध अध्येता, समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)**
❖ **प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)**

**वर्तमान में,** राज्य में गरीबी 2011-12 में 48.59 प्रतिशत से 31.98 प्रतिशत हो गई है।[7] हालांकि, जिलों के बीच गरीबी के स्तर में काफी भिन्नता देखी गई है। जिले की अधिकांश आबादी (47.2 प्रतिशत) गरीबी से नीचे रहती हैं और कुल बीपीएल परिवारों में से लगभग 50 प्रतिशत आदिवासी हैं।[8] अतीत में, वे जंगल और वन आधारित गतिविधियों से अपनी आजीविका कमा रहे थे, शिकार और स्थानांतरित खेती कर रहे थे।[9] वे कृषि गतिविधियों में पड़ोसी जाति समुदायों के साथ भी जुड़े हुए थे[10] किन्तु वर्तमान में अपने अतिरिक्त पारिवारिक आय और आजीविका के लिए पास के शहरों में पलायन करते हैं।[11] उनके पास न तो उत्पादक संपत्ति है और न ही कोई सार्थक उत्पादक गतिविधियाँ हैं। वे ज्यादातर कृषि और दैनिक मजदूर हैं, असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं और उनकी कोई क्रय शक्ति नहीं है। इससे पता चलता है कि आदिवासी कितने गरीब हैं और आजीविका की समस्या का सामना कर रहे हैं। वे अपनी आय और अस्तित्व अर्जित करने के लिए अपने आजीविका संसाधन स्रोतों का प्रबंधन करने में विफल रहे हैं।

**गरीबी के कारण और आजीविका समस्या** : गरीबी और आजीविका की समस्या एक दूसरे से संबंधित है। यह कहा जा सकता है कि एक ओर गरीबी आजीविका की समस्या का परिणाम है और दूसरी ओर गरीबी के कारण आजीविका की समस्या गहराती है। राज्य में आदिवासियों के बीच गरीबी और आजीविका की समस्या को समझने के लिए इसके लिए उत्तरदायी कारणों का अध्ययन बहुत आवश्यक है। इससे यह पता लगाने में मदद मिलती है कि आजीविका समस्या के प्रबंधन की कमी जिले में आदिवासियों के जीवन में कई समस्याओं का कारण किस प्रकार बनती है। गरीबी और आजीविका समस्या के कारण निम्नानुसार हैं

**शिक्षा की कमी** : शिक्षा को समाज में परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। समाज में शिक्षा की स्थिति का आकलन करने के लिए साक्षरता स्तर और पाठशाला त्याग दरें कुछ संकेतक हैं। जिले में कुल साक्षरता दर 57.43 प्रतिशत है जो राज्य के औसत 69.32 प्रतिशत से बहुत कम है।[12] उसी तरह, 2011 की जनगणना के अनुसार, जिले में आदिवासी साक्षरता दर केवल 40.72 प्रतिशत है। यह जिले में चिंताजनक स्थिति को दर्शाता है।[13] व्यावसायिक शिक्षा जिले में आदिवासियों की आजीविका समस्या को हल करने की क्षमता रखती है। हालांकि, एक रिपोर्ट[14] ने यह सुझाव दिया है कि राज्य में स्कूल स्तर पर पाठशाला त्याग की समस्या गंभीर मुद्दा है और इसके परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा में कम नामांकन होता है। यह विशेष रूप से जिले में और सामान्यतः राज्य में व्यावसायिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने में बाधा डालता है।

**असंतुलित क्षेत्रीय विकास** : वर्तमान परिदृश्य में विकास का मतलब लोगों के जीवन स्तर में सुधार करना है। सामाजिक-आर्थिक स्थिति, शिक्षा और स्वास्थ्य को बढ़ाना, विकास के सभी महत्वपूर्ण घटक हैं। निश्चित रूप से, आर्थिक विकास, विकास को सक्षम करने का एक अनिवार्य साधन है। हालाँकि मध्यप्रदेश में विकास अत्यधिक शहरी केंद्रित है। आजादी के पचहत्तर साल बाद भी मध्य प्रदेश के उत्तरी इलाकों के अधिकांश इलाके अविकसित हैं। राज्य के भीतर जिलेवार विकास स्तर में भिन्नता भी देखी जाती है। मध्य प्रदेश राज्य एमडीजी रिपोर्ट[15] 2014-15 में इस बिंदु पर प्रकाश डाला गया है कि विकास के स्तर में जिलों में भिन्नता पाई जाती है। मध्यप्रदेश को सामान्य रूप से देश में सबसे कम विकसित राज्य के रूप में जाना जाता है और विशेष रूप से श्योपुर जिला भारत के सबसे पिछड़े क्षेत्रों में से एक है। यह तर्क दिया जाता है कि विकास एक समग्र विकास होना चाहिए। साथ ही एक क्षेत्र का दूसरे की लागत पर विकास नहीं होना चाहिए ताकि सभी को समान रूप से विकास का लाभ मिले तभी राज्य द्वारा समावेशी विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

**सतत विकास का अभाव** : पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग द्वारा परिभाषित सतत विकास का अर्थ है भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं को हानि पहुँचाये बिना वर्तमान पीढ़ी की जरूरतों को पूरा करना।[16] संक्षेप में सतत विकास का अर्थ है वह विकास जो निरंतर है। लेकिन वर्तमान परिदृश्य से पता चलता है कि सामान्य रूप से आदिवासी क्षेत्रों और विशेष रूप से श्योपुर जिले में बड़ी मात्रा में वनों की कटाई, अतिक्रमण और विस्थापन हो रहा है, जिसने आदिवासी लोगों के जीवन को खतरे में डाल दिया है।[17] अस्मिता काबरा[18] द्वारा भी श्योपुर जिले में विस्थापन के मुद्दे पर व्यापक रूप से चर्चा की गई है।

**टी. बी. नायक[19]** और देब्रत मोंडोल[20] का मानना हैं कि आदिवासी ज्यादातर अपनी आजीविका प्राप्त करने के लिए जंगल पर निर्भर करते हैं और यह जंगल इन वनवासियों को सुरक्षा जाल प्रदान करता है। आदिवासी और जंगल के बीच एक दृढ़ सहजीवी संबंध मौजूद है। मुद्रास्फीति की स्थिति में, वास्तविक रूप से मजदूरी में कमी, बेरोजगारी,

बीमारी, भूमि से कम उत्पादकता आदि संकटों के समय में वन इन लोगों के लिए सुरक्षा के रूप में काम करते हैं। जंगल इन समुदायों को भोजन की कमी, आजीविका असुरक्षा, बीमारी, प्रदूषण, उच्च कीमतों आदि से बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन आदिवासी क्षेत्रों में तेजी से वनों की कटाई ने श्योपुर जिले के आदिवासियों की स्थिरता पर बड़ा सवाल खड़ा कर दिया है। यह मुद्दा बहुत गंभीर है क्योंकि जनजातियों की भावी पीढ़ी को विरासत में न केवल प्रदूषण बल्कि क्षयकारी प्राकृतिक संसाधन और नष्ट भौतिक पूंजी प्राप्त हो रही हैं। जनजातियों पर इसका प्रभाव सामाजिक-आर्थिक जीवन के साथ ही उनके निवास स्थान, शोषण की प्रक्रिया और बाहरी खतरों पर भी पड़ता है। आदिवासी विकास के बारे में बहुत कुछ कहा गया है, लेकिन अगर यह संवहनीय नहीं है तो विकास अर्थहीन है। विकास की दौड़ ने आदिवासी लोगों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया हैं जिससे विकास के परिणाम को उन्हें वंचित, विस्थापन और तबाही के रूप में भोगना पड़ रहा हैं और उनके प्राकृतिक पर्यावरण और इस प्रक्रिया से आदिवासियों का संसाधनों के साथ संबंध भी बदल गया हैं, जिसके परिणामस्वरूप जनजातियों का कंगालीकरण हुआ।

**प्राथमिक क्षेत्र पर अत्यधिक निर्भरता** : किसी विशेष क्षेत्र के आजीविका प्रतिरूपों या पैटर्न की प्रकृति पर चर्चा करने से पहले, अपने मुख्य श्रमिकों के व्यावसायिक पैटर्न पर चर्चा करना आवश्यक है। यह विकास के स्तर और पिछड़ेपन दोनों को मापने के लिए एक आर्थिक संकेतक के रूप में कार्य करता है। यह आने वाले वर्षों में एक क्षेत्र के लिए विकास की संभावना को भी दर्शाता है। श्योपुर जिले में मुख्य श्रमिकों के व्यावसायिक पैटर्न तालिका संख्या 1 में दिये गए हैं।

**तालिका संख्या 1**

**श्योपुर जिले में मुख्य कार्यकर्ताओं के व्यावसायिक पैटर्न (हजारों में आंकड़े)**

| व्यवसाय का प्रकार | ग्रामीण | शहरी | कुल |
|---|---|---|---|
| कृषक | 90,702 | 3,073 | 93775 |
| | (53.81) | (11.12) | (47.79) |
| कृषि मजदूर संबद्ध | 56,474 | 1074 | 57,548 |
| गतिविधियाँ | (33.50) | (3.88) | (29.33) |
| कुल कृषि संबंधी | 147176 | 4147 | 151323 |
| | (87.31) | (15) | (7.13) |
| अन्य श्रमिक | 19,846 | 22,138 | 41,984 |
| | (11.77) | (80.11) | (21.39) |
| घरेलू उद्योग | 1534 | 1348 | 2882 |
| श्रमिक | (0.91) | (4.87) | (1.46) |
| कुल गैर कृषि | 21380 | 23486 | 44866 |
| क्षेत्र | (12.69) | (85) | (22.87) |
| कुल मुख्य | 168,556 | 27,633 | 196,189 |
| कार्यकर्ता | (100) | (100) | (100) |

नोट कोष्ठक में दिखाए गए आंकड़े कुल मुख्य श्रमिकों के प्रतिशत को दर्शाते हैं।

स्रोत जिला सांख्यिकी बुक, श्योपुर, 2011

**उपर्युक्त** सारणी से पता चलता है कि जिले में मुख्य श्रमिकों में 47.79 प्रतिशत कृषक हैं, 29.33 प्रतिशत कृषि मजदूर हैं और कृषि से संबंधित गतिविधियों जैसे पशुपालन, मछलीपालन आदि में श्रमिक हैं और इस प्रकार कृषि में मुख्य कार्य बल का 77.13 प्रतिशत है। यह इंगित करता है कि श्योपुर जिले में आजीविका पैटर्न प्राथमिक क्षेत्र पर बहुत अधिक निर्भर है। जिले में केवल 22.87 प्रतिशत मुख्य श्रमिक गैर-कृषि गतिविधियों पर निर्भर हैं। अन्य क्षेत्रों में आजीविका की अनुपलब्धता, माध्यमिक और तृतीयक क्षेत्र में उचित अवसर और कार्य न होने के कारणों ने आदिवासियों को अंधेरे, गरीबी और दुख में जीने के लिए मजबूर किया है।

**अपर्याप्त कृषि पद्धतियाँ** : कृषि क्षेत्र ने आदिवासी अर्थव्यवस्था के विकास में एक प्रमुख स्थान पर कब्जा कर लिया है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि अधिकांश आदिवासी अपनी आजीविका के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर हैं। लेकिन जिले के पास अपर्याप्त और असंतोषजनक भूमि-संसाधन है। पहाड़ियों की मौजूदगी, बड़े हिस्से में अविरल इलाके और जंगल, बेहतर कृषि पद्धतियों के लिए वातावरण प्रदान नहीं करते हैं। जिले में सकल बोये गये क्षेत्र का केवल 55.72 प्रतिशत ही सिंचाई क्षमता प्राप्त कर सका है। आदिवासी क्षेत्र ज्यादातर पहाड़ी इलाकों और पहाड़ों के कारण सिंचाई से वंचित हैं। जनजातीय क्षेत्रों में अधिकांश भूमि मानसून के दौरान एक फसल के लिए ही अनुकूल है। **फिर भी** सामान्य रूप से आदिवासी कृषि की आदिम और कम विकसित तकनीकों को ही प्रयोग में लेते हैं। आदिवासी किसान खेती के पारंपरिक उपकरणों से परिचित हैं क्योंकि ये बनाने में सरल, संचालित करने में आसान और खरीद के लिए सस्ते हैं। वे पहाड़ी ढलानों और गैर-सिंचित भूमि में फसल चक्रीकरण या रोटेशन का पालन नहीं करते हैं। पारंपरिक स्थानांतरित खेती उनके बीच व्यापक रूप से

प्रचलित है। इस प्रकार खेती की पिछड़ी प्रकृति और निर्वाह स्तर ने आदिवासी किसान की अर्थव्यवस्था को उनकी आजीविका का समर्थन करने के लिए काफी हद तक अपर्याप्त बना दिया है। इसी के साथ कोई अधिशेष कृषि उपज नहीं है, वे विकास के लिए कुछ भी बचाने में असमर्थ हैं। इसने उनके आर्थिक जीवन पर कहर बरसा दिया है। **चूंकि कृषि** जनजातीय लोगों की आजीविका का प्रमुख स्रोत है, इसलिए जिले में परिचालन भूमि के आकार का अध्ययन करना आवश्यक है। जिले के कुल सामाजिक समूह और जनजातीय समूह की परिचालित भूमि जोत का आकार तालिका 2 में नीचे दिया गया है

**तालिका संख्या 2**

**जिले में सामाजिक समूहों द्वारा संचालित और धारित क्षेत्र का प्रतिशत 2010-11**

| जिले में परिचालित भूमि जोत (ऑपरेशनल लैंडहोल्डिंग) के आकार का प्रतिशत | | |
|---|---|---|
| सामाजिक समूह | धारित क्षेत्र का प्रतिशत | संचालित क्षेत्र का प्रतिशत |
| अनुसूचित जाति | 20.96 | 15.33 |
| अनुसूचित जनजाति | 12.89 | 9.42 |
| अन्य | 66.12 | 75.13 |
| कुल | 100.00 | 100.00 |

स्रोत-कृषि जनगणना2010-11

**उपर्युक्त** सारणी से पता चलता है कि कुल सामाजिक समूह और जनजातीय समूह के बीच परिचालित भूमि जोत का आकार बहुत कम है। जनजातीय समूह के बीच, केवल 9.42 प्रतिशत क्षेत्र परिचालित भूमि जोत के रूप में उपलब्ध है, जबकि 'अन्य' श्रेणी की स्थिति 75.13 प्रतिशत के साथ बेहतर है।यहां तक कि अनुसूचित जाति के लोग भी आदिवासी लोगों की तुलना में बेहतर स्थिति में हैं जिनके पास जिले में 15.33 प्रतिशत भू-भाग संचालित है। परिचालित भूमि जोत का छोटा प्रतिशत आदिवासी लोगों को वैज्ञानिक खेती के लिए उचित गुंजाइश प्रदान नहीं करता है। छोटे परिचालित भूमि जोत वाले आदिवासी किसान पूरे साल कृषि गतिविधियों में संलग्न नहीं हो सकते हैं और इस तरह इसने उनकी वित्तीय स्थितियों में सुधार करने में बहुत योगदान नहीं दिया है।

**कृषि सहायक व्यवस्था** : खेती में सिंचाई, बेहतर बीज, उर्वरक, वैज्ञानिक साधनों का उपयोग और खेती के तरीके आदि का समर्थन क्षेत्र भी सीमित है। हालांकि कुछ क्षेत्रों में कृषि वर्ष के दौरान 2 से 3 फसलों की पैदावार की प्रचुर संभावना है, किसानों की खराब आर्थिक स्थिति उन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं दे रही है। भूमि को सिंचित करने के लिए वित्तीय सहायता के अभाव ने उन्हें मानसून के दौरान एक ही फसल लेने के लिए मजबूर किया है और इस तरह की छोटी जोत से उत्पन्न फसल एक परिवार के लिए एक वर्ष के लिए भी पर्याप्त नहीं हो पाती है।

**उपर्युक्त** तथ्यों से पता चलता है कि कृषि भूमि के साथ-साथ परिचालन जोतों का आकार भी इस जिले में आदिवासियों के आजीविका पैटर्न का पर्याप्त समर्थन नहीं कर पाया है।

**स्थानांतरण की खेती** : श्योपुर जिले की आदिवासी अर्थव्यवस्था में स्थानान्तरण खेती का एक अलग स्थान था। कुछ पारिस्थितिक बाधाओं के अंतर्गत प्राथमिक तौर से अधिकांश आदिवासियों द्वारा व्यापक रूप से इसका अभ्यास किया जाता था। सामान्यतः इस प्रक्रिया में पहाड़ी ढलानों और ढलानों पर पेड़ों को काटने के साथ अभ्यास किया जाता है और गिरे हुए पेड़ों और झाड़ियों को जलाया जाता है और राख से ढकी मिट्टी में बीज को प्रसारित किया जाता है। बाकी प्रकृति की देखभाल के लिए छोड़ दिया जाता है फसलों की कटाई पहले दो या तीन वर्षों के लिए कम दर पर की जाती है और फिर भूमि को तब तक छोड़ दिया जाता है जब तक कि वह अपनी उर्वरता प्राप्त नहीं कर लेती। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक कि मिट्टी के कटाव के कारण भूमि की उर्वरता पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाती। तब भूमि को अंततः किसी भी आर्थिक या पर्यावरणीय महत्व से रहित गंजे पहाड़ियों को छोड़ दिया जाता है। फिर आदिवासी ताजा खेती के लिए पहाड़ी ढलान के एक नए समाशोधन के लिए जाते हैं। इस तरह की खेती पहाड़ी भूमि के एक भू-खंड से दूसरी भूमि में बड़े पैमाने पर वनों की कटाई करती हैं और शीर्ष मिट्टी के बड़े पैमाने पर गिरावट के बाद एकएक बंजर भू-भाग छोड़ देती हैं, जिसने क्षेत्र के पारिस्थितिक संतुलन को गंभीर रूप से प्रभावित किया। यह एक व्यर्थ, विध्वंसकारी प्रथा है, जिससे बहुमूल्य वन नष्ट हो जाते हैं, जो लोगों को वनों और वनोपज के लाभों का लाभ उठाने से वंचित करती हैं, वर्षा को प्रभावित करती हैं और आगे की कृषि के लिए भूमि को पूरी तरह से बंजर और अनुपयोगी बनाकर भविष्य की आजीविका के लिए खतरा पैदा करती हैं।

**वित्तपोषण की समस्या** : जिले में आदिवासियों के आजीविका पैटर्न के विकास के लिए वित्त की उपलब्धता एक और बाधा

है। गरीब किसान आमतौर पर अपनी आवश्यकता के लिए बाहरी वित्तीय संस्थाओं पर निर्भर रहते हैं। श्योपुर जिले में, मुख्य रूप से क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, वाणिज्यिक बैंकों और सहकारी बैंकों द्वारा वित्त वितरित किया जाता है। लेकिन इन वित्तीय संस्थानों की संख्या जनसंख्या के हिसाब से पर्याप्त नहीं है और वे इन आदिवासी किसानों को पर्याप्त रूप से वित्तीय सहायता प्रदान करने में असमर्थ हैं। इसके पीछे मुख्य कारण कागजी कार्यवाही की मांग और लंबी प्रक्रिया को देखा गया है। आदिवासी भी निरक्षर हैं जिससे वे संस्थागत वित्तपोषण की प्रक्रिया से अनभिज्ञ हैं एवं वित्तीय सहायता लेने में असमर्थ हैं। इस स्थिति ने उन्हें पारंपरिक साहूकारों से वित्त की अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए मजबूर किया। पारंपरिक साहूकार उच्च दरों पर ऋण प्रदान करते हैं। यह सब जिले के आदिवासियों के बीच गरीबी के दुष्चक्र में बदल गया है।

**सुझाव** : हमारे ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों की समृद्धि और विकास, जहां लाखों लोग अत्यधिक अभावों में रहते हैं, केवल आजीविका कार्यक्रमों के विकास के माध्यम से पूरा किया जा सकता है। इस संबंध में, निम्न सुझाव उल्लेखनीय हैं –

**शिक्षा और** कृषि अनुसंधान, हमारी आर्थिक ताकत के प्रमुख कारकों में से एक हैं। घटते हुए भूमि संसाधन, बढ़ते जैव-तनाव, जैव-विविधता के लिए खतरा, प्राकृतिक संसाधन आधार का सिकुड़ना आदि कुछ कठिनाइयाँ हैं, जिनका सामना अब हम कृषि क्षेत्र में करने जा रहे हैं। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए और भूमि संसाधन के स्थायी उपयोग के लिए इन कठिनाइयों को वैज्ञानिक रूप से नियंत्रित किया जाना चाहिए।

**जिले में** कृषि संसाधन हालांकि कुछ हद तक अनुकूल हैं, लेकिन इनका उपयोग आदिवासियों के कृषि विकास और आजीविका के पैटर्न के लिए नहीं किया जाता है। सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है लेकिन आदिवासी सिचाई सुविधाओं का वित्तीय बोझ उठाने में असमर्थ हैं। उसी तरह, किसान फसल प्रबंधन का पालन नहीं करते हैं और उनके पास कृषि आधुनिकीकरण का अभाव है। किसी भी क्षेत्र में फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए समय पर खेत की देखभाल सहायता बहुत आवश्यक है। जिले में कृषि सहायता प्रणाली बहुत कमजोर है। सरकारी एजेंसियों और गैर-सरकारी संगठनों के प्रभावी सहयोग से विभिन्न कृषि सहायता प्रणाली जैसे सिंचाई, उच्च उपज वाले बीज, उर्वरक, कीटनाशक आदि प्रदान करके जिले में कृषि उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।

**भूमि की** कमी के कारण, विकसित कृषि उपकरणों की खरीद के लिए वित्तीय सहायता की कमी, क्षेत्र में लाभकारी आजीविका के वैकल्पिक साधनों की अनुपस्थिति, धार्मिक विश्वास और परंपरा आदि के कारण अधिकांश जिलेवासी विशेषतया आदिवासी पारंपरिक आजीविका पैटर्न पर निर्भर रहने के लिए मजबूर हैं। इस संबंध में आजीविका के वैकल्पिक स्रोत की शुरुआत और आदिवासी विकास की योजना में अधिक ध्यान देने की जरुरत है।

**सामाजिक** नियंत्रण के लिए वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण, सहकारी बैंकों में वृद्धि, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का गठन, जिला ऋण योजना, कृषि सब्सिडी, स्वयं सहायता समूहों को बढ़ावा देना और इसी प्रकार अब ग्राम विकास और आदिवासी विकास के बारे में लोग सोचने लगे हैं और कई अन्य अवधारणाएं भी सामने आ गई हैं। श्योपुर जिले में 84.39 प्रतिशत आबादी ग्रामीण इलाकों में रहती है और इसका बड़ा हिस्सा आदिवासी हैं।[21] इस प्रकार जिले के समग्र आर्थिक विकास के लिए आदिवासी विकास एक महत्वपूर्ण शर्त है। चूंकि कृषि को आदिवासियों की मुख्य आर्थिक गतिविधि माना जाता है, इसलिए कृषि क्षेत्र में वित्तपोषण की व्यवस्था आदिवासी विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

**धीरे-धीरे** और लगातार आदिवासियों के बीच में शिक्षा का प्रचार प्रसार होना चाहिए। शिक्षा के माध्यम से आदिवासी लोगों में कौशल और क्षमता निर्माण, स्व-सहायता समूहों का आयोजन करना, आर्थिक गतिविधियों की व्यवस्था करना, और विस्तारवादी गतिविधियाँ प्रदान करने की आवश्यकता है, जिसका उद्देश्य आदिवासियों में क्षमताओं का निर्माण करना, जानकारी देना और समाज के सकारात्मक परिप्रेक्ष्य का निर्माण करना होना चाहिए। विकास की कुछ मात्रा की पहुँच नियोजित युग के दौरान हुई है और अभी बहुत कुछ करने की जरूरत है, जिसे सरकार, आधिकारियों, स्थानीय राजनेताओं, स्वैच्छिक संगठन और लोगों के संयुक्त प्रयास से किया जा सकता है। एक लंबे समय में स्थानीय लोगों को विश्वास में लेकर और उनकी सक्रिय भागीदारी के साथ एक समग्र दृष्टिकोण, जिले को स्वर्ग बनाने में सहायता करेगा। सब्जियों की खेती, वन रोपण, बागवानी, लकड़ी की नक्काशी जैसे लघु उद्योगों जैसी विभिन्न योजनाओं को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से किया जाना चाहिए। इन्हें लागू करने के

लिए सरकार को आवश्यक वित्तीय सहायता देने की जरुरत है। इससे आजीविका की समस्या को सुधारने में सहायता मिलेगी।

**निष्कर्ष** : स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में उठाए गए कुछ विकास उपायों के बावजूद, जीवन स्तर में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई है। छद्म राजनीतिक संरक्षण और व्यावहारिक परिणाम उन्मुख दृष्टिकोण के अभाव के कारण आदिवासी अभी भी अज्ञानता के दलदल में पड़े हुए हैं। औद्योगीकरण के माध्यम से विकास के संबंध में विपरीत नीतिगत निर्णयों के परिणामस्वरूप आदिवासियों और सरकार के बीच संघर्ष और टकराव हुआ। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आदिवासी आबादी को प्रभावित करने वाले किसी भी नीतिगत निर्णय में उन आदिवासियों को शामिल किया जाना चाहिए जिससे वें अपने भाग्य के निर्माता बन सकें और विकास के नकारात्मक परिणामों से स्वयं को बचा सकें। विकास की अवधारणा की कल्पना हमारी अपनी दृष्टि से नहीं बल्कि आदिवासियों की आवश्यकताओं, विचारों, संतोष और स्वीकार्यता के अनुसार की जानी चाहिए।

**जनजातियाँ** भी वृहद समाज का हिस्सा हैं और उनकी समस्याओं को समाज की समस्याओं के रूप में माना जाना चाहिए। इस अभ्यास में हिस्सेदारी धारक जैसे सरकार, नौकरशाहों, स्थानीय राजनेताओं और गैर सरकारी संगठनों को अपनी सामूहिक जिम्मेदारियों के साथ आदिवासी समाज को गरीबी उन्मूलन और एक सतत विकास की ओर ले जाना चाहिए। इसी प्रकार सम्बंधित हिस्सेदारी धारकों को आजीविका बनाने और आदिवासी समाज से व्यापक गरीबी को समाप्त करने के लिए एक मानवीय दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए। आदिवासी गरीबों को सामाजिक बोझ के बजाय संसाधन के रूप में माना जाना चाहिए। इस तरह, सामान्य रूप से और विशेष रूप से श्योपुर जिले में भारत में आदिवासी आजीविका को बढ़ावा देने के माध्यम से गरीबी पर हमला करने के लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता है।

## सन्दर्भ


1. Kabra, A. *'Displacement and Rehabilitation of an Adivasi Settlement: Case of Kuno Wildlife Sanctury, Madhya Pradesh'*, Economic & Political Weekly. Vol. 38 No. 29, 10 July 2003, p.3077.
2. Sahay, B.N. *'Approach to Tribal Welfare in Post-Independence Era'*, Indian Anthropologist. Vol. 28, No. 1, 1998, pp. 73-81.
3. Chaudhri, B., *'Tribal Development in India Problems and Prospects'*, Inter-India Publications, Delhi, 1982
4. Census, 2011.Retrieved from www.censusindia.gov.in, accessed on 20/05/2020.
5. Census, 2011.Retrieved from www.censusindia.gov.in, accessed on 20/05/2020.
6. District Statistical Handbook, 2011. Retrieved from www.sheopur.nic.in accessed on 18/05/2020.
7. Madhya Pradesh State MDG Report 2014-15. Retrieved from www.indiaenvironmentportal.org.in ; accessed on 15/05/2020.
8. Madhya Pradesh State MDG Report 2014-15. Retrieved from www.indiaenvironmentportal.org.in ; accessed on 15/05/2020.
9. Naik, T. B., *'The Saharia'*, Gujarat Vidyapith: Tribal Research and Training Institute, 1998.
10. Mondol, D., *'Social Structure and Cultural Change in the Saharia Tribe'*, M. D. Publications, New Delhi, 1998
11. Tyagi, M. & Padhi, S. R., *'Livelihood Diversification and Challenges among Sahariya Tribe in Gwalior District'*, Think India, 2251-2261.
12. Census, 2011. Retrieved from www.censusindia.gov.in; accessed on 20/05/2020.
13. District Statistical Handbook, 2011. Retrieved from www.sheopur.nic.in; accessed on 18/05/2020.
14. District wise skill gap study for the State of Madhya Pradesh January, 2013; National Skill Development Corporation; Retrieved from www.nsdcindia.org; accessed on 01/06/2020.
15. Madhya Pradesh State MDG Report 2014-15. Retrieved from www.indiaenvironmentportal.org.in; accessed on 15/05/2020.
16. Report of the World Commission on Environment and Development: Our Common Future; Retrieved from www.sustainabledevelopment.un.org; Accessed on 26/05/2020.
17. Savyasaachi, *'The Tiger and the Honey Bee'*. Retrieved from www.adivasi.comhttps://adivasisrc.files.wordpress.com/2017/03/the-tiger-and-the-honeybee_savyasaachi.pdf; accessed on 18/04/2020.
18. Kabra, Asmita, op.cit. p.3076.
19. Naik, T. B., op.cit.
20. Mondal, Debabratta, op.cit.
21. Sheopur District Statistical Handbook. https://cdn.s3waas.gov.in/s39f61408e3afb633e50cdf1b20de6f466/uploads/2019/07/2019070957.pdf).

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2020 UGC-CARE List-Social Sciences

# वैश्वीकरण और आधुनिक भारतीय समाज की चुनौतियाँ

❑ डॉ. मनीष सिंह

**वैश्वीकरण** का अध्ययन विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में किया जाता रहा है और प्रत्येक विषय के विद्वान अपने विषय के परिप्रेक्ष्य से प्रभावित होकर ही इस विषय पर विचार व्यक्त करते हैं। लेकिन, इस शोध-पत्र में वैश्वीकरण पर विचार समाजशास्त्र तथा इतिहास के समेकित परिप्रेक्ष्य में किया जा रहा है। अनुभव यह दर्शाता है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया का कोई दूसरा विकल्प नहीं है। विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं संचार के माध्यमों के क्षेत्र में विश्व स्तर पर इतनी तरक्की हो गयी है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया चाहे- अनचाहे प्रत्येक समाज में चल रही है। अंतर सिर्फ मात्रा, परिवर्तन की गति तथा स्वरूप का है। इसी तथ्य के आलोक में इस लेख में यह स्पष्ट करने की कोशिश की जा रही है कि वैश्वीकरण का भारत जैसे समाज पर मोटे तौर पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ रहा है। यहाँ सभी प्रकार के प्रभावों की चर्चा न कर हम अपने-आप को नकारात्मक प्रभावों तक ही सीमित रखते हैं, क्योंकि अनुसन्धान की परिधि जितनी छोटी और केन्द्रित होगी, अनुसन्धान गुणात्मक दृष्टि से उतनी ही बेहतर माना जाता है।

> वैश्वीकरण ने विश्व के तमाम देशों के सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक-सांस्कृतिक जीवन को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही रूपों में गम्भीर रूप से प्रभावित किया है। 1990 के दशक में सोवियत संघ के विघटन के बाद समस्त विश्व में उदार पूँजीवादी मूल्यों की विश्वव्यापी विजय हुई और पूँजीवादी व्यवस्था ने सारे विश्व में अपने पाँव फैलाने शुरू कर दिए। विज्ञान एवं तकनीक के विकास एवं सूचना क्रान्ति के सन्दर्भ में उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की धारणा का विकास इसी परिप्रेक्ष्य में हुआ। इसने आर्थिक समृद्धि, समग्र विकास, वैश्विक ग्राम के नारे के माध्यम से विश्व के अन्य देशों की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक जीवन प्रणाली के पुनर्निमाण पर बल दिया। विश्व के आर्थिक एकीकरण के साथ-साथ वैश्वीकरण ने उसके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक एकीकरण पर भी बल दिया है। ऐसे में इसने समाज के हर वर्ग को प्रभावित करने की कोशिश की है। लोगों के जीवन पर वैश्वीकरण के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव दृष्टिगोचर हैं। यह सच है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया से समाज का एक तबका लाभान्वित हुआ जो योग्य, शिक्षित एवं सामर्थवान है। विश्व के कई भागों में वैश्वीकरण विरोधी शक्तियाँ समय- समय पर इसके विरूद्ध आवाज उठाती रही हैं, आन्दोलन चलाती रही हैं।

**'वैश्वीकरण'** का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्वस्तर पर रूपान्तरण की प्रक्रिया से है। इसे एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एकसाथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है। वैश्वीकरण का उपयोग अक्सर आर्थिक वैश्वीकरण के सन्दर्भ में किया जाता है, अर्थात् व्यापार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, पूँजी प्रवाह, प्रवास और प्रौद्योगिकी के प्रसार के माध्यम से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में एकीकरण।[1] आज वैश्वीकरण का अर्थ है आर्थिक प्रयोजनों के लिए राष्ट्रीय सीमाओं का विलोपन। 'वैश्वीकरण' शब्द का उपयोग अर्थशास्त्रियों के द्वारा 1980 से किया जाता रहा है, हालाँकि 1960 के दशक में इसका उपयोग अन्य सामाजिक विज्ञानों में किया जाता था; लेकिन 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1990 तक इसकी अवधारणा लोकप्रिय नहीं हुई थी।

**वैश्वीकरण** अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसायिकों के लिए व्यवसाय को बढ़ाने, तकनीकी वृद्धि, अर्थव्यवस्था में सुधार करने आदि का तरीका है। इस तरह से, निर्माणकर्त्ता या उत्पादक अपने उत्पादों या वस्तुओं को पूरे विश्व में बिना किसी बाधा के बेच सकते हैं। यह व्यवसायी या व्यापारी को बड़े स्तर पर लाभ प्रदान करता है, क्योंकि उन्हें वैश्वीकरण के माध्यम से गरीब देशों में आसानी से कम

❑ 25 रामकृष्ण पत्र, पटना (बिहार)

कीमत पर मजदूर मिल जाते हैं। यह कम्पनियों को बड़े स्तर पर वैश्विक बाजार में अवसर प्रदान करता है। यह किसी भी देश को भागीदारी, मिश्रित कारखानों की स्थापना, समता अंशों में निवेश, उत्पादों या किसी भी देश की सेवाओं का विक्रय आदि करने की सुविधा प्रदान करता है।[2]

**वैश्वीकरण** की प्रक्रिया को कतिपय विद्वानों ने सदियों लम्बी प्रक्रिया के रूप में देखा है, जो मानव समाज और संस्कृति के विकास पर नजर रखती है, जो पिछले 50 वर्षों में नाटकीय ढंग से त्वरित हुई है। वैश्वीकरण का प्रारम्भिक रूप रोमन साम्राज्य, पार्थियन (Parthian) साम्राज्य और हैन राजवंश (Han Dynasty) के काल में देखने को मिलता है, जब चीन में शुरू हुआ रेशम मार्ग पार्थियन साम्राज्य की सीमा तक पहुँच गया और आगे रोम की तरफ बढ़ गया। इस्लामी स्वर्ण-युग भी एक उदाहरण है, जब मुस्लिम व्यापारियों और अन्वेषकों ने विश्व अर्थव्यवस्था की प्रारम्भिक पुरानी दुनिया की स्थापना की जिसके परिणामस्वरूप कुछ फसलों, व्यापार, ज्ञान और प्रौद्योगिकी का वैश्वीकरण हुआ और बाद में मंगोल साम्राज्य के दौरान, जब रेशम मार्ग पर अपेक्षाकृत अधिक एकीकरण था। व्यापक सन्दर्भ में वैश्वीकरण की शुरुआत 16वीं शताब्दी के अन्त से पहले हुई, यह स्पेन और विशेष रूप से पुर्तगाल में हुई। 16वीं शताब्दी में पुर्तगाल का वैश्विक विस्तार विशेष रूप से एक बड़े पैमाने पर महाद्वीपों, अर्थव्यवस्था और संस्कृतियों से जुड़ा है। पुर्तगाल का अफ्रीका के अधिकांश तटों और भारतीय क्षेत्रों के साथ विस्तार और व्यापार वैश्वीकरण का पहला प्रमुख व्यापारिक रूप था। विश्व व्यापार की एक लहर उपनिवेशीकरण और परसंस्कृति-ग्रहण (Enculturation) के रूप में दुनिया के सभी कोनों तक पहुँच गयी। 16वीं और 17वीं शताब्दियों में वैश्विक विस्तार यूरोपीय व्यापार के प्रसार के माध्यम से जारी रहा जब पुर्तगाली और स्पैनिश साम्राज्य अमरीका तक फैल गया और अन्ततः फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन तक पहुँचा। वैश्वीकरण ने दुनिया भर में संस्कृतियों खासकर स्वदेशी संस्कृतियों, पर एक जबरदस्त प्रभाव डाला।[3]

**17वीं सदी** में वैश्वीकरण एक कारोबार बन गया जब डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना हुई, जो अक्सर पहली बहुराष्ट्रीय निगम कहलाती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उच्च जोखिम के कारण, जिसने स्टॉक के जारी शेयरों के माध्यम से कम्पनियों के जोखिम और संयुक्त स्वामित्व को शेयर किया, यह वैश्वीकरण के लिए एक महत्त्वपूर्ण संचालक रहा। ब्रिटिश साम्राज्य (इतिहास में सबसे बड़ा साम्राज्य) को इसके पूर्ण आकार और शक्ति के कारण वैश्वीकरण का दर्जा मिला था। इस अवधि के दौरान ब्रिटेन के आदर्शों और संस्कृति को अन्य देशों पर थोपा गया।

**19वीं सदी** को कभी-कभी 'वैश्वीकरण का प्रथम युग' भी कहा जाता है। कुछ लेखकों के अनुसार, वैश्वीकरण की वास्तविक शुरुआत 16वीं शताब्दी में पुर्तगाली विस्तारवाद के साथ हुई। यह वह काल था, जिसका वर्गीकरण यूरोपीय शाही शक्तियों, उनके उपनिवेशों और बाद में, संयुक्त राज्य अमरीका के बीच तेजी से बढ़ते अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और निवेश के आधार पर किया गया। यही वह काल था, जब उप-सहारा अफ्रीका (Sub-Saharan Africa) के क्षेत्र और प्रशांत द्वीप विश्व प्रणाली में शामिल हो गए। वैश्वीकरण के प्रथम युग के टूटने की शुरुआत 20वीं शताब्दी में प्रथम विश्व युद्ध के साथ हुई और बाद में 1920 के दशक के अन्त और 1930 के दशक की शुरुआत में स्वर्ण मानक संकट (Gold Standard Crisis) के दौरान यह ध्वस्त हो गया।

**आधुनिक वैश्वीकरण :** द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से वैश्वीकरण मुख्य रूप से अर्थशास्त्रियों, व्यापारिक हितों और राजनीतिज्ञों के नियोजन का परिणाम है जिन्होंने संरक्षणवाद और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण में गिरावट के मूल्य को पहचाना। उनके काम का नेतृत्व ब्रेटन वुड्स सम्मेलन (Bretton Woods Conference) और इस दौरान स्थापित हुई कई अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने किया, जिनका उद्देश्य वैश्वीकरण की नवीनीकृत प्रक्रिया का निरीक्षण, इसको बढ़ावा देना और इसके विपरीत प्रभावों का प्रबन्धन करना था।[4]

**आज** स्थानिक और वैश्विक (Local and Global) लोग एक कड़ी में बंध गए हैं। यह सबकुछ पिछले 25 वर्षों में ही हुआ है और दूसरा कारण संचार साधनों में वृद्धि, सूचना तकनीक और आवागमन के साधन हैं। दूरियों को कम करने का काम बड़े-बड़े जेट हवाई जहाज करते हैं। देखते-ही-देखते एक जगह का उत्पादन दूसरी जगह पहुँच जाता है। पिछले लगभग 40 वर्षों में सेटेलाइट संचार व्यवस्था का विकास इस भाँति हुआ है कि दुनिया के लोग एक-दूसरे के साथ आराम से सम्पर्क कर सकते हैं। इन सब प्रक्रियाओं को जो दुनिया भर के सामाजिक सम्बन्धों को गहरा और घनिष्ठ कर रही हैं, समाजविज्ञानी वैश्वीकरण

कहते हैं। हमें वैश्वीकरण को केवल दुनिया को जोड़ने वाले एक नेटवर्क की तरह ही नहीं देखना चाहिये। केवल यही नहीं समझना चाहिये कि वैश्वीकरण हमें एक अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सूत्र में बाँधने वाला है। यह सब तो वैश्वीकरण की प्रक्रिया करती ही है, पर इससे आगे वैश्वीकरण हमारे स्थानीय दिन-प्रतिदिन के जीवन को भी प्रभावित करता है। जहाँ वैश्वीकरण लोगों को एक-दूसरे के निकट लाता है, वहीं उनमें तनाव भी पैदा करता है। स्थानीय संस्कृति और बाजार को वैश्विक संस्कृति तथा बाजार का भय बराबर बना रहता है।

**वैश्वीकरण** की प्रक्रिया सदियों पुरानी हो सकती है, लेकिन शब्द काफी नवीन है। इसका सारा श्रेय लिवीट (Theodore Levitt, 1925–2006) को जाता है, उन्होंने एक जगह यह कहा है कि हमें वैश्विक तरीके से सोचना चाहिये और हमारे काम करने के तरीके स्थानीय यानी देशी होने चाहिये। लिविट का यह कथन वैश्विक और स्थानीय में तनाव कम करके सामंजस्य स्थापित करने का है। सच्चाई यह है कि आज की दुनिया बड़ी तेज रफतार से बदल रही है। अगर 1980 का दशक यूरोप और अमरीका में उत्तर-आधुनिकता की अवधारणा का था, तो 1990 का दशक वैश्वीकरण का है। अब तो यह भी सोचा जाने लगा है कि वैश्वीकरण के बाद का युग उत्तर-वैश्वीकरण (Post-globalization) का होगा। कारण यह है कि आधुनिक सामाजिक सिद्धान्त-मार्क्सवाद और प्रकार्यवाद-भी अब नये सिरे से वैश्वीकरण की व्याख्या करने लगे हैं। यह बताना है कि अब वैश्वीकरण उत्तर-आधुनिक समाज की बीमारी बन गया है।[5]

**आधुनिक** वैश्वीकरण का इतिहास बहुत छोटा है- यही कोई 30-40 वर्षों का है। इस अवधि में समाजशास्त्रियों ने इसे सिद्धान्त में बाँटने का प्रयास किया है। वैश्वीकरण का सिद्धान्त वैश्विक सांस्कृतिक व्यवस्था (Global Cultural System) की बात करता है। इन विकासों में सेटेलाइट-सूचना व्यवस्था, उपयोग के वैश्विक प्रतिमान का उद्गम और कॉस्मोपॉलिटन जीवन- पद्धति का आविर्भाव है। वैश्विक खेल-कूद ने भी इस प्रक्रिया को ताकतवार बनाया है। ओलम्पिक गेम्स, वर्ल्ड सॉकर प्रतियोगिता, अन्तर्राष्ट्रीय टेनिस खेल और विश्व पर्यटन ने भी वैश्वीकरण को बढ़ावा दिया है। वैश्वीकरण के कारण उदारीकरण और निजीकरण भी आये हैं। इसने राष्ट्र-राज्यों की भूमिका को कमजोर बना दिया। वैश्वीकरण ने स्वास्थ्य सेवाओं और पर्यावरण को भी सम्पूर्ण संसार की समस्या बना दिया है। चेचक उन्मूलन, मलेरिया, टी.बी., पोलियो की समाप्ति अब सामान्य स्वास्थ्य समस्यायें बन गयी हैं। कुछ सामाजिक संस्थाएँ हैं जिनकी व्यापकता सार्वभौमिक हो गयी है। इन संस्थाओं में राजनीतिक मार्क्सवादी आन्दोलन, मानवाधिकार और विभिन्न धर्मों का पारम्परिक अन्तःक्रिया सम्मिलित है। सबसे बड़ी बात यह है कि अब एक ऐसी सोच विकसित हो गयी है जो सम्पूर्ण संसार को एक इकाई मानकर चलता है। गुजरात के कच्छ-भुज में भूकंप आता है या अफगानिस्तान की धरती हिलने लगती है, तो सम्पूर्ण संसार हाथ बढ़ाने, दवा-दारू देने के लिए तैयार हो जाता है। कुल मिलाकर वैश्वीकरण एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें भौगोलिक दबाव कमजोर हो गए हैं और इसी तरह सांस्कृतिक और सामाजिक सम्बन्धों की कसावट भी ढीली पड़ गयी है।[6]

**वैश्विक भारत (Global India)** : दुनिया की राजनीतिक, व्यापारिक, मानसिक, सांस्कृतिक और सामाजिक सीमाएँ खुल रही हैं। बीसवीं सदी के आखिरी दशक में जब सामाजिक वैज्ञानिकों ने वैश्वीकरण शब्द का इस्तेमाल शुरू किया तब उसका अर्थ अमरीकी संस्कृति और जीवन-शैली की वैश्विक स्वीकृति से था। फ्रांसिस फुकुयामा का इतिहास का अन्त (End of History) सम्बन्धी विचार इसी स्थिति की ओर इशारा कर रहा था। पर तबसे अब तक दो बड़ी घटनाएँ हुई। एक 9/11 और दूसरे वैश्विक मंदी। अल कायदा ने बताया कि आतंक का वैश्वीकरण भी सम्भव है। सम्भावना है कि पूँजी के वैश्विक विस्तार के विरोध में वैश्विक जनांदोलन भी खड़ा होगा। पर उससे बड़ा वैश्वीकरण प्रकृति कर रही है। ग्लोबल वॉर्मिंग, मौसम में परिवर्तन, बीमारियाँ, पीने के पानी और भोजन का संकट पूरी मानवता के प्रश्न हैं। इनके समाधान के लिए हमें अपनी चेतना का लेवल बढ़ाना चाहिए।

**सन् 2008** ने बड़े स्तर पर खाद्य संकट देखा। इस संकट के पीछे फसलों के खराब होने के अलावा वैश्विक व्यापार की प्रवृत्तियाँ भी थीं। एक थी तेल के लिए वनस्पतियों का इस्तेमाल। पेट्रोलियम की कीमतों में अत्यधिक वृद्धि के साथ-साथ इथेनॉल जैसे एग्रोफ्यूल की ओर उत्पादकों का ध्यान गया। मक्का, सोया और पामऑयल का इस्तेमाल बायोफ्यूल के लिए होने लगा है। दूसरी ओर विश्व में मांसाहार बढ़ रहा है। अमरीका के किसान सुअरों को खिलाने के लिए मक्का उगा रहे हैं। व्यापारिक कारण

मानवीय कारणों पर हावी हो रहे हैं। खेती का कॉरपोरेटाइजेशन उत्पादकता को बढ़ाने में मददगार हो तो हर्जा नहीं, पर भोजन सबके लिए जरूरी है। ऐसा न हो कि ग़रीब भूखे रह जाएँ। अर्थव्यवस्था का काफी बड़ा हिस्सा या समूची अर्थव्यवस्था बाजार के हवाले हो इसमें भी हर्ज नहीं, पर साधनों के वितरण की व्यवस्था सामाजिक देखरेख में ही होगी। बाजार भी सामाजिक निगरानी में ही चल सकते हैं। फ्री मार्केट और फ्री ट्रेड का प्रतिफल कुछ दिन पूर्व अमेरिकन बैंकिंग में देखने को मिला। सामाजिक निगरानी की अभी जरूरत है। संयोग है कि अमरीका जैसी फ्री इकॉनमी में उद्योगों को बचाने के लिए पूर्व में सरकार का सहारा लेना पड़ा।

**भारत जैसे** देश कई मायनों में बेहतर स्थिति में हैं। हम ऐसी तकनीक ला सकते हैं, जो पर्यावरण मित्र (Environment Friendly) हों। सार्वजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य और न्याय की नयी प्रणाली शुरू कर सकते हैं। हम ऐसे विज्ञान और तकनीक को बढ़ावा दे सकते हैं, जो हमारी समस्याओं का समाधान करें। उसके लिए नये ढंग से सोचने की जरूरत है। क्या हम नये ढंग से सोच पाते हैं? हमारा पूरा फिल्म उद्योग हॉलीवुड की नकल करने पर उतारू है। इतनी समृद्ध संगीत परम्परा के बावजूद धुनें नकल की हैं। उद्योग-व्यापार और प्रबंध के सारे मॉडल विदेशी हैं। मगर विकास, नियोजन, राजमार्ग, भवन-निर्माण बग़ैरह की समझ पश्चिमी है। इसमें ग़लत कुछ नहीं। पश्चिम के पास तकनीक है तो वहाँ से लेनी चाहिए। कुछ साल पहले प्रोफेसर यशपाल ने शायद किसी प्रबन्ध संस्थान में देश में चलने वाले वाहन जुगाड़ की तारीफ की। तारीफ इसलिए नहीं कि उसकी तकनीक विलक्षण है, बल्कि इसलिए कि ऐसी मशीन जो पानी निकाल दे, बिजली बना दे। जरूरत पड़े तो ठेलागाड़ी बन जाय या नाव चला दे यानी अपनी जरूरतों को पूरा करे। विज्ञान और तकनीक की यही भूमिका है। अपनी समस्याओं के अपने समाधान खोजने के लिए हमें वैचारिक क्रान्ति की जरूरत है।[7]

**यह भी** सच है कि वैश्वीकरण से ऐसी टेक्नॉलॉजी आती है जिससे पुरानी टेक्नॉलॉजी के उद्योग धन्धे खत्म होने लगते हैं। उदाहरण के लिए मैन्चेस्टर की मिलों के सस्ते कपड़े ने भारत के कपड़ा उद्योग को तबाह कर दिया। नयी टेक्नॉलाजी अचानक इस तरह की बर्बादी करती है। सरकार और कम्पनियों को ऐसी नीतियाँ अपनानी चाहिए, जिनसे नयी टेक्नॉलाजी से होने वाले कष्ट कम हों और लाभ अधिक हों।

**अगर हम** वैश्वीकरण के बारे में भारत के हाल का अनुभव देखें तो 8.9 प्रतिशत की विकास दर अर्थव्यवस्था को दुनिया के लिए खोले बिना क्या सम्भव थी? अर्थव्यवस्था खुलने से निवेश आया, नयी टेक्नॉलाजी आयी। रोजगार पैदा हुए। यह ठीक है कि मंदी से कॉल सेंटरों की नौकरियाँ कम हो सकती हैं। लेकिन इसकी वजह से ही हम वैश्वीकरण को खारिज नहीं कर सकते। अँगरेजी मुहावरा है कि बाथ टब के गंदे पानी के साथ बच्चे को भी बाहर मत फेंको।

**नयी** वस्तुओं की चाहत और उनका व्यापार हमेशा वैश्वीकरण का प्रेरक रहा है। कभी दुनिया भर में भारत के मसाले और कपड़े की चाहत थी। आज भी भारत में कृषि उत्पादों के प्रोसेसिंग के बहुत अवसर हैं। भारत में इतनी तरह के फल पैदा होते हैं। जरूरत है प्रोसेस करने और निर्यात करने योग्य बनाने की। इसमें स्थानीय प्रोसेसिंग इंडस्ट्री के लिए बहुत अवसर हैं। हमें हाई क्वालिटी के प्रासेस्ड उत्पाद चाहिए। इसके लिए स्वच्छता का ज्ञान होना जरूरी है। इससे खाने-पीने की प्रोसेस्ड चीजों में स्वतः गुणवत्ता आती है। भारत में हस्त-कौशल बहुत है। बहुत से ऐसे सजावटी सामान स्थानीय लोग बनाते हैं, जिनका अमीर देशों के लोग अपने घरों, ऑफिसों और होटलों को सजाने में इस्तेमाल कर सकते हैं। भारत में बने सजावटी कपड़ों के लिए बहुत अवसर हैं। भारतीयों को मैन्यूफैक्चरिंग में परम्परागत कौशल हासिल है।[8]

**बगदाद** के शासक सैकड़ों साल पहले भारत से स्टील का आयात करते थे क्योंकि तलवार बनाने के लिए सबसे मजबूत स्टील भारत का होता था। आज भी भारत क्या निर्मित नहीं कर सकता? हमारे पास प्राकृतिक और मानव संसाधन दोनों हैं। अगर हम अपने आप में ही सिमटें हैं तो ऐसा कर हम अपने-आपको गरीब बने रहने को विवश कर रहे हैं।

**वैश्वीकरण** के नये प्रेरक क्या हो सकते हैं? विकसित देशों में बूढ़ा होता समाज भी वैश्वीकरण की प्रक्रिया को तेज करेगा। बहुत से देश हैं, जहाँ युवजन की कमी है, जो वहाँ की अर्थव्यवस्था चला सकें। अगर उन्हें युवा नहीं मिलते, तो उनकी अर्थव्यवस्था गिरती जायेगी। उन देशों को अपने बुजुर्गों की देख-भाल और जरूरतें पूरी करने के लिए युवा-शक्ति को काम पर लगाना ही होगा। निश्चित रूप से तमाम ऐसे देशों में हमारे युवा लोगों की माँग और उनका

जाना बढ़ेगा।

**वैश्वीकरण** का स्थानीय भाषा पर पड़ने वाला असर जरूर चिन्ता पैदा करता है। अनेक छोटी भाषाएँ खत्म होती जा रही हैं। यह हर देश के लिए सच है। भाषा हमेशा पैसे के पीछे चलती है। आज अँगरेजी का बोलबाला है, तो इसलिए कि इससे कमाई करना आसान है। किसी जमाने में फारसी और फ्रांसीसी का बोलबाला था। अर्थव्यवस्था के विकास का रुख पश्चिम की ओर बना, तो वहाँ की भाषाएँ महत्त्वपूर्ण बनीं, इसके लिए जरूरी है कि भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की प्रमुख हो जाए।

**भारत में** वैश्वीकरण के विरोध के सुर इसलिए उठे कि बहुत लोग उससे लाभान्वित होने की जगह उससे घाटे में रहे। वैश्वीकरण का नकारात्मक पहलू खत्म करने के लिए जरूरी है कि लोगों की आमदनी, शिक्षा और कौशल का अन्तर कम किया जाए। सिर्फ आय का अन्तर कम करने से काम नहीं चलेगा।

**वैश्वीकरण एवं बाजार** : आजादी के बाद भारत में उपनिवेशी अर्थव्यवस्था की जगह मिश्रित अर्थव्यवस्था को विकसित करने का प्रयास किया गया। भारतीय बाजार को एक बन्द बाजार की तरह विकसित किया जाने लगा। बन्द बाजार व्यवस्था आमतौर पर विक्रेताओं के लिए होता है। खरीददारों के लिए विकल्प बहुत नहीं होता है। बाजार में जो सामान उपलब्ध है, उन्हीं में से खरीदना है और जो मूल्य माँगा जा रहा है, उसे देना भी है। बाजार में प्रतियोगिता का भारी अभाव होता है। बाजार पर सरकार एवं कुछ पूँजीपतियों का एकाधिकार होता है।[9] इस तथ्य को एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। भारतीय बाजार में लम्बे समय तक चार पहिया वाहनों में एम्बेसडर और फिएट गाड़ी ही मिलती थी और दो पहिया वाहनों में वेस्पा और बजाज स्कूटर तथा बुलेट मोटरसाईकिल ही मिलती रही, जबकि उस समय पाश्चात्य देशों के बाजारों में विभिन्न प्रकार की बेहतर-से-बेहतर गाड़ियाँ सस्ते दाम पर उपलब्ध थीं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने धीरे-धीरे भारतीय बाजार को खोल दिया और यहाँ दुनिया भर की विभिन्न प्रकार की चीजें मिलने लगीं।

**वैश्वीकरण** का सीधा प्रतिफल यह हुआ कि दुनिया भर की अच्छी-अच्छी चीजें कम-से-कम दाम पर मिलने लग गयीं, क्योंकि खुले बाजार में उत्पादकों के बीच खुली प्रतियोगिता होती है। लोग अपने सामान को अधिक-से-अधिक बेचने के लिए बेहतर-से-बेहतर चीजों का उत्पादन करने लगे और उन्हें कम-से-कम दाम पर बेचने की कोशिश करने लगे। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने सामानों की गुणवत्ता में वृद्धि की, बाजार को सस्ता किया। आज स्थिति यह हो गयी है कि हम घर पर बैठे किसी भी देश का सामान आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। चूँकि भारत में अभी वैश्वीकरण पूरी तरह नहीं आया है, इसलिए उस रूप में हम अभी भी पिछड़े हुए हैं। भारतीय बाजार का जब पूरी तरह वैश्वीकरण हो जायेगा, तो हम किसी भी देश का कोई भी सामान कभी भी अपनी इच्छा के अनुसार खरीद सकते हैं। विक्रेताओं ने अपने सामान को बेचने के लिए होम डिलिवरी सर्विस की सुविधा प्रारम्भ कर दी है। भाग-दौड़ की जिन्दगी में खरीद-बिक्री काफी सरल और आसान हो गयी है। वैश्वीकरण के अंतर्गत बाजार उत्पादकों के हाथ में नहीं, बल्कि खरीददारों के हाथ में होता है। अब हमारा बाजार विक्रेता बाजार (Sellers' market) से क्रेता बाजार (Buyers' market) होता जा रहा है।[10] वैश्वीकरण से प्रत्येक वस्तु प्रत्येक जगह प्राप्त हो रही है। पहले क्षेत्रीय सामानों का स्थानीय बाजार होता था। कोई खास तरह का सामान खास तरह के बाजार में ही उपलब्ध होता था। लेकिन, अब तो कोई भी सामान कहीं भी प्राप्त किया जा सकता है। आधुनिक युग ने पुरातन बाजार व्यवस्था को वैश्विक बाजार व्यवस्था में परिणत कर दिया है। हम पहले बाजार जाते थे और अब बाजार हमारे पास आता है। तकनीकी विकास से हम घर बैठे बाजार की सैर कर लेते हैं, बस सिर्फ एक मोबाईल या लैपटॉप चाहिए। इसे ही बाजार का वैश्वीकरण कहा जाता है।

### वैश्वीकरण : सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव

**भारत में** 180 वर्षों के औपनिवेशिक शासन ने हमारे देश के आर्थिक और सामाजिक ढाँचों का विनाश कर दिया था। प्रत्यक्ष शासन की जगह साम्राज्यवादी ताकतों और पार-राष्ट्रीय कम्पनियों (Transnational Companies) और उसकी बहुपक्षीय संस्थाओं को आज परोक्ष शासन कायम करते हुए 73 वर्षों में देश का जो विकास हुआ, उसे वैश्वीकरण के हाल के 25 वर्षों ने बिल्कुल ही पलट दिया है। पिछले पाँच वर्षों के आर्थिक ठहराव इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि विश्व व्यापार संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष, विश्व बैंक जैसे गिरोहों के गठजोड़ की भभकी से भारतीय शासक आर्थिक सुधारों की चादर ओढ़ कर भारतीय अर्थव्यवस्था को रुग्ण होता देख रहे हैं और

पूँजीपतियों ने अपनी पूँजी बढ़ा ली और आम जनता पर इसका भयानक प्रभाव पड़ा, जो भूखमरी और मौत में पटाक्षेप हो रही है। विशाल जनसमूह के जीवन की परिस्थितियों पर वैश्वीकरण का अनर्थकारी प्रभाव पड़ रहा है। वैश्वीकरण के इस दौर में गरीब देश और गरीब हो रहे हैं और चुम्बकीय प्रवाह की तरह समृद्ध वर्गों की क्रय शक्ति बढ़ रही है। वैश्वीकरण का आधार वित्तीय पूँजी मुनाफे को अधिकाधिक बढ़ाने के लिए कोई भी आक्रामक स्वरूप में हर प्रकार की रियायत और आर्थिक सहायता जो गरीबों और मजदूरों का हक है, उसे भी छीन कर फैलाना लक्ष्य हो गया है। अपने बाजार को बढ़ाने के लिए वह अर्थव्यवस्था में हरेक पहलू में प्रवेश कर रहा है, जिसके परिणामस्वरूप पानी, स्वास्थ्य, परिवहन, बिजली, किरोसन तेल, गैस जैसी बुनियादी नागरिक सुविधाओं और सहायता प्राप्त खाद्यानों तथा उर्वरकों का भी निजीकरण हो रहा है और कीमतें बढ़ रही हैं।[11]

**वैश्वीकरण** में प्रतियोगिता, दक्षता, बेहतर उत्पादकता एवं प्रौद्योगिक तरक्की के माध्यम से प्रगति की भी अपार सम्भावनाएँ हैं, किन्तु अभी तक वैश्वीकरण का विश्व के विभिन्न क्षेत्रों पर असमान प्रभाव हुआ है और इससे विषमता गहराई है तथा निम्न आय वर्ग एवं विकासशील क्षेत्र हाशिये पर चले गए हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार विकासशील देशों की गरीबी का स्तर घटा है। 1980 के दशक में पूर्वी एशिया अत्यधिक गरीबी वाला क्षेत्र माना जाता था। आज इसी क्षेत्र को दुनिया में सबसे अधिक विकासशील क्षेत्र माना जा रहा है। तथ्य यह भी स्पष्ट करते है कि वैश्वीकरण के प्रभाव में विकासशील देशों में गरीबी घटाने में उत्प्रेरक कार्य किया है जबकि ठीक इसके विपरीत गैर-दक्ष तथा अकुशल श्रम-शक्ति की मुश्किलें बढ़ी हैं। किसान, मजदूर तथा कामगारों का बड़ा जनसमूह गरीबी की चपेट में आया है। समाज में वैज्ञानिक अर्थतन्त्र, राजव्यवस्था और संस्कृतियों के विसंगतिपूर्ण विकास के प्रति गहरी चिन्ता हो रही है। सभी के लिए विकास और न्याय के वायदे के बावजूद यह विश्व के गरीब देशों में बेरोजगारी बढ़ाने और प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट करने के साथ ही गरीब और पिछड़े क्षेत्रों को क्षति पहुँचा रहा है। रोजगार विहीन विकास तथा सीमांत किसानों, कारीगरों और छोटे उद्यमियों के लगातार कमजोर होते जाने के कारण बढ़ती हुई असमानता ने एक निराशा को जन्म दिया है। इससे विश्व भर के कमजोर वर्गों के स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास और सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से विपरीत प्रभाव पड़ा है।

**वैश्वीकरण** का प्रभाव सभी समाजों पर समान रूप से नहीं पड़ रहा है। एक ओर पूर्ववर्ती ऐतिहासिक स्थिति, सामाजिक संरचना की विशिष्टताएँ, संस्कृति और दूसरी ओर वैश्वीकरण के विरोध में राष्ट्र द्वारा लागू की जानेवाली आर्थिक और सामाजिक नीतियों की विशिष्टताएँ भिन्न-भिन्न परिणाम उत्पन्न करती हैं और इसी के अनुसार वैश्वीकरण समाज को प्रभावित करता है। वैश्वीकरण किसी एक नहीं, बल्कि विजातीय प्रक्रियाओं का एक युग्म है। वैश्वीकरण की सभी प्रक्रियाएँ समान अनुपात में सभी समाजों में अपना प्रभाव नहीं डालती हैं। उदाहरण के रूप में देखा जाय तो भारत में वैश्वीकरण एक प्रक्रिया सूचना प्रौद्योगिकी तथा इसके सेवा-क्षेत्र में तीव्रगामी है, जबकि अर्थव्यवस्था जैसे दूसरे क्षेत्रों में तुलनात्मक दृष्टि से इस प्रक्रिया की गति मंद है। आर्थिक वैश्वीकरण और गरीबी कम करने में इसकी सफलता के स्तर के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है।

**भारत में** वैश्वीकरण का एक बुरा पक्ष यह भी है कि कल्याण कार्यों पर सरकारी खर्च में ठहराव-सा आ गया है, पर रक्षा और पुलिस पर खर्च आसमान को छू रहा है। केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा सामाजिक क्षेत्र जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, जलापूर्ति, सफाई आदि सामाजिक सेवाएँ, ग्रामीण विकास और खाद्य सहायता सम्मिलित है, पर किया जा रहा खर्च घट रहा है। दूसरी तरफ सुरक्षा के नाम पर खर्च में बेहिसाब वृद्धि हो रही है; लेकिन सरकारी आँकड़ों में इसे विभिन्न मदों के अंतर्गत छिपा लिया जाता है।

**इसी प्रकार** इस वैश्वीकरण ने स्वास्थ्य सेवाओं पर भी राष्ट्र को पूँजीवादी व्यवस्था की ओर घसीटना प्रारम्भ कर दिया है। स्वास्थ्य सेवा बहुत बड़ा व्यवसाय है। इसमें दुनिया की सर्वाधिक शक्तिशाली पार-राष्ट्रीय कम्पनियाँ जुड़ी हुई हैं। स्वास्थ्य सेवा उद्योग का एक लाख करोड़ रुपये का कारोबार है, जिसमें दवाइयों का हिस्सा 20,000 करोड़ रुपया का है, स्वास्थ्य बीमा का हिस्सा 400 करोड़ रुपये का है और अस्पतालों का 10,000 करोड़ रुपये एवं दवा उद्योग सालाना 14 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है। स्वास्थ्य सेवा एकमात्र खाद्येत्तर वस्तु है जिसे देश में प्रत्येक परिवार खरीदता है, जिसके फलस्वरूप उत्पादकों को बहुत बड़ा वैश्वीकृत बाजार मिल जाता है। स्वास्थ्य-सेवा का निजीकरण वैश्वीकरण के अंतर्गत आर्थिक सुधारों का एक

महत्त्वपूर्ण पहलू है। इसके कारण बीमारियों पर आम आदमी का बजट खास तौर से बढ़ गया है। जीवन की अस्वास्थकर परिस्थितियों के बढ़ने और साथ ही आहार में गिरावट के कारण लोगों के बीमार पड़ने की सम्भावना बढ़ गयी है। सरकार द्वारा सर्वाधिक रोग उन्मूलन अभियानों के वस्तुतः बन्द हो जाने के कारण संक्रमण का खतरा जुड़ जाने से कई बीमारियाँ महामारियों का रूप ले लेती हैं। वैसे रोग जो लगभग मिट गए थे, पुनः प्रकट होकर मौत का कारण बन रहे हैं। वहीं विश्व स्वास्थ्य संगठन के पल्स पोलियो जैसे बहुप्रचारित अभियान सिर्फ एक खर्चीली कालाबाजारी है, जिसमें देश का विशाल धन लगाकर बेकार के पोलियो ड्रॉप भारत में पटक दिये जाते हैं। एक तरफ स्वास्थ्य के निजीकरण के चलते सरकारी अस्पतालों में स्वास्थ्य सेवाओं में गिरावट आयी है और दूसरी तरफ देश में कम्पनियों द्वारा संचालित अतिविशिष्ट अस्पतालों का प्रवेश हुआ है, जिससे चिकित्सा-सेवा का खर्च आसमान छूने लगा है।[12] सरकारी अस्पताल भी निजीकरण की राह मुड़ गए हैं। भारतीय संसद में पेटेंट विधेयक 2002 के संशोधन पारित होने से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का दखल प्रारम्भ हो गया है और लगभग 2000 देशी दवा-कम्पनियाँ बन्द हो गयीं अथवा बन्दी के कगार में पहुँच गयीं। विश्व व्यापार संगठन के निर्देशों के अनुसार फिजर जैसी कम्पनियों के मार्ग-दर्शन में भारत में इस समय मौजूद प्रोसेस पेटेंट व्यवस्था के बदले उत्पाद पेटेंट की व्यवस्था कायम हुई, जिससे दवाइयों की कीमत में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। **वैश्वीकरण** का हमारी शिक्षा पर भी व्यापक प्रभाव पड़ रहा है। सरकार शिक्षा पर अपने खर्च में कटौती कर रही है और दूसरी तरफ प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेवारी विदेशी संस्थाओं को तथा उच्च/तकनीकी शिक्षा को पार-राष्ट्रीय कम्पनियों के सहयोग से संचालित होनेवाली संस्थाओं को सौंप रही है। शिक्षा के लिए नीतिगत ढाँचा मात्र कम्प्यूटर साक्षरता बढ़ाने पर केन्द्रित है। उच्च शिक्षा के लिए सारी आर्थिक सहायताओं को खत्म करने तथा सभी संस्थाओं को आत्म-वित्तायन (Self-financing) करने जैसे उपाय बताये जा रहे हैं। आत्म-वित्तायन के स्रोत होंगे, उपभोक्ता फीस को बढ़ाना, शिक्षा में किए गए निवेशों के लिए उद्योगों को कर में छूट देना और विदेशी विश्वविद्यालयों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क प्रोत्साहित करना। उच्च शिक्षा की तमाम व्यवस्थाएँ निधियों की कमी के चलते चरमरा रही हैं। सरकार प्राथमिक स्तर से लेकर उच्चतम स्तर तक हमारी शिक्षा व्यवस्था को साम्राज्यवादियों के हाथों में सौंपती जा रही है। इसके अतिरिक्त विदेशी शिक्षण संस्थाओं को यहाँ अपना बाजार फैलाने के लिए शाखाएँ खोलने की अनुमति भी दी गयी है। भारत में शिक्षा भी एक विशाल बाजार है, जिस पर विदेशी दखल कर रहे हैं।[13]

**वैश्वीकरण** ने अमीरों और गरीबों के बीच की खाई को और बढ़ा दिया है। हालाँकि देश में असमानताएँ तो हमेशा से रही हैं, परन्तु आज के समय में उपभोक्तावादी संस्कृति के भौंड़ेपन से ये और परिलक्षित होती हैं। हमारे देश के ग्रामीण इलाकों में दस करोड़ से अधिक परिवार को दिन में दो जून का भोजन उपलब्ध नहीं है, रहने के लिए छोटी टूटी-फूटी झोपड़ियाँ हैं और दूसरी ओर धनी और शक्तिशाली लोगों के पास अनाप-शनाप भारी सम्पदा है, जो अपने बच्चों को दैनिक जेब खर्च उतना देते हैं, जितना गरीबों की मासिक आय है। वैश्वीकरण ने सचेत रूप से बुरे व्यवसायों के लिए भारी मुनाफों और निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के चोटी के अधिकारियों के वेतन में भारी वृद्धि को बढ़ावा दिया है। सर्वोच्च स्तर के अफसरों और राजनीतिज्ञों के वेतनों और सुविधाओं में पाँच से दस गुणा वृद्धि की गयी है और एक ऐसी गिरी भिखारी किस्म की अर्थव्यवस्था विकसित की गयी है, जहाँ रातों-रात काले धन्धों में करोड़ कमा लिए जाते हैं और जिसे कल तक अवैध माना जाता था, उसे अब सम्मान और सामाजिक श्रेष्ठता का पर्याय माना जा रहा है। एक उदाहरण ले तो रिलायंस कम्पनी और उसके मालिक ने वर्ष 2001-02 में 4600 करोड़ रुपये का अविश्वसनीय शुद्ध मुनाफा कमा लिया, यानी ग्रामीण भारत में 25 लाख परिवारों की कुल वार्षिक आय के बराबर, ये वैश्वीकरण का एक अनोखा रूप है।[14]

**वैश्वीकरण** के इस दौर में, जिसमें सचमुच टेक्नॉलाजी के क्षेत्र में, खास कर सूचना और संचार के क्षेत्रों में, बहुत बड़ी प्रगति हुई है और इस प्रगति का उपयोग उपभोक्तावाद और भ्रष्ट संस्कृति के सबसे बदतर रूपों को बढ़ावा देने में किया जा रहा है। भारत में टेक्नॉलाजी में इस प्रगति का उपयोग टी.वी. पर धार्मिक सीरियलों को दिखाकर, इंटरनेट द्वारा ज्योतिष उपलब्ध कराकर सामन्ती संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए किया जा रहा है।

**मोटे तौर** पर वैश्वीकरण के ही इस दौर में टी.बी. केबिल के जाल के फैलने से सीधे हर घर में पाश्चात्य संस्कृति परोसी जा रही है, कम-से-कम मध्यवर्गी और शहरी मजदूरवर्ग के एक बड़े हिस्से के घरों में। इसके अलावा,

हम यह भी देख चुके हैं कि भारतीय टी.वी. परिदृश्य पर भी साम्राज्यवादियों का पूरा नियंत्रण है। यह भी तथ्य उल्लेखनीय है कि टी.वी. पर कार्यक्रमों के प्रायोजन और उनमें दिखाए गए विज्ञापन पर पार-राष्ट्रीय कम्पनियाँ हावी हैं। इस तरह, हम सभी लोकप्रिय सीरियलों, फिल्मों आदि में बहुत ही धनी लोगों की जिंदगियों को देखते हैं, जिनमें पाश्चात्य रुझान रहते हैं। साथ ही हम देखते हैं कि अपवाद स्वरूप कुछ कार्यक्रमों को छोड़कर, टी.वी. सीरियलों में परम्परागत परिवारों के इर्द-गिर्द बुने सामन्ती मूल्यों को बढ़ावा दिया जाता है। दिन-पर-दिन, सुबह-शाम करोड़ों लोगों के दिमागों में असभ्य दृश्य, छिछोरापन, सस्ती अकल्पनाशील कहानियाँ, अन्धविश्वास और भूतों व वीभत्स दृश्यों वाली कहानियाँ और सरकार का झूठा राजनीतिक प्रचार लगातार भरा जा रहा है। इसके साथ मिलकर आते हैं, विज्ञापन जो न सिर्फ वयस्कों बल्कि खास करके बच्चों के अवचेतन मन में उपभोक्तावाद की संस्कृति को गहरे पैठाते हैं।[15]

**वैश्वीकरण एवं आदिवासी-** भारत में सामान्यतः जनजातीय आबादी को आदिवासी वर्ग कहा जाता है। आदिवासी मुख्यतः पहाड़ी व जंगली क्षेत्रों में रहते हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के ढाँचे के अन्तर्गत सभी के लिए सभ्य जीवन की जिस पवित्र धारणा पर बल दिया जाता है, उससे जनजातीय आबादी को कुछ लेना-देना नहीं है। यह समाज का ऐसा दीन-हीन एवं अविकसित वर्ग है जो राष्ट्र की मुख्यधारा के साथ जुड़ना ही नहीं चाहता। सरकार के तमाम प्रयत्नों के बावजूद ये लोग अपनी पारम्परिक जीवन-शैली को छोड़ने को तैयार नहीं है, न ही रीति-रिवाजों को। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत आदिवासियों के जीवन-शैली में हस्तक्षेप करने की कोशिश की जाती है, जो एक ख़तरनाक प्रवृति है।

**आदिवासियों** का जीवन आम लोगों से इस अर्थ में भिन्न है कि वे आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों से पार्थक्य की नीति अपनाते हैं, अपनी नृजातीय-सांस्कृतिक विशेषताओं को अक्षुण्य रखना चाहते हैं, पारम्परिक सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक विन्यासों को बनाए रखना चाहते हैं, प्राकृतिक पर्यावरण, विशेषकर जंगलों से अपने लगाव को प्रदर्शित करते हैं। भारत में औपनिवेशिक शासन की स्थापना एवं सुदृढ़ीकरण के बाद आदिवासियों को राजनीतिक आर्थिक और प्रशासनिक दृष्टि से शेष भारतीय समाज के साथ जोड़ने की कोशिश की गयी। फलतः इससे न सिर्फ उनके शान्तिपूर्ण एवं स्वतन्त्र जीवन पर प्रभाव पड़ा बल्कि वे भी कर्ज, बेरोजगारी, ग़रीबी एवं शोषण जैसे आधुनिकतावादी प्रवृतियों से ग्रसित हुए और उनके मानवाधिकारों के हनन की प्रक्रिया शुरू हुई। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने बाद में इस प्रक्रिया को और अधिक गति प्रदान की।

**आदिवासियों** पर वैश्वीकरण का प्रभाव मुख्यतः भूमि से अलगाव के रूप में हुआ। संचार एवं विकास की प्रगति के लिए जनजातीय क्षेत्रों को खुला रखने और भूमि अधिग्रहण की सरकार की नीतियों के कारण आदिवासियों को भूमिहीन होकर भटकने के लिए विवश होना पड़ा। आधुनिक भू-कानून तथा भू-स्वामित्व की मौजूदा प्रणाली के विकास से आदिवासियों की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में जो मौलिक परिवर्तन आये, जिसने ग़ैर-जनजातीय लोगों का हस्तक्षेप जनजातीय क्षेत्रों में बढ़ा दिया। वैश्वीकरण की अपेक्षाओं को पूरा करने की दिशा में विशेष आर्थिक क्षेत्र तकनीकी उधान तथा उद्योग जगत् को विकसित करने के उद्देश्य से सरकार ने जिस तरह से भूमि अधिग्रहण की नीति अपनायी उसका आदिवासियों के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

**वैश्वीकरण** के युग में आदिवासियों के जंगलों से प्रतीकात्मक सम्बन्धों पर भी प्रभाव पड़ा है। पारम्परिक दृष्टि से भूमि के साथ-साथ जंगलों पर भी जनजातीय लोगों का एक प्रकार से नियंत्रण रहा था, ये उनकी सम्पत्ति भी थे। जैसे-जैसे सरकार ने जंगलों एवं प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन अपने हाथों में लेना शुरू किया सरकार और आदिवासियों के बीच तनाव बढ़ गए। सरकार यह बात भूल गई कि जंगल आदिवासियों की सांस्कृतिक रीति-रिवाजों एवं विधि-विधानों के लिए कितना महत्त्व रखते हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत औद्योगिक एवं विकासात्मक परियोजना के लिए आज जंगल नष्ट किये जा रहे हैं। इससे आदिवासियों का सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन तो प्रभावित हुआ ही है साथ ही प्राकृतिक असन्तुलन की समस्या भी उत्पन्न हुई है।

**वैश्वीकरण और महिलाएँ-** वैश्वीकरण की प्रक्रिया के विस्तार के कारण समाज का प्रायः हर वर्ग प्रभावित हुआ है, महिलाएँ भी इसके प्रभाव से अछूती नहीं रही हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के विस्तार से न सिर्फ समाज में संस्थात्मक एवं संरचनात्मक विकास को बढ़ावा मिला है, बल्कि कई नयी-नयी शक्तियाँ आज के बाजारू एवं

प्रतिस्पर्धी समाज में सक्रिय हो गयी हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत न सिर्फ द्रुत गति से औद्योगिक एवं आर्थिक विकास की बातें की जाती हैं, बल्कि समस्त समाज के कायाकल्प की बात भी इसमें शामिल है। जहाँ तक महिलाओं का प्रश्न है तो भारतीय समाज में वे सदियों से शोषित, दमित, प्रताड़ित एवं सदैव हाशिए पर रही हैं। आज भी महिला आन्दोलन महिलाओं को उनकी वास्तविक स्थिति दिलाने के लिए संघर्षरत है। इसमें सन्देह नहीं कि वैश्वीकरण के युग में महिलाओं की उन्नति एवं विकास के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध हैं। बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन के माध्यम से महिलाओं को राष्ट्र की सामाजिक-आर्थिक प्रगति में भागीदार बनाये जाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत महिलाओं के अनुकूल भी रोजगार निर्माण किया जा रहा है ताकि योग्य एवं सक्षम महिलाएँ राष्ट्र के आर्थिक विकास में समुचित एवं सक्रिय भागीदारी कर सकें। आर्थिक प्रणाली में पाश्चात्य मूल्यों की स्वीकृति के कारण कार्य के क्षेत्र में पुरुष एवं महिलाओं में कोई अन्तर अब नहीं किया जाता। उनकी सुरक्षा की समुचित गारण्टी भी दी जाती है। इससे महिलाएँ भयमुक्त भी हुई हैं। आज की महिलाएँ ज्यादा स्वतन्त्र एवं आत्मनिर्भर महसूस कर रही हैं और विकास की प्रक्रिया में पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चल रही हैं। इससे उनकी सामाजिक स्थिति भी सुदृढ़ हुई है और उन्हें सम्मान एवं प्रतिष्ठा की दृष्टि से भी देखा जा रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप भारतीय महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति में व्यापक सुधार हुआ है।

**भारत में** महिला विकास एवं महिला सशक्तीकरण के वैश्वीकरण के प्रयत्नों के बावजूद इसका प्रभाव कई क्षेत्रों में नकारात्मक भी रहा है। सर्वप्रथम तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के अन्तर्गत महिलाओं का वस्तुकरण हो गया है, वे प्रदर्शनी की चीज बनती जा रही हैं। बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ व्यापारिक हितों की पूर्ति तथा अपनी सेवाओं और वस्तुओं को बेचने के लिए महिलाओं की योग्यता, क्षमता एवं व्यक्तित्व का भरपूर प्रयोग करती हैं। उन्हें बाजारू वस्तु को बेचने का एक लुभावना साधन माना जाता है। इस प्रकार वैश्वीकरण के युग में महिलाओं के वस्तुकरण एवं व्यावसायीकरण को भारतीय समाज में नकारात्मक प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। इस दिशा में राज्य की नियामकीय अभिकरणों से यह अपेक्षा है कि वे कुछ ठोस कदम उठायेंगे।[16]

## सन्दर्भ


1. Beynon, John and Dunkerley, David (Eds.), *Globalization: The Reader*, The Athlon Press, London, 2000.
2. Bhagwati, Jagdish, *In Defense of Globalization,* New York: Oxford University Press, 2004.
3. Giddens, Anthony, *The Consequences of Modernity,* Polity Press, Cambridge, 1990.
4. Harvey, David, *The Condition of Postmodernity: An Enquiry into the Origins of Cultural Change,* Blackwell, Cambridge, 2000.
5. Held, David, et al., *Global Transformations,* Polity Press, Cambridge, 1999.
6. Hopkins, A.G. (Ed.), *Globalization in World History,* Norton, New York City, NY, 2003.
7. Lechner, Frank J. and Boli, John, *The Globalization Reader,* Wiley-Blackwell, London, 2012.
8. Lodge, George C., *Managing Globalization in the Age of Interdependence,* Golden Books Center: Kuala Lumpur, 1995.
9. Martell, Luke, *The Sociology of Globalization,* Polity Press, Cambridge, 2010.
10. Reddy, D. Narasimha, *'Challenges of Decent Work in the Globalising World'*, The Indian Journal of Labour Economic, Vol 48, No. 1, 2005.
11. Ritzer, George, *Globalization: The Essentials,* John Wiley & Sons, New York, 2011.
12. Robertson, Roland, *Globalization: Social Theory and Global Culture,* Sage, London, 1992.
13. Rosenau, James N., *Turbulence in World Politics: A Theory of Change and Continuity,* Princeton University Press, 1990.
14. Steger, Manfred, *Globalization: A Very Short Introduction,* Oxford University Press, New York , 2009.
15. Somayaji, Sakarama and Somayaji, Ganesh (eds.), 'Globalization and Family Change in India' in *Sociology of Globalization Perspectives from India,* Rawat Publications, Jaipur, 2006.
16. Thompson, G., 'Introduction: Situating Globalization', *Inernational Social Science Journal,* Volume 51, Issue 160, 1999: 139–152 and UNDP, *Human Development Report,* UNDP, New York, NY, 2013.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2020

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# संग्रह विकासः पुस्तकालय पेशेवर के लिए कठिनाइयाँ और समाधान

❑ डॉ0 रेखा वर्मा
❖ प्रोफेसर शिल्पी वर्मा

प्रस्तुत शोध पत्र में पुस्तकालय के अंतर्गत संग्रह विकास के महत्व के बारे में चर्चा की गई है। उपयोगकर्ताओं के लाभ हेतु गुणवत्तापूर्ण संग्रह विकसित करते समय विभिन्न कारकों पर ध्यान दिया जाता है। इन कारकों में नीतियां और सिद्धान्त, तकनीक और प्रक्रियाएं, संग्रह विकास से जुड़ी समस्याएं और निराई शामिल है। इसका उपयोग जानने के लिए संग्रह का मूल्यांकन करना अति आवष्यक है। इलेक्ट्रानिक वातावरण में संग्रह विकास भी एक महत्वपूर्ण पहलू है। पुस्तकालय पेशेवरों को विवेकपूर्ण संग्रह विकसित करने में अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए जिससे वे पुस्तकालय की गुणवत्ता को बढ़ा सकें।

**पुस्तकालय** और उनके संग्रह हजारों वर्षो से मौजूद हैं। सूचना एकत्र करना व्यवस्थित करना और इसे व्यक्तियों को उपलब्ध कराने का एक लम्बा इतिहास रहा है। एक पुस्तकालय संग्रह में पुस्तकालय सामग्री अर्थात पुस्तकें, पाडुलिपियाँ, धारावाहिक, सरकारी दस्तावेज, कैटलॉग, रिपोर्ट, रिकॉडिंग, माइक्रोफिल्म रील, माइक्रो फिल्में, माइक्रोचिप आदि का कुल योग होता है। संग्रह विकास एक गतिशील एवं निरंतर चलने वाली गतिविधि है। इसकी चयन टीम में उपयोगकर्ता, पुस्तकालय कर्मचारी और विषय विशेषज्ञ शामिल होते हैं। पुस्तकालय का संग्रह विकास तत्काल जरुरतों को पूरा करना ही नहीं बल्कि इसका उद्देश्य कई वर्षो का विश्वसनीय संग्रह एवं सेवाओं को पूर्ण करना है। पुस्तकालय के संग्रह विकास के निर्माण में सामग्री का चयन एवं अधिग्रहण शामिल होता है, लेकिन ज्यादातर मामलों में यह पहले से मौजूद संग्रह के व्यवस्थित विकास की योजना है। किसी भी पुस्तकालय के संग्रह विकास का मुख्य कारक पुस्तकालय बजट, उपलब्ध स्टाफ और स्थान, पुस्तकालय द्वारा स्थापित ग्राहकों की विविधता और संख्या के संदर्भ में संस्थागत वातावरण में निहित उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति है। अधिकांश पुस्तकालयों में संग्रह की वृद्धि उनके प्राधिकारी की उदारता एवं खुले दिमाग का फल है। हमारा पुस्तकालय कई पीढ़ियों के ज्ञान को दर्ज करके वर्तमान और भविष्य के उपयोग के लिए ज्ञान का भंडार है। डिजिटल तकनीक ने इस ज्ञान के भंडार को प्रयोग करना और अधिक आसान और आरामदायक बना दिया है। किसी पुस्तकालय में दर्ज ज्ञान ठीक उसी प्रकार है जैसे मानव शरीर के लिए हृदय और मस्तिष्क है। पुस्तकालय संग्रह में मिट्टी की पट्टियों से लेकर पेपिरस शीट, पेपर और सिलिकॉन चिप्स, ऑप्टिकल एवं चुम्बकीय डिस्क आदि होती हैं। पुस्तकालय का मुख्य कार्य सूचना का संग्रह और प्रसार होता है। पुस्तकालय संग्रह का महत्व और सफलता उनके उपयोगकर्ताओं की आवश्यकताओं की संतुष्टि पर निर्भर करता है। अकादमिक पुस्तकालयों में आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विविध प्रकार का संग्रह होता है। किसी भी अकादमिक पुस्तकालय में संग्रह के विकास में पाठयक्रम, अध्ययन और अनुसंधान सामग्री का प्रावधान होना चाहिए। संस्कृति एवं मनोरंजन हेतु सूचना सामग्री का प्रावधान होना एक महत्वपूर्ण पहलू है। अधिग्रहण की गतिविधियों में मूल्यांकन, संग्रह विकास नीतियां, पुस्तक चयन प्रक्रिया, पुस्तकों की खरीद, वर्तमान संग्रह के लिए पुस्तकों की खरीद आदि सम्मिलित हैं। इस तरह की गतिविधियों को पुस्तक चयन के रुप में जाना जाता है। अधिग्रहण गतिविधियों कों संग्रह विकास के रुप में जाना जाता है। आजकल पुस्तकालयों में वर्तमान संग्रह का आकलन कर देखा जाता है कि कोई भी नया शीर्षक मौजूदा संग्रह को शक्ति प्रदान करने वाला है या नहीं। आजकल पुस्तकों का चयन व्यक्तिगत शीर्षक की योग्यता के आधार पर नही बल्कि व्यक्तिगत जरुरतों और संभावित उपयोगकर्ताओं की आवश्यकताओं के आधार पर किया जाता है। घटते वित्तीय संसाधन, भण्डारण क्षेत्र में जगह का अभाव, एक ओर प्रशासनिक समस्याएं और

❑ एसोसिएट प्रोफेसर पुस्तकालय, महाराजा बिजली पासी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
❖ विभागाध्यक्ष पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)

दूसरी ओर पाठकों की माँग के साथ दस्तावेजों की घातीय वृद्धि आदि पुस्तकालयों को संग्रह विकास के लिए नीतियाँ और सिद्धान्त तैयार करने के लिए मजबूर करती हैं। संग्रह विकास का प्रमुख घटक संग्रह मूल्यांकन और उपयोगकर्ता अध्ययन गतिविधि है। संग्रह प्रबन्धन, संग्रह निर्माण के विभिन्न पहलुओं के साथ-साथ संग्रह प्रबन्धन के विभिन्न पहलुओं जैसे संग्रह का प्रयोग, भण्डारण और संगठन, आवागमन, सूचना सेवा, संसाधन आवंटन एवं पुस्तकालय संसाधनों तक पहुँच आदि का उपयोग करता है। वर्तमान समय में पुस्तकालयाध्यक्ष संग्रह विकास में सूचना तक पहुँच पर जोर देता है न कि पुस्तकालय के संग्रह पर आधारित सूचना पर जिसका प्रभाव बजट आवंटन पर पड़ता है। संग्रह प्रबन्ध नीति, तकनीक, पुस्तकों के अधिग्रहण की प्रक्रिया, धारावाहिक प्रकाशन, गैर-पुस्तक सामग्री आदि सभी इलेक्ट्रॉनिक वातावरण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के एकीकरण के कारण महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

**संग्रह विकास का उद्देश्य**

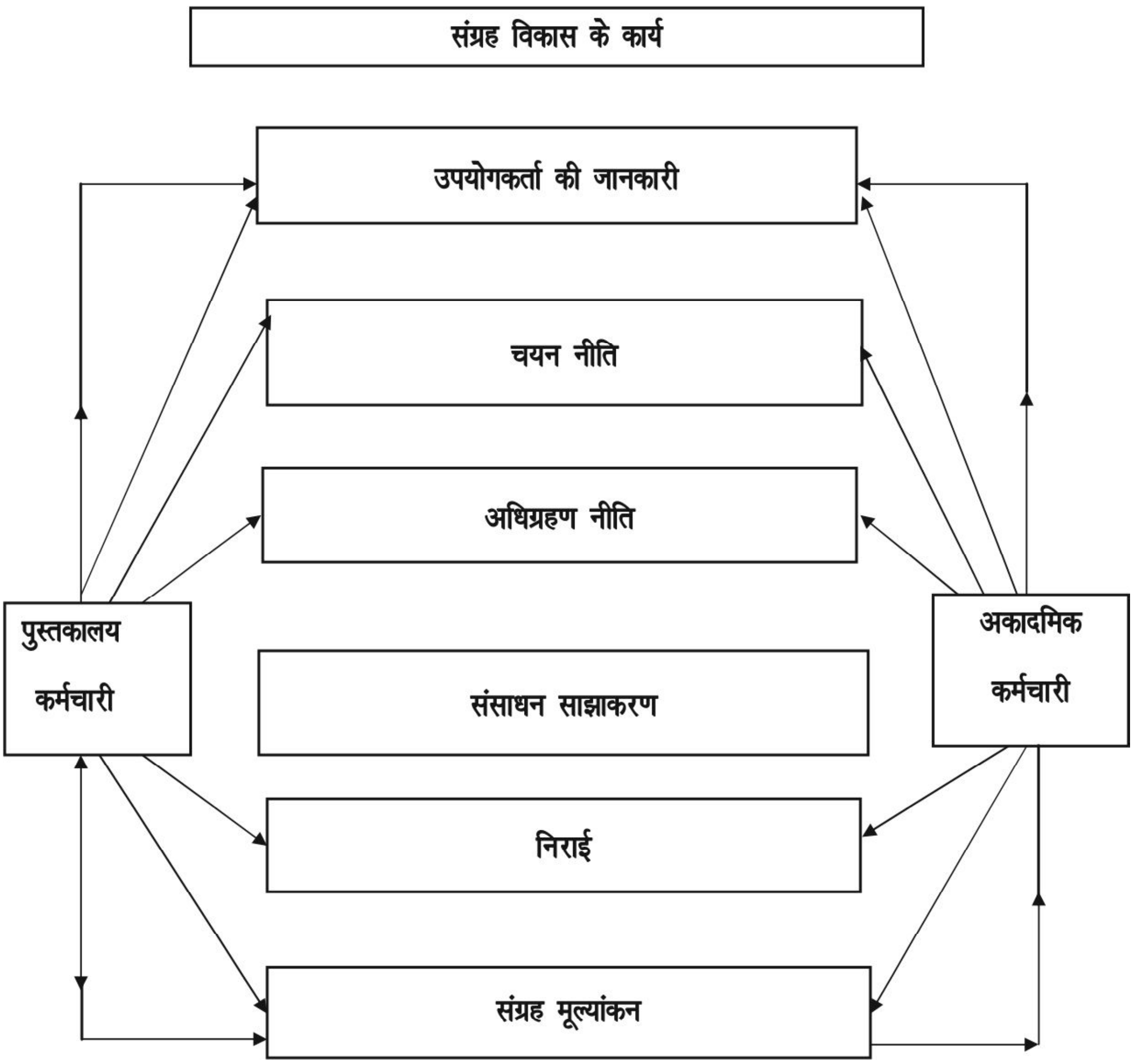

**पुस्तकालय** एवं सूचना केन्द्र मुख्यतः अपना संग्रह विकास बाहरी पाठकों एवं अपनी संस्था की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए करते हैं। पुस्तकालय एवं सूचना केंद्रों का प्राथमिक उद्देश्य सूचना के हस्तांतरण और ज्ञान के विकास में सहायता करना है।

एक पुस्तकालय में संग्रह विकास का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हो सकता है:

1. अपने समुदाय के लिए पुस्तकालय के दायित्व को पूरा करने के लिए,
2. लेख की सटीक आवश्यकता का पता लगाने के लिए,
3. चयन और अधिग्रहण प्रक्रिया के माध्यम से सही समय पर सही पाठक को सही दस्तावेज उपलब्ध कराने के लिए,
4. पुस्तकालय बजट का विवेकपूर्ण ढंग से उपयोग करने के लिए,
5. समय-समय पर निराई (Weeding) के लिए संग्रह की समीक्षा,
6. बुकिंग के माध्यम से संसाधनों को साझा करने के लिए।

**संग्रह** विकास एक निरंतर चक्र है, जो तब तक जारी रहता है जब तक पुस्तकालय एवं सूचना केंद्र मौजूद रहता है। उपयोगकर्ताओं द्वारा पुस्तकालय संग्रह का सबसे अच्छा मूल्यांकन किया जा सकता है। वह यह बता सकते हैं कि पुस्तकालय का संग्रह वास्तव में उनकी आवश्यकताओं को पूरा कर रहा है या नहीं। पुस्तकालय में क्या उपलब्ध है और क्या नही इसकी जानकारी भी उपयोगकर्ता को ही होती है।

**संग्रह विकास और समुदाय** : संग्रह विकास पुस्तकालय के आंतरिक एवं वाह्य दोनों कारकों के कई तरीकों से प्रभावित होता है। इन कारकों में पुस्तकालय की संरचना और संगठन जिनके उद्देश्य, सूचना सामग्री का उत्पादन और वितरण और क्षेत्र में अन्य परिवतनों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया है। पुस्तकालय की आंतरिक गतिविधियों को आम तौर पर सार्वजनिक सेवा माना जाता है, जबकि अन्य सभी सेवाएं तकनीकी सेवा में आती हैं। सामग्री को प्राप्त करने और रिकार्ड करने के बाद अधिग्रहण विभाग अभिलेख को तकनीकी विभाग में फिजिकल प्रासेसिंग एवं उसके पश्चात सार्वजनिक रुप से प्रदर्शन के लिए जारी करता है। पुस्तकालय सामग्री एवं सेवाएं जो कि अन्य लोगों द्वारा उपयोग की जाती हैं वे पुस्तकालय के संग्रह विकास को प्रभावित करती हैं। सभी पुस्तकालयों के लिए संग्रह विकास एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है। जब हम एक संस्थान से दूसरे संस्थान में जाते हैं तो संग्रह विकास की प्रक्रिया एवं उनके तत्वों में अंतर होता है। एडवर्ड इवांस के अनुसार संग्रह विकास के तीन कानून को सार्वभौमिक कहा जा सकता है-

1. जैसे-जैसे सेवा समुदाय का आकार बढ़ता है, व्यक्तिगत सूचना की आवश्यकता में भिन्नता बढ़ती है।
2. जैसे-जैसे व्यक्तिगत सूचना की आवश्यकता में वृद्धि की डिग्री बढ़ती है सूचना सामग्री साझाकरण के सहकारी कार्यक्रमों की आवश्यकता बढ़ती है।
3. किसी भी व्यक्ति की सूचना की आवश्यकताओं कों पूरी तरह से संतुष्ट करना कभी भी संम्भव नही होता है।[2]

**पुस्तकालयों में संग्रह विकास** : पुस्तकालय की प्रभावशीलता और दक्षता पुस्तकालय सामग्री के सही चयन पर निर्भर करती है। एक पुस्तकालय में पुस्तकालय सामग्री का चयन प्रमुख महत्व रखता है। पुस्तकालयाध्यक्ष और पुस्तकालय कर्मचारी उपयोगकर्ताओं की आवश्यकता का अध्ययन करतें हैं और उस संस्था के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए आवश्यक सामग्री का चयन करते हैं। पुस्तकालय सामग्री के चयन के लिए सुविचार नियोजन, विभिन्न विषयों में हाल में प्रकाशित सामग्री का ज्ञान, पुस्तक समीक्षा के माध्यम से आगामी पुस्तकों का ज्ञान, ख्याति प्राप्त पुस्तककारों का चयन, मुद्रा विनमय पर नवीनतम विकास पर ज्ञान और अन्य संबंधित ज्ञान का होना आवश्यक है। सही विभाग के लिए सही सामग्री के चयन के लिए सही बजट आवंटन संग्रह प्रबंधन के प्रमुख घटकों में से एक है। उपरोक्त कारकों के अलावा, पुस्तकालय का प्रकार, पुस्तकालय का आकार, पुस्तकालय का विशेषज्ञता क्षेत्र, उपयोगकर्ताओं का बौद्धिक स्तर और व्यक्तिगत पुस्तक की योग्यता और वर्तमान संग्रह के उपयोग की आवृत्ति संग्रह प्रबंधन का महत्वपूर्ण कारक है।[3]

**संग्रह विकास नीति का तत्व** : हजारों उत्कृष्ट पुस्तकालय एवं सूचना केंद्र हैं जिनकी अपनी कोई भी संग्रह विकास की नीति नहीं है। नीतियों की कमी का कारण है कि उनके पास उसके लिए विचारों की आवश्यकता की कमी है। नीति बदलते समुदाय और उनकी जरुरतों को प्रतिबिंबित करती है। नीति वक्तव्य एक ढांचा प्रदान करता है जिसके अंदर व्यक्ति अपने निर्णय और कारवाई का उपयोग कर

सकता है। जब कोई भी व्यक्ति लिखित दिशानिर्देशों के बिना नीति निर्धारित करता है तो पुस्तकालय के उद्देश्य की पूर्ति में भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है। नीति वक्तव्य, सभी का केंद्रीय संदर्भ बिंदु है। एक नीति दस्तावेज में निम्नलिखित मुद्दे होते हैं:

1. संग्रह की प्रकृति और गुंजाइश की जानकारी देता है,
2. सकारात्मक लक्ष्यों के बारे में सोचने के लिए मजबूर करता है,
3. एकल चयनकर्ता के प्रभाव को कम करता है,
4. शिकायतों को दूर करने में कर्मचारियों का मार्गदर्शन करता है,
5. संग्रह में छटाई और मूल्यांकन में सहायक होता है।

**संग्रह** विकास नीति के कुछ तत्व जिन्हें दस्तावेज पर प्रतिबिंबित करने की आवश्यकता है, इस प्रकार हैं:

1. संस्थागत उद्देश्य
2. विषय क्षेत्र की जानकारी
3. उपहार, छटाई, मूल्यांकन, शिकायत और गोपनीयता जैसे विविध मुद्दे
4. सदस्यों के साथ बैठक आयोजित करने के बाद नीति को मंजूरी देना।

**मार्गदर्शक सिद्धान्त** : पुस्तकालय संसाधन में प्रिंट और नॉन-प्रिंट मीडिया दोनों आते हैं। लेकिन संग्रह का प्रमुख हिस्सा पुस्तकें हैं। पुस्तकों के चयन के लिए मुख्य रुप से पुस्तकालयाध्यक्ष जिम्मेदार होता है, भले ही इस संबंध में विषय विशेषज्ञ सलाह दें। पुस्तकों के चयन के लिए कुछ मार्गदर्शक सिद्धान्तों का पालन होता है। पुस्तकालय विज्ञान के क्षेत्र में कुछ प्रस्तावित सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:

**डूरी का पुस्तक चयन सिद्धान्तः** फ्रांसिस डूरी ने 1930 में पुस्तक चयन सिद्धान्त प्रतिपादित किया, इनके अनुसार पुस्तक चयन का मुख्य उद्देश्य सही समय पर सही पाठक के लिए सही पुस्तक प्रदान करना है।

**ड्रेवी का पुस्तक चयन सिद्धान्तः** मेलविल ड्रेवी ने 1876 में कहा कि पुस्तकालय के लिए पुस्तकों का चयन कम लागत पर सबसे बड़ी संख्या के लिए सबसे अच्छी पढ़ाई होनी चाहिए।

**मैक् कॉल्विन का सिद्धान्तः** लियोनेल मैक कॉल्विन ने सार्वजनिक चयन में पुस्तक चयन का अपना सिद्धान्त दिया। इनका सिद्धान्त पुस्तक चयन की माँग और आपूर्ति सिद्धान्त पर आधारित था। इनका सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि पुस्तकों का चयन उपयोगकर्ताओं की विशिष्ट आवश्यकताओं की माँग पर होना चाहिए। माँग का मूल्यांकन पुस्तकालयाध्यक्ष द्वारा उनके मूल्य, मात्रा और विविधता के आधार पर किया जाना चाहिए।

**रंगनाथन का सिद्धान्तः** एस0 आर0 रंगनाथन ने पुस्तक चयन का सिद्धान्त उनके पुस्तकालय विज्ञान के पांच नियमों के आधार पर रखा।

1. **पुस्तकें उपयोग के लिए हैं-** उनके अनुसार उन दस्तावेजों को चुना जाना चाहिए जो उपयोगकर्ताओं के लिए बड़े पैमाने पर उपयोगी हों।
2. **प्रत्येक पाठक उसकी पुस्तक-** इसका तात्पर्य यह है कि पुस्तक चयन में उपयोगकर्ताओं की आवश्यकताएं प्रमुख हैं।
3. **प्रत्येक पुस्तक उसका पाठक-** इसके अनुसार पुस्तकालय के प्रत्येक पाठक को पुस्तकों की प्राप्ति होनी चाहिए।
4. **पाठक का समय बचाएं-** पुस्तकों का चयन पाठकों की माँग का अनुमान लगााकर करना चाहिए और प्रोसेसिंग के बाद अलमारियों में इस प्रकार लगाना चाहिए कि पाठक का समय बचे।
5. **पुस्तकालय एक संवर्धनशील संस्था है-** इसका मतलब है कि पुस्तकालय मे छटाई करते रहना चाहिए और वर्तमान संग्रह को उसके उपयोग के आधार पर दो भागों में बांटना चाहिए सक्रिय संग्रह और निष्क्रिय संग्रह।

**संग्रह विकास तकनीक और प्रक्रियाएं** : संग्रह विकास के लिए विभिन्न तकनीकों और प्रक्रियाओं को अपनाने से पहले खरीदे जाने वाले दस्तावेजों के प्रकार और उद्देश्य से आवंटित बजट का पता करना आवश्यक है। पुस्तकों, संदर्भ पुस्तकों, पाठ्य पुस्तकों, प्रिंट, नॉन-प्रिंट सामग्री सभी के लिए चयन मानदंड अलग-अलग होते हैं। सामग्री के चयन के संबंध में चयन नीति प्रत्येक पुस्तकालय का प्रमुख मुद्दा है, जिसमें निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखने की आवश्यकता है:

1. शैक्षणिक पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष को यह तय करना होगा कि चयन शोध सामग्री पर आधारित हो।
2. वर्तमान संस्करणों को पुराने संस्करणों की अपेक्षा अधिक प्राथमिकता देने की आवश्यकता है।
3. लेखों की माँग के आधार पर शोध सामग्री की खरीद की जानी चाहिए।
4. जरुरत के अनुसार प्रतियों की संख्या का अधिग्रहण

किया जाना चाहिए कई प्रतियां लेने से बचना चाहिए।

5. अच्छे विक्रेता से और लोकप्रिय किताब खरीदनी चाहिए।
6. दुर्लभ पुस्तकों की खरीद प्राधिकारी की नीति के अंतर्गत होनी चाहिए।
7. आउट ऑफ प्रिंट पुस्तकों को इलेक्ट्रानिक रुप से प्रजनन के बाद संरक्षित किया जाना चाहिए।
8. संस्थागत रिपोजिटरी/ग्रे-साहित्य के संरक्षण को प्राथमिकता देनी चाहिए।

एक बार चयन नीति को अंतिम रुप देने के बाद अगला प्रश्न होता है कि दस्तावेजों का चयन कौन करेगा?

**पुस्तकालय समिति** : किसी भी विश्वविद्यालय की स्थापना में पुस्तकालय समिति कार्यकारी परिषद या शैक्षणिक परिषद का अंग है। पुस्तकालय समिति के कार्य इस प्रकार होते हैं:

1. संसाधनों के विकास के संबंध में पुस्तकालय नीति तैयार करना,
2. पुस्तकों के विभागवार बजट आवंटन में सलाह देना,
3. संस्था के हित में पुस्तकालय सेवाओं का एक सामान्य कार्यक्रम विकसित करना।
4. पुस्तकालय और विभिन्न विभागों के बीच समन्वय सुनिश्चित करना।
5. व्यापक नीतियाँ बनाना।

**पुस्तकालय** समिति पूरी दुनिया के पुस्तकालयों की सर्वव्यापी विशेषता है। इसकी प्रकृति प्रशासनिक के बजाय सलाहकार के रुप में होती है। हालांकि, पुस्तकालय समिति द्वारा विचार की नीतियां संस्था के प्रमुख द्वारा अनुमोदन के अधीन होती हैं।

**पुस्तकालय समिति**

1. पुस्तकालय प्राधिकरण और पुस्तकालयाध्यक्ष के बीच बफर एजेंसी के रुप में काम करती है।
2. पुस्तकालय समुदाय और प्राधिकरण की आवश्यकताओं के व्याख्याकार के रुप में कार्य करती है।
3. आवश्यकता के अनुसार अधिक बजट के लिए पूछती है।
4. पुस्तकों पत्रिकाओं एवं अन्य सामग्री के अधिग्रहण के लिए दिशा निर्देश तैयार करती है।
5. आवधिक स्टॉक सत्यापन के लिए दिशा निर्देशों का गठन।
6. पुस्तकालय कर्मचारियों के कार्यो का आवंटन।
7. पुस्तकालय के लिए दिशा निर्देशों का निर्माण करती है।
8. उपयोगकर्ता की सेवा मे आवश्यक सुधार के लिए सलाह देती है।
9. पुस्तकालय सहयोग और प्रकाशन के लिए सलाह देती है।
10. पुस्तकों को बाहर निकालने के लिए नीति का निर्धारण करती है।
11. उप-समितियों कों नियुक्ति करती है।

**पुस्तकालय बजट** : वित्तीय संसाधनों के लिए पुस्तकालयाध्यक्ष को मूल संगठन पर निर्भर होना पड़ता है और मंत्रालय के निर्देशों के अनुसार मूल संगठन को कार्य करना पड़ता है। पुस्तकालय को कभी भी आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त बजट नहीं मिलता है। जब कभी भी संस्था में बजट में कमी आती है तो उसका पहला शिकार उस संस्था का पुस्तकालय होता है। हर पुस्तकालय में पुस्तकों की खरीद के लिए बजट आवंटन भिन्न-भिन्न होता है। आमतौर पर अकादमिक पुस्तकालयों में पुस्तक बजट विभिन्न विभागों के बीच सूचीबद्ध किया जाता है।

**वेंडर** : वेंडर के अंर्तगत एफ0 पी0 बी0 ए0 आई0 (फेडरेशन ऑफ पब्लिशर्स बुकसेलर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया), डी0 एस0 बी0 पी0 ए0 (दिल्ली बुक सेलर्स एण्ड पब्लिशर्स एसोसिएशन), एनजीओ और सरकारी विभागों जैसे एन सी ई आर टी, एन बी टी और सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय आदि के पंजीकृत सदस्य शामिल हैं। लेखक, प्रकाशक, पुस्तक विक्रेता, पुस्ताकलय और पाठक यह सभी सूचना के स्रोत से गंतव्य तक संचार श्रृंखला में कार्य करते हैं। यहाँ लेखक पुस्तक लिखता है वह स्रोत के रुप में कार्य करता है जबकि पाठक गंतव्य है प्रकाशक पुस्तक को प्रकाशित कराता है और पुस्तक विक्रेता मार्केटिंग का ध्यान रखता है। परिणामस्वरुप पाठक व अकादमिक शोध के लिए प्रमाणिकता को सत्यापित करने के लिए विक्रेता के पंजीकरण नंबर, पैन कार्ड की प्रति, बिक्री कर/वैट पंजीकरण प्रमाणपत्र की आवश्यकता होती है। आमतौर पर पुस्तकालय और विक्रेता विदेशी मुद्राओं के लिए रुपांतरण दर को छोडकर जी0 ओ0 सी0 के सभी नियमों का पालन करते हैं।

**पुस्तक चयन स्रोत उपकरण** : पुस्तकालयाध्यक्ष प्रत्येक विषय में विशेषज्ञ नहीं हो सकता है। इसलिए, विषय विशेषज्ञों की इस संबंध में प्रमुख भूमिका होती है। पुस्तक

चयन स्रोतों की पहचान निम्न बिन्दुओं के अनुसार हो सकती है:

1. पाठकों के सुझाव
2. पुस्तक की समीक्षाएं
3. पुस्तकों की सूची

ब्रिटेन, अमेरिका एवं भारत में प्रकाशित पुस्तकों के लिए पुस्तक चयन उपकरण निम्नलिखित हैः

**यूके :** यूके में प्रकाशित पुस्तकों के लिए हम वेबसाइटों का उल्लेख कर सकते हैं जैसे ब्रिटिश राष्ट्रीय ग्रंथ सूची, व्हिटाकर की संचयी पुस्तक सूचकांक।

**यू एस ए :** यू एस ए में प्रकाशित पुस्तकों के लिए, हम उल्लेख कर सकते हैं जैसे लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस कैटलॉग।

**भारत :** भारत मे प्रकाशित पुस्तकों के लिए हम उल्लेख कर सकते हैं जैसे भारतीय राष्ट्रीय ग्रंथ सूची (INB) केंद्रीय संदर्भ पुस्तकालय, कलकत्ता, राष्ट्रीय पुस्तकालय- उनके अलावा कई प्रकाशकों और ख्याति प्राप्त बुक सेलर्स के अपने कैटलॉग आदि।

**गैर-पुस्तक सामग्री :** पुस्तकालय विभिन्न प्रकार की भौतिक विशेषताओं के साथ पुस्तकों और अन्य सामग्री का भंडार है, जैसे कि धारावाहिक, कार्टोग्राफिक सामग्री, ग्राफिक सामग्री, दृश्य-श्रव्य सामग्री, इलेक्ट्रानिक मीडिया में सामग्री आदि। गैर-पुस्तक सामग्री का चयन उपयोगकर्ताओं की मांग के आधार पर होना चाहिए। किसी विशेष प्रकार के उद्देश्य के लिए और किसी विशेष विषय की प्रस्तुति के लिए विशेष प्रकार की सामग्री को चुना जाता है। गैर-पुस्तक सामग्री का चयन और अधिग्रहण पुस्तकालय के प्रकार और ग्राहक जैसे कारकों पर निर्भर करता है। इसके लिए एक संग्रह विकास नीति होनी चाहिए।

**धारावाहिकों :** अवधि धारावाहिक एक व्यापक शब्द है ये निरंतर प्रकृति के प्रकाशन हैं, एक नियमित अंतराल में प्रकाशित होते हैं। धारावाहिकों का चयन प्रत्येंक शीर्षक के मूल्यांकन और उचित निर्णय लेने के बाद किया जाता है। चयन की प्रक्रिया के दौरान गुणात्मक नियमों का पालन करना होता है। अधिग्रहण के अलग-अलग चरणों के दौरान पुस्तकालयाध्यक्ष को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जैसे चयन, आदेश और प्राप्त करना। यह शोध करने वाले विद्धान के लिए प्राथमिक स्रोत के रूप में कार्य करता है। आजकल पत्रिकाओं की सदस्यता राशि कागज की लागत में मूल्य वृद्धि की वजह से बढ़ रही है। आवधिक खंड के पुस्तकालयाध्यक्ष को कुछ बिंदुओं में बहुत सावधान रहना चाहिएः

1. बजट आवंटन
2. समीक्षा के बाद वर्तमान लेने वाली सूची तैयार करना
3. आदेश देना (प्रत्यक्ष या विक्रेता के माध्यम से)
4. सप्लाई लेटर में गैप होना
5. बिल/इनवॉयस का सत्यापन
6. रुपान्तरण दरों का सत्यापन
7. क्रेडिट नोट को रखना/सत्यापित करना।

दोनों ही प्रणलियों में लाभ और हानियाँ हैं लेकिन ऐजेंटों के माध्यम से आर्डर देना बेहतर होता है। आजकल ई-पत्रिकाओं की खरीददारी की जाती है। हालांकि ई-जर्नल लेने से पहले पुस्तकालयाध्यक्ष को आई0टी0 विभाग से स्टेटिक आई0 पी0 एड्रेस प्राप्त करना होता है।

**अन्य :** गैर-पुस्तक पठन सामग्री में ग्राफिक कार्टोग्राफिक सामग्री भी है जिसमे चित्र, चित्र कार्ड, नक्काशी, उत्कीर्णन चित्रमय प्रतिनिधित्व आदि शामिल है। कार्टोग्राफिक सामग्री में ग्लोब, मैप्स, एटलस आदि आते हैं। गैर-पुस्तक सामग्री में संगोष्ठी, सम्मेलन में प्रस्तुत किए गए पत्र भी शामिल हैं। रिपोर्ट विशेष अध्ययन अनुसंधान के लिए सूचना का प्राथमिक स्रोत है। समाचार पत्र की कतरन समसामयिक घटनाओं और वर्तमान विषयों पर नवीनतम जानकारी के रिकार्ड है। इन सामग्री के अधिग्रहण में पुस्तकालयाध्यक्ष प्रमुख भूमिका निभाता है।

**विकास में समस्या :** पुस्तकालय की प्रकृति और आकार के अनुसार संग्रह विकास के दौरान निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ता हैः

1. प्रकाशित पुस्तकों की संख्या में वृद्धि
2. पुस्तकों और पत्रिकाओं की लागत में वृद्धि
3. विभिन्न भौतिक माध्यमों में पुस्तकालय सामग्री की उपलब्धता
4. पाठकों की बढ़ती मांग
5. पुस्तक विक्रेता का अनुचित व्यापार व्यवहार
6. खरीद नीति में उतार-चढ़ाव
7. पुस्तकालय बजट में कोई वृद्धि न होना
8. संस्था के लिए प्रासंगिक न होते हुए भी उन्हे खरीदने का दबाव
9. विभिन्न विषयों (विभागों) का बजट का आबंटन
10. संदर्भ संग्रह के लिए किसी भी शीर्षक की पहचान करना
11. कई प्रतियों की मांग

12. पुस्तकों एवं अन्य उपकरणों के लिए बजट आबंटन के लिए सूत्र का अभाव
13. देश के सभी भागों में प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेता सूची की अनुपस्थितता
14. संस्थागत रिपोजिटरी की खरीद/ संरक्षण के लिए कम महत्व,
15. संदर्भ अनुभाग को अच्छा बनाने के लिए पाठकों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए पुस्तकालयाध्यक्ष या संकाय की कम रूचि।

**संग्रह प्रबन्धन :** पुस्तकालय में सामग्री खरीदे जाने के बाद पुस्तकालय का वास्तविक कार्य शुरू होता है कि अब अधिग्रहित साहित्य का प्रबन्धन कैसे किया जाए। परिग्रहण, वर्गीकरण, कैटलॉगिंग, दस्तावेजों की आवश्यक तैयारी आदि सभी संग्रह प्रबन्धन के विभिन्न पहलू हैं। दस्तावेजों की देखभाल और संरक्षण भी पुस्तकालय सामग्री के इष्टतम उपयोग में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। दस्तावेजों की देखभाल उनके जीवनकाल को बढ़ाने और खो जाने से बचाने में मदद करती है। जब पुस्तकालय का संग्रह पुराना और विशाल हो जाता है, तो पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तकालय समिति के समक्ष एक निराई (छटाई) समिति का गठन करता है जिसमें सभी विभाग सम्मिलित होते हैं। अनुउपयोगी पुस्तकों को संग्रह से वापस ले लिया जाता है। पुस्तकालय कर्मचारियों के लिए स्टॉक का सत्यापन एक प्रमुख कार्य है। इस कार्य द्वारा पुस्तकों और अन्य सामग्री के नुकसान का आंकलन करने में मदद मिलती है, जिसके परिणामस्वरुप नुकसान को रोकने के लिए आवश्यक उपाय किए जा सकते हैं।

**संसाधन साझा करना :** इसके अन्तर्गत इसमें भाग लेने वाला प्रत्येक पुस्तकालय जरुरत पड़ने पर अपने सहयोगियों के संसाधनों को साझा करने का अधिकार रखता है। इस प्रक्रिया के लिए सूचना केंद्र इंटरैक्टिव कंप्यूटर सिस्टम और दूरसंचार सुविधा का उपयोग करते हैं।

**इलेक्ट्रानिक पर्यावरण संग्रह विकास :** आजकल हम पुस्तकालयों के विशाल संसाधनों सें स्थिर बजट और पाठकों की बढ़ती मांग की तरफ बढ़ रहे हैं। स्थानीय संग्रह विकास से संग्रहणीय विकास की ओर स्थानांतरण हो रहा है। डिजिटल युग मे पुस्तकालयाध्यक्ष की भूमिका बदल गयी है अब उन्हें सूचना मीडियेटर्स के रुप में कार्य करना पड़ रहा है।

**ऑन-लाइन** डेटाबेस (ग्रंथ सूची/अनुक्रमण/सारांश) की खरीद इलेक्ट्रानिक वातावरण में संग्रह विकास का हिस्सा है इसमें से कुछ का उल्लेख इस प्रकार है

1. एरिक (Eric)
2. सामाजिक विज्ञान के सूचकांक
3. सामाजिक सार
4. जे0एस0टी0ओ0आर0 (JSTRO)
5. जे-गेट आदि (J-GATE)

इलेक्ट्रानिक दस्तावेजों के प्रबंधन में कई समस्याएं हैं:

1. प्रमुख खरीद और संरक्षण प्रणाली
2. तकनीकी चूक
3. वित्तीय बाधाएं
4. परिवर्तन का विरोध
5. संबंधित समस्याएं
6. पुस्तकालय वातावरण में सुरक्षा
7. डिजिटल जानकारी की विश्वसनीयता और प्रमाणिकता की जांच करने से संबंधित समस्याएं
8. कॉपीराइट एक्ट पर नियंत्रण

**संग्रह से दूर :** निराई या छटाई एक ऐसी चीज है जिसके बारे में पुस्तकालयाध्यक्ष सोचते हैं लेकिन करते बहुत कम हैं। पुस्तकालय संग्रह से उपयोग के लिए अयोग्य या जिनकी आवश्यकता नही है, उनको त्यागना ही संग्रह से दूर करना होता है। इस प्रक्रिया से पहले पुस्तकालय नीतियों और लक्ष्यों का मूल्यांकन होना चाहिए। चयन और निराई दोनों एक समान गतिविधि है। दोनों में ही एक ही प्रकार के निर्णय लेने के नियम की आवश्यकता है। निराई के मापदंड डुप्लीकेट कॉपियां, अवांछित उपहार, अप्रचलित किताबों विशेष रुप से विज्ञान में, स्पष्टुरक्ष पुस्तकें, अनुपस्थित पुस्तकें आदि के आधार पर हो सकती हैं। एक बार जब दस्तावेजों को पुस्तकालय संग्रह से बाहर कर दिया जाता है तो उन पुस्तकों की लागत के साथ सक्षम प्राधिकारी से आवश्यक अनुमोदन प्राप्त कर उक्त पुस्तकों को मामूली कीमत में बेचने के लिए प्रदर्शित किया जाता है।

**संग्रह का मूल्यांकन :** संग्रह का मूल्यांकन संग्रह विकास के चक्र को पूरा करता है और मूल्यांकन में मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों मूल्य सम्मिलित होते हैं। मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य यह जानना है कि -

1. संग्रह कितना उपयोगी है
2. संग्रह की ताकत
3. पैसा कितने प्रभावी ढंग से खर्च हुआ।

**मूल्यांकन** के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान में रखना आवश्यक है:

1. संग्रह का वास्तविक क्षेत्र (कवर किए गए विषय)
2. संग्रह की गहराई क्या है (सामग्री का प्रकार)
3. संग्रह का उपयोग कैसे किया जाता है
4. संग्रह के मजबूत और कमजोर क्षेत्र क्या हैं
5. क्या संग्रह बहुत पुराना है
6. क्या पुस्तकालय एक विशेष समुदाय की सेवा है आदि।

**निष्कर्ष :** पुस्तकालय लेख, संसाधन और कर्मचारियों की त्रिमूर्ति है। पाठकों के बिना मूल संगठन पुस्तकालय के अस्तित्व के बारे में नहीं सोचा जा सकता है। पुस्तकालय में पठन सामग्री प्राप्त होने के बाद फिर यह पुस्तकालय कर्मचारियों की जिम्मेदारी बन जाती है कि वे तकनीकी प्रक्रिया द्वारा सही पाठकों द्वारा सही उपयोग के लिए व्यवस्थित करें। पुस्तकालय की लक्ष्य प्राप्ति और पुस्तकालय सामग्री के उपयोग को बढ़ाने में पुस्तकालयाध्यक्ष की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पुस्तकालयाध्यक्ष को कम्प्यूटर साक्षर होने के साथ संसाधन को साझा करने और सहकारी संग्रह प्रबंधन के उद्देश्यों को पूरा करने में सक्षम होना चाहिए। संग्रह विकास प्रभावी और अनुकूल होने के लिए संग्रह विकास कर्मचारी को कुल समुदाय की जरुरतों के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए न कि सक्रिय एवं वर्तमान उपयोगकर्ताओं के लिए। संग्रह विकास एक हमेशा चलने वाली प्रक्रिया है। केवल अभ्यास से ही विशेषज्ञ बना जा सकता है।

## संदर्भ


1. Chakarvarti B., Mahapatra P., *'Library Collection: Selection and Preservartion'*. World Press, Calcutta, 1991, pp. 51-54
2. Evans Edward, *'Developing Library and Information Centre Collections'*. Littleton, Libraries Unlimited, 1987, pp. 29-30
3. Gorman GE; Howes BR, *'Collection Development for Libraries'*, Bowker- Saur, London, 1989, pp. 71-75
4. Jenkins Clare; Morley Mary, *'Collection Development in Academic Libraries'*, Jaico Publishing House, Bombay, 1996, pp.90-93
5. Mahapatra PK, *'Collection Management in Libraries'*, Ess Publications, New Delhi, 1999, pp. 45-47
6. India UGC. Library Committee (Chairman: S.R.Ranganathan)-University and College Libraries. Report, New Delhi, UGC, 1965, pp. 78-85
7. Kumar Krishna, *'Library Manual'*, Vikash Publishing House, New Delhi, 1985, pp.79-80
8. Ranganathan SR, *'Library Book Selection'*. 2nd ed. Sarada Ranganathan Endowment for Library Science, Banglore,1989, pp.40-45

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2020

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# दलित चेतना की विकासमान धारा : अठारहवीं सदी से समकाल तक

❑ डॉ विकास कुमार

**अनुसूचित जातियाँ : सामाजिक पृष्ठभूमि** :- भारत में जाति-व्यवस्था स्तरीकरण व्यवस्था का अनिवार्य अंग है। वर्ण-व्यवस्था में एक प्रस्थिति-अनुक्रम होता है जिसमें शीर्ष पर ब्राह्मण हैं, फिर क्षत्रिय एवं वैश्य है और सबसे निचले स्तर पर शूद्र आते हैं। अनुसूचित जातियाँ उक्त चौतही वर्ण-व्यवस्था या जाति व्यवस्था की परिधि के बाहर अवस्थित हैं।

**अनुसूचित** जाति एक राजनीतिक-वैधानिक शब्द है। पहली बार इस शब्द का प्रयोग साइमन कमीशन ने किया और फिर इसे 1935 के भारत सरकार अधिनियम में स्थान प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता पश्चात् भारत के संविधान में उन लोगों को संवैधानिक सुरक्षा कुछ विशेष सुविधाएँ एवं सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से इस शब्द को अंगीकार कर लिया गया।

**फिर भी** अब तक अछूत या अनुसूचित जातियों का कोई सजातीय समूह नहीं है। वे अस्पृश्यता के मानदण्डों पर काम-धन्धे और संख्या के आधार पर बँटे हुए हैं।

**अनुसूचित** जातियों का अछूतों के लिए प्रयोग होने वाला दूसरा शब्द ''हरिजन'' (ईश्वर की संतान) है। यह शब्द सबसे पहले महात्मा गांधी द्वारा प्रयोग किया गया, जिसका मतलब है ऐसी जातियों का एक समुदाय, जो एक दूसरे से भिन्न हैं और जिनको जाति-पदानुक्रम में निम्नतम कृत्य और सामाजिक प्रस्थिति पर रखा गया है। इनके लिए एक और शब्द का प्रचलन है- पद दलित वर्ग। इस शब्द का प्रयोग पहली बार डॉ0 अम्बेडकर ने किया था और इसका अभिप्राय है लोगों के वे वर्ग एवं श्रेणियाँ जो गरीब एवं शोषित तथा सामाजिक/धार्मिक रूप में पदच्युत थे। उनके साथ चाण्डाल या सामाजिक रूप से कलुषित के रूप में व्यवहार किया जाता था। वह शब्द जो आजकल प्रचलन में है और अनुसूचित जाति द्वारा पसंद किया जाता है, वह है 'दलित'। दलित शब्द इस अर्थ में समावेशकारी है कि इसमें लोगों के वे समुदाय/समूह भी सम्मिलित हैं जो उपान्तिक और वशीकृत हैं। जातिगत अर्थ में यह शब्द अछूतों और अनुसूचित जाति के लिए प्रयोग किया जाता है।

> भारतीय समाज अपने आरंभ से ही बहुलतावादी एवं सोपानिक रहा है। किंतु समाज का व्यवस्थित क्रम निर्धारण इसकी संरचनात्मक सुरक्षा को अक्षुण्ण बनाये रखने में सक्षम रहा। बावजूद इसके हमेशा से सत्ता एवं शक्ति की दौड़ ने संघर्षो को जन्म दिया। इस प्रतिस्पर्धा में पीछे छूट गए वर्गो ने बहुत बार सतह पर आकर अपनी आवाज बुलंद की। किन्तु पहली बार औपनिवेशिक शासन के दौरान और पश्चात् में स्वतंत्रोत्तर भारत में इस स्वर ने एक समग्र रूप से संश्लेषित समाज की पुनर्रचना के लिए बाध्य कर दिया। साथ ही अंग्रेजी शासनकाल में दलितों में चेतना की भावना को मजबूती प्रदान की गई। अंग्रेजो की नजर भारत की अजीबोगरीब वर्ण और जाति की ओर गई। साथ ही समकालीन दलित चेतना के कारण 21 वी सदी में दलितों में एक नया वातावरण तैयार हुआ, वह वर्ण व्यवस्था के विरोध में अपनी उर्जा को लगाने लगे, सही मायने में कहा जाए तो आधुनिक काल में ही दलितों का विकास हुआ।

**अछूत जातियाँ व उनका उद्गम** - 'अनुसूचित जातियाँ' शब्द लोगों के उन समूहों को इंगित करता है जो जाति-व्यवस्था या वर्णानुक्रम से बाहर थे। इनमें मुख्य रूप से ''अछूत जन'' अथवा अस्पृश्य जातियाँ आती थीं। युगों से उच्च जातियों द्वारा इन समूहों या जातियों के प्रति भेदभाव बरता जाता रहा है और उच्च जातियों से सम्बन्ध रखने वाले बहुसंख्य लोगों से उन्हें किसी भी प्रकार की सामाजिक स्वीकृति नहीं मिली। अनुसूचित जातियों को सफाई, दाहकर्म, चमड़ा उतारना/कमाना आदि जैसे उनके तथाकथित कलुषित कार्यकलापों के कारण उच्च जातियों द्वारा अछूत और अपवित्र माना जाता था। उनके अस्वच्छ काम-धंधों के कारण ही नहीं बल्कि उनके तथाकथित 'श्याम वर्ण' के कारण भी उन्हें जाति एवं वर्ग-व्यवस्था के औपचारिक एवं सामाजिक पदानुक्रम में सबसे नीचे रखा गया था। चूँकि वर्णाश्रम-

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, ईश्वर शरण पी.जी. कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

सिद्धान्त और धार्मिक कर्त्तव्य यह अपेक्षा करता था कि जाति को अपना पारंपरिक व्यवसाय ही अपनाना चाहिए, जैसा पुजारी का बेटा पुजारी बने और चर्मकार अथवा चर्मशोधक का बेटा जूता गाँठने वाला या वंशागत चर्मशोधक ही बने। अछूत जातियों के लिए अपना व्यवसाय बदलकर अपनी स्थिति में सुधार करना असंभव था। जाति के साथ व्यवसाय का बंधन इतना अविभाज्य हो गया कि एक समुदाय विशेष में जन्म लेने पर यह सवाल अप्रासंगिक था कि आप अच्छे काम में लगेंगे या गंदे काम में। इस प्रकार अछूत जन वे जातियाँ हैं जो वर्ग-व्यवस्था की सीमा से बाहर रखी गई थीं। उनको कलुषित और उपान्तिक कहा जाता था और समाज में सबसे निचली सीढ़ी पर रखा जाता था। इस वंशानुक्रम व्यवस्था को जारी रखने के लिए अनेक वैचारिक औचित्य प्रतिपादन मौजूद थे, जो हर किसी को अपने स्थान पर रखते थे।

**सामाजिक** इतिहास का आरंभ कर्म आधारित वर्गीय विभाजन के विभिन्न क्षेत्रीय समायोजनों पर आधारित है किन्तु कालांतर में कर्म-कौशलों की वंशगत परंपराओं ने इन समायोजनों को अधिक स्थाई संरचना में परिवर्तित कर दिया।[1] इस संरचना का वह भाग जो भौतिक बल द्वारा मानव जीवन की अनिवार्यताओं के उत्पादन से संबद्ध हुआ अथवा शिल्प-कलाओं जैसी सौंदर्यबोधी कुशलताओं को प्राप्त कर जीविकोपार्जन करने लगा उसे सामाजिक स्तरीकरण के क्रम में निम्नतम पायदान पर स्थान मिला। समाज व्यवस्था का यह मॉडल अपनी कुछेक सीमाओं के साथ स्वीकार्य था किंतु कालांतर में ये सामाजिक स्तर अपारगम्य होते गये। सुविधा भोग और शक्ति-संग्रह की सहज मानवीय वृत्तियों ने सामाजिक दरारों को चौड़ा करना प्रारम्भ कर दिया। प्राचीन भारत की संस्कृति का सबसे पीड़ादायक पहलू यह है कि इस संस्कृति के भीतर से पुरोहितवाद तगड़ा होता गया। इसी पुरोहितावाद ने ऋग्वेद के बाद वर्णव्यवस्था को ढाल बनाकर समाज को द्विज संस्कृति और शूद्र-संस्कृति में विभाजित कर दिया। इतना ही नहीं वेद-भाषा को आर्य-भाषा कहकर इस पर कब्जा कर लिया। देवभाषा और म्लेच्छ भाषा का वातावरण तैयार किया गया- जिसमें मुख-भाषा और पद-भाषा का अगड़ा-पिछड़ा बीज भाव मौजूद मिलता है। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैश्य मुख-संस्कृति अथवा द्विज-संस्कृति तथा श्रम करने वाला, शिल्प कर्म में आवृत्त, कमजोर, निर्धन, शोषित वर्ग पद-संस्कृति अथवा शूद्र संस्कृति का भाग बना। यह विभाजन और वर्गीकरण कहने के लिए तो ज्ञान और कर्म की आधारभूमि पर ही प्रतिष्ठित था। यथा-

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।[2]

**उपरोक्त** में संस्कार ही श्रेणीक्रम के निर्धारक प्रत्यय हैं किंतु ये संस्कार हैं नितांत स्थूल और कर्मकाण्डीय। इन सबके होते भी सबको संस्कारित होने का अधिकार भी तो नहीं था संस्कार माने पूजा-पाठ, यज्ञोपवीत, यज्ञ-कर्म आदि और इन संस्कारों के पास शूद्र को फटकने तक की मनाही थी। आखिर कोई संस्कारित हो भी तो कैसे? यही है स्तरीकरण की कठोरता और व्यवस्था की अपारगम्यता। शूद्रों को शास्त्र वंचित कर दिया गया और शिक्षा, स्वधा और वेद-पाठ का अधिकार देकर द्विजों की समाज में एक संस्कृति विकसित की गयी। द्विज संस्कृति ने शूद्र संस्कृति के बीच 'औष्ण योनिः', 'त्वचं औष्णामे' तथा 'दस्यूत् विशः' के अलगाववादी पाठ की महत्ता प्रतिष्ठित कर डाली। स्वयं को 'हिरण्य केशी' सूर्यत्वचं और 'देवभाषा' के अभिजात्य में लपेटकर खड़ा किया।

**ब्राह्मणवाद** और संस्कृतवाद की धारणा को भी यूरोपीय मानसिकता के इतिहासकारों ने ही यहाँ पनपाकर बड़ा किया। इसी ने कृष्णवाद और धर्मवाद की राजनीति का जहर पैदा किया।[3] स्वयं डॉ. अम्बेडकर[4] आर्य आक्रमण सिद्धांत को न मानते हुए आारभ से ही भारत को विविध भाषाओं और संस्कृतियों की भूमि मानते हैं। उनका मानना है कि अस्पृश्य कभी भी आर्य-द्रविड़ से अलग नस्ल के नहीं रहे। उनके शरीर और रंग को भारत के भूगोल ने निर्धारित किया। अस्पृश्यता पर विचार के लिए श्रम व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था पर विचार करना होगा जिसमें स्वामी दास संबंध की सत्ता रही है।[5] सम्पन्न स्वामी समुदाय ने विपन्न समुदायों से दास कर्म करवाया। भारत के सामंतवाद[6] में बहुत सी विकृतियों की जड़ें खोजते ही मिलने लगती हैं। यह गरीब श्रमजीवी वर्ग ही 'दलित' है जो खेतों की जुताई, बुआई, कटाई, गहाई, निराई, का काम करता था और पशुओं को पालता था। इन्हीं के साथ बढ़ई, लुहार, कुम्हार जुड़े हैं और इनसे थोड़ा भिन्न काम करने वाले सुनार, पनिहार, पनवाड़ी, मूर्तिकार, स्थापत्य कलाओं से जुड़े लोग थे। इनके पास हुनर थे। इस प्रकार विद्या वाले लोग अलग थे- उपविद्या वाले अलग। उपविद्या में कलाएँ थीं- चौसठ कलाएं- बहत्तर कलाएँ या अनगिनत कलाएँ।

**दलित** साहित्यकारों की जनस्वीकार्यता के प्रश्न पर भी

दलित साहित्यिक सिद्धांतकारों के अपने ही विभेदकारी तर्क हैं। उनके अनुसार कबीर[7] को तुलसीदास[8] जितना जन समर्थन कभी नहीं मिला। कहते हैं कबीर को साहित्य में प्रतिष्ठित करने वाले हजारी प्रसाद द्विवेदी भी जीवन के अंतिम दौर में तुलसीदास पर एक पुस्तक लिखना चाहते थे। हिंदी साहित्य में प्रमुख दलित स्वर निराला और रामविलास भी तुलसीमय रहे। इसका यह मतलब नहीं कि ये कबीर की उपेक्षा के लिए ऐसा करते थे। यह सोचना तर्क नहीं अराजकता है। आज के भारत में यह स्वर उत्तरोत्तर अधिक मुखर होता गया। लेकिन इस कोरस में दलित एवं गैर दलित का विभाजन और उनकी पहचान कर पाना मुश्किल है। यही इस स्वर की प्रभावकारी सामर्थ्य भी है। वैसे भी साहित्य में वाद-विवाद संवाद की बहुत पुरानी परंपरा रही है। चाहे धर्म हो, दर्शन हो, काव्यशास्त्र हो, जातिप्रथा हो, बहस जारी है।

**अंग्रेजी राज और दलित अस्मिता का प्रश्न** : भारतीय सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में प्राचीन काल से लेकर अब तक मुख्यधारा के समानान्तर एक प्रतिरोधी धारा लगातार चलती रही है। इस धारा ने समय-समय पर अनेक आन्दोलनों और क्रान्तियों को जन्म दिया। इस प्रतिरोधी धारा के आन्दोलन और क्रांतियों में दलित अस्मिता के सवालों को लेकर असहमति विरोध और प्रतिरोध के स्वरों की तलाश आसानी से की जा सकती है। प्राचीन बौद्ध-जैन काल, सिद्ध-सामन्त और भक्ति काल में दलित चेतना की मुख्य धारा को भारतीय साहित्य, समाज और संस्कृति के इतिहास में हम देख चुके हैं। मध्यकाल का 'भक्ति आंदोलन' भी प्रकारान्तर से 'दलित आन्दोलन' ही था। यह अखिल भारतीय आन्दोलन था, जिसने पारम्परिक समाज व्यवस्था की चूलें हिला दी थीं। आरम्भ में यह उदारवादी द्विज-भक्त और दलितों का मिलाजुला आन्दोलन था। किन्तु कालान्तर में दलित चेतना के अधिक करीब और अनुकूल पड़ने के कारण यह समानता और मानवता की विशाल चेतना पर केन्द्रित हो गया और झुंड की झुंड दलित जनता इसकी ओर बढ़ी। यही कारण है कि भक्ति आन्दोलन में दलित सन्त और भक्तों की संख्या सबसे अधिक है।

**भक्ति आन्दोलन** अखिल भारतीय आन्दोलन था, जो देश की चारों दिशाओं में फैला। उत्तर में रामानन्द, रैदास और कबीर; दक्षिण में निम्बार्क और वसवण्णा; पूरब में चैतन्य और चंडीदास तथा पश्चिम में चोखामेला, तुकाराम और नरसी मेहता ने बारी-बारी से इस आन्दोलन की अलख जगायी। भारतीय भक्ति साहित्य ने सामन्ती सत्ता के विरुद्ध आवाज तो उठाई, पर उत्तर मध्यकाल में वह पूरा का पूरा सामन्ती शान-शौकत की गोद में चला गया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में समय ने फिर से करवट ली और भारत में क्रान्ति, अस्मिता, रूढ़ियों से मुक्ति और मानवतावादी मूल्यों की स्थापना का नया दौर शुरू हो गया, जिसकी परिणति भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम और लोकतन्त्र की स्थापना में हुईं।

**'नवजागरण'** से शुरू हुआ यह आन्दोलन रुकते-झुकते लगभग आज तक चला आ रहा है। यह 'नवजागरण' अंग्रेजी राज में ही हुआ। अंग्रेजी राज में 'नवजागरण' का स्वरूप क्या था और उसकी चेतना में दलित अस्मिता का सवाल कहाँ तक उचित था?- इन बातों पर विचार करना आवश्यक है। ब्रिटिशकालीन भारत का नवजागरण मुख्य रूप से आधुनिकता और मानवाधिकारों को समर्पित था, जिसके पीछे समाजवादी और लोकतान्त्रिक मूल्य काम कर रहे थे। मध्यकाल का भारतीय समाज पहले तो हिन्दू-मुस्लिम सवालों में उलझा रहा, किन्तु बाद में समन्वय की उदात्त चेतना से लैस होकर उसने भारतीय संस्कृति को अपनी सीमा में बाँधने की कोशिश की, जिसमें उसे आंशिक सफलता मिली भी, किन्तु उसका बहुत बड़ा अंग स्त्री, दलित और मुस्लिम समाज उसकी पकड़ से अब भी बाहर रहा। भारत में अंग्रेजों से पहले जो विशाल मुगल साम्राज्य था, उसमें भी स्त्री और दलितों की स्थिति अच्छी नहीं रही। यद्यपि स्त्रियों के प्रति इस्लाम की अपनी अलग सोच थी; किन्तु दलितों की स्थिति वहाँ भी हिन्दू मानसिकता से आगे नहीं बढ़ी। अधिक से अधिक यह हुआ कि हिन्दुत्व के भेद-भाव तले दबे और दुत्कारे-फटकारे दलितों को उन्होंने इस्लाम में मिला लिया। किन्तु वहाँ भी उनकी स्थिति दोयम दर्जे के नागरिकों की ही रही। अधिकांश हिन्दुओं की तरह उन्होंने भी दलितों को ज्यादातर अछूत और निकृष्ट प्राणी ही समझा।

**किन्तु अंग्रेजों** के आगमन के साथ ही भारतीय समाज-व्यवस्था को देखने का नजरिया बदल गया। भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के साथ जहाँ एक ओर औपनिवेशिक शासन के खिलाफ संघर्ष की शुरुआत हुई, वहीं दूसरी ओर भारतीय समाज की कमजोरियों का आकलन-विश्लेषण तथा उनके निवारण की कोशिशें भी तेज हुईं। आखिर क्या कारण था कि मुट्ठी भर फिरंगी

ताकतों ने इस विशाल देश को गुलाम बना लिया? अपने समाज की अन्दरूनी कमियों को लेकर प्रबुद्ध भारतवासियों के बीच गहन आत्म-मन्थन का दौर चला। इसी आत्म-मन्थन के बीच से कई धर्म-सुधार तथा समाज-सुधार आन्दोलनों का जन्म हुआ।

**अंग्रेजों** की नजर भारत की अजीबोगरीब वर्ण और जाति व्यवस्था की ओर गयी। भारत के अतिरिक्त दुनिया के किसी भी देश में ऐसी सामाजिक व्यवस्था नहीं थी। इसलिए पहले तो उन्होंने इस अमानवीय व्यवस्था को कौतूहल और मनोरंजन की दृष्टि से देखा। फिर समाज में दलितों की हीन और दारुण दशा देखकर उन्हें स्थिति पर दया आने लगी। इसलिए भारतीय धर्म और समाज-सुधार आन्दोलनों का अंग्रेजों ने खुलकर साथ दिया। दलित स्थिति में सुधार का आन्दोलन इसका प्रमुख अंग था।

**किन्तु** ऐसा नहीं है कि भारत के दलितों में उस समय इस प्रकार की चेतना थी और उन लोगों ने आगे बढ़कर अंग्रेजों का साथ दिया था। आम दलित तो देश की मुख्यधारा के साथ ही थे। यही कारण है कि भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में दलितों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। बिरसा मुंडा, सिद्दू-कान्हू, भगत सिंह (पिछड़ा वर्ग), ऊधम सिंह, जगलाल चौधरी, जुब्बा सहनी, आदि स्वतन्त्रता सेनानियों ने अंग्रेजों को नाकों चने चबा दिये। बिहार के मुसहरों ने सीतामढ़ी, भागलपुर और चम्पारण में अंग्रेज अफसरों के छक्के छुड़ा दिये थे। किन्तु अंग्रेज लोग दलितों के लिए भारतीय सवर्ण और मालिकों से कहीं अच्छे थे- यह बात दलित बुद्धिजीवियों के मस्तिष्क में भी थी और आज भी है। दलित यद्यपि भारतीय समाज और हिन्दू धर्म के अंग थे, किन्तु उन्हें भारतीय समाज में कोई सार्वजनिक पद या जीविका का ऐसा कार्य नहीं दिया जाता था, जिससे सामान्य लोग उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आ सकें। अर्थात् समाज को हमेशा उनके स्पर्श से दूषित और अपवित्र हो जाने का भय बना रहता था। इसलिए अंग्रेजों के जमाने में ही अम्बेडकर आदि के प्रयास से भारत में छूआछूत पर कानूनी प्रतिबन्ध लगने शुरू हो गये थे।

**इस प्रकार** अंग्रेजी राज में दलितों की सामाजिक स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार हुआ। उन्हें समाज में अन्यों की तरह कई अधिकार और सम्मान मिले। उनमें सबसे बड़ा अधिकार शिक्षा का अधिकार था। भले ही भारतीय गुरुओं द्वारा उनके साथ भेद-भाव किया जाता रहा हो, उन्हें सामान्य लड़कों से अलग बैठना पड़ता हो किन्तु ज्ञान प्राप्त करने का समान अधिकार उन्हें पहली बार प्राप्त हुआ अन्यथा देशी शिक्षा-व्यवस्था में उन्हें स्कूल तो क्या, घर में भी पढ़ने का अधिकार शायद ही मिल पाता। 'एकलव्य' और 'शम्बूक' की कथा से यह देश परिचित है। भारत के हिन्दुओं में दलितों के प्रति वही मानसिकता अब भी काम कर रही थी। अन्यथा कानून बन जाने के बाद भी आजाद भारत में हाल-फिलहाल तक दलितों के लिए मन्दिर और धर्म-स्थलों में प्रवेश की मनाही रही। दलितों के मन्दिर-प्रवेश के प्रश्न पर आज भी कभी-कभार घटनाएँ घट जाती हैं।

**अम्बेडकर** लिखते हैं, अगर अछूतों ने 'आजादी की लड़ाई' से खुद को दूर रखा है तो इसलिए नहीं कि वे अंग्रेजी साम्राज्यवाद के पिट्ठू हैं, बल्कि इसलिए कि उन्हें डर है कि हिन्दुस्तान की आजादी हिन्दू राज कायम कर देगी, जिसके फलस्वरूप उनके लिए जिन्दगी, आजादी और खुशी के तमाम रास्ते हमेशा लिए बन्द हो जाएँगे। दूसरी तरफ काँग्रेस के लिए भारतीय राष्ट्रवाद के मायने सिर्फ अंग्रेजी साम्राज्य से आजादी है। दलितों को मालूम नहीं कि उनके अधिकार क्या हैं? इस प्रकार अंग्रेजी राज में दलित देशी राजा और सामन्तों की अपेक्षा अपने को अधिक सुरक्षित और सम्मानित महसूस कर रहे थे।

**जहाँ तक** अंग्रेजी राज में दलितों की अस्मिता का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में महात्मा फूले, पेरियार, शाहूजी महाराज और अम्बेडकर आदि के आन्दोलनों को देखा जा सकता है। इन महापुरुषों का आन्दोलन सामाजिक समानता और भारतीय समाज में दलितों को उचित सम्मान दिलाने का ही आन्दोलन था। ये सारे आन्दोलन ब्रिटिश भारत में ही हुए, जिसमें अंग्रेजी सरकार ने समाज-सुधारकों की मदद की। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि दलितों के 'सम्मान आन्दोलन' के विरुद्ध सवर्णों का कोई समान्तर आन्दोलन नहीं चला। बल्कि गांधी सहित जो भी सवर्ण नेता और समाज-सुधारक थे, दलितों के उद्धार और सुधार आन्दोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे थे। चाहे वह दयानन्द सरस्वती का आर्यसमाज आन्दोलन हो, राजाराम मोहन राय का ब्रह्मसमाज या कोई भी और समाज सुधार आन्दोलन सभी के सभी थोड़े-बहुत मतान्तरों के बावजूद दलितों के साथ थे और तो और तिलक जैसे कट्टर हिन्दूवादी नेताओं ने भी आरम्भ में इन आन्दोलनों का समर्थन ही किया। इस प्रकार अंग्रेजी राज में दलितों की स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार आया, उनकी सामाजिक हैसियत

बढ़ी और मान-सम्मान और पहचान में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हुईं।

**समकालीन दलित चेतना, सामाजिक परिवर्तन और आज का प्रश्न** :परिवर्तन की गति शाश्वत है। कुछ समाजों में यह परिवर्तन धीमा होता है तो कुछ में तेज। मोटे तौर पर देखा जाये, तो हम कह सकते हैं कि पश्चिम के समाज में यह गति तेज है और भारतीय समाज में मन्द। फिर भी आधुनिक भारतीय समाज में तेजी से परिवर्तन हुआ है। परिवर्तन स्वतः चालित प्रक्रिया के साथ-साथ व्यक्ति एवं संस्थाओं के प्रयासों का भी परिणाम है। एक ओर भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तनों ने दलित समुदाय को प्रभावित किया, तो दूसरी ओर दलित समुदाय ने भी अपने उत्थान हेतु अनेक आन्दोलनों द्वारा अपने समाज में परिवर्तन के प्रयास किये।

**किसी** भी समाज के परिवर्तन की धारा और उसके स्वरूप को समझने के लिए उसकी परम्परा और सामाजिक संरचना को जानना जरूरी है। **नेडल**[9] के अनुसार, ''सामाजिक संरचना को हम समाज में व्यक्तियों की भूमिकाओं तथा परिस्थिति से उत्पन्न अन्तर-सम्बन्धों के नेटवर्क के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।'' उसी प्रकार समाज में स्थापित मूल्यों, मान्यताओं, रीतियों आदि, जो संस्थाओं के जाल से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंपे जा सकें, को हम परम्परा कहते हैं। भारतीय सन्दर्भ में सामाजिक संरचना (खासकर हिन्दू समाज) की तह में वर्ण-व्यवस्था जनित श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ भाव और ऊँच-नीच का श्रेणीक्रम रहा है। यह संरचना इतनी मजबूत रही है कि इसका प्रभाव समाज, संस्कृति, धर्म, अर्थ और राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में परिलक्षित होती है। इस संरचना को हम कालक्रम से थोड़े-बहुत परिवर्तन या सुधारों के साथ परम्परा के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी ढोते आये हैं। जब हम परिवर्तन की बात करते हैं, तो स्पष्ट है संरचना और परम्परा दोनों की बात करेंगे। परिवर्तन के विकास क्रम में देखना यह होगा कि यह संरचना और परम्परा किस हद तक टूटी या बदली हैं। मूल्यों में कहाँ तक बदलाव और नये मूल्यों का कहाँ तक निर्माण हुआ है दलितों के सन्दर्भ में इस परिवर्तन की बात करें, तो देखना होगा कि समाज की मुख्यधारा ने उसकी स्थिति में परिवर्तन को किस रूप में देखा और खुद दलितों ने इसे किस रूप में लिया और परिवर्तित किया है? इन्हीं सब बातों को दृष्टि में रखकर यहाँ हम दलित समाज में परिवर्तन की चेतना और उसे बदलाव को रेखांकित करने की कोशिश करेंगे।

**भारत** में दलित चेतना के अनुरूप सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप पर कई दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसे प्राचीन, मध्य और आधुनिक युगों में बांट कर देखा जा सकता है। भौगोलिक दृष्टि से भी इस पर विचार किया जा सकता है। विषय के आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और मनोवैज्ञानिक पहलू भी हैं। अवधारणा, सिद्धान्त तथा जीवन और जगत के विभिन्न क्षेत्रों में मानवीय विकास की दृष्टि से इसके स्वरूप को ईश्वर भक्ति, शिक्षा, स्वाभिमान, पेशा, संस्कृतीकरण आदि कई रूपों में देखा जा सकता है।

**आधुनिक काल का सामाजिक परिवर्तन** :- दलितों की स्थिति में सर्वाधिक परिवर्तन इसी काल में हुआ। इसे दलित-पिछड़ों के लिए क्रान्ति का दौर कहा जा सकता है। इन वर्गों के लिए तमाम परिवर्तन इसी दौर में हुए। दलित-पिछड़े और स्त्रियों के तमाम आन्दोलन इसी काल में हुए। ये आन्दोलन सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में हुए। इतिहास इसे नवजागरण या पुनर्जागरण के नाम से जानता है। मुगलों के पतन और यूरोपीय व्यापारियों के आगमन के बाद यह जागरण 18वीं शताब्दी के अन्त और 19वीं शताब्दी के आरम्भ से शुरू होता है। आधुनिक काल को 'नवजागरण' या 'पुनर्जागरण' स्वतन्त्रता संग्राम और स्वतन्त्रता के बाद का काल आदि भागों में बाँटा जा सकता है। स्वतन्त्रता के बाद के समय को भी 'पहली आजादी', 'दूसरी आजादी' और 'तीसरी आजादी' आदि श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

**अंग्रेजों** के आने के बाद से शुरू हुआ इस काल का प्रथम चरण 'जागरण काल' कहलाता है, जिसमें समाजसुधार के बड़े-बड़े कार्य हुए। ब्राह्मणवादी विचारधारा की दृष्टि से इस काल को 'पुनर्जागरण' और दलित-पिछड़ों की दृष्टि से इसे 'नवजागरण' कहा जा सकता है। भारत में जो सामाजिक-सांस्कृतिक सुधार आन्दोलन चले थे, उन्हें भी दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है-एक सुधार के कार्य तथा दूसरे क्रान्ति और परिवर्तन के कार्य। दलित दृष्टि से सभी सुधारवादी कार्य 'पुनर्जागरण' के अधीन हुए, जिसमें राजाराम मोहन राय, केशवचन्द, दयानन्द सरस्वती, रानाडे, तिलक और गांधी आदि महापुरुषों के कार्य इसी श्रेणी में आते हैं। इसके विपरीत महात्मा फूले, पेरियार और अम्बेडकर के कार्यों को परिवर्तन और क्रान्ति का कार्य कहा जा सकता है।[10]

**प्रथम** चरण में पुनरुत्थानवादी सुधार के कार्यक्रम के अन्तर्गत ही 'शुद्धीकरण' द्वारा देश के तमाम लोगों को समाज की मुख्यधारा में मिलाने का काम शुरू होता है। इसका प्रभाव दलित-पिछड़ों पर भी पड़ता है और ऊँची-नीची सभी जातियों के लोग अपनी-अपनी जाति और गोत्रों को सूर्य या चंद्र कुल का सिद्ध करने लगते हैं और अपने को ऊँचा समझते हैं। इस प्रयास में जनेऊ, तिलक आदि ब्राह्मणवादी प्रतीकों को धारण कर अपने को श्रेष्ठ दिखाने की प्रवृत्ति प्रायः सभी दलित-पिछड़ी जातियों में दिखायी पड़ने लगती है। नवजागरण का यह आन्दोलन यद्यपि सवर्णों के प्रभाव से शुरू होता है। किन्तु कालान्तर में नीची जातियों के इस प्रयास का विरोध भी उन्हीं लोगों द्वारा शुरू हो जाता है। देश में 'जनेऊ आन्दोलन' प्रसिद्ध है, जो 1880 के इर्द-गिर्द शुरू होता है। बिहार जैसे प्रान्तों में यह 1915 से 1930 तक अपने उग्र रूप में चलता हैं इसे समाजशास्त्रीय भाषा में 'संस्कृतीकरण' कहते हैं।

**किन्तु** अम्बेडकर के उदय के साथ संस्कृतीकरण का स्वरूप बदल जाता है। संविधान बनते-बनते देश में दलित-पिछड़ों के साथ-साथ कायस्थ समाज भी अपने को दलित और अनुसूचित जाति घोषित कर आरक्षण आदि के लिए आन्दोलन करता है क्योंकि शास्त्रों में कायस्थ को शूद्र कहा गया है। आजादी और उसके इर्द-गिर्द भारत में संविधान का निर्माण होता है और इतिहास में पहली बार दलितों को भी नागरिक स्वतन्त्रता और समानता के अधिकार मिलते हैं। इससे धीरे-धीरे शिक्षित होकर इस वर्ग से भी कुछ पीढ़ियाँ आगे आती हैं। इसी बीच पिछड़ों का भी आन्दोलन शुरू हो जाता है। पिछड़ों के आन्दोलन को भी सुधारवादी आन्दोलन की श्रेणी में ही रखा जा सकता है। इस दृष्टि से अधिकांध दलित और पिछड़े वर्ग के लोग गांधीवादी प्रभाव में होते हैं। कांग्रेस के आन्दोलन के साथ समाजवादी आन्दोलन भी शुरू हो जाता है, जिसमें देश में पिछड़े वर्ग के नेता उभरते हैं। पुनः वामपन्थी आन्दोलन से दलितों की स्थिति में थोड़ा सुधार आता है। कांग्रेस के बैनर तले हुए देश की प्रथम राजनीतिक आजादी के बाद जयप्रकाश आन्दोलन और जनता पार्टी की सरकार द्वारा दूसरी राजनीतिक आजादी मिलती है। बाबा साहब को 'भारत रत्न' की उपाधि से सम्मानित किया जाता है। इस चेतना को संयुक्त रूप से फूले-अम्बेडकरी चेतना कह सकते हैं।

**अम्बेडकर** की प्रेरणा से 'ऑल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासेस सम्मेलन', ने राष्ट्रीय स्तर पर दलितों के धर्म परिवर्तन के सवालों पर 1936 में लखनऊ में एक 'सर्वधर्म सम्मेलन' किया। स्वास्थ्य कारणों से अम्बेडकर तो इसमें नहीं आ सके थे, किन्तु उन्होंने जो सन्देश भेजा था, वह बहुत ही महत्वपूर्ण था। सभी धर्मों के वक्ताओं ने अपने-अपने धर्मों में दलित हितों का पूरा ख्याल रखने का आश्वासन दिया। इसमें दूसरे धर्मों पर छींटाकशी करने की मनाही थी। फिर भी प्रसिद्ध दलित विचारक, वक्ता और लेखक चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु ने चुटकी लेते हुए पूछ ही लिया आखिर एक हजार वर्षों में इस्लाम ने हमारे लिए क्या किया? सिख धर्म ने हमारे लिए क्या किया? जब ईसाई मिशनरियों ने अछूतों को छाती से लगाया, तभी दूसरे मतावलम्बी भी हमारी खबर लेने लगे। इस सम्मेलन में सर्वसम्मति से तीन प्रस्ताव पारित किये गये : अम्बेडकर में पूरी आस्था व्यक्त की गयी, हिन्दू धर्म से नाता तोड़ लेने का निर्णय लिया गया, और अगले अखिल भारतीय सम्मेलन में यह तय करने का फैसला किया गया कि दलित कौन-सा धर्म स्वीकार करें।[9]

**इस प्रकार** आजादी के पूर्व ही अम्बेडकर ने विभिन्न संघ-संगठनों के माध्यम से दलित चेतना को चरम पर पहुँचा दिया था। इसके अतिरिक्त महात्मा गांधी के 'हरिजन सेवक समाज', मदनमोहन मालवीय, जगजीवन राम आदि नेताओं के 'हरिजन सेवक संघ', जगजीवन राम जगदेव प्रसाद आदि नेताओं के सहयोग से चल रहे 'दलित वर्ग संघ', 'खेत मजदूर संघ' आदि संगठन भी दलितों के विकास के लिए काम कर रहे थे। किन्तु इनकी भूमिका प्रायः देश की आजादी के साथ ही समाप्त हो गयी।

**इस प्रकार** हम देखते हैं कि आधुनिक काल में दलित चेतना के विकास ने दलितों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है। ज्यों-ज्यों दलित समृाज में शिक्षा बढ़ेगी, यह चेतना और सामाजिक परिवर्तन और तेज होगा। दलित चेतना सामाजिक संरचना में ही परिवर्तन की आकांक्षी है। उसका स्पष्ट मानना है कि सामाजिक संरचना में परिवर्तन किये बगैर दलित समुदाय का विकास नहीं हो सकता। मुख्यधारा भी प्रकारान्तर से यही बात मानती आयी है। दलित चेतना के विकास की इस धारा को हम कांग्रेस और गांधी आदि के समाज सुधार आन्दोलन में देखते आये हैं। किन्तु यहाँ दलितों के आज के आन्दोलन और मुख्यधारा के आन्दोलन में मुख्य अन्तर यह है कि

मुख्यधारा जाति और वर्ण-व्यवस्था को बनाये रखते हुए ही इसमें सुधार करना चहाती है; जबकि दलित चेतना सामाजिक संरचना में आमूल परिवर्तन करना चाहती है। किन्तु वर्चस्व और सत्ता की राजनीति की आपाधापी में भय है कि दलित आन्दोलन भी कहीं दिग्भ्रमित न हो जाये। ऐसा हो भी रहा है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि दलितों के साथ-साथ गैर-दलितों को अपने पूर्वाग्रह छोड़कर समाज की एक पूर्ण धारा बनाने की कोशिश करनी चाहिए।

**दलित** चेतना में आज के परिवर्तन को निम्नलिखित क्षेत्रों में क्रियाशील देखा जा सकता है- हिन्दू समाज में अथवा हिन्दू समाज से पृथक सामाजिक अस्मिता के प्रयास, राजनैतिक अधिकारों के लिए आत्मनिर्भरता, आत्मनिर्भर राजनीतिक दल एवं विचारधाराओं की स्थापना, आर्थिक सशक्तीकरण हेतु भूमि-सुधार तथा न्यूनतम मजदूरी लागू करवाने हेतु प्रयास, दलित कर्मचारी-पदाधिकारी के आन्दोलन, दलित शिक्षा तथा बौद्धिक विकास के लिए सार्थक प्रयास, दलित महिलाओं का सशक्तीकरण, दलित स्वयंसेवी संगठनों का गठन और उनके द्वारा सामाजिक-आर्थिक सुधार के प्रयास, दलित समस्याओं को अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में उभारना और नैतिक एवं वैधानिक स्तर पर उन पर मानवाधिकारों के मानदंडों को लागू करवाना। दलित समाज में परिवर्तन की दशा और दिशा को इन्हीं कतिपय विचार-बिन्दुओं के सहारे रेखांकित किया जा सकता है।

## सन्दर्भ


1. अशर, कैथरीन, 'इंडिया बिफोर यूरोप', कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2006, पृ0 21
2. उद्धृत प्रभु पी.एच., 'हिन्दू समाज की व्यवस्था' (हिन्दी संस्करण), जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ. 457
3. पालीवाल, कृष्णदत्त, 'उत्तर आधुनिकता और दलित साहित्य', वाणी प्रकाशन, 2008, पृ0 175
4. जिलियट, एलिएनॉर, 'अन्टचेबल टु दलित : एसेज ऑन अंबेडकर मूवमेंट', मनोहर पब्लिकेशन दिल्ली, 1992, पृ0 67
5. गोखले, जयश्री, 'फ्रांम कंन्सेशन टु कान्फ्रंटेशन : द पॉलिटिक्स ऑफ एन इंडियन अन्टचेबल दलित', पापुलर प्रकाशन, बम्बई, 1992, पृ0 57
6. शर्मा, रामशरण, 'भारतीय सामंतवाद', राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2010, पृ0 3
7. अग्रवाल, पुरुषोत्तम, 'अकथ कहानी प्रेम की कबीर की कविता और उनका समय', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ0 274
8. कुमार, वरुण, (सं0), 'भक्तिकाव्य : मूल्यांकन और मूल्यांकन', यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2013, पृ0 212
9. रावत हरिकृष्ण, 'सामाजशास्त्रीय चिन्तक एवं सिद्धाँतकार', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2013, पृ. 353
10. कुमार, विवेक 'दलित समुदाय एवं सामाजिक परिवर्तन', हंस, अगस्त, 2004, पृ0 55

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2020

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# पंचायती राज और ग्रामीण विकास पर केन्द्रीय सरकार के प्रयासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

❑ सब्बल पटेल

**केन्द्रीय** सरकार द्वारा 2 अक्टूबर, 1959 को पंचायती राज की व्यवस्था अपनायी गई। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं राजस्थान जाकर इसका उद्घाटन किया। इसके पश्चात् उसी वर्ष आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु ने इसे अपनाया। असम, मैसूर, उड़ीसा, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश ने 1960–61 में पंचायती राज की स्थापना की तथा 1963 तक अधिकांश राज्यों में बलवन्त राय मेहता द्वारा प्रस्तुत त्रिस्तरीय पंचायती राज की व्यवस्था विभिन्न ढंग एवं नामों से लागू हुई।[1]

**केन्द्र** सरकार का मानना है कि ग्रामीण स्थानीय शासन की जो व्यवस्था विकसित की जाय वह ऐसी हो कि भविष्य में इससे भी अधिक शक्ति और उत्तरदायित्वों का अन्तरण सरलता एवं सुगमता से किया जा सके।[2]

**सामुदायिक** विकास कार्यक्रम का उद्देश्य 'ग्राम पंचायतों के माध्यम से ही जन-सहयोग प्राप्त करना था।' इस प्रकार ग्राम पंचायत का सम्बन्ध सामुदायिक विकास के साथ जुड़ गया क्योंकि सामुदायिक विकास गाँव के सामाजिक और आर्थिक जीवन में परिवर्तन लाने का माध्यम बना। इसी के द्वारा पंचवर्षीय योजना भी कार्यान्वित होने लगी।[3] इन्दिरा गांधी का प्रधानमंत्रीत्व काल (24 जनवरी, 1966 से 24 मार्च 1977) विशेष ऐतिहासिकता रखता है। इस काल में भारतीय राजनीति में तेजी से परिवर्तन हुए। उसमें उसने दो नारे दिए – 'आत्म-निर्भरता' और 'गरीबी हटाओ'।[4] केन्द्र सरकार ने पंचायतों को सशक्त बनाने में कुछ स्वागत योग्य कदम उठाए हैं। केन्द्र स्तर पर मुख्य रूप से विस्तार अधिनियम, 1999–2000 वर्ष को ग्राम सभा वर्ष घोषित करना तथा जो राज्य पंचायतों को वांछित अधिकार व शक्तियाँ प्रदान नहीं करेंगे व समयानुसार पंचायतों के चुनाव नहीं कराएंगे उनको ग्रामीण रोजगार की योजनाओं का कुल आवंटन का 20 प्रतिशत अवमुक्त नहीं किया जायेगा। ये कुछ ऐसे वित्तीय व प्रशासनिक निर्णय हैं जो राज्य स्तर के नेतृत्व व नौकरशाही को पंचायतों को मजबूत करने को कुछ हद तक बाध्य करेंगे।[5]

**राजीव** गांधी के प्रधानमंत्रीत्व काल में केन्द्रीय सरकार ने 1989 में संसद में संविधान में संशोधन के लिए 64वां संशोधन बिल प्रस्तुत किया जिसका लक्ष्य सभी राज्यों में त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना करना व शक्तियों का विकेन्द्रीकरण था। कांग्रेस के व्यापक बहुमत के कारण यह बिल लोक सभा में तो पारित हो गया परन्तु आवश्यक बहुमत के अभाव में यह राज्य सभा में पारित नहीं हो सका। राजीव गाँधी पंचायतों के अधिकार क्षेत्रों को सुनिश्चित

80 के दशक में जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की स्थापना, छठवीं पंचवर्षीय योजना में सरकार द्वारा संचालित गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु की गयी। इस संस्था के गठन के बाद जिले के ग्रामीण नियोजन एवं विकास के स्वरुप में परिवर्तन आया। इस संस्था के माध्यम से ग्रामीण विकास के अनेकों कार्यक्रम संचालित किये जा रहे थे, किन्तु इन कार्यक्रमों में आशानुकूल सफलता प्राप्त नहीं हो सकी, क्योंकि पंचायती राज संस्थाओं को सीधे अधिकार नहीं दिये गये। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण का मुख्य उद्देश्य केन्द्रीय निर्धनता निवारण कार्यक्रम को संचालित करना था। उसके बाद राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार तथा आई.आर.डी.पी. भी इसी संस्था के माध्यम से संचालित किये गये। इन कार्यक्रमों को पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से संचालित न करके, सरकारी मशीनरी द्वारा संचालित किया गया। छठी पंचवर्षीय योजना काल तथा उसके बाद के योजना काल में पंचायतों की ग्रामीण विकास में भूमिका का महत्व और बढ़ गया किन्तु गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम में जो केन्द्र सरकार द्वारा संचालित किया जा रहा था उसके वित्त पोषण व कार्यक्रम, क्रियान्वयन जिला ग्राम विकास अभिकरण के द्वारा ही किया जाता रहा। वर्ष 1992 में किये गये 73वें संविधान संशोधन से पंचायती राज संस्थायें ग्रामीण विकास के लिए महत्वपूर्ण केन्द्र बिन्दु बन गईं, क्योंकि इन संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गयी जिससे पंचायती राज संस्थाएँ सुदृढ़ तथा स्थाई हुईं। पंचायती राज संस्थाओं को अधिक शक्तिशाली (अधिकार सम्पन्न) बनाये जाने की आवश्यकता अनुभव की गयी।

❑ शोध अध्येता, समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)

करने के लिए संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़ना चाहते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने लोकसभा को सूचित करते हुए कहा कि, प्रस्तावित 11वीं अनुसूची पंचायतों को गरीबी हटाओ कार्यक्रम की भारी जिम्मेदारी सौंपना चाहती है। यह पंचायतों को शिक्षा और संस्कृति के साथ ही स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, महिला और शिशु विकास की जिम्मेवारी भी सौंपना चाहती है। हम राज्य विधान सभाओं से अनुरोध करना चाहेंगे कि वे सभी कमजोर और असमर्थ वर्गो के लिए समाज कल्याण कार्यक्रम को पंचायतों की कार्यमूलक जिम्मेवारी बना दें।[6]

**2 सितम्बर** 1990 को लोकसभा में 74वें संविधान संशोधन बिल को प्रस्तुत किया गया। इस बिल पर चर्चा आरम्भ होने से पहले ही राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का पतन हो गया तथा बाद में लोकसभा भंग हो गई। परिणाम स्वरूप बिल समाप्त हो गया।

**शोध के उद्देश्य** : प्रस्तुत शोध के मुख्य उद्देश्य निम्नवत हैं-

1. पंचायती राज के सम्बन्ध में केंद्र सरकार द्वारा किये गये प्रावधानों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।
2. ग्रामीण विकास के लिये सरकार द्वारा किये गये प्रयासों का अध्ययन करना ।

**पंचायती राज** : वर्ष 1991 में चुनाव के पश्चात श्री वी. पी. नरसिम्हा राव के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार बनी। अपने स्पष्ट बहुमत की कमी तथा देश में बन चुके वातावरण के कारण इस सरकार को सर्वमान्य कानून बनाने की आवश्यकता महसूस हुई। अतः अनेक दलों से विचार विमर्श करके नया संशोधन बिल 16 सितम्बर 1991 को लोकसभा में पेश किया गया। सदन ने गहन विचार के लिए इस बिल को संसद के 30 सदस्यों की संयुक्त समिति को सौंप दिया। संसद के दोनों सदनों तथा विभिन्न दलों के सदस्यों से गठित इस समिति के विचार तथा सुझावों के पश्चात् 22 दिसम्बर 1992 को संविधान संशोधन (73वां) बिल लगभग पूर्ण सहमति से पारित हो गया। शीघ्र ही इस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो गए तथा 20 अप्रैल 1993 को अधिसूचना जारी होने पर देश में संविधानिक रूप से स्थापित नई पंचायती राज व्यवस्था लागू हो गई। केन्द्रीय सरकार द्वारा 1993 में 73वाँ संविधान संशोधन पारित कर पंचायतों को संविधान में स्थान दिया। ग्राम सभा को गांव की विधान सभा के रूप में मान्यता देने का प्रावधान हुआ। महिलाओं, अनुसूचित जाति, जन जाति जैसे निर्बल एवं निर्धन वर्गों के लिए पंचायती राज संस्थाओं के अध्यक्ष एवं सदस्य के रूप में निश्चित प्रतिशत स्थान आरक्षित किये गये ताकि आर्थिक विकास एवं सामाजिक नीतियों में वे भी भागीदार बन सकें। ग्रामीण विकास से सम्बन्धित 29 विषयों के कार्य पंचायतों को देकर सशक्त बनाने का प्रावधान किया गया।[7]

**पी.वी.** नरसिम्हा राव की सरकार द्वारा 16 नवम्बर 1991 को 72वां संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। यह विधेयक 64वें संशोधन विधेयक की ही संशोधित प्रति थी। 22 दिसम्बर को लोकसभा तथा अगले दिन राज्यसभा ने इसे 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के रूप में पारित कर दिया। 17 राज्यों के अनुमोदन के बाद 24 अप्रैल 1993 में यह अधिनियम लागू कर दिया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान में एक नया भाग-9 जोड़ा गया। इसके द्वारा अनुच्छेद 243 में पंचायतों से संबंधित प्रावधान किए गए हैं जिसमें 1 (पंचायत से संबंधित) अनुच्छेद हैं। संविधान (73वाँ संशोधन अधिनियम) 1992 के पारित होने से एक नये युग का सूत्रपात हुआ और पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ। नवीन पंचायत राज व्यवस्था 24 अप्रैल, 1993 से लागू करते हुए राज्य विधान मण्डलों से अपने-अपने राज्यों के पंचायती राज अधिनियमों में इसे एक वर्ष के अन्दर अंगीकृत करने की अपेक्षा की गई थी। किसी राज्य द्वारा इस अवधि में ऐसा न किये जाने पर संविधान के 73वें संशोधन के प्राविधान स्वतःउस पर लागू माने जायेंगे।

**इसी** परिप्रेक्ष्य में दिलीप सिंह भूरिया समिति का गठन कर उसकी संस्तुतियों के आधार पर संसद में एक विधेयक लाया गया जो 19 दिसम्बर, 1996 की पंचायत उपबन्ध (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम 1996 के रूप में संसद द्वारा पारित कर दिया गया और 24 दिसम्बर, 1996 को राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद कानून बन गया। इस अधिनियम को देश के आठ प्रदेशों यथा आन्ध्र प्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र तथा उड़ीसा के जनजाति बाहुल्य क्षेत्रों में 24 दिसम्बर, 1997 तक अपने पंचायती राज अधिनियमों में संशोधन करके लागू किया जाना था। बिहार एवं राजस्थान को छोड़कर शेष छः राज्यों द्वारा अपने पंचायत राज अधिनियमों में निर्धारित अवधि के पूर्व ही संशोधन कर लिया गया। राजस्थान द्वारा इस प्रकार का संशोधन 30

जून, 1999 को किया गया। जनजातीय समाज सदैव सामूहिक भावना से ओत-प्रोत रहा है। इस तरह के समाज की ग्राम सभा को सशक्त करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें जनजातीय समाज के सभी सदस्यों को प्रभावित करने वाले मुद्दों के हल करने में भागीदारी सुनिश्चित होती है। विस्तार अधिनियमों की मंशा भी यही है।

**ग्रामीण विकास-** ग्रामीण विकास की संकल्पना ग्रामीण तंत्र के सर्वांगीण विकास से सम्बन्धित है। इस प्रकार उत्पादन में वृद्धि के साथ जनसंख्या की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति, स्वास्थ्य, शिक्षा, संस्कृति आदि से सम्बन्धित एवं संस्थागत सुविधाओं का प्रावधान, स्थानीय सहयोग और आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहन एवं विभिन्न सामाजिक वर्गों को विकास के तमाम अवसर उपलब्ध कराना इत्यादि इसके अवयव हैं तथा विपन्न समुदाय तक विकास की किरण पहुँचाना इसका प्रमुख उद्देश्य है।[8] आर.सी. दत्त के अनुसार, "ग्रामीण विकास का अभिप्राय सकल राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि के साथ समाज में अधिक समानता लाना है।"[9] ग्रामीण विकास का उद्देश्य ग्रामीण अर्थतंत्र का बहुमुखी विकास है जिसके लिए विशेष साधनों, जो ग्रामीणों को गरीबी से ऊपर उठाने के लिए वांछित हैं, का उचित प्रावधान आवश्यक है। इसमें न केवल कृषि उत्पादकता में वृद्धि अपितु ग्रामीण क्षेत्रों का सर्वांगीण विकास निहित है।[10]

**भारतीय** संविधान के लक्ष्यों की बुनियाद स्वाधीनता, समानता, भ्रातृत्व और सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय पर आधारित थी। संविधान ने भारत में कल्याणकारी राज्य की नींव रखी। भारत सरकार ने अनुभव किया कि देशवासियों को श्रेष्ठतर जीवन स्तर प्रदान करने के लिए आर्थिक एवं सामाजिक नियोजन की आवश्यकता है। इसके लिए केन्द्रीय सरकार ने 2 अक्टूबर 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया। 1958 ई. में भारत सरकार ने पाया कि ग्राम विकास की योजनाओं में जनता को सक्रिय भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु योजना एवं प्रशासनिक सत्ता दोनों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। समिति के अनुसार स्वशासन, स्वायत्त शासन और स्थानीय शासन की मूल धारणाओं को देश की तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। अतएव दूसरी पंचवर्षीय योजना में इस बात पर बल दिया गया कि ग्राम से लेकर जिला पंचायत स्तर तक लोकतांत्रिक शासन के लिए सुगठित संस्थाएँ होनी चाहिए। कुछ विषयों को छोड़कर संबद्ध क्षेत्र के सामान्य प्रशासन और विकास की जिम्मेदारी पंचायती राज संस्थाओं की होनी चाहिए। विकास खण्डों के लिए स्वशासित संस्थाओं, जिन्हें हम पंचायत समिति कह सकते हैं, को अधिकार और पर्याप्त साधन देना होगा। सरकार अपनी जिम्मेदारियों, अधिकारों और साधनों का एक अंश नीचे के स्तरों पर गठित लोकतांत्रिक संस्थाओं को दे। यही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण है, यही पंचायती राज है। अब शासन का केन्द्र केवल दिल्ली या राज्यों की राजधानियों में ही न होकर पंचायत समितियों में भी है। कई भागों में केन्द्र का बंट जाना विकेन्द्रीकरण है। प्रत्येक व्यक्ति को यह आभास होना चाहिए कि शासन कार्य में उसका भी कुछ न कुछ योगदान है। सरकार जो भी कार्य करे, वह पंचायत समिति के माध्यम से ही होना चाहिए। जिन विकास कार्यो की जिम्मेदारी पंचायत समितियों को सौंपने के लिए कहा गया है, उनमें ये विषय सम्मिलित किए गए हैं-कृषि, पशुपालन, सहकारिता, लघु सिंचाई के कार्यक्रम, ग्रामोद्योग, प्रारंभिक शिक्षा, स्थानीय संचार, सफाई, स्वास्थ्य और चिकित्सा, स्थानीय सुविधाएँ तथा इसी प्रकार के अन्य विषय। पंचायती राज के ढाँचे के तीन स्तर हैं-विकास-खण्ड के स्तर पर पंचायत समिति है, उसके ऊपर संपूर्ण जिले के लिए जिला परिषद और नीचे गाँव के लिए ग्राम पंचायत हैं। ये तीनों संस्थाएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं और इनमें परस्पर घनिष्ठ संबंध है। इन तीनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पंचायत समिति है। पंचायत समिति के सदस्य चुने जाएँगे। पंचायत समिति के पास अधिकारियों के दो समूह होंगे-पहला प्रखण्ड स्तर के लिए और दूसरा ग्राम स्तर के लिए। पहले समूह में एक मुख्य कार्यकारी अधिकारी होगा, शेष कृषि, सिचाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क, भवन इत्यादि विषयों से संबद्ध तकनीकी अधिकारी होंगे। मुख्य अधिकारी को प्रशासन के लिए विधिसम्मत् अधिकार होंगे।

**भारत** सरकार ने अगस्त 1978 ई. में पंचायत राज की तीन अवस्थाओं की पहचान की पहली- आरोहण की अवस्था (1959-64), दूसरी- निष्क्रियता की अवस्था (1965-69) तथा तीसरी- अवनति की अवस्था (1969-77)। पंचायती राज का ढाँचा त्रिस्तरीय के स्थान पर द्वि-स्तरीय होना चाहिए। पहला जिला स्तर पर तथा दूसरा मण्डल स्तर पर। अशोक मेहता समिति (1977-78) ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि - जिला परिषदों का गठन

प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर होना चाहिए। जिले की समस्त विकासपरक गतिविधियों को जिनका संचालन अब तक राज्य सरकार द्वारा किया जाता रहा है, जिला परिषद द्वारा किया जाना चाहिए। जिला परिषद एवं मण्डल पंचायतों पर पर्याप्त रूप से धन हस्तान्तरित किया जाना चाहिए।

**पंचायत** चुनावों में राजनीतिक दलों को भाग लेने की सुविधा होनी चाहिए। जिला अधिकारी को जिला परिषद के अधीन किया जाना चाहिए। जिला परिषद का अध्यक्ष गैर सरकारी व्यक्ति चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया जाना चाहिए। इन संस्थाओं के चुनाव समय पर अनिवार्यतः हो जाने चाहिए। चौथी पंचवर्षीय योजना के दौरान कई तरह के लक्ष्य समूहों से संबंधित विभिन्न योजनाओं हेतु नई सरकारी एजेंसियों का जिला स्तर पर सृजन किया गया और सभी को निर्वाचित जिला परिषद के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया। फलस्वरूप, पंचायती राज को ऐसे वित्तीय अनुदान से वंचित रहना पड़ा। राजनेताओं में पंचायती राज संस्थाओं को शक्तिशाली बनाने की सक्रियता नहीं थी।

**राज्य** स्तर पर तालमेल और उचित दिशा-निर्देश बेहद जरूरी है। इस स्तर पर मुख्य सचिव स्तर के अत्यंत वरिष्ठ अधिकारी को विकास आयुक्त नियुक्त कर विकास प्रशासन का प्रभारी बनाया जाना चाहिए। राज्य स्तर पर ग्राम विकास के सभी कार्यक्रमों के नियोजन, निगरानी तथा समय-समय पर मूल्यांकन की पूरी जिम्मेदारी उसी की होनी चाहिए।

**जिला** स्तर से निचले स्तर पर वैकल्पिक नमूने पर विचार किया जा सकता है। एक नमूने में खण्ड स्तर पर प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित निकाय, अर्थात पंचायत समिति होनी चाहिए, जो जिला परिषद के मार्ग निर्देशन में विकास कार्यक्रमों की योजना बनाने और उन्हें क्रियान्वित करने के लिए उत्तरदायी हो। प्रशासन संबंधी समस्याएँ अभी भी बनी हुई हैं। प्रत्येक गाँव के लिए एक ग्राम सभा होनी चाहिए, जिसमें उस गाँव के सभी सदस्य मतदाता हों। गरीबी कम करने संबंधी कार्यक्रमों जैसे एकीकृत ग्राम विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के लाभार्थियों की पहचान ग्राम सभा की बैठकों में होनी चाहिए।

**1995 में** पंचायतों को सुचारू रूप से कार्य करने हेतु उन्हे वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा पंचायतों को सीधे धन उपलब्ध कराने हेतु 11वें, 12वें तथा 13वें वित्त आयोग की सिफारिशों को लागू किया। भारत के संविधान के अनु. 280 के अनुसार वित्त आयोग से संबंधित प्रावधान किया गया है जिसके अंतर्गत इस संविधान के प्रारंभ से दो वर्ष के भीतर और उसके बाद प्रत्येक पाँच वर्ष की समाप्ति पर या उससे पूर्व समय पर भी अगर राष्ट्रपति आवश्यक समझता है, तो आदेश द्वारा वित्त आयोग का गठन करेगा जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाने वाले एक अध्यक्ष एवं चार अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा। 12वें वित्त आयोग में पेयजल योजनाओं/परिसम्पत्तियों के संचालन एवं रख-रखाव हेतु ग्राम पंचायत द्वारा जल प्रबंधन समिति के सहयोग से पेयजल सम्पत्तियों के संचालन एवं रखरखाव की व्यवस्था करना तथा उसकी मासिक समीक्षा। पंचायत स्तर पर पेयजल योजनाओं के संचालन एवं रखरखाव से संबंधित आय एवं व्यय को लेखा अभिलेखों में दर्ज करना। वर्ष में एक बार समस्त परिसम्पत्तियों का सुरक्षात्मक रख-रखाव (प्रीवेंटिव मेंटीनेंस) करना। प्रत्येक तीन माह में पेयजल की गुणवत्ता का एच 2. एस. से परीक्षण करना। क्लोरीनेशन करना। भारी टूट- फूट को ग्राम पंचायत के माध्यम से तत्काल ठीक करना। उक्त ग्राम रख-रखाव कार्यकर्ता को जनपद स्तर पर स्वजल धारा कार्यक्रम के अंतर्गत प्रशिक्षित किया जाएगा। ग्राम पंचायतें अपने नियंत्रणाधीन पेयजल योजनाओं/परिसम्पत्तियों का संचालन एवं रख-रखाव करेंगी तथा इस हेतु उन्हें रिकरिंग कास्ट का 50 प्रतिशत उपभोक्ताओं से शुल्क के रूप में वसूल करना अनिवार्य होगा। संयुक्त प्रान्त पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 3 (ज) में जल शुल्क के आरोपण की व्यवस्था है।

**जुलाई** से दिसंबर 2004 के बीच पंचायती राज से जुड़े विभिन्न मामलों पर देश के अलग-अलग भागों में सात गोलमेज सम्मेलन आयोजित किए गए। इन सम्मेलनों में कामों के बंटवारे, पंचायती राज संस्थानों को मिलने वाले अनुदान एवं कर्मचारियों, नीचे से ऊपर की दिशा में केंद्रित नियोजन प्रक्रिया, जिला नियोजन समितियों के कामकाज (संवैधानिक आदेश के अनुसार), पेसा कानून (अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायत व्यवस्था का विस्तार) के प्रभावी क्रियान्वयन, महिलाओं व अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति उम्मीदवारों के लिए आरक्षण, ग्रामीण व्यावसायिक केंद्रों की स्थापना, न्यायाधिकरण क्षेत्र, विकेंद्रीकरण सूचकांक, चुनाव, ऑडिट, ई-गवर्नेंस और क्षमता निर्माण जैसे मुद्दों

पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया। इन राउंड टेबल सम्मेलनों में सभी राज्य सरकारों और केंद्रशासित प्रदेशों के पंचायती राज मंत्रालयों/विभागों के मंत्रियों एवं वरिष्ठ पदाधिकारियों ने हिस्सा लिया।

**गाँधी** जयन्ती के मौके पर प्रधानमंत्री ने महात्मा गाँधी को श्रद्धांजलि देते हुए नरेगा का नाम महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम करने की घोषणा की। उन्होने बताया कि इसका फैसला 1 अक्टूबर 2009 को ही कैबिनेट ने लिया था।

**2005-09** ई. से इंदिरा आवास योजना (आईएवाई) भारत निर्माण के प्रथम चरण में 80 लाख आवासों का निर्माण करने के लक्ष्य की तुलना में 71 लाख आवासों का निर्माण किया गया है। अब चरण-प्रथम के लक्ष्य को दोगुणा करने तथा वर्तमान वर्ष 2009-10 से शुरू होने वाले चरण-द्वितीय की अगले पाँच वर्षों की अवधि के दौरान 120 लाख आवासों का निर्माण करने का प्रस्ताव है।

**ग्रामीण** पेयजल आपूर्ति के संबंध में उन्होंने कहा कि इस वर्ष से राज्यों के आवंटन में वृद्धि करके उन्हें बढ़ावा दिया गया है ताकि वे पेयजल योजनाओं को चलाने और बनाए रखने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित कर सकें। संशोधित राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम (एनआरडीडब्ल्यूपी) को इस प्रकार से बनाया गया है कि ग्रामीण जल आपूर्ति के सभी पहलुओं का समाधान किया जा सके। संपूर्ण स्वच्छता अभियान (टीएससी) के अंतर्गत 38 लाख व्यक्तिगत शौचालयों के लक्ष्य की तुलना में अप्रैल-अगस्त 2009 की अवधि में 41.75 लाख व्यक्तिगत पारिवारिक शौचालयों का निर्माण किया गया है।[11]

**केन्द्र सरकार** ने पंचायतीराज संस्थाओं की मजबूती की दिशा में तीन महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। प्रधानमंत्री ने घोषणा की है कि 2009-10 को ग्राम सभा वर्ष के रूप में मनाया जाएगा। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (नरेगा) में पंचायतीराज संस्थाओं की भूमिका बढ़ाई जाएगी। प्रधानमंत्री ने उपरोक्त घोषणाएँ देश में पंचायती राज के 50 वर्ष पूरे होने के सिलसिले में 2 अक्टूबर को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित राष्ट्रीय सम्मलेन में की। प्रधानमंत्री ने कहा कि नरेगा में पंचायती राज संस्थाओं ने बेहतर काम किया है और उनका इस्तेमाल दूसरी सरकारी योजनाओं में भी किया जा सकता है। सम्मेलन में पूरे देश से ऐसे सरपंच और ग्राम प्रधान बुलाए गए जो 20-25 साल से लगातार चुने जाते रहे हैं।

**न्याय पंचायत विधेयक, 2010** - वर्तमान न्याय प्रणाली, लम्बी चलने वाली प्रक्रियाओं से लदी हुई तकनीकी और मुश्किल से समझ में आने वाली हैं, जिससे निर्धन लोग अपनी शिकायतों के निवारण के लिए कानूनी प्रक्रिया का सहारा नहीं ले पाते। इस प्रकार की दिक्कतों को दूर करने के लिए मंत्रालय ने न्याय पंचायत विधेयक लाने का प्रस्ताव किया है। प्रस्तावित न्याय पंचायतें न्याय की अधिक जनोन्मुखी और सहभागीय प्रणाली सुनिश्चित करेंगी, जिनमें मध्यस्थता, मेल मिलाप और समझौते की अधिक गुंजाइश होगी। भौगोलिक और मनोवैज्ञानिक रूप से लोगों के अधिक नजदीक होने के कारण न्याय पंचायतें एक आदर्श मंच संस्थाएँ साबित होंगी, जिससे दोनों पक्षों और गवाहों के समय की बचत होगी, परेशानियाँ कम होंगी और खर्च कम होगा। इससे न्यायपालिका पर काम का बोझ भी कम होगा।

**पंचायत महिला शक्ति अभियान :** यह निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के आत्मविश्वास और क्षमता को बढ़ाने की योजना है, ताकि वे उन संस्थागत समाज संबंधी और राजनैतिक दबावों से ऊपर उठकर काम कर सकें, जो उन्हें ग्रामीण स्थानीय स्वशासन में सक्रियता से भाग लेने से रोकते हैं। बाईस राज्यों में कोर समितियाँ गठित की जा चुकी हैं और राज्य स्तरीय सम्मेलन हो चुके हैं। योजना के अंतर्गत 9 राज्य समर्थन केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी है। ये राज्य हैं- आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गोवा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, सिक्किम, केरल, पश्चिम बंगाल और अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह। योजना के अंतर्गत 11 राज्यों में प्रशिक्षण के महत्व के बारे में जागरूकता लाने के कार्यक्रम हो चुके हैं। ये राज्य हैं- आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गोवा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, सिक्किम, केरल, पश्चिम बंगाल और अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह। संभागीय स्तर के 47 सम्मेलन आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गोवा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, सिक्किम, केरल, पश्चिम बंगाल और अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में आयोजित किए गए हैं। गोवा और सिक्किम में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों और निर्वाचित युवा प्रतिनिधियों के राज्य स्तरीय संघ गठित किए जा चुके हैं। स्थानीय शासन में महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटों का आरक्षण संविधान का हिस्सा बना, महिला सशक्तीकरण को नए

मायने मिले हैं। महिला पंचायत सदस्य भारतीय लोकतंत्र की रीढ़ हैं। आज 2.4 लाख पंचायतें लगभग 2,000 ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का कार्यान्वयन कर रही हैं तथा इससे हमारे विकास तथा ग्रामीण विकास में वृद्धि हो रही है।[12]

**महिलाओं** के लिए आरक्षण के सम्बन्ध में यह सही है कि महिलाएं अपने प्रतिनिधित्व को संविधान में निर्धारित न्यूनतम 33 प्रतिशत से अधिक करनें में सक्षम रही हैं। कर्नाटक में 45 प्रतिशत निर्वाचित पद महिलाओं के पास हैं और उत्तर प्रदेश में 54 प्रतिशत जिला पंचायतों की अध्यक्ष महिलाएं हैं। इसी प्रकार, तमिलनाडु में भी ग्राम पंचायतों के अध्यक्षों की 36 प्रतिशत सीटें महिलाओं के पास हैं।[13]

**अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण :** अनुच्छेद 243 घ में प्रत्येक पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए सीटों को आरक्षित रखे जाने का प्रावधान है। सामान्यतः राज्य, अनुच्छेद 243 घ के प्रावधानों का भली-भांति पालन करते थे, उन राज्यों में कठिनाई उत्पन्न हुई जहां अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या बहुत कम है। गोल-मेज सम्मेलन से यह सिद्ध हो गया है कि राज्यों के आपसी अनुभव, इस समस्या के समाधान की दिशा में काफी उपयोगी हैं। राज्यों के बीच ऐसे व्यवहारों और अनुभवों के आदान-प्रदान को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।[14]

**राजनीतिक दलों में बदलाव** – 73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायती राज व्यवस्था के स्तर पर राजनीतिक दलों की भूमिका में बदलाव आया है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ग्रामीण स्तर पर राजनीतिकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई है। अब यह और अधिक आवश्यक हो गया है कि राजनीतिक दल अपनी भूमिका का निर्वहन अधिक जिम्मेदारी के साथ निभायें। लोकतंत्र के इस आधारभूत स्तर पर राजनीतिक दल प्रपंच की राजनीति या सत्ता प्राप्ति हेतु नैतिक/अनैतिक जोड़तोड़ की राजनीति से बचें। जाति, वर्ग, धर्म आदि के आधार पर नहीं बल्कि कार्यों, नीतियों एवं योग्यता के आधार पर पंचायत राजनीति का स्वरूप निर्धारित होना चाहिए।

**पंचायती राज मंत्रालय योजनाएँ** – संयुक्त राष्ट्र के 191 सदस्य राज्यों ने 2000 में मिलकर 2015 के निम्न आठ लक्ष्यों की शपथ ली। यथा, अति गरीबी और भुखमरी की समाप्ति, सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की प्राप्ति, लिंग समानता और महिला सशक्तीकरण को प्रोत्साहन, बाल मृत्युदर में कमी, मातृ स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार, मलेरिया और अन्य बीमारियों पर नियंत्रण, पर्यावरण की सांतत्यता एवं साझा प्रयासों और सहयोग हेतु वैश्विक गठबंधन का विकास। इसके साथ ही शुद्ध पेयजल, स्वच्छता, बच्चों और माताओं हेतु पोषक आहार, पक्का मकान, शालाएं, खेलने का मैदान और शिक्षक, भवन, उपकरण, दवाइयां डाक्टरों, दाइयों तथा सहायकों सहित डिस्पेन्सरी/अस्पताल, स्वरोजगार हेतु ऋण, स्व-रोजगार एवं व्यापार हेतु प्रशिक्षण, सड़क, बिजली, कृषि और सिंचाई, बाजार आदि पर पंचायती राज के अन्तर्गत ध्यान दिया गया।[15]

**सूचना** का अधिकार -यू.पी.ए. प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने आर.टी.आई. जैसा महत्वपूर्ण कानून बनाकर समाज को यह अवसर प्रदान किया कि वे कोई भी सूचना प्राप्त कर सकते हैं। पहले यह सुविधा केवल सांसदों और विधायकों को ही प्राप्त थी।

**वर्ष** 2009-10 को 'ग्राम सभा वर्ष' के रूप में मनाया गया। वित्तीय वर्ष 2009-10 की पहली तिमाही में नरेगा का वास्तविक और वित्तीय निष्पादन 2.53 करोड़ परिवारों को कार्य उपलब्ध कराया गया है और 87.09 करोड़ जन-दिवस का सृजन किया गया। वित्तीय वर्ष 2008-09 में महिला भागीदारी 48 प्रतिशत थी, जो वित्तीय वर्ष 2009-10 में बढ़कर 52 प्रतिशत हो गई है। नरेगा के बाद पिछले तीन वर्षों में न्यूनतम मजदूरी में संशोधन हुआ और दैनिक मजदूरी दर 75 रुपए से बढ़कर 87 रुपए हो गई। अभी तक 7.33 करोड़ नरेगा बैंक और डाकघर खाते खोल गए हैं।[16]

## भारत सरकार द्वारा संचालित प्रमुख रोजगार योजनाएँ

| प्रमुख रोजगार योजनाएँ | प्रारम्भ होने का वर्ष | प्रमुख उद्देश्य |
|---|---|---|
| रूरल मैनपावर | 1960-1961 | न्यूनतम मजदूरी के आधार पर सार्वजनिक कार्यक्रमों में लोगों को रोजगार दिया जाना। |
| क्रेश स्कीम फॉर रूरल एम्प्लॉयमेंट | 1971-1972 | ग्रामीणों को रोजगार दिया जाना। |
| नमूना सघन ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम | 1972 | न्यूनतम मजदूरी के आधार पर सार्वजनिक कार्यक्रमों में ग्रामीणों को रोजगार प्रदान करना। |
| काम के बदले भोजन योजना | 1977 | दिहाड़ी शारीरिक श्रम पर आश्रित गरीबों को बेहतर रोजगार सुरक्षा उपलब्ध कराना |
| राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम | 1980 | ग्रामीणों को रोजगार प्रदान करना |
| ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम | 1980 | ग्रामीण भूमिहीनों को रोजगार प्रदान करना। |
| जवाहर रोजगार योजना | 1993-94 | ग्रामीण अवरचनागत क्षेत्रों में रोजगार प्रदान करना। |
| जवाहर ग्राम समृद्धि योजना | 1999-2000 | ग्रामीणों को बेहतर रोजगार सुरक्षा उपलब्ध कराना। |
| स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना | 1997 | शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारों को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना। |
| स्वर्ण जयन्ती ग्राम रोजगार योजना | 1999 | ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लोगों को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से स्वरोजगार प्रदान करना |
| प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना | 25 दिसम्बर, 2000 | वर्ष 2007 तक 500 तक की आबादी के सभी गाँवों को मुख्य सड़कों से जोड़ते हुए गाँवों में मजदूरी परक रोजगार उपलब्ध कराना। |
| जयप्रकाश रोजगार गारण्टी योजना | फरवरी, 2001 | देश के सर्वाधिक जनपदों में बेरोजगारों को सुनिश्चित रोजगार प्रदान करना। |
| सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना | 2001 | ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार लोगों को अतिरिक्तरोजगार के साथ खाद्य सुरक्षा प्रदान कर ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिसम्पत्तियों का सृजन करना। |
| काम के बदले अनाज नवम्बर, | 2004 | प्रत्येक कार्य दिवस के लिए 5 किलोग्राम अनाज प्रतिदिन दिया जाता है। |
| राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना, | 2005 | 2 फरवरी, 2006 रोजगार के इच्छुक एवं पात्र व्यक्तियों द्वारा पंजीकरण कराने के 15 दिन के भीतर रोजगार न दिये जाने पर न्यूनतम मजदूरी दर से बेरोजगारी भत्ता सरकार द्वारा प्रदान किया जायेगा। |
| मैला ढोने वालों हेतु स्वरोजगार योजना | दिसम्बर, 2006 | इस योजना में विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में मैला ढोने वाले लोगों हेतु आवश्यक वित्तीय सुविधाएँ तथा कौशल प्रदान कर उन्हें स्वरोजगार में सीमित करना है। |
| स्किल डेवलपमटें मिशन योजना | दिसम्बर, 2006 | इस योजना के अन्तर्गत नये औद्योगिक माहौल के अनुरूप कम पढ़े-लिखे लोगों एवं डिग्रीधारी वयस्कों को नए-नए कौशलों का प्रशिक्षण प्रदान कर उन्हें स्वरोजगार में शामिल करने योग्य बनाना है। |
| ग्राम बाजार योजना | नवंबर, 2006 | इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण बेरोजगारी और गरीबी को दूर करने हेतु ग्रामवासियों के जीवन-स्तर को बढ़ाना है। |
| प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम | 15 अगस्त, 2008 | इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में 'माइक्रो एण्टरप्राइजेज' के माध्यम से रोजगार के नये अवसर उपलब्ध कराना है। |

**स्वर्ण** जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना एवं स्वयं सहायता समूहों की सफलता सदस्यों में आपसी मेलजोल एक दूसरे की सहायता करना तथा बाहरी समुदाय से तालमेल बनाए रखने पर निर्भर करती है। अतः चाहे वह कोई वित्तीय परियोजना हो अथवा स्वयं सहायता समूहों की अपनी निरन्तरता हो इनके मूल में जनसहभागिता की भावना का विकास है।[17]

**नया** राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन प्रारम्भ आवास तथा शहरी गरीबी उन्मूलन मन्त्रालय ने राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (एनयूएलएम) प्रारम्भ करने की योजना बनाई है जो 12वीं पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ होने पर वर्तमान स्वर्ण शहरी रोजगार योजना का स्थान लेगी। एनयूएलएम विशेषकर कौशल उन्नयन, उद्यमशीलता विकास तथा रोजगार सृजन जैसे शहरी गरीबी से सम्बन्धित मुद्दों पर अपना ध्यान केन्द्रित करेगी। इसके अन्तर्गत सेवा केन्द्र या आधार केन्द्र की स्थापना की जाएगी, जो अनौपचारिक क्षेत्र से सेवाएँ तलाशने वालों के साथ-साथ शहरी गरीबों के लिए उनकी सेवाओं एवं उत्पादों को बढ़ावा देने तथा रोजगार एवं प्रशिक्षण से सम्बन्धित जानकारी के लिए 'एक जगह पर सब कुछ' की अवधारणा के साथ कार्य करेगा। ये आधार केन्द्र सूचना, सुविधा एवं परामर्श केन्द्र के रूप में भी कार्य करेंगे। पंचायती राज संस्थाओं (पी.आर.आई.) की प्रमुख भूमिका को देखते हुए, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन में पंचायतों और गरीबों की संस्थाओं के बीच परस्पर लाभदायक कामकाजी संबंधों, परामर्शों और संसाधनों में साझेदारी की औपचारिक व्यवस्था तैयार करने का समर्थन किया गया है। ग्यारहवीं योजना में भारत सरकार द्वारा सभी रोजगारपरक योजनाओं के लिए कुल बजटीय आवंटन 291682 करोड़ था, जो कुल केंद्रीय बजट योजना प्रावधान का 25 प्रतिशत था।[18]

**मनरेगा** – महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (मनरेगा) में संशोधन के लिए गठित शिशिर शाह की अध्यक्षता वाली समिति की सिफारिशों के आधार पर संशोधित मनरेगा योजना 22 फरवरी, 2012 को जारी करते हुए ग्रामीण विकास मंत्री जयराम रमेश ने इसे मनरेगा-2 से सम्बोधित किया। केन्द्र सरकार ने संशोधित मनरेगा योजना में तीस नए कार्यों को शामिल किया है, जिसमें 27 कार्य कृषि से जुड़े हुए हैं। सरकार ने गरीबों के लिए इंदिरा आवास योजना (आईएवाई) के माध्यम से बनाए जाने वाले मकानों का निर्माण भी मनरेगा के माध्यम से किए जाने को स्वीकृति दी। मनरेगा के अन्तर्गत मजदूर अब खेती, बागवानी एवं पशुपालन के काम भी कर सकेंगे। नक्सल प्रभावित जिलों में स्वच्छता अभियान के अंतर्गत शौचालय बनाने की योजना को भी मनरेगा में सम्मिलित किया गया है। भारत सरकार की विभिन्न रोजगारपरक योजनाओं में महात्मा गांधी नरेगा ने अपने सात वर्ष पूर्ण किए हैं किंतु इसकी उपलब्धियों और प्रभाव ने देश के समकालीन सामाजिक और आर्थिक इतिहास में अपनी अहम जगह बना ली है। इसने लाखों गरीब ग्रामीणों को कार्य के अधिकार की गारंटी देकर अभूतपूर्व सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराई है, परिणामस्वरूप नकदी का अंतरण और टिकाऊ स्वरूप की परिसंपत्तियों का सृजन हुआ है, जल संरक्षण के द्वारा भूमि की पैदावार बढ़ी है और प्राकृतिक संसाधन आधार का प्राकृतिक पुनर्सृजन हुआ है जो इस कार्यक्रम की सबसे खास बात रही है। हाल की आर्थिक मंदी और सूखे को देखते हुए महात्मा गांधी नरेगा मजदूरों तथा छोटे एवं मझौले किसानों के लिए जीवन रक्षक साबित हुई है जो अन्यथा सीमित आर्थिक अवसरों के कारण गंभीर रूप से और बुरी तरह प्रभावित हुए होते।[19]

**मजदूरी** रोजगार कार्यक्रम के रूप में एन.आर.ई.जी.ए. का यह भी प्रयास है कि इससे ग्राम स्तर पर कुंओं, टैंकों, तालाबों, सड़कों इत्यादि जैसी उत्पादनशील परिसंपत्तियों का सृजन हो। इससे हमारे प्राकृतिक संसाधन आधार को पुनः सृजित किया जा सकेगा जिससे हमारी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था सुदृढ़ हो सकेगी।

**मनरेगा** ने कृषक मजदूरों की सौदेबाजी की क्षमता को सफलतापूर्वक बढ़ाया है, जिससे कृषि सम्बन्धी मजदूरी बढ़ी है तथा आर्थिक परिणामों में सुधार आया है। इस अधिनियम का उद्देश्य देश के ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आजीविका सुरक्षा को पुष्ट करने के लिए एक वित्तीय वर्ष में ऐसे प्रत्येक परिवार को कम-से-कम 100 दिन का गारंटीयुक्त मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराना है जिसके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक कार्य करने को स्वेच्छा से तैयार हों।[20] पंचायती राज से लोकतंत्र का आधार सुदृढ होता है और शासन में पारदर्शिता तथा जवाबदेही आती है।[21]

**स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एसजीएसवाई) :** गरीबों के स्व-रोजगार के लिए स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एसजीएसवाई)/राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन

(एनआरएलएम) देश के सभी जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में काम कर रहा एक महत्वपूर्ण गरीबी-शमन कार्यक्रम है। एसजीएसवाई का एक विशिष्ट उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) के सहायित परिवारों को, सरकारी सहायता (सब्सिडी) तथा बैंक उधार के द्वारा आय सृजन वाली परिसम्पतियों के माध्यम से, उनकी आय में एक समय अवधि में उल्लेखनीय वृद्धि सुनिश्चित करके गरीबी रेखा से ऊपर लाना है। कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में गरीबों की योग्यता और प्रत्येक क्षेत्र की संभावना के आधार पर माइक्रो-उद्यम स्थापित करना है। **इसका** लक्ष्य ग्रामीण जनता को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाना एवं बेरोजगारी से उन्हें मुक्ति दिलाना था। किन्तु यह हमारा दुर्भाग्य या विडम्बना ही है, कि हमें इन योजनाओं से आशातीत सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। हम हमारे ग्रामवासियों को वे सामान्य सुविधाएं, जैसे-सड़क, बिजली, शुद्ध पेयजल जैसी समस्याओं के समाधान में पूर्णतया सफल नहीं हो सके। अभी तक हम हमारे ग्रामवासियों को वैज्ञानिक, तकनीकी एवं औद्योगिक समृद्धि का समुचित लाभ नहीं पहुँचा सके।[23]

**ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों की असफलता के कारण**

**ग्राम** पंचायतों में प्राकृतिक संसाधन एवं श्रमशक्ति होने के उपरान्त भी लक्ष्य के अनुरूप विकास नहीं हो पाया है जिसके मुख्य कारण निम्नवत हैं-

1. ग्राम पंचायतों में भारत सरकार एवं प्रदेश सरकार द्वारा संचालित ग्रामीण विकास की योजनाओं की जानकारी से ग्रामीण अनभिज्ञ हैं।
2. ग्राम पंचायतों के कामकाज का सुलभ संचालन करने हेतु ग्राम पंचायतों के सरपंच, उपसरपंच के पास पर्याप्त अधिकार एवं शक्ति का अभाव मुख्य कारण है।
3. गरीबी और अशिक्षा ऐसे कारण हैं जो सम्पूर्ण ग्रामीण-विकास को अवरूद्ध किये हुए हैं।
4. ग्रामीण स्तर पर असन्तुलन का कारण कुशल संचालन का अभाव है।
5. लोगों की शहरों की ओर पलायन की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है।

**सुझाव**

1. ग्रामीण-विकास आज आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है क्योंकि आजादी के 67 वर्ष बाद भी हमारे गांव उपेक्षित से हैं। उनकी समृद्धि हेतु गरीबों के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के ढाँचे एवं एक सशक्त ग्रामीण-विकास नीति की आवश्यकता है।
2. पूर्ण रोजगार एवं अधिक आय के साधनों को ग्रामों में ही उपलब्ध कराये जाने की आवश्यकता है।
3. ग्रामीण विकास के लिए पंचायतों का कुशल संचालन अत्यावश्यक है।
4. जाति, वर्ग, धर्म आदि के आधार पर नहीं बल्कि कार्यों, नीतियों एवं योग्यता के आधार पर पंचायत राजनीति का स्वरूप निर्धारित होना चाहिए।

**निष्कर्ष** : अतः कहा जा सकता है कि केन्द्र सरकार ने ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज संस्थाओं के लिये महत्वपूर्ण कार्य किये हैं साथ ही साथ अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सैंकड़ों योजनाओं और कार्यक्रमों को बनाये हैं। इसके अलावा इस क्षेत्र में सफलता भी प्राप्त की है, आज भारत के ग्रामीण परिवेश में लोग सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, विकासात्मक, प्रशासनिक, भौगोलिक इत्यादि रूप से सशक्त हो रहें हैं साथ ही केन्द्र सरकार ग्रामीण मंत्रालय व अन्य सहयोगी मंत्रालयों व विभागों का बहुत बड़ा योगदान है। वहीं दूसरी तरफ ग्रामीण परिवेश की निरन्तर नई जरूरतों को ध्यान में रखकर केन्द्र सरकार लगभग प्रति माह ग्रामीण विकास को समर्पित कार्यक्रम व योजना ला रही है, परन्तु आज भी ग्रामीण भारत अपने उस स्थान को नहीं पा रहा है जो आजादी के इतने सालों के बाद तक पा लेना चाहिए था। लेकिन संतोष की बात यह है कि भारत में निरन्तर तकनीकी विकास, नवाचार विचारों का प्रभाव भारतीय प्रशासन पर पड़ रहा है जिसका परिणाम निकट भविष्य में यह होगा कि ग्रामीण विकास की दिशा में जिला प्रशासन पारदर्शी व जवाबदेही सुशासन में परिवर्तित होकर ग्रामीण भारत के ठोस विकास को सुनिश्चित करेगा तब जाकर गांधी जी के सपनों के भारत का निर्माण हो सकेगा।

## सन्दर्भ


1. बर्थवाल, चन्द्र प्रकाश, 'स्थानीय स्वशासन', सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 1999, पृ. 175, 176.
2. दुबे, अवध नारायण, 'नयी पंचायती राज व्यवस्था', मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, 2002, पृ. 28,29,33.
3. सिंह, वी.पी., 'ग्राम पंचायतों में जन-सहभागिता', विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, 1992, पृ. 6,7.
4. अग्रवाल, मीना, 'राष्ट्रीय जीवनी माला - इन्दिरा गांधी', डायमंड बुक्स, दिल्ली, 2007, पृ. 35-36.
5. महीपाल, 'पंचायती राज चुनौतियां एवं संभावनाएं', नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2008, पृ. 130-131.
6. मारले, जी एण्ड लाल मोहन, 'राजीव गाँधी एण्ड पंचायती राज', कोणार्क पब्लिशर्स, दिल्ली, 1994, पृ. 135.
7. देसाई, आई.पी. एण्ड चौधरी, 'हिस्ट्री ऑफ रूरल डवलपमेंट इन मार्डर्न इण्डिया', वा. 2, दिल्ली, 1977 पृ. 183-189.
8. दत्त, आर.सी., 'ग्रामीण विकास, कुछ विचार', योजना, वर्ष 34, अंक 12 एवं 13, 1990, पृ. 7-10.
9. सिंह, दीनानाथ एवं सिंह, कृष्ण कुमार, 'ग्राम्य क्षेत्रीय विकास एवं नियोजन, रूरल इन्टिग्रेशन', अंक 4, सं. 7-8, 1985, पृ. 1-16.
10. ग्रामीण भारत, 'ग्रामीण विकास मंत्रालय', खण्ड 8, अंक 64, अक्टूबर 2009, पृ. 5.
11. पंचायतीराज अपडेट, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मई, नई दिल्ली.2009.
12. राजेश टंडन, 'पंचायती राज के प्रभारी मंत्रियों के सात गोलमेज सम्मेलनों के प्रस्तावों का संकलन', पंचायती राज मंत्रालय भारत सरकार, संकलन प्रिया, पृ. 16
13. पंचायती राज के प्रभारी मंत्रियों का तीसरा गोलमेज सम्मेलन, रायपुर 23-24 सितम्बर, 2004.
14. पंचायतीराज मंत्रालय भारत सरकार, 14-10-2007, की चर्चा.
15. ग्रामीण भारत, ग्रामीण विकास मंत्रालय, खण्ड 8, अंक 64, अक्टूबर 2009, पृ. 6.
16. प्रेम नारायण शर्मा एवं अन्य, 'महिला सशक्तिकरण एवं समग्र विकास', सोशल एक्शन 2008, पृ. 61-62.
17. बारहवीं पंचवर्षीय योजना, ग्रामीण विकास, 2018 पृ. 290.
18. ग्रामीण भारत, ग्रामीण विकास मंत्रालय, खण्ड 8, अंक 68, फरवरी 2010, पृ. 1-6.
19. महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 प्रतिवेदन 2 फरवरी 2012 ग्रामीण विकास मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, भारत सरकार नई दिल्ली, पृ. 3.
20. वही, पृ. 3.
21. मंजरी अवस्थी, 'भारत में ग्रामीण विकास की अवधारणाः उद्देश्य एवं प्रयास भारत में ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या का वितरण', रिसर्च जर्नल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस, अंक 14, वर्ष 7, जून, 2013., पृ. 9.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# झारखण्ड राज्य में कौशल विकास कार्यक्रम का प्रभाव–एक अध्ययन

❑ अखिलेश कुमार सिंह
❖ डॉ0 ज्योति प्रकाश

वर्तमान समय में झारखण्ड ही नहीं बल्कि पूरे देश में बेरोजगारी ज्वलंत मुद्दा है। ऐसे में बेरोजगारी दूर करने के लिए कौशल विकास कार्यक्रम की भूमिका बढ़ जाती है। बढ़ती हुई जनसंख्या में पूर्ण रोजगार की परिकल्पना कर पाना कठिन है, इस परिस्थिति में मानव शक्ति जो कार्यकुशल नहीं है, उसे कार्य कुशल बनाकर रोजगार योग्य बनाना अतिआवश्यक है। झारखण्ड कौशल विकास मिशन सोसाईटी का गठन झारखण्ड सरकार द्वारा दिनांक 08.08.2013 को किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य है बेरोजगार युवाओं को कौशल विकास प्रशिक्षण देकर रोजगार योग्य बनाना। भारत सरकार द्वारा मेक-इन-इंडिया की सफलता तथा झारखण्ड के बेरोजगार युवाओं को रोजगार उपलब्ध कराने हेतु राज्य में कौशल विकास योजना को तेजी से बढ़ाने के लिए सघन रणनीति तैयार की गयी है तथा वर्ष 2021 तक 20 लाख लोगो को कौशल विकास प्रशिक्षण देने का लक्ष्य रखा गया है। झारखण्ड में कौशल विकास कार्यक्रम के संस्थागत सुधार से प्रशिक्षण में विश्वसनीयता आयेगी जिससे कौशल के क्षेत्र में निजी निवेश बढ़ेगा तथा प्रशिक्षणार्थी भी इसमें भागीदार बनेंगे। इससे कौशल विकास प्रशिक्षण को बढ़ावा मिलेगा और कुशल श्रमशक्ति की उपलब्धता में इजाफा होने से झारखण्ड भारत में कौशल का केन्द्र बिन्दु बन सकेगा।

**बेरोजगारी** की समस्या का एक मात्र कारण जनसंख्या वृद्धि को माना जा सकता है। जिस दर से जनसंख्या की वृद्धि हो रही है, उस दर से रोजगार की सुविधाओं का सृजन न होना एक चिन्तनीय विषय है। भारत में जनसंख्या 2.5 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रही है। जिसके लिए प्रतिवर्ष 50 लाख व्यक्तियों को रोजगार देने की आवश्यकता पड़ती है, जबकी मात्र 5 से 6 लाख लोगों को रोजगार मिल पाता है।

**आबादी** की वृद्धि से संबद्ध विकासात्मक समस्याओं का निवारण प्रवसन से संभव नहीं है। संसाधनों एवं भूमि की निम्न आपूर्ति के सम्मुख आबादी में होने वाली बढ़ोत्तरी से केवल निराशाजनक परिणामों की ही प्राप्ति होगी, क्योंकि इसका मुख्य कारण है : अधिक पूंजी, बेहतर रूप से प्रशिक्षित श्रमिक और नवीन प्रौद्योगिकी जैसी अन्य आवश्यकताओं का अभाव। पूंजी निर्माण की जो दर विद्यमान है उसके अनुरूप श्रम बल में जिस दर पर बढ़ोतरी हो सकती है वह नही हो पाई है।[1]

**12वीं** पंचवर्षीय योजना में विनिर्माण क्षेत्र को विकास का महत्वपूर्ण माध्यम बनाने पर विशेष जोर देने की बात की गई जिससे वर्ष 2022 तक एक सौ मिलियन रोजगार का अवसर पैदा किया जा सके। योजना में कहा गया कि श्रम- प्रधान- विनिमार्ण -क्षेत्र जैसे टेक्सटाईल एवं कपड़े, चमड़ा व फुट वियर, रत्न व जवाहरात, खाद्य संसाधन इत्यादि उद्योगों में रोजगार के व्यापाक अवसर पैदा किये जा सकते है।[2]

**वर्त्तमान** में भारत जनसांख्यिकीय लाभांश की स्थिति का आनंद ले रहा है, इसका कारण यह है कि जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत से ज्यादा Working Age के अंतर्गत आता है। ऐसा अनुमान है कि वर्ष 2020 तक भारत वर्ष का औसत Working Age लगभग 37 वर्ष का हो जायेगा जहां दूसरी ओर युरोप एवं जापान में क्रमशः 45 एवं 48 वर्ष है। इस Working Age Group को रोजगार मुहैया कराना एवं रोजगार प्राप्त करने के लिए सक्षम बनाना, विशेषकर जब भारतीय अर्थव्यवस्था में अनौपचारिक एवं असंगठित क्षेत्र में व्याप्त समस्याओं का सामना कर रहा है, सरकार के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। हम जानते है कि मांग एवं पूर्ति दो ऐसे मुद्दे हैं जो आजीविका के अवसर को प्रभावित करती है। एक ओर भारत रोजगार के अवसर को सृजन करने में जहां पिछड़ रहा है वहीं दूसरी ओर रोजगार को प्राप्त करने के लिए इच्छुक कामगार, क्षमता (Skill) जो कि Job Market के लिए जरूरी है के दृष्टिकोण से पिछड़ जा रहे

❑ शोध अध्येता, अर्थशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)
❖ सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)

हैं। अर्थात रोजगार सृजन का पूर्ति पक्ष (Supply Side) के रूप में देखा जा सकता हैं एवं Skill को मांग (Demand) पक्ष में देखा जा सकता है। इस मांग पक्ष एवं पूर्ति पक्ष का अवलोकन करने पर वर्तमान में ऐसा अनुभव हो रहा है कि एक ओर रोजगार के अवसर का सृजन नहीं हो रहा है वहीं दूसरी ओर रोजगार- परक- क्षमता का सृजन दर (Employability) भी कम हो रहा है।

**कौशल** विकास योजना का सामान्य अर्थ युवाओं में रोजगार सृजन के लिए क्षमता (System Capacity) और सक्षमता (capability) का निर्माण एवं वृद्धि करना है, जिसे गुणवत्तापूर्ण कौशल विकास प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक ज्ञान द्वारा पूर्ण किया जा सकता है।

**प्रधानमंत्री** कौशल विकास योजना (PMKBY) जो कि भारत की एक सर्वोत्कृष्ट योजना है, जुलाई 2015 में शुरू की गई। इस योजना के तहत 2020 तक एक करोड़ युवाओं को प्रशिक्षण दिने की योजना बनाई गयी है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य देश में युवा वर्ग को संगठित कर उनके कौशल को निखार कर उनकी योग्यता अनुसार रोजगार देना है। इस योजना के अंतर्गत पहले वर्ष में 24 लाख युवाओं को सम्मिलित करने की योजना बनाई गई है। इसके बाद 2022 तक यह संख्या 40.2 करोड़ तक ले जाने की योजना है। इस योजना से लोग अधिक से अधिक जुड़ सके, इसके लिए युवाओं को ऋण प्राप्त करने की भी सुविधा है। इस योजना का मुख्य एवं अंतिम उद्देश्य युवाओं को विभिन्न कार्यो में सक्षम बनाकर देश में रोजगार का सृजन करना है एवं युवाओं के लिए अवसरों का निर्माण करना ताकि इन अवसरों में वे अपना पसंदीदा मार्ग चुनकर अपने भविश्य का निर्माण कर सकें। इस योजना के तहत युवाओं को विभिन्न तकनीकि क्षेत्रों में प्रशिक्षित करने की योजना है। इस योजना के अंतर्गत सरकार कम से कम देश के 24 लाख युवाओं को विभिन्न तरह के तकनीकि क्षेत्रों में प्रशिक्षित करना चाहती है, जिसकी कुल आंकलित लागत 1500 करोड़ रूपये का है। इस योजना के अंतर्गत उत्कृष्ट स्तर का अनुभव प्राप्त लोगों द्वारा युवाओं को प्रशिक्षित करने की योजना है ताकि उन्हें चयनित क्षेत्र संबंधित हर तरह का ज्ञान हो सके। प्रशिक्षण के बाद युवाओं को विभिन्न सरकारी योजनाएं जैसे मेक इन इंडिया योजना, डिजिटल इन्डिया प्रोजेक्ट, स्वच्छ भारत अभियान आदि के अंतर्गत नौकरी दी जायेगी। प्रशिक्षण प्राप्त युवाओं को पाठ्यक्रम पूर्ण करने के उपरांत आठ हजार रूपया एवं पाठ्यक्रम पूर्ण करने का प्रमाणपत्र भी देने का प्रावधान है जिसे प्राप्त करने के लिए परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक है।[3]

**साहित्य अवलोकन :** विषय वस्तु से संबंधित कुछ प्रमुख साहित्य अवलोकनों का विश्लेषण निम्नांकित है:-

**चौरसिया धनजी**[4] ने कहा है कि गरीब परिवार के युवाओं को रोजगार के लिए केन्द्र सरकार दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना के अन्तर्गत प्रशिक्षण दे रही है और उत्पादक क्षमता बढ़ा रही है इस योजना के अंतर्गत गरीब और अंतिम व्यक्ति को लाभकारी योजना तक पहुंचाने के लिए सक्षम बनाया जा रहा है। इस प्रशिक्षण में यह सुनिश्चित किया जायेगा कि प्रशिक्षण प्राप्त करनेवालों में अनुसूचित जाति एवं जन जाति वर्ग के 50 प्रतिशत लोगों की सहभागिता हो। इसके साथ ही अल्पसंख्यक वर्ग के 15 प्रतिशत महिला वर्ग के 33 प्रतिशत लोगों को अनिवार्य रूप से इसमें शामिल किया जा रहा है। इस योजना की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रशिक्षण प्राप्त कम-से-कम 75 प्रतिशत युवाओं को रोजगार की गारंटी हो। इस कार्यक्रम को विशेष रूप से 27 जिलों में चलाया जा रहा है।

**प्रसाद** सुन्दर[5] द्वारा कहा गया है कि दीनदयाल उपाध्याय कौशल विकास योजना जैसी योजनाओं के माध्यम से ग्रामीण भारत में कौशल विकास के द्वारा कार्यबल को मानव संसाधन के रूप में परिणत किया है। मनरेगा जैसी योजना जो कि महज अकुशल श्रम के रूप में रोजगार उपलब्ध कराने तक ही सीमित है उसे भी कौशल विकास योजना से जोड़ने की कोशिश की जा रही है। ऐसी योजना जो ग्रामीण भारत में रोजगार सृजन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

**दत्ता अर्चना**[6] ने इस विश्लेषण में कहा है कि आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए किसी भी देश का कौशल और ज्ञान दो प्रेरक बल हैं । आधुनिक वैश्विक वातावरण में उभरती अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य चुनौती से निपटने में वे राष्ट्र आगे हैं जिन्होंने कौशल विकास का उच्चतर स्थान प्राप्त कर लिया है। किसी भी देश या राज्य में कौशल विकास योजना के लिए युवाओं पर ही जोर होता है। भारत इस मामले में अच्छी स्थिति में है। जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा उत्पादक आयु में है। यह हमारे देश को सुनहरा अवसर प्रदान करता है। अर्थव्यवस्था को

इसका लाभ तभी मिलेगा जब हमारी जनसंख्या विशेषकर युवा कौशल में परिपूर्ण होगी।

**सिन्हा शिशिर**[7] ने कहा है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था और ग्रामीण रोजगार को बस किसानी तक ही सीमित नहीं कर दिया जाय गांव की मिट्टी में इतना कुछ है कि वो गांव में ही उद्यमी तैयार कर सकता है और एक उद्यमी कई लोगों को रोजगार देगा। मनरेगा के तहत अकुशल कामगारों को कुछ शर्तें पूरी करने के बाद कुशल कामगार बनाने की योजना तैयार करने और कार्यान्वित करने के लिए मनरेगा के तहत प्रोजेक्ट लाइफ शुरू की गई है। इस योजना में वही ग्रामीण परिवार का व्यक्ति भाग ले सकता है जिसने मनरेगा के तहत 100 दिनों का काम पूरा कर लिया है। ये परियोजना राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन कृषि विज्ञान केन्द्र और दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना के सहयोग से करायी जाती है। परियोजना 17 राज्यों में शुरू करने की अनुमति दी जा चुकी है इन 17 राज्यों में झारखण्ड भी शामिल है। दीनदयाल ग्रामीण कौशल योजना का उद्देश्य बेरोजगार युवाओं को कौशल विकास कर के उनके रोजगार पाने की क्षमता को बढ़ाना है।

**गुप्ता संजय**[8] के द्वारा कहा गया है कि बढ़ती अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के कारण व्यावसायिक प्रबन्धनों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर सर्वोत्तम उत्पादकों के साथ मुकाबला करना पड़ेगा। इसका मुकाबला करने के लिए उधोगपतियों, प्रबंधको को अपने उधोग संगठन में सक्षम कौशल युक्त कामगारों की भर्ती करनी होगी चाहे वे कामगार किसी जाति, धर्म, लिंग अथवा संस्कृति से हो। श्रम -शक्ति संरचना तेजी से बदल रही है। वर्तमान में नारी शक्तिकरण तेजी से हो रहा है। ऐसी स्थिती में प्रबंधन कुशल मानव शक्ति को भर्ती कर ही अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता की चुनौतियों का सामना कर पायेंगें।

**भारत** सरकार की उपलब्धियों में से एक कौशल विकास जिसके माध्यम से युवाओं के लिए युवाक्लब/महिला मण्डल की युवा महिला सदस्यों के लिए 1,161 कौशल उन्नयन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं, जिनमें 21,177 महिलाओं को विभिन्न आवश्यकता आधारित व्यावसायिक कौशल उन्नयन प्रशिक्षण के लिए नामांकित किया गया था। एनवाईकेएस ने विभिन्न व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदाताओं के माध्यम से कौशल विकास प्रशिक्षण के लिए 34,303युवाओं को भी प्रशिक्षित किया था।[9]

**रोगेय राघव**[10] द्वारा कहा गया है कि बाजार के मांग के अनुरूप प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से कौशल विकास आवश्यकता को देखते हुए भारत सरकार ने अलग से स्किल डेवेलपमेंट मंत्रालय की स्थापना की, आज ग्रामीण विकास मंत्रालय एवं स्किल डेवेलपमेंट मंत्रालय के अंतर्गत भारत सरकार के द्वारा चलाये जाने वाली दीन-दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना, उड़ान एवं स्टार महत्वपूर्ण योजनाएं हैं जिसके तहत युवाओं को रोजगारपरक प्रशिक्षण देकर मुख्यधारा से जोड़ने का काम किया जा रहा है।

**कुमार आलोक**[11] ने कहा है कि रोजगारयुक्त कौशल विकास परियोजनाएं अपनी अलग पहचान बना सकती है। कौशल विकास के द्वारा ग्रामीण अर्द्ध कुशल एवं कम पढ़े लिखे लोगों को बाजार की मांग के अनुरूप बनाया जा सकता है भारत सरकार का लक्ष्य 2022 तक 40 करोड़ बेरोजगार युवकों को कौशल विकास से जोड़ना है। सरकार ने युवाओं को रोजगार संपन्न बनाने के लिए तीन स्तरों पर काम कर रही है। स्किल इंडिया, स्टार्टअप इंडिया, मेक इन इंडिया। इन तीनों को लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अभी मीलों सफर तय करना है। भारत सरकार ने यूनीक बिजनेस आइडिया वाले बिजनेस पर 55 प्रतिशत तक सरकारी सहायता प्रदान कराये जाने की बात कही है।

**जतिंदर सिंह**[12] का मत है कि नए प्रयोगों को अंगीकार करने वाले युवा ही होते हैं। विकासशील देशों में भारत जहाँ की आधी आबादी 25 वर्ष से भी कम आयु की है, भारत सरकार के फ्लैगशिप कार्यक्रम मेक इन इंडिया का उद्देश्य निवेश और नवाचार को प्रेषित करना और बौद्धिक संपदा को सुरक्षित रखना है। इस कार्यक्रम का लक्ष्य है कि विनिर्माण के क्षेत्र में बढ़ावा देते हुए 2022 तक 10 करोड़ नए रोजगार का सृजना करना। भारत जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है लेकिन बाजार मांग के अनुरूप श्रम शक्ति उपलब्ध नहीं है। प्रत्येक वर्ष श्रम शक्ति के प्रवेश करने वाले 1 करोड़ 20 लाख लोगों में से केवल 2 प्रतिशत ऐसे होते हैं जिन्हें प्रशिक्षण प्राप्त रहता है। वैसे राष्ट्रीय कौशल निगम ने उद्योग आधारित सेक्टर स्किल काउंसिल का गठन किया है। एन.ओ.एस. जैसे ऐसे प्रदर्शन मांगों का संकेत देता है, जिन्हें कार्यस्थल पर काम करने के दौरान सभी को प्राप्त करना होता है, भारत का राष्ट्रीय कौशल योग्यता ढांचा (एन.एस.क्यू.एफ.) व्यवसायिक शिक्षा सामान्य शिक्षा

को एकत्रित करता है।

**सृजा**[13] ने कहा है कि युवा का मतलब ऐसे लोगों से है जो अपनी-अपनी अनिवार्य शिक्षा पूरी करने और पहला रोजगार प्राप्त करने की उम्र की बीच में होते हैं। भारत युवाओं का देश है, यहां 27 प्रतिशत जनसंख्या 15 से 29 वर्ष की उम्र के बीच में है। युवाओं की इतनी बड़ी संख्या के कारण भारत में इसका जनसांख्यिकीय लाभ मिल रहा है। आज श्रम बाजार के मांग के अनुरूप श्रम शक्ति तैयार करने के लिए सरकार द्वारा राष्ट्रीय प्रशिक्षुता संबंधित योजना, स्टार्टअप, ग्राम उधमिता कार्यक्रम, ग्राम स्वरोजगार प्रशिक्षण संस्थान, राष्ट्रीय नियोजनीयता, राष्ट्रीय कौशल विकास निगम, प्रवासी कौशल विकास योजना, जन शिक्षण संस्थान, राष्ट्रीय व्यवसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण आदि संस्थानों का गठन किया गया। उनका मत है कि युवा लंबे समय तक रोजगार के लिए सक्षम बने रहें इसके लिए जरूरी है, कि स्कूली शिक्षा पूरी कराई जाए जो कौशल विकास प्रशिक्षण के लिए आवश्यक है।

**सोनाली कंचन** और साक्षी वार्ष्णेय[14] ने अपने अध्ययन में कहा है कि भारत जनसांख्यिकीय लाभांश की स्थिति से गुजर रहा है। लेकिन कुशल कार्यबल के संदर्भ में मात्रा एंव गुणवता का अंतर है। अनुमान लगाया जा रहा है कि भारत 2022 तक 500 मिलियन कुशल श्रमिकों की मांग का सामना करे। वर्तमान के भारत मे कुल श्रमबल के केवल 2 प्रतिशत कर्मचारियों की आपूर्ति कौशल विकास प्रशिक्षण से हो रही है। असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र में युवाओं को रोजगारयुक्त कौशल विकास का कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जा रहा जो उन्हें वर्तमान शिक्षा प्रणाली के अनुसार रोजगार के अवसर प्रदान कर सके। भारत की श्रम शक्ति पुराने कौशल के साथ अधिक संख्या में श्रम बल का गठन करती है जिसके कारण उत्पादन की गति धीमी रहती है और अर्थव्यवस्था की विकास दर में अपेक्षा के अनुरूप वृद्धि नहीं होती है।

**उद्देश्य**

1. झारखण्ड राज्य के ग्रामीण युवाओं के लिए कौशल विकास प्रशिक्षण का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण असंगठित क्षेत्र में कौशल विकास कार्यक्रम का रोजगार सृजन में प्रभाव का अध्ययन करना।
3. झारखण्ड राज्य में कौशल विकास कार्यक्रम के आजीविका पर प्रभाव का अध्ययन करना।

**शोध कार्यविधि** - प्रस्तुत शोध पत्र में झारखण्ड राज्य के ग्रामीण बेरोजगारी पर कौशल विकास कार्यक्रम का प्रभाव से संबंधित पलामू जिले का अध्ययन है। इस अध्ययन में आकड़ों का संकलन द्वितीय समंक के अंतर्गत इंटरनेट, समाचार पत्र, पत्रिकाएं एवं कौशल विकास कार्यक्रम के संचालन करने के लिए हुए नियुक्त अधिकारियों से प्राप्त जानकारी के आधार पर हुआ है।

**शोध प्रश्न**

1. क्या ग्रामीण युवाओं में कौशल विकास कार्यक्रम से रोजगार उपलब्ध हो रहा है?
2. क्या ग्रामीण असंगठित क्षेत्र में कौशल विकास कार्यक्रम रोजगार सृजन करता है?
3. क्या ग्रामीण युवाओं की आजीविका पर कौशल विकास कार्यक्रम का प्रभाव पड़ा है?

**विश्लेषण**

**तालिका-1**

**झारखण्ड में रोजगार की स्थिति एवं श्रमिक बल सहभागिता दर**

(पन्द्रह वर्ष एवं उससे उपर के उम्र 2015-16)

| | ग्रामीण | | | शहरी | | | कुल | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | पुरूष | महिला | कुल | पुरूष | महिला | कुल | पुरूष | महिला | कुल |
| भारत | 78 | 31.7 | 55.8 | 69.1 | 16.6 | 43.7 | 75.5 | 27.4 | 52.4 |
| झारखण्ड | 84.4 | 59.2 | 72.7 | 73.2 | 14.9 | 45.6 | 82.0 | 49.0 | 66.6 |

स्रोत-झारखण्ड आर्थिक सर्वेक्षण 2017-18, अध्याय-10, पृष्ठ-1

**भारत एवं** झारखण्ड के श्रमिक बल सहभागिता दर (LFPR) को उपरोक्त तालिका में दर्शाया गया है। भारत में कुल जनसंख्या के 52.4 प्रतिशत को श्रमिक बल के रूप में वर्ष 2015-16 में दर्शाया गया है जिसमें 55.8 प्रतिशत ग्रामीण एवं 43.7 प्रतिशत शहरी श्रमिक निहित है। पुरूष एवं महिला श्रमिकों के बीच सहभागिता दर में एक लंबी खाई दिखती है। ग्रामीण भारत के महिलाओं का श्रमिक बल सहभागिता दर (LFPR) शहरी भारत के

महिलाओं की अपेक्षा अधिक है।

**जहां तक** झारखण्ड का सवाल है श्रमिक बल सहभागिता दर (LFPR) की दर 2015-16 में 66.6 प्रतिशत है। पुरूषों एवं महिलाओं के बीच दर का अन्तर भी अधिक है। वर्ष 2015-16 में ग्रामीण झारखण्ड का सहभागिता दर 72.7 प्रतिशत है, जबकि शहरी क्षेत्र का 45.6 प्रतिशत है।[15]

**झारखण्ड** के युवाओं में व्याप्त रोजगार की स्थिति : वर्ष 2011-12 के अंतराल में युवाओं में व्याप्त बेरोजगारी दर सामान्य स्थिति का आकलन करे तो पाते हैं कि 4.9 प्रतिशत ग्रामीण भारत में एवं 6.2 प्रतिशत ग्रामीण झारखण्ड में व्याप्त थी। जहां तक शहरी क्षेत्र का सवाल है तो यह दर भारत के संदर्भ में 9.2 प्रतिशत और वहीं झारखण्ड के संदर्भ में यह दर 15.1 प्रतिशत हैं।

**तालिका-2**

**युवाओं में व्याप्त ग्रामीण बेरोजगारी दर प्रतिशत में (15-29 वर्ष)**

| आयु समूह | 15-19 | 20-24 | 25-29 | 15-29 |
|---|---|---|---|---|
| पुरूष | 10.3 | 6.6 | 1.2 | 5.1 |
| महिला | 0 | 7.2 | 15.4 | 9.5 |

स्रोत - झारखण्ड आर्थिक सर्वेक्षण 2017-18, अध्याय-10 पृष्ठ सं0-09

**उपरोक्त** तालिका के अनुसार 15-19 वर्ष, 20-24 वर्ष, 25-29 वर्ष आयु युवा पुरूष समूह का बेरोजगारी दर ग्रामीण झारखण्ड में क्रमशः 10.3 प्रतिशत, 6.6 प्रतिशत एवं 1.2 प्रतिशत है एवं 15-29 वर्ष के ग्रामीण युवा पुरूषों में व्याप्त दर का औसत 5.1 प्रतिशत है। दूसरी ओर झारखण्ड में ग्रामीण महिलाओं में बेरोजगारी दर क्रमशः 15-19, 20-24 एवं 25-29 वर्ष आयु समूह में 0 प्रतिशत, 7.2 प्रतिशत एवं 15.4 प्रतिशत है। 15-29 वर्ष के ग्रामीण महिलाओं में व्याप्त बेरोजगारी दर का औसत 9.5 प्रतिशत है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण युवा पुरूषों के अपेक्षा ग्रामीण महिलाओं में बेरोजगारी दर अधिक है।[16]

**पलामू में कौशल विकास :** कौशल विकास के द्वारा ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षित कर रोजगार उपलब्ध कराया जा रहा है। कौशल विकास प्रशिक्षण केन्द्र ज्यादातर शहरों में हैं, किन्तु ग्रामीण युवा उस प्रशिक्षण केन्द्र से लाभान्वित हो रहे हैं। उदाहरणस्वरूप पलामू जिला के जिला मुख्यालय में झारखण्ड कौशल विकास के द्वारा महिलाओं के लिए सिलाई, कटाई प्रशिक्षण एवं पुरुषों के लिए सुरक्षा, कारपेंटर, चालक, डाटा ऑपरेटर आदि ट्रेडों में प्रशिक्षण ग्रामीण युवा युवतियां ले रही हैं। इस तरह से कौशल विकास योजना 214 तरह का प्रशिक्षण करवाता है। इसे हम निम्न तालिका के माध्यम से संक्षेप रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं :-

**तालिका-3**

**वर्ष 2017-18 में पलामू जिला के कौशल विकास कार्यक्रम की उपलब्धि**

| योजना का नाम | प्रशिक्षण के लिए नामांकित | प्रशिक्षण पूर्ण | रोजगार |
|---|---|---|---|
| सक्षम झारखण्ड कौशल विकास | 2628 | 2060 | 908 |
| प्रधानमंत्री कौशल विकास | 1543 | 1003 | 240 |
| दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल विकास योजना | 427 | 150 | 150 |
| कल्याण गुरूकुल | 250 | 217 | 217 |
| औद्योगिक प्रशिक्षण | 2984 | 2608 | - |
| **कुल** | **7832** | **6038** | **1515** |

स्रोत - योजना कार्यालय, पलामू।

**उपर्युक्त** तालिका के माध्यम से समझ सकते हैं कि वर्ष 2017-18 में पलामू जिला में सक्षम झारखण्ड कौशल विकास के तहत प्रशिक्षण के लिए 2628 प्रशिक्षाणार्थी नामांकित हुए तथा 2060 प्रशिक्षण पूर्ण कर 908 लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ। वहीं प्रधानमत्री कौशल विकास के अंतर्गत प्रशिक्षण के लिए 1543 प्रशिक्षार्थी नामांकित हुए तथा 1003 प्रशिक्षण पूर्ण कर 240 लोग रोजगार प्राप्त किये। दीनदयाल उपायध्याय ग्रामीण कौशल विकास योजना के अंतर्गत 427 लोग नामांकित हुए तथा 150 प्रशिक्षण पूर्ण कर 150 लोग रोजगार प्राप्त किये। इसी तरह से

कल्याण गुरूकुलम में 250 प्रशिक्षण के लिए नामांकित हुए 217 लोग प्रशिक्षण पूर्ण कर 217 लोग रोजगार प्राप्त किये। इस तरह से उपरोक्त 05 कौशल विकास योजना के माध्याम से 6038 लोगों को प्रशिक्षित किया गया तथा 1515 लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया गया।

**इस तरह** कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि कौशल विकास योजना रोजगार उन्मुखी योजना है।[17]

**निष्कर्ष** – कौशल विकास कार्यक्रम कल्याणकारी योजनाओं में से एक है। इस अध्ययन इकाई में झारखण्ड राज्य के पलामू जिले के कौशल विकास कार्यक्रम का अध्ययन किया तो पाया कि कौशल विकास कार्यक्रम के प्रशिक्षण केन्द्रों से प्रशिक्षण प्राप्त कर युवा एवं युवतियों ने रोजगार प्राप्त किया है। हमने निम्न संस्थागत प्रशिक्षण केन्द्रो को संपर्क कर जो आकड़े जुटाए इससे यह साफ है कि प्रशिक्षण पूर्ण किये प्रशिक्षणार्थीयों में से 40 प्रतिशत के लगभग लोगो को रोजगार प्राप्त हुआ है। किसी–किसी संस्था के प्रशिक्षणार्थियों ने प्रशिक्षण पूर्ण करने के बाद शत प्रतिशत रोजगार लिया है। इस तरह से अध्ययन इकाई के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि गुणवता युक्त कौशल विकास कार्यक्रम प्रशिक्षण देने से बेरोजगारी दूर होगी।

**सुझाव** – संस्थागत सुधार कर कौशल विकास कार्यक्रम के प्रशिक्षण को गुणवता युक्त बनाया जाय, जिससे ग्रामीण बेरोजगार युवा को कार्यदक्ष बनाकर श्रम शक्ति के रूप में तैयार किया जा सके। सरकार इस दिशा में पहल कर कौशल विकास कार्यक्रम को बढ़ावा दे और अधिक से अधिक लोगों को गुणवता युक्त प्रशिक्षण देकर प्रशिक्षित करे।

## संदर्भ सूची


1. पुरी, वी0के0 एवं मिश्रा, 'भारत में रोजगार एवं बेरोजगारी', भारतीय अर्थशास्त्र, पृ.147
2. भारत सरकार, योजना आयोग, 12वीं पंचवर्षीय योजना, पृ.138
3. The Economoc Times, Updated : Feb. 07, 2019, 03:53 PM IST. economictimes.com
4. चौरसिया, धनजी, 'दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना', कुरूक्षेत्र, पृ. 46–47, अगस्त 2015,
5. प्रसाद, सुन्दर, श्याम, एवं कश्यप, कुमार, जगन्नाथ, 'कौशल विकास के साथ उच्च शिक्षा पर भी ध्यान देना जरूरी', कुरूक्षेत्र, पृ.29, मई 2017
6. दत्ता, अर्चना, 'प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना युवा सशक्तीकरण की नई दिशा' पत्र सूचना कार्यालय भारत सरकार, पृ.01
7. सिन्हा, शिशिर, 'गाँवों में रोजगार और कौशल विकास', कुरूक्षेत्र, पृ.23, मार्च–2017
8. अग्रवाल, आर0सी0एवं गुप्ता, संजय, 'प्रबंधन सिद्धांत एवं व्यवहार', एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन, पृ.406
9. कौशल विकास, उद्यमिता युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.07
10. रोगेय, राघव, 'सपना गाँव विकास की ओर', blogpost.com 29 अप्रैल 2016
11. कुमार, आलेक 'नये ग्रामीण भारत के निर्माण में कौशल विकास का योगदान', कुरूक्षेत्र पृ.16 सितम्बर 2017.
12. सिंह, जतिंदर, 'कौशल विकास नवाचार युवा सशक्तीकरण', योजना, मई 1917, पृ. 35
13. सृजा ए, 'कौशल विकास के माध्यम से ग्रामीण युवा सशक्तीकरण', कुरूक्षेत्र, जनकी, 2020, पृ. 11–13
14. Varshnay Sakshi, Kanchan Sonali, *'Skill Development in Intative Strategies'*, Asian Journal of Management Research Online Open Publishing Platform for Management Research, ISSN 229-3795
15. झारखण्ड आर्थिक सर्वेक्षण, प्लानिंग कम फाइनेन्स विभाग, त्तिीय अध्ययन केन्द्र, झारखण्ड सरकार, 2017–18, अध्याय 10, पृ. 01
16. झारखण्ड आर्थिक सर्वेक्षण, 2017–18, अध्याय 10, पृ.09
17. योजना कार्यालय, पलामू।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2020
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# मेवात क्षेत्र से पलायन का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण

❑ डॉ. शर्मिला यादव

1947 में भारत-पाक विभाजन को विश्व इतिहास में एक महान घटना माना जाता है। अंग्रेजों के समय से ही विभाजन की पृष्ठभूमि तैयार होने लगी थी, क्योकि इन्होने भारत में साम्प्रदायिकता को फैला कर, हिन्दू और मुसलमानों में आपस में फूट डालने का काम किया। जब विभाजन धर्म के आधार पर हुआ तो भारत में रहने वाले मेवों की गिनती मुसलमानों में की गई परन्तु मेव स्वयं को मुसलमान मानने को तैयार नहीं थे क्योंकि मेव पहले हिन्दू थे इनका धर्म परिवर्तित करा कर इन्हें मुसलमान बनाया गया और इनके रीति रिवाज हिन्दुओं से मेल खाते हैं। इस प्रकार मेवों ने पाकिस्तान पलायन न करके भारत में ही रहने का फैसला किया। विभाजन के समय मेवों के भारत में रूकने में उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने योगदान दिया न कि नेताओं के कहने से वे भारत रूके। हालांकि मेवों को विभाजन के समय काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा लेकिन मेव अपने पूर्वजों की धरती से जुड़ें रहे। इस प्रकार मेवों का पलायन सम्पूर्ण रूप से पाकिस्तान जाने से रूक गया। इन्हीं बातों का ध्यान रखते हुए प्रस्तुत लेख में मेवात क्षेत्र से पलायन का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण किया गया है।

**भारत-पाक** विभाजन इतिहास में एक नया मोड़ लेने वाली घटना मानी जाती है। विभाजन पर होने वाली बहसों का कोई अन्त नहीं है। विभाजन पर जितना लिखा जाये और कहा जाये, वह कम ही है क्योंकि इससे सम्बन्धित सवाल इतिहासकारों की सोच को नया रूप दे रहे हैं जिससे विभाजन के बारे में नयी-नयी सोच उभर कर सामने आ रही है। विभाजन के बीज तो अग्रेजों की 'बांटो और राज्य करो' की नीति में ही निहित थे और इस प्रकार धीरे-धीरे देश में साम्प्रदायिकता ने जन्म लिया। यह माना जाता है कि 1937 के चुनावों के बाद जब मुस्लिम लीग ने 1935 के एक्ट के अन्तर्गत कांग्रेस के साथ संयुक्त मन्त्रिमण्डल की मांग की क्योंकि लीग शुरू से ही भारतीय मुसलमानों के लिए सुरक्षा और सुविधा की मांग रखती रही। परन्तु कांग्रेस ने संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनाने से इन्कार कर दिया तो मोहम्मद अली जिन्ना ने इसे अपना अपमान समझा और जिन्ना ने कांग्रेस को हिन्दू संस्था कहा। यह घटना पाकिस्तान के निर्माण में काफी हद तक जिम्मेदार मानी जाती है। धीरे-धीरे मुसलमान यह मानने लगे कि भारत हिन्दू बहुसंख्यक है और आजादी के बाद बहुसंख्यक लोग ही सरकार बनायेंगे। इस पर जिन्ना का विचार यह था कि बहुसंख्यक राज्य में रहने से अल्पसंख्यक (मुस्लिम) के साथ भेदभाव हो सकता है उन्हें अनदेखा भी किया जा सकता है तो इस प्रकार मुस्लिम राष्ट्र की मांग बल पकड़ती चली गई और 15 अगस्त 1947 के दिन भारत को हिंदू, सिख बहुसंख्यक एवं पाकिस्तान को मुस्लिम अल्पसंख्यक राष्ट्र घोषित कर दिया गया। परन्तु विभाजन के भारत-पाक पर विनाशकारी प्रभाव पड़े, लोगों को विस्थापन में काफी हिंसा का सामना करना पड़ा। परन्तु यहाँ पर एक सवाल यह उठता है कि जब सभी मुस्लिम पाकिस्तान पलायन करने जा रहे थे, तो भारत में रहने वाली मुस्लिम 'मेव' या 'मेवाती' जो आज उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा में निवास करते हैं उनका यहाँ से पलायन क्यों नहीं हुआ? इसके पीछे क्या कारण थे? यह माना जाता है कि मेव महात्मा गाँधी जी के कहने से रूके थे परन्तु हमें इस सच्चाई को जानने कि जरूरत है क्या सही में ऐसा था? ऐसा लगता है कि मेवों की सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ही ऐसी थी कि इन्होंने अपने इलाके से पलायन नहीं किया और ये अपने को सम्पूर्ण रूप से मुसलमान मानने को तैयार भी नहीं थे। इन्हीं बातों को ध्यान में रख कर ''मेवात क्षेत्र से पलायन का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण'' का अध्ययन इस शोध लेख में किया गया है।

**भारत विभाजन का साहित्यिक अध्ययन** : भारत-पाक विभाजन का साहित्यिक अध्ययन, इतिहास लेखन में भारत-पाक विभाजन को इतिहास की दृष्टि से, एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में जाना जाता है। इतिहासकारों की दृष्टि में भारत विभाजन बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। विभाजन पर काफी इतिहास लेखन हुआ है और इससे

❑ सहायक प्रोफेसर, इतिहास और पुरातत्व विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

इतिहास की नई-नई सोच ने नई बहसों को जन्म दिया है। भारतीय स्तर पर किया गया इतिहास लेखन इस प्रकार है:-

1. महाजन, सुचेता; 'स्वाधीनता और विभाजन', ग्रन्थशिल्पी, नई दिल्ली, 2005
2. सिंह अनिता इंदर; 'भारत का विभाजन', नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, 2007
3. सरदार पटेल; 'भारत विभाजन', प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2009
4. प्रियंवद; 'भारत विभाजन की अन्तःकथा', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2008
5. सरीला नरेन्द्र सिंह; 'विभाजन की असली कहानी', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2006

**उपर्युक्त** पुस्तकों में भारत-पाक विभाजन के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है और इनको पढ़ने से पता चलता है कि किस प्रकार साम्प्रदायिकता के लिए अंग्रेजों ने बीज बोये और किस प्रकार मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग धीरे-धीरे बल पकड़ने लगी और अन्ततः विभाजन को अन्तिम रूप दिया गया। भारत और पाकिस्तान के बीच की सीमा रेखा लंदन के वकील ''सर सिरिल रैडक्लिफ'' ने तय की थी। विभाजन के दौरान काफी हिंसा देखने को मिली।

**इस प्रकार** उपरोक्त इतिहास लेखन में इतिहासकारों ने भारत के बड़े स्तर पर विभाजन का अध्ययन किया है परन्तु हमें किसी भी इतिहास लेखन को पूर्ण रूप से जानने के लिए ''सूक्ष्म इतिहास'' लेखन करने की जरूरत है हमें अपनी सोच को छोटे रूप से उठाने की जरूरत है। इसी दृष्टिकोण से इस शोध लेख ''भारत-पाक विभाजन : मेवात क्षेत्र से पलायन का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण'' में अध्ययन किये जाने का प्रयास किया है। सम्पूर्ण मेवों का विभाजन के समय पाकिस्तान पलायन नहीं हुआ। मेवों का जन्म हिन्दुत्व से माना जाता है। इन्हें भय दिखा कर मुसलमान बनाया गया था परन्तु मेवों के रीति-रिवाज आज भी हिन्दुओं सें मिलते हैं। भारत से मेवों के पलायन का सामाजिक एवं सांस्कृतिक वर्णन इस प्रकार है।

**मेवात क्षेत्र से पलायन की स्थिति का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण** : 4 अप्रैल, 2005 को गुड़गाँव और फरीदाबाद जिलों में से कुछ भाग अलग कर 'मेवात' बनाया गया। यह हरियाणा का 20वाँ जिला है। इस जिले के उत्तर में गुड़गाँव, पश्चिम में रेवाड़ी और पूर्व में पलवल जिला की सीमाएं लगती हैं। मेवात जिले का अधिकतर भाग समतल है। मेवात का कुछ भाग अरावली की पहाड़ियों से सटा हुआ है। मेवात मुस्लिम बहुल इलाका है और यहां पर मेवों का दबदबा है। हरियाणा के अलावा 'मेव' राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश में भी निवास करते हैं।

**मेवातवासी** हमेशा देशभक्त और बहादुर रहे हैं। इनके रणकौशल की महारत से सभी वाकिफ थे इस लिए दिल्ली के हाकिम अपनी हिफाजत के लिए उन्हें ढाल की तरह इस्तेमाल करते थे। आजादी से पहले दिल्ली में इनका जहाँ-तहाँ राज और प्रभाव था। लेकिन आजादी के बाद ये दिल्ली से बाहर भी प्रभावशाली बने। दिल्ली के राजपूत, गुर्जर, तगा, जाट सभी तो धर्म परिवर्तन करके मेव मुसलमान कहलाने लगे थे। इनकी दूसरे मुस्लिमों के साथ ठीक नहीं बैठती थी पर आजादी की हिन्दू-मुस्लिम आग ने इन्हें बहुत तबाह किया। ये अपने को मुस्लिम मानने को तैयार नहीं और हिन्दुस्तान पाकिस्तान के बंटवारे में इनकी गिनती मुस्लिमों में होती थी।

**मेवात** के लिए 1947 को एक दुःस्वप्न कहा जाता है। हिन्दू-मुस्लिम विभाजन का सबसे ज्यादा दुख मेवों को ही उठाना पड़ा था। 1947 में राजस्थान में न केवल भारी मारकाट हुई बल्कि 'जेनोसाइड' हुआ। जेनोसाइड यानी एक पूरी कौम का नामोनिशान मिटाने की कोशिश। इसको स्थानीय भाषा में सफाया कहा गया। 1947 मेवों की सांस्कृतिक पहचान में जबर्दस्त मोड़ लाया। यह तब्लीगी जमात का पहला कार्य क्षेत्र था किन्तु मौलाना इलियास के इस्लामीकरण के प्रयोग को कोई सफलता नहीं मिली। 1947 की राजनीति का एक सबक यह भी था जैसा कि एक मेव ने कहा, ''समझ गए, अभी तक हम दो घोड़ों पर सवार थे। अब यह सवारी करना नामुमकिन हो गया है।''

**यह नितान्त** सत्य है मेवात में हिन्दू, मुस्लिम, मेव तथा अन्य सभी बिरादरियाँ परस्पर भातृभाव से रहते थे। मेव जाति जो इस क्षेत्र में प्रमुख रूप से आबाद है, बड़े प्रेम से परस्पर मिलकर रहती थी। मगर जैसे-जैसे देश में पाकिस्तान बनाने के लिए मुस्लिम लीग का प्रचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचा, वैसे-वैसे स्थान-स्थान पर झगड़े बढ़ते गए। बंगाल में नवाखली जैसे काण्ड व लाहौर के भयानक दंगे अपनी चरम सीमा पर थे। विभाजन की साम्प्रदायिकता मेवात में भी ज्वाला की तरह फैलने लगी।

मेवात को 'मेविस्तान' बनाने वालों के सपने भी इसी द्वेष की अग्नि में जल कर राख हो गये।

**मेव यह** अच्छी तरह जानते थे कि देश का विभाजन धर्म के आधार किया गया था। उन्हें पता था कि पाकिस्तान एक मुस्लिम राज्य है। यहाँ यह स्वीकार करना होगा कि अधिकतर मेवों का इस्लामीकरण हुआ और खानजादे धार्मिक भावना से पाकिस्तान चले गये। वे इस तथ्य के प्रति जागरूक रहे कि भारत एक हिन्दू बहुमत देश है। यह मुसलमानों के लिए लाभप्रद बात नहीं है।

**जब 1947** में कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने भारत का विभाजन स्वीकार कर लिया तो मेवातियों को बुरे दौर का सामना करना पड़ा। अलवर, भरतपुर के आसपास के क्षेत्रों में सांप्रदायिक दंगे फूट पड़े। मुस्लिम मेवों और गैर मुस्लिमों के बीच मामूली विवादों को आसानी से साम्प्रदायिक दंगों में परिवर्तित कर दिया गया। दुर्भाग्यवश हालात जब और खराब हो गये जब महाराज भरतपुर ने मेवों को अपना प्रतिद्वन्द्वी मान लिया। उसने अपनी पूरी शक्ति मेवों को अपने राज्यों से निकालने में लगा दी। भरतपुर राज्य से मेवातियों को बहार निकालने के लिए सिपाहियों ने गोलियाँ चलाई। उन्होंने गाँवों को जला दिया और लूट लिया।

**जुलाई 1947** के अन्त में, भरतपुर राज्य से मेवाती अलवर राज्य और गुड़गाँव जिले में बड़ी संख्या में चले आये। मेवातियों की दुर्दशा तब और खराब हो गई जब अलवर राज्य ने भी इसी नीति का पालन किया। अलवर के महाराज तेजसिंह और उनके दिवान डॉ. खरे जो एक हिन्दू संगठन के कार्यकर्ता पहले से ही मेवों के खिलाफ थे, वहाँ एक हजार मेवों को मार डाला जिन्होंने अरावली की पहाड़ियों में आश्रय लिया था। हत्या, लूट, डाका डालना, मुस्लिमों का जबरन धर्म परिवर्तन कराना एक सामान्य मामला बन गया। 17000 मुस्लिम अलवर में हिन्दू बना दिये गये और 3000 मुस्लिम भरतपुर में हिन्दू बना दिये गये हालांकि मौलान इब्राहिम, विनोबा भावे, मौलान हफ्जर रहमान इत्यादि के प्रयासों से फिर से वे मुस्लिम बन गये और जल्द ही जयपुर राज्य की स्थिति में सुधार आया। मेवातियों को राज्यों की भेदभावपूर्ण नीतियों को भुगतना पड़ा। एक अनुमान के अनुसार महिलाओं और बच्चों सहित लगभग 3 लाख मेव भरतपुर, अलवर, जयपुर राज्यों के दंगों में मारे गये। केवल अलवर, भरतपुर जिलों के आसपास 4 हजार मस्जिदों को ध्वस्त कर दिया गया इस प्रकार ये पूरे क्षेत्र मुसलमानों के लिए कब्रिस्तान बन गये।

**सन् 1947** का वह दिन भी आ गया जब आबादी का तबादला होने लगा। अच्छे शरीफ मेव, मुस्लिम भाई विदा होने पर परस्पर मिल कर रोने लगे। गलतियों की माफी माँग कर जाने लगे। दूसरी तरफ पाकिस्तान जिन्दाबाद के नारे लगाने वाले बड़ी खुशी-खुशी हँसते-हँसते जा रहे थे। फिरोजपुर झिरका के मुस्लिम मौहल्ले जन शून्य हो गए। मकानात खाली हो गए। कुछ लोग अपना कीमती सामान साथ न ले जा सके और उन्होंने अपने हिन्दू मित्रों के पास यह कहकर रख दिया कि वापिस आ गए तो ले लेंगे। मगर बाद में सरकार को मालूम पड़ने पर यह सामान सरकार द्वारा ले लिया गया। इस आबादी के तबादले से मेवात के गाँव के गाँव खाली होने लगे। लोग जत्थे बनाकर पाकिस्तान जाने लगे। सोहना, गुड़गाँव में मेव जत्थों के पड़ाव पड़ने लगे। कट्टरवादी मेव तत्त्व तो पहले ही झटके में लाखों की संख्या में अपने सहयोगियों के साथ पलायन कर चुके थे। मेवात पूर्णतः नेतृत्व विहीन हो चुका था।

**हालाँकि चौधरी** मोहम्मद यासीन खान ने मेवातियों के पाकिस्तान प्रवास को दृढ़ता से रोकने का प्रयास किया। सोहना में, एक पारगम शिविर आयोजित किया गया, मेवातियों के पाकिस्तान पलायन को रोकने के लिए। मुस्लिम लीग के कार्यकर्ता खान बहादुर का नेतृत्व मेवों को हतोत्साहित करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था।

**1947 में** भारत का विभाजन मेवात के मेव और खानजादे परिवारों के लिए सबसे बड़ा झटका था। ये राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में किये जा रहे विभाजन के परिणाम से सबसे ज्यादा भयभीत थे। इन्होंने अपने घर और आश्रय (झुग्गियों) को छोड़ कर, पाकिस्तान की तरफ पलायन करना शुरु कर दिया जो उनके लिए पूरी तरह से अज्ञात क्षेत्र था।

**1947-48 में** जो भी मुश्किलें मेवों को गुड़गाँव में सहन करनी पड़ी थीं इसके बाद भी वे पाकिस्तान जाने में झिझक समझते थे। यासीन खान भी यही चाहते थे कि मेव यही रहें। इनके पलायन को रोकने के लिए उसने कड़ी मेहनत की। लेकिन कुछ लोग मौका मिलते ही यहाँ से पलायन कर गये। इनमें खानजादे, जो ऊँची मुस्लिम जाति के थे, इन्होंने दंगों में अपने परिवार वालों को खो दिया था। अब वो यहाँ रहने से डरते थे। इसलिए मेवों ने

कठिनाइयाँ सहन करते हुए भारत से जाने का इरादा कर लिया।

**8 लाख** मेवातियों ने भारत से पाकिस्तान के लिए प्रस्थान करने का फैसला लिया। मेवों के इस पलायन को भारत के लिए भारी क्षति मानते हुए मोहम्मद चौधरी यासीन राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को 19 दिसम्बर 1947 को घासेडा लेकर आए। घासेड़ा उस समय मेवात से पलायन कर रहे लोगों का केन्द्र बिन्दु बना हुआ था। इस मौके पर गांधी के साथ संयुक्त पंजाब के तत्कालीन मुख्यमन्त्री गोपीचन्द भार्गव, आचार्य विनोबा भावे तथा संविधान समिति के सदस्य एवं पूर्व मुख्यमंत्री भूपेन्द्र सिंह हुड्डा के पिता रणवीर सिंह हुड्डा भी उनके साथ आए। उस समय गाँधी जी ने मेवों को देश की रीढ़ बताते हुए सुरक्षा का पूरा भरोसा दिया। गांधी जी परवाह कौन करे, कहने वालों को महात्मा गांधी मोहसिन-ए-आजम अर्थात् महान उपकारी दिखने लगे। बापू इनके दुख से दुखी थे इसलिए उन्होंने कहा था कि तुम पाकिस्तान जाओगे तो मैं भी पाकिस्तान में ही रहूँगा।

**गांधी इस** प्रकार के पलायन के बिल्कुल खिलाफ थे। उन्होंने जनता के सामने कहा ''अगर उसके पास सच्ची शक्ति है तो एक भी मुस्लिम को भारत से जाने की जरूरत नहीं है और न ही एक भी हिन्दू व सिख को अपना घर और आश्रय छोड़ने की जरूरत है। उन्होंने मेव शरणार्थियों की ओर इशारा करते हुए कहा कि उन्हें चाहे भरतपुर, अलवर से निकाल दिया गया, पर तुम्हें जो भी दुःख दर्द व नफरत सहनी पड़ी है उसे जमीन में दफना दिया जायेगा। जिन भी लोगों को घरों से निकाल दिया गया है वे वापिस आ जायें और पहले की तरह खुशी से रहना शुरू करें। तब उनका मन खुशी से नाच उठेगा ! ..... ......।''

**महात्मा गाँधी** ने मेवों को पाकिस्तान जाने से रोक दिया। मेवों का पलायन रूक गया। पलायनकर्ता अपने घरों को वापिस लौट गए। इधर भारत सरकार ने घोषणा कर दी कि पाकिस्तान चला गया मुसलमान यदि 3 जुलाई, 1948 तक भारत वापिस आ जाएगा तो उसकी यहाँ छोड़ी गई सम्पत्ति वापिस लौटा दी जाएगी और वह पहले की भाँति भारत के नागरिक के रूप में स्वीकार कर लिए जाएगें।

**किन्तु** विभाजन के बाद भारत के धर्मनिरपेक्ष राज्य के कई मामलों में मेवों की उपेक्षा की। कई मेवों ने अपने पाकिस्तान बसने को 'महाभारत' के वनवास की तरह माना था। ये लोग रास्ता खुलते ही पाकिस्तान से वापस आए, 1960 तक वापस लौटने वालों की कतार बनी रही। किन्तु अधिकांश मेवों को इनकी उपजाऊ जमीनें वापिस नहीं मिली। अब यह जानने की जरूरत है कि मेवों का कितना प्रतिशत हिस्सा पाकिस्तान चला गया परन्तु इन के पाकिस्तान पलायन जाने वालों की सही संख्या के बारे में मतभेद हो सकते हैं।

**17 नवम्बर** को 80 हजार मेव पाकिस्तान शरणार्थी बन कर चले गये। दो दिन बाद 10 हजार मेव उसी रास्ते से वापिस आते दिखाई दिये। उन्हें लगा कि पाकिस्तान में बसना उनकी भारत में रहने से ज्यादा कठिन कार्य था। 1947 में भारत के विभाजन के समय लगभग 25 प्रतिशत मेवों का पाकिस्तान पलायन हुआ। कुछ तथ्य यह बताते हैं कि कुछ मेव जो 1947-50 की अवधि में पाकिस्तान चले गये थे, वे मेवात वापिस लौट आये थे दिखाने के लिए सबूत नहीं है। 1961 की जनगणना के अनुसार क्रमशः पिछले एक दशक के दौरान गुड़गाँव में 32.45 प्रतिशत, अलवर में 57.31 प्रतिशत, भरतपुर में 54.73 प्रतिशत मुस्लिम आबादी में वृद्धि हुई, इस अवधि में राजस्थान के लिए यह 21.51 प्रतिशत औसत की वृद्धि थी। जिससे हमें पता है कि मेव जो 1947-50 में पाकिस्तान चले गये थे वे लौट कर मेवात आ गये।

**आम** धारणा के अनुसार 40 से 50 फीसदी मेव 1947 में पाकिस्तान चले गये। एक मेवाती नेता, यासीन खान ने बताया कि, ''मेवात बर्बाद हो गया है, वहाँ कुछ भी नहीं रह गया, आधे लोग भी नहीं बचे।'' हम समझ सकते हैं कि उसने बताया कि मेव जिन की बात की जा रही है, वे पाकिस्तान चले गये। चावन्दी कलान के आंकड़े देखने से ऐसा नजर नहीं आता कि 25 प्रतिशत लोगों का पलायन हुआ। हम जान सकते हैं कि मेवात में केवल पंजाबी शरणार्थी हिन्दू और सिख रह गये। शरणार्थी जत्थों की संख्या से देखा जाये तो हम अन्दाजा लगा सकते हैं कि मेव जो थे उन का पलायन हो गया। सभी गाँवों में थोड़े से शरणार्थी थे, जो मेवों के साथ रहते थे। कुछ ऐसे छोटे गाँव हैं जहाँ सारे मेव चले गये, वहाँ पंजाबी ही रह गये।

**पाकिस्तान** में लगभग जितने मेव गये, वे पंजाब और पाकिस्तान के सिंध प्रान्त में बस गए। हजारों परिवार पाकिस्तान चले गये। वहाँ वे कई दशकों के लिए उपेक्षाओं और तबाही का सामना करते रहे। भारत से पलायन किये गये ज्यादातर मेव परिवार कसूर, सरगोधा, गुजरानवाला, वजीराबाद, मुल्तान, बहावालपुर, लेह, अहमदपुर, सियाल,

झंग, सुल्तान शहर और मुजफ्फरगढ़ के दूरदराज के शहरों में बसे थे।

**हमें यहाँ** के लोगों पर गर्व है कि देश के दूसरे हिस्सों में जब-जब साम्प्रदायिकता की घटनाएँ हुई, तब-तब यहाँ के लोगों ने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी के 'सर्वधर्म समभाव' की परम्परा को कायम रखा। मेवात का समाज धरती को ही अपना धर्म मानकर इससे जुड़ा रहता है। इसलिए आजादी के वक्त आया इन पर बुरा वक्त भी इन्हें अपनी धरती से नहीं हटा सका। व्यापारी और भिखारी दोनों धरती को प्यार नहीं करते। मेवाती तो धरती को प्यार करता है। इसलिए हिन्दुस्तान छोड़कर नहीं गया। यह अपने ऊपर आए संकट से बचना जानता है।

**निष्कर्ष** : उपर्युक्त वर्णन से हम यह समझ सकते हैं कि विभाजन के समय मेवातियों को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। काफी मेवातियों का भरतपुर और अलवर के शासकों द्वारा जबरन फिर से हिन्दु बना दिया गया परन्तु मेवाती समाज जानता था कि ये विभाजन का बुरा समय भी टल जायेगा। इस प्रकार मेवाती समाज मुश्किलों मे भी अपने क्षेत्र से जुड़े रहे और सभी मेवों ने भारत से पाकिस्तान पलायन इसी लिए नहीं किया क्योंकि एक तो ये अपने आप को मुसलमान मानने को तैयार नहीं थे, इनके रीति रिवाज काफी हिन्दू धर्म से मिलते थे। इस प्रकार मेव पूरी तरह मुसलमान भी नहीं थे, ऐसे मुसलमान ये नहीं थे, जो दिन में पांच बार नमाज पढ़ते हो। भारत से पलायन ना करने का दूसरा कारण यह रहा कि मेव भारत के जिस भोगौलिक क्षेत्र में रहते थे, वहाँ अधिकांश मेव ही बसे हुए थे, मेवों को हिन्दुओं से भी कभी कोई भय नहीं रहा, ये आपस में मिलजुल कर रहते थे, ये अपने आप को पाकिस्तान जाने से ज्यादा अपने बहुमत इलाके में स्वयं को सुरक्षित अनुभव करते थे। इस प्रकार मेवों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने इन्हें भारत रहने में सहायता की।

## सन्दर्भ


1. कुमार खाण्डेवाल कृष्ण, अन्य; 'हरियाणा एन्साइक्लोपीडिया-1', भूगोल भाग-1, वीणा प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृ.501
2. हुड्डा भूपेन्द्र सिंह; 'विकास की उड़ान अभी बाकी है', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 141
3. सिंह राजेन्द्र; 'मेवात का जोहड़', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012, पृ. 157
4. बुद्वा राजाराम, 'धर्माथ और प्रतिरोध की संस्कृति', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 81
5. सिंह, राजेन्द्र; पूर्वोक्त, पृ. 157
6. बुद्वा राजाराम; पूर्वोक्त, पृ. 81
7. वही, पृ. 80
8. बंसल ताराचन्द, 'फिरोजपुर झिरका : इतिहास के झरोखे से', मातृभूमि प्रिंटर्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 43
9. वही, पृ. 43
10. Aggarwal P.C., *'Caste, Religion and Power'*, Shri Ram Centre for Industrial Relations, New Delhi, 1971, p. 225
11. Aijaz Amad, *'Mewat : A Retrospective'*, Sahitya Sansthan, Ghaziabad, 2013, pp. 178-179
12. वही, पृ. 179
13. बंसल ताराचन्द, पूर्वोक्त, पृ. 74
14. वही, पृ. 47
15. अहमद अजीज; पूर्वोक्त, पृ. 179
16. वही, पृ. 19
17. अग्रवाल पी.सी.; पूर्वोक्त, पृ. 52
18. अहमद अजीज, पूर्वोक्त, पृ. 180
19. http://twicy.com/i/PLcFmh
20. बंसल ताराचन्द, पूर्वोक्त, पृ. 47
21. सिंह राजेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 157
22. अहमद अजीज, पूर्वोक्त, पृ. 180-181
23. बंसल ताराचन्द, पूर्वोक्त, पृ. 47
24. बुद्वा राजाराम, पूर्वोक्त, पृ. 81
25. The Three partitions of 1947 (Jan.ucc.nau.edu)
26. अग्रवाल, पी.सी.; पूर्वोक्त, पृ. 1
27. वही, पृ.53
28. वही, पृ.23
29. अहमद अजीज, पूर्वोक्त, पृ.19
30. हुड्डा भूपेन्द्र सिंह, पूर्वोक्त, पृ.141
31. सिंह राजेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ.86

**राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा** Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
**वर्ष 22 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2020** UGC-CARE List-Social Sciences

# राजस्थान के इतिहास में प्राथमिक स्त्रोतों के रूप में ख्यात रचनाओं का महत्व

❑ डॉ. मोनिका

इतिहास लेखन में काल विशेष की घटना के प्रत्यक्ष साक्ष्य के रूप में प्राथमिक स्त्रोतों की केन्द्रीय भूमिका होती है। प्राथमिक स्त्रोत किसी भी ऐतिहासिक घटना को मौलिकता, विश्वसनीयता, प्रमाणिकता और वस्तुनिष्ठता प्रदान करते हैं। क्षेत्रीय भाषा में लिखित ख्यात रचनाओं का राजस्थान के इतिहास में प्राथमिक स्त्रोतों के रूप में अपना विशेष महत्व है। शाब्दिक दृष्टि से ख्यात शब्द का आशय ख्यातियुक्त, ख्यात, कीर्ति आदि है- किन्तु राजस्थान में इसका सन्दर्भ एक व्यापक अर्थ इतिहास के पर्याय के रूप में प्रचलन में रहा है जिसमें किसी राजवंश, किसी शासक, विशिष्ट के कार्यों व उपलब्धियों का वर्णन मिलता है। ख्यातों का नामकरण वंश, राज्य, लेखकों के नामों से होता था-राठौर की ख्यात, मारवाड़ राज्य की ख्यात, दयालदास री ख्यात, नैणसी-री-ख्यात आदि। ख्यातों में इतिहास की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक प्रवृतियों का विस्तृत दिग्दर्शन ही नहीं होता अपितु तत्कालिक भाषा, साहित्य, संगीत, कला और विज्ञान आदि की प्रगति पर भी ख्यात रचनाएँ महत्वपूर्ण प्रकाश डालती हैं। इस प्रकार ख्यात रचनाएँ सांस्कृतिक निधि की अमूल्य ऐतिहासिक सामग्री, हमारी परम्परा के अनुकूल नव इतिहास निर्माण का एक आवश्यक आधार हैं। ख्यातों में युद्ध के तौर-तरीकों, जीवन-मरण के दर्शन आदि के बारे में भी जानकारी उपलब्ध होती हैं। वास्तव में ख्यात साहित्य में वर्णित सभी घटनाएँ हमारी सभ्यता और सांस्कृतिक चेतना को वर्तमान और आने वाले युग के अनुकूल बनाए रखने के लिए अधिक उपयोगी हैं। इस प्रकार ख्यात रचनायें अब एक बहुमूल्य प्राथमिक स्त्रोतों के रूप में अपना स्थान बना चुकी हैं तथा मध्यकालीन एवं आधुनिक राजस्थान के इतिहास लेखन में इनका प्रयोग अमूल्य ठहरता है।

**इतिहास** मानव जीवन के अतीत के संदर्भ में कल्पना मात्र न होकर, अतीत के काल विशेष की घटना को उसी समय की परिस्थितियों में उपलब्ध स्त्रोतों के माध्यम से मानव जीवन से सम्बन्धित सभी पहलुओं को प्रस्तुत करना हैं। अतीत के काल विशेष की घटना के प्रत्यक्ष साक्ष्य के रूप में प्राथमिक स्त्रोतों की इतिहास लेखन में केन्द्रीय भूमिका होती है, जो उस घटना को अधिक से अधिक विश्वसनीयता, प्रमाणिकता एवं वस्तुनिष्ठता प्रदान करते हैं। इतिहासकारों द्वारा इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के आंतरिक, बाह्य मूल्यांकन एवं तुलनात्मक जांच-पड़ताल के पश्चात ही प्राथमिक स्त्रोत का दर्जा प्रदान किया जाता है ताकि इतिहास लेखन को अधिक से अधिक वैज्ञानिक बनाया जा सके।

**परम्परागत** इतिहास लेखन में मध्यकालीन भारत का इतिहास मुख्यतः फारसी भाषा में लिखित प्राथमिक स्त्रोतों पर ही निर्भर रहा है। ये ऐतिहासिक दस्तावेज राजकीय इतिहास के रूप में केन्द्रीय, राज्य स्तरीय घटना से जुड़े होते थे तथा क्षेत्रीय स्तर की घटनाओं एवं ऐतिहासिक बदलावों के प्रति मौन रहे।

**अब हाल** ही में इतिहास लेखन की नई प्रवृतियों में इतिहास लेखन के प्रति महत्वपूर्ण बदलाव का दौर आया जिसमें इतिहासकारों का ध्यान क्षेत्रीय भाषा में उपलब्ध दस्तावेजों की ओर गया। इन्हीं क्षेत्रीय दस्तावेजों में लिखित ख्यात रचनाओं का राजस्थान के स्थानीय इतिहास में प्राथमिक स्त्रोतों के रूप में अपना विशेष स्थान है।

**16वीं** व 17वीं शताब्दी राजस्थान के मध्यकालीन इतिहास में राज्य निर्माण की प्रक्रिया की दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रीय परिवर्तनों व बदलाव का दौर कहा जाता है। अनेक उभरते राजपूत वंश, कुल व परिवार स्थानीय जनजातियों, पशुपालक, कृषक समुदायों को नियंत्रित कर धीरे-धीरे अपने नवगठित राज्यों को प्रशासनिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आधारों से मजबूती प्रदान कर रहे थे। इस प्रक्रिया में पश्चिमी राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में राठौड़ वंश के अधीन जोधपुर, बीकानेर राज्य बने तो भट्टी वंश के अधीन जैसलमेर राज्य विकसित हुए।[1]

**इन** नवगठित राज्यों के वंशों ने अपने आश्रय में, मुगल सता के समानान्तर अपने-अपने राजवंशों के इतिहास लेखन को बढ़ावा दिया।[2] ख्यात रचनायें, इसी प्रेरणा का परिणाम थीं। ये ख्यात रचनायें वास्तव में क्षेत्रीय स्तर-राजस्थानी, मारवाड़ी भाषा और विधाओं के विकास का प्रतीक अधिक जान पड़ती हैं। ये रचनायें सीधे तौर पर क्षेत्रीयता की अस्मिता को अधिक समेटे थीं।[3] ये रचनायें अपने-अपने कुल वंशों के अधिपत्य को एक वैधानिकता प्राप्त कराने का प्रयास अधिक थीं, क्योंकि इन रचनाओं में राज्य की सता से गैर-राजपूती जनजातियों को आत्मसात करने के प्रयास स्पष्ट झलकते हैं, जब गैर-राजपूत जनसाधारण के देवी-देवताओं से जुड़े किस्से-कहानियों को इनमें प्रमुखता

❑ **असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)**

के साथ वर्णित किया गया है।[4]

**अनेक** इतिहासकारों ने इन रचनाओं में राजपूतीकरण की प्रक्रिया (गैर-राजपूत वर्गों, उनके मूल्यों को राजपूती रंग में ढ़ालने, स्वीकार करने के प्रयासों-राजपूत मूल्यों का हिस्सा बनाने) को ढूँढ़ने में सफलता प्राप्त की है।[5] वास्तव में ख्यात रचनायें राज सता की विचारधारा की स्पष्टता को दिखलाते हैं। राजपूतों की राजनैतिक गतिविधियों के साथ इनमें गैर-राजपूत समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक मूल्यों, प्रचलित मान्यताओं आदि का भी व्यापकता से उल्लेख हुआ है। अब इतिहासकार इनके द्वारा गैर-राजपूत दृष्टिकोण से तत्कालीन व्यवस्था को समझने व जानने में अधिक प्रयासरत हैं। यह एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है जिससे राजपूत व गैर-राजपूतों के सम्बन्ध को नया आयाम प्राप्त हो सकता है।

**ख्यात** – शाब्दिक दृष्टि से ख्यात शब्द का आशय ख्यातियुक्त, ख्यात, कीर्ति आदि है- किन्तु राजस्थान में इसका सन्दर्भ एक व्यापक अर्थ इतिहास के पर्याय के अतीत के रूप में प्रचलन में रहा है जिसमें किसी राजवंश, किसी शासक, विशिष्ट के कार्यों व उपलब्धियों का वर्णन मिलता है।[6]

**डिंगल** भाषा, गद्य शैली में उपलब्ध ख्यात रचनायें वास्तव में दो विचारों को अपने में समेटे हैं-'जो कहा गया है' व 'वर्तात'-एक विधा के रूप में राजपूत वंशों व उनकी शाखाओं का बखान है, इतिहास है। यद्यपि राजस्थान में ऐतिहासिक रचनाओं के लेखन का आरम्भ रासो साहित्य के रूप में 10वीं शताब्दी में आरम्भ हो गया था। पद्य शैली में रासों के अन्तर्गत वीषलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो प्रमुख हैं, परन्तु ख्यात रचनायें एक विधा की प्रौढ़ व उत्कृष्ट स्वरूप वाली रचनायें ठहरती हैं जो अधिक विश्वसनीय, तथात्मक व ऐतिहासिक हैं। इतिहास के स्त्रोतों के प्राथमिक रूप में ये अमूल्य निधि मानी जाती हैं।[7]

**ख्यातों** का नामकरण वंश, राज्य, लेखकों के नामों से होता था-राठौर की ख्यात, मारवाड़ राज्य की ख्यात, नैणसी-री-ख्यात आदि। आधुनिक काल में इनके समीक्षकों के द्वारा इन्हें-इतिहासपरक, वार्तापरक, व्यक्तिपरक, स्फुट ख्यातों के उपभागों में बांटा गया है परन्तु विषय शैली की दृष्टि से ये दो प्रकार की मानी गई हैं-

1. **संग्लन ख्यात** – जिनमें क्रमानुसार इतिहास का वर्णन हुआ है जैसे दयालदास की ख्यात।
2. **बात संग्रह** – जिनमें अलग-अलग छोटी-बड़ी बातें, वंशावलियां, कहानियाँ समाहित हैं जैसे – नैणसी व बांकीदास की ख्यात।[8]

**ख्यात** साहित्य के उद्भव-विकास को यद्यपि मुगलों के समानांतर राजकीय इतिहास के विकास से जोड़कर देखा जाता है व इसे मुगल शासक अकबर की उस पहल/आदेश का भाग माना जाता है जिसमें मुगल शासक ने स्थानीय स्तर की परम्परा को भी अपने राजकीय इतिहास में स्थान देने के लिए-स्थानीय जानकारी उपलब्ध करवाने के-राजपूत वंशों को आदेश दिये थे, परन्तु ख्यात साहित्य अपने इतिहास में 13वीं शताब्दी से जुड़ी श्रुतियों, बातों, पट्टे-परवानों, भाटों की वंशावलियों, बहियों, रिकार्डो को भी अपने में समेटे हैं। हालांकि आधुनिक इतिहासकार ख्यातों के मूल सूचनाओं की प्राप्ति के स्त्रोतों के आधार पर दो भागों में बांटकर इन ख्यातों की जांच करते हैं। 13वीं से 16वीं शताब्दी की घटनायें, जिनके प्रति संदेह प्रकट किया जाता है तथा 16वीं से 18वीं शताब्दी के उल्लेख, जो विश्वसनीय व प्रमाणित हैं। परन्तु विषय की निरन्तरता में तथा दूसरे स्त्रोतों की तुलना द्वारा 16वीं शताब्दी के पूर्व उल्लेखों को स्वीकार करना सार्थक होता है।

**ख्यात** रचनाओं में विषय की व्यापकता काफी दर्शनीय है, तथा 13वीं से 19वीं शताब्दी की घटनाओं की समीक्षा में परिवर्तन-निरन्तरता, राजपूती समाज में बनते-बिगड़ते राजपूती मूल्यों, परम्पराओं, गैर-राजपूतों के सांस्कृतिक मूल्यों, राज्य निर्माण, कर प्रक्रिया में जुड़े प्रयासों, गैर-राजपूतों के साथ सम्बन्धों के नये आयाम, राजपूती वैर धर्म, भाई-बाट प्रणाली, स्थानीय राजपूती स्वामी समर्पण के मूल्यों के उद्भव-विकास आदि ऐसे विषय हैं जिनके बारे में ख्यात साहित्य बहुमूल्य जानकारी उपलब्ध कराते हैं जो अन्य स्त्रोतों से प्राप्त नहीं होती हैं।[9] वास्तव में ये एक व्यवस्था के बनने की क्रमिक प्रक्रिया के कथन हैं-(प्रतिरक्षा, भूमि-अधिकार, स्तर, सांस्कृतिक प्रतिरोध) आदि ये ऐसे मुद्दे हैं जो इन रचनाओं के सीधा सत्ता के प्रति भक्ति के स्वरूप, ढाँचे-समाज में व्याप्त अर्न्तद्वंद्व को दर्शाते हैं।[10]

**ख्यात** रचनाओं के ऐतिहासिक महत्व की ओर सबसे पहले ध्यान एल. पी. टेसीटोरी का गया था जिन्होंने एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के तत्वाधान में इन रचनाओं को संकलित करने की प्रक्रिया आरंभ की थी।[11] इसी प्रकार मौखिक संचार के रूप में मारवाड़ी स्त्रोतों का ए.बी. लार्ड ने काफी संकलन किया।[12] परन्तु इन रचनाओं के आधार पर इतिहास की समीक्षा के प्रयास जिंग्लर व फरर द्वारा किये गये जिन्होंने अपने महत्वपूर्ण लेखों के द्वारा जी. एच. ओझा एन. एच. भट्टी आदि के उन संदेहों को दूर किया जो

राजस्थान के राज्यों के राजनीति इतिहास लेखन में क्रमबद्ध घटनाओं का अभाव दर्शाते थे।

**ख्यात** साहित्य राजस्थान की गद्य विद्या का अत्यन्त प्रौढ़ और उत्कृष्ट रूप है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अन्य साहित्य विद्याओं से अधिक विश्वसनीय, तथ्यात्मक और ऐतिहासिक है। इतिहास में इनकी स्त्रोत भूमिका को देखते हुए कहा जा सकता है कि ख्यात साहित्य इतिहास शोध की अमूल्य निधि है।

**ख्यातों** में इतिहास की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक प्रवृतियों का विस्तृत दिग्दर्शन ही नहीं होता अपितु तत्कालिक और पूर्वकालिक मानव जीवन के आदर्श और सम्पूर्ण व्यवहार का इतिहास बोध भी प्राप्त होता है। इस प्रकार तात्कालिक भाषा साहित्य, संगीत, कला और विज्ञान आदि की प्रगति पर भी ख्यात रचनाएँ महत्वपूर्ण प्रकाश डालती हैं। इस प्रकार ख्यात रचनाएँ सांस्कृतिक निधि की अमूल्य ऐतिहासिक सामग्री, हमारी परम्परा के अनुकूल नव इतिहास निर्माण का एक आवश्यक आधार हैं। ख्यातों में युद्ध के तौर-तरीकों, जीवन-मरण के दर्शन आदि के बारे में जानकारी उपलब्ध होती हैं। वास्तव में ख्यात साहित्य में वर्णित सभी घटनाएँ हमारी सभ्यता और सांस्कृतिक चेतना को वर्तमान और आने वाले युग के अनुकूल बनाए रखने के लिए अधिक उपयोगी हैं।

**अतः** इस प्रकार ख्यात रचनायें अब एक बहुमूल्य प्राथमिक स्त्रोतों के रूप में अपना स्थान बना चुकी हैं तथा मध्यकालीन एवं आधुनिक राजस्थान के इतिहास लेखन में इनका प्रयोग अमूल्य ठहरता है।

**मुहणोत नैणसी-री-ख्यात** : जोधपुर के महाराज जसवंतर सिंह के दीवान और ओसवाल जाति के प्रसिद्ध मोहणोत वंश के विख्यात मुहणोत नैणसी जयलोत (1610-1670 ई.) द्वारा रचा गया राजस्थान की प्रसिद्ध मारवाड़ी भाषा का अपनी कोटि का अनूठा मध्यकालीन इतिहास-ग्रंथ है। राजस्थान के भूतपूर्व देशी राज्यों में ख्यात के नाम से अनेक ग्रंथ लिखे गये हैं, उन सब में मुहणोत नैणसी-री-ख्यात बहुत महत्व की है। इतिहास के सभी विद्वान अन्य ख्यातों की अपेक्षा इसे अधिक विश्वनीय मानते हैं। स्व. रायबहादुर गौरीशंकर ओझा ने अपने इतिहास-ग्रंथों में और स्व. रामनारायण दूगड़ द्वारा किये गये इसके हिन्दी अनुवाद के दोनों खण्डों की भूमिकाओं में बार-बार इस ख्यात की प्रशंसा की है और राजस्थान का पिछला इतिहास लिखने के लिये इसे बहुत महत्वपूर्ण और विश्वसनीय बतलाया है। मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ ने तो नैणसी को 'राजस्थान का अबुलफजल' और उनकी लिखी हुई ख्यात को 'आईन-इ-अकबरी' की कोटि का इतिहास ग्रंथ कहा है।[13]

**प्रस्तुत** ख्यात का सर्वाधिक महत्व इस बात में भी है कि नैणसी ने ख्यात में प्राप्त समस्त सामग्री साभार स्वीकार की है। उन्होंने लिखने वाले, भेजने वाले और सुनाने वालों के नाम ही नहीं लिखे, अपितु कहीं-कहीं तो उनका पूरा परिचय, सम्वत्, तिथि और स्थान आदि के नाम भी दिये हैं। उनमें कई प्रसिद्ध डिंगल कवि और चारणजन हैं।[14]

**ख्यात** में नैणसी ने मेवाड़, डंगरपुर, बांसवाडा, देवलिया (प्रतापगढ़), मारवाड़, बूंदी, आमेर, जैसलमेर, सिरोही आदि विभिन्न राज्यों के राजपूत राजवंशों तथा उनकी विभिन्न खाँपों में कई एक का संक्षिप्त और कुछ का विस्तृत इतिवृत दिया है। परन्तु 14वीं शताब्दी के पूर्व के इतिहास की प्रामाणिकता संदिग्ध होने के कारण उसे मान्य करने से पहले उसका पूर्ण परीक्षण करना आवश्यक है। साथ ही बाद के विवरण में भी अनेक स्थान पर भ्रान्तिवश तथा प्रमाणिक सामग्री के अभाव में यत्र-तत्र भूलें हुई हैं, अतः उनमें दी गई जानकारी की भी अन्य-मान्य प्रमाणिक स्त्रोतों से पुष्टि कर ली जानी चाहिए।

**ख्यात** में विभिन्न राजपूत राज्यों तथा खांपों के विस्तृत इतिहास में 14वीं शताब्दी के बाद का ही इतिवृत अधिक प्रमाणिक और विश्वसनीय है। वर्णित वृतान्तों से राजपूत-विवाहों की रस्मों, बहु पत्नी विवाह प्रथा, बाल-विवाह और उनसे होने वाले दुष्परिणामों के तो अनके उदाहरण मिलते ही हैं। इसी प्रकार ख्यात में प्रसंगवश ही वर्णित बातों में तत्कालीन राजस्थान के जन-साधारण में व्याप्त अंध-विश्वासों, तब प्रचलित शकुन शास्त्र विभिन्न देवी-देवताओं में विश्वास आदि हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं की जानकारी मिलती है।[15]

14वीं शताब्दी के बाद के राजस्थान के कुछ अन्य क्षेत्रों या राजघरानों के राजनैतिक इतिहास और 17वीं शताब्दी के सामाजिक-धार्मिक इतिहास के लिए मुहणोत नैणसी की ख्यात को प्राथमिक महत्व की समकालीन आधार-सामग्री का अनूठा संग्रह ग्रन्थ मान लेने में कोई भी आपति नहीं होनी चाहिए। उपर्युक्त इतिहास की जानकारी देने वाला वर्तमान में ऐसा कोई दूसरा तत्कालीन आधार उपलब्ध नहीं है इसके अतिरिक्त ख्यात से 17वीं शताब्दी के राजपूतों की सामन्ती व्यवस्था, सैनिक संगठन, राजकीय तंत्र और आर्थिक ढ़ांचे की भी जानकारी मिलती है।[16]

**यह** निर्विवाद कहा जा सकता है कि 1643 ई. से 1666 ई. तक अवश्य ही निरन्तर 23 वर्ष तक मुहणोत नैणसी ख्यात का संकलन और लेखन कार्य करता रहा है। बदरीप्रसाद सकारिया द्वारा सम्पादित मुहणोत नैणसी का मूल राजस्थानी ख्यात का प्रकाशन प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ने चार भागों में किया। उक्त सम्पादित ख्यात में सम्पादक ने मूल ख्यात के क्रम में कोई फेरबदल नहीं किया है।[17]

**बांकीदास-री-ख्यात :** चारण लेखकों में बांकीदास (1781-1833 ई.) का महत्वपूर्ण स्थान है। मुनि जिनविजय ने उसे देश का एक महान कवि और इतिहासकार माना है। यद्यपि उसका जन्म एक निर्धन आसिया शाखा के चारण वंश में हुआ था, किन्तु अपनी लेखन प्रतिभा, इतिहास और साहित्य ज्ञान के कारण जोधपुर के राज्य-दरबार में सर्वोच्च स्थान पर पहुँचाया गया था।[18]

**बांकीदास** की बातें छोटे-छोटे फुटकर नोटों के रूप में है। लेखक को जब जो बात नोट करने के लिए मिली उसने नोट कर ली। उनमें कोई क्रम नहीं है। क्रम से लगाने पर भी उससे संलग्न इतिहास नहीं बनता। अधिकांश बातें दो अथवा तीन पंक्तियों की हैं। पूरे पृष्ठ तक चलने वाली कोई विरली ही बात है। ख्यात में कुल मिलाकर दो हजार बातों का संग्रह है। प्रामाणिकता की दृष्टि से वह राजस्थान की अन्य ख्यातों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है। स्व. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसके ऐतिहासिक महत्व को स्वीकार किया।

**नैणसी के** अनुरूप ही बांकीदास की ख्यात भी द्वितीय प्रकार की ख्यात है। किन्तु नैणसी और बांकीदास की ख्यातों में एक अन्तर है। नैणसी की ख्यात में बातें बड़ी-बड़ी या विस्तृत रूप में लिखी गई है, यदि इन बातों को क्रमवार कर दिया जाये तो ख्यात की स्वरूप संलग्न ख्यात के रूप में दिखलाई देगा। किन्तु बांकीदास की बातें छोटे-छोटे फुटकर स्मृति लेख के रूप में लिखी हुई हैं। इन बातों का कोई क्रम नहीं है, क्योंकि लेखक को समयानुसार जो बातें स्मृति के योग्य लगी, उन्हें उसके सांस्कृतिक रूप में लिख लिया। इस प्रकार बांकीदास की ख्यात में उद्धृत ऐतिहासिक बातें संक्षिप्त लिपि अथवा तार की संक्षिप्त भाषा के समान लिखी हुई वृहद विषय की सूचना स्त्रोत है।

**बांकीदास** की ख्यात ऐतिहासिक घटनाओं तथा सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति की जानकारी का अपूर्व खजाना है। इसमें जोधपुर और जयपुर की स्थापना का विस्तृत विवरण है जो अन्य साधनों से भी पुष्ट होता है। उसकी ख्यात में विविध वेशभूषा तथा उस युग में प्रचलित वस्त्रों यथा-फूमरी, रूमाल, गुलबन्द आदि के नाम भी मिलते हैं। नैणसी की भाँति उसने भी भौगोलिक स्थानों तथा मार्गों की जानकारी दी है। उसने अपने समय में प्रचलित सिक्कों-रुपया, फिरोजशाही, आलमशाही, नौरंगशाही आदि का भी उल्लेख किया है। वस्तुतः राजस्थान का पूर्ण क्रमिक इतिहास तैयार करने में बांकीदास की ख्यात एक आधार ग्रन्थ के रूप में सहायक हो सकती है।

**दयालदास की ख्यात :** दयालदास सिढ़ायच (1798-1891 ई.) बीकानेर नरेश रतनसिंह (1828-1851 ई.) के विश्वसनीय दरबारी थे और महाराजा के आदेश से उन्होंने अपनी ख्यात लिखी थी। इस कार्य के लिए उन्होंने उपलब्ध वंशावलियों एवं पीढ़िवालियों, पट्टे, बहियों, शाही फरमानों तथा ख्यात साहित्य का अध्ययन-मनन किया था। दयालदास की ख्यात दो खण्डों में है। प्रथम खण्ड में बीकानेर के राठौड़ों का प्रारम्भ से लेकर जोधपुर के राव जोधा तक का विस्तृत विवरण है। दूसरे खण्ड़ में राव बीका से लेकर बीकानेर के महाराजा सरदार सिंह के राज्यभिषेक तक का वर्णन है। इस प्रकार यह ख्यात बीकानेर के राठौड़ शासकों की उपलब्धियों की यशोगाथा है, परन्तु प्रसंगवश इसमें जोधपुर के राठौड़ों का भी उल्लेख मिलता है। नैणसी और बांकीदास की ख्यातों के विपरीत यह संलग्न अथवा लगातार इतिहास है। इसमें बातों का संग्रहमात्र नहीं है। विद्वानों का मानना है कि दयालदास ने अपने समय की जिन घटनाओं का उल्लेख किया है, वे काफी प्रामाणिक मानी जा सकती हैं, परन्तु उसके पहले की घटना को अन्य स्त्रोतों से पुष्ट करने की आवश्यकता है, क्योंकि दयालदास का ध्येय अपने संरक्षक एवं आश्रयदाता के घराने की प्रशंसा करना रहा होगा। फिर भी बीकानेर राज्य के इतिहास के निर्माण में यह ख्यात काफी उपयोगी स्त्रोत मानी जाती है।[19]

**दयालदास** की ख्यात में घटनाओं का तिथिक्रम अधिकतर सही नहीं है जिनकी शुद्धि ओझा ने अपने ग्रन्थ बीकानेर राज्य के इतिहास तथा हुकम सिंह भाटी ने राजस्थान के ख्यातकार व उनके ग्रन्थों का तिथिक्रम में की है। इसका कारण शायद दयालदास द्वारा शिलालेखों, ताम्रपत्रों एवं अभिलेखों के प्रति उपेक्षा भाव ही कहा जा सकता है। घटना के लिखने में उनके क्रम के प्रति भी दयालदास बहुत बार उदासीन रहा है, उदाहरणार्थ रायसिंह की ख्यात में मुगल बीकानेर संधि रायसिंह कालीन रायसिंह के सिरोही अभियान को राव चन्द्रसेन के अभियान के पूर्व उल्लेख करना आदि।

**ख्यात में** घटनाओं के साथ दयालदास ने कई बार पक्षपात से काम लिया है। रायसिंह और प्रधान कर्मचन्द बछावत के मध्य सम्बन्धों में रायसिंह का पक्ष लेना, महाराजा सूरतसिंह द्वारा प्रताप की हत्या को मात्र बीमारी से मृत्यु लिखना।[20] **दयालदास** की ख्यात में उल्लेखित त्रुटियां होते हुए भी 18वीं शताब्दी की राजनीतिक घटनाओं के सम्बन्ध में उसका अध्ययन एवं लेखन तुलनात्मक दृष्टि से अधिक प्रमाणिक है। दयालदास, नैणसी और बांकीदास के क्रम में शोध को प्रस्तुत करता है जो फारसी का पूरक होकर राजस्थान के इतिहास को सम्पूर्णता और एकरूपता प्रदान करते हुए भारतीय मध्यकालीन इतिहास के अधूरे अध्यायों को जोड़ता है। दयालदास के मस्तिष्क में सूचनाओं का विशाल कलेवर तथा सामग्री का भण्डार था, अतः यह मात्र ख्यात के लेखन तक ही नहीं रूका अपितु उसने 'देश दर्पण ख्यात' की रचना की।

**उपर्युक्त** ख्यातों के अलावा अन्य बहुत सी ख्यातें हैं जिनमें कविराज की ख्यात, जोधपुर राज्य की ख्यात, बीकानेर के राठौड़ों की ख्यात आदि प्रमुख हैं। वस्तुतः राजस्थानी भाषा का साहित्य यत्र-तत्र बिखरा पड़ा था। मुनि जिनविजय के अथक परिश्रम एवं प्रयासों के बाद राजस्थान सरकार ने जोधपुर में ''प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान'' स्थापित किया और उसमें उपलब्ध राजस्थानी साहित्य को संग्रहित किया गया। इस संस्था ने हस्तलिखित पांडुलिपियों को प्रकाशित करवाने का निर्णय लिया और अब तक बहुत से ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। जोधपुर की चौपासनी शिक्षा समिति द्वारा संस्थापित ''राजस्थानी शोध संस्थान'' ने भी राजस्थानी साहित्य के प्रकाशन में अभूतपूर्व सहयोग दिया है।

## संदर्भ


1. Sharma, G.D., *'Rajput Polity : A Study of Politics and Administration of the State of Marwar, 1638-1749'*, Manohar publication, Delhi, 1977, pp. 13-21
2. मुगल राज्य में राजकीय इतिहास लेखन परम्परा का आरम्भ एक मील का पत्थर मानी जाती है जब अबुल फजल ने अकबर कालीन इतिहास लेखन में अकबरनामा को रचा।
3. Schomer K., Erdman J.L., Lodrick D. O., Rudolph (ed.) *'The Idea of Rajasthan'*, vol.-1, Manohar publication, Delhi, 1999, pp. 1-11
4. Smith, John D, *'The Epic of Pabuji'*, Cambridge University Press, Cambridge, 1991, pp.1-24
5. Sila Khan, *'Dominique, Conversions and Shifting Identities'*, Manohar Publication, Delhi. 1997, pp. 5-11
6. Maheshwari Hiralal, 'History of Rajasthan Literature', Sahitya Akademi, 1980
7. वही
8. गुप्ता कृष्णस्वरूप, 'राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत', पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1988
9. Ziegler, Norman P., *'Marvari Historical Chronicles : Sources for the Social and Cultural History of Rajasthan'*, IECHR (13) 2, 1976, pp. 219-250
10. Ziegler, Norman P., *'Some Notes on the Rajput Loyality During the Mughal Period'* (ed.) Muzaffar Alam and, Sanjay Subrahmanyam, *'The Mughal State'*, Oxford University Press, 1998, pp. 168-210
11. *'Some Notes on the Grammer of the Old Western Rajasthan with special reference to a pbhransha, Gujrati and Marwari'* The Indian antiquri, January-February, 1914, p.21,Tessitori, L.P. A descriptive catalouge of the bardic and historical manuscript, section-2, vol.1, Culcutta, 1917-1918, *'A progress report of the work in during theyear 1916 in connection with the bardic and historical survey of Rajasthan'*, A Siatic society of Bangal, No. 13 (1917), pp. 195-252, No.15 (1919), pp.5-79
12. Lord, A.B., *'The Singer of Tales'*, Cambridge University Press, Cambridge, 1960
13. भार्गव, डी.वी.एस., 'राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण', (1200-1900 ई.), कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1986, पृ. 13-16
14. गुप्ता कृष्ण स्वरूप व व्यास, गोपाल वल्लभ, 'राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत', पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1988 पृ. 3-7
15. फतहसिंह, (सम्पादित), भूमिका, 'मुहंता नैणसी-री-ख्यात', राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1967
16. राणावत मनोहर सिंह, (सम्पादित), 'मुहंता नैणसी-री-ख्यात', भाग 1, श्री नटनागर शोध-संस्थान, सीतामऊ, पृ. 1-9.
17. शर्मा कालूराम, 'राजस्थान का इतिहास', पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ. 14-22.
18. गुप्ता कृष्ण स्वरूप, व्यास, गोपाल बल्लभ, पूर्वोक्त, पृ. 55-70; स्वामी नरोतम दास जी (सम्पादकीय) बांकीदास-री-ख्यात, राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर, 1956, पृ. 3-7
19. गुप्ता कृष्ण स्वरूप, व्यास, गोपाल बल्लभ, पूर्वोक्त, पृ.65-70
20. भार्गव, डी. वी. एस., पूर्वोक्त पृ. 13-16

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# हिन्दी सिनेमा में ग्रामीण परिदृश्य का चित्रण

❑ राहुल कुमार

> भारतीय सिनेमा ने अपना सफर भारत की संस्कृति को दिखाने से शुरु किया और आज यह खुद भारत की एक अहम संस्कृति बन गई है, जहाँ हमारे जीवन के हर रुप में इसका रंग देखा जा सकता है। भारतीय सिनेमा का इतिहास और विकास दुनिया की फिल्मों के इतिहास और विकास से बहुत ज्यादा पीछे कभी नहीं रहा। दादा साहेब फाल्के द्वारा 1913 से शुरु हुआ भारत का सिनेमाई सफर आज तक जारी है जिसने अपने 100 साल के इतिहास में बहुत सारे पड़ाव देखे हैं। विभाजन देखा, दंगा देखा, युद्ध देखा, राजनैतिक बदलाव देखे, सामाजिक परिवर्तन के बहाव को देखा और खुद को इस सब का साक्षी बनाया। समय के संग बदलते दौर में सिनेमा ने भी खुद में बदलाव किये। भारतीय हिन्दी सिनेमा का बदलाव तकनीकी और बौद्धिक दोनों स्तरों पर हुआ। फिल्में श्वेत-श्याम से रंगीन हो गईं । पहले जो चीजें प्रतिबिम्बित की जाती थीं आज यह खुद भारत की एक अहम संस्कृति बन गई है। 1970 तक बनने वाली हिन्दी फिल्मों की हर कहानी में गाँव को महत्व दिया जाता था। फिर चाहे फिल्म की कहानी कुछ भी हो और शायद इसीलिए फिल्मों का पुराना दौर स्वर्ण युग माना जाता है। इस युग में समाज के हर सवाल पर हर तबके पर और सपनों पर फिल्म बनाई गई। पहले जो फिल्में बनती थीं वे भी ज्यादातर मनोरंजक ही होती थीं लेकिन कहानी की धारा हमारे सामाजिक ताने-बाने के आधार पर बहती थी। इस तरह मनोरंजन के साथ फिल्मों में सामाजिक शिक्षा, सामाजिक आदर्श, सामाजिक संघर्ष को भी खूब दिखाया जाता था। जिसे देखने वाला हर दर्शक भले उस कहानी से खुद को नहीं जोड़ पाता हो पर वह कहानी उसके आस-पास के माहौल को उससे जोड़ देती थी लेकिन आज जिस तरह की फिल्में बन रही हैं और चल रही हैं उससे ये लगने लगा है की सचमुच वर्तमान के हिन्दी फिल्मों के नक्शे से ग्रामीण परिदृश्य लगभग खत्म हो गया है।

**भारत** मुनियों का, योद्धाओं का देश रहा है। योगियों का भिक्षुओं का तो राजाओ का भी देश रहा है, और तो और यह महंत और महात्माओं का भी देश रहा है। पता नहीं इस ज्ञान और त्याग की जमीन पर कितने आगन्तुक आये और गये पर हर लुटने और बनाने वाले का संदेश यही रहा कि भारत गाँवों का देश है। शायद इसीलिए आजादी के पहले और बाद के हर सामाजिक आंदोलन में मुखर रूप से कहा गया कि भारत गाँवों का देश है। महात्मा गाँधी ने गाँव को भारत की आत्मा बताया और कहा, गाँव के विकास से हीं भारत का विकास होगा। परन्तु नेहरु ने गाँव के पर्याय शहर को बना दिया। 73 साल के संवैधानिक तंत्र ने जैसे-जैसे गाँव के विकास के लिए अपने कदम आगे बढ़ाये वैसे-वैसे अद्भुत रूप से शहर का विस्तार होता चला गया। दो तिहाई आबादी को ढोने वाला गाँव निरीह पड़ा रहा। शहर के विकास कथा की व्यथा भी ऐसी हो गयी कि लोग दिल्ली, मुंबई, कोलकता, पुणे को देश का सबसे बड़ा गाँव कहने लगे।

**'गाँव** और शहर को लेकर नेहरु-गाँधी के बीच की इसी द्वंदनात्मक विचार श्रृखंला से हिन्दुस्तानी सिनेमा के शुरूआती दशक अपना आकार ग्रहण करते हैं। 'गाँधी शहर आधारित जीवन-पद्धति और उससे जुड़ी तमाम संरचनाओं के शुरू से ही मुखर आलोचक थे।'[1] उनकी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' इसका सबसे सशक्त उदाहरण है। जैसा सुनील खिलनानी शहर को लेकर उनके नजरिये के बारे में लिखते हैं, ''गाँधी के सामने स्पष्ट था कि उपनिवेशवाद को उसके आधुनिक दुर्ग- शहर में ही परास्त करना होगा। लेकिन उनके लिए जीत का अर्थ अंग्रेजों द्वारा खाली किये गये शहर में बस जाना नहीं था। उनके विचार से भारतवासियों के लिए आजादी का मतलब था शहर को अस्वीकार करना और भारत के चिरंतन सभ्यतामूलक शक्तियों को एक बार फिर हासिल करने के लिए गाँव के अभयारण्य में लौट जाना। गाँधी का मानना था कि शहर की इमारत का निर्माण जिस सीमेंट से होता है वह गाँव के रक्त से बनाया जाता है''[2]

**सिनेमा** आम आदमी का माध्यम है। सिनेमा के परदे पर जब-तक रिक्शे, ताँगे तथा गवई गाँव के लोग सिक्के नहीं लुटाते, तब तक न तो कोई भी सिनेमा 'हम आपके है कौन'[3] जैसी सफलता पा सकता है और न ही कोई 'यंग एंग्रीमैन' अमिताभ बच्चन बन सकता है। हालाँकि आशीष नन्दी 'अमिताभ को हिंदी सिनेमा का पहला शहरी- औद्योगिक समाज से आया नायक मानते हैं जिसने अपने पूर्ववर्ती चॉकलेटी नायकों को अपदस्थ कर दिया'[4] यानि गाँव को दुत्कार कर सिनेमा ऐसी स्थिति में आधुनिक तकनीकों वाले इस माध्यम को भी मजबूर होकर ही सही गाँवों से

❑ शोध अध्येता, पत्रकारिता एवं सृजनात्मक लेखन विभाग, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश)

मुखातिब तो होना ही पड़ेगा। भले ही हिन्दी सिनेमा मुंबई जैसे महानगर में बनता हो लेकिन उसमें भारत के गाँव-गाँव के लोग, उनकी समस्याएँ, उनकी परंपराएँ और उनकी इच्छाएँ झलकती रही हैं। शुरू की फिल्मों में यह बात बहुत अधिक थी, जो आठवें दशक से कम होती चली गई। उस समय के सिनेमा में गांव की धड़कन मिलती है। इसका एक बड़ा कारण यह था कि सिनेमा उद्योग से जितने लोग जुड़े थे उनमें से अधिकांश की पृष्ठ भूमि गाँव की थी।

**गाँव** के जीवन को दर्शाने वाली फिल्म 'मदर इंडिया' (1957)[5] अपने समय में सुपर हिट रही। उसमें गाँव के किसानों का दर्द, उनकी समस्याएँ और उनका संघर्ष अच्छी तरह से निखारा गया था। नरगिस और सुनील दत्त के रुप में गाँव का किसान जीवंत हो उठा था। आज यदि किसी हिन्दी रीमेक को महान की संज्ञा दी जा सकती है तो वह मदर इंडिया ही है। यह फिल्म एक दस्तावेज है, एक कैनवास है, जिस पर ठेठ हिन्दुस्तानी जीवन की पेंटिंग रची गई है। एक महाकाव्य है, जो समय की सीमाओं से परे हो चुका है। मदर इंडिया कहानी है राधा (नरगिस) की, जो नवविवाहिता के रूप में गाँव आती है और घर-गृहस्थी की जिम्मेदारियाँ उठाने में पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती है। इसी के आस-पास राजकपूर ने भी गाँव के ऐसे भोले-भाले लोगों को चित्रित किया था जो शहर जाता है और शहर के रंग रुप को देखकर भौंचक्का रह जाता है। फिल्म 'जागते रहो'[6] में नौकरी की तलाश में शहर आया हुआ एक भोला-भाला व्यक्ति रात भर दो घूँट पानी की खोज में भटकता रहता है। उस दशक की हिन्दी फिल्मों में गाँव का चित्रण बड़े रोमानी ढंग का मिलता है। गाँव का स्वरूप बड़ा भोला-भाला है। वे आधुनिकता की चमक-दमक से दूर है। छल-कपट, झूठ और बेईमानी उन्हें नहीं आती है और नमक हलाली में अपनी जान तक देने को तैयार रहते हैं। यही स्थिति गाँव की गोरी की भी है। वह निश्छल है, निष्कपट है, छुईमुई है और चंचल है। साथ ही वह सुंदर भी है। शहर का पढ़ा लिखा युवक गाँव आता है तो गाँव की इस गोरी को अपना दिल दे बैठता है जबकि आज मूर्ख लोग भी अपनी जान लेकर गाँव से शहर भाग रहे हैं। फिल्म आलोचक योगेन्द्र व्यास लिखते हैं कि 'इंसान की चेतना पर सांसारिक परतें इतनी गहरी चढ़ गयी हैं कि वह सिर्फ शारीरिक रूप से ही जागता और सोता है। गहरी मूर्छा इस कदर छाई है कि आँखें हैं पर दीखता नहीं, आत्मा है पर संवेदना नहीं, आँख है पर आंसू नहीं, बुद्धि है पर विवेक नहीं। बहुत ऐसे व्यावसायिक फिल्मकार होते हैं जो अपने नफा-नुकसान से परे एक उद्देश्यपरक फिल्म बनाते हैं। ऐसे फिल्मकारों में राजकपूर का नाम बरबस याद आता है। 'सुबह होने के बाद दरवाजे खोलने चाहिए, नहीं तो रोशनी कैसे आएगी' ऐसी प्रतीकात्मक बातों से भरी फिल्म है 'जागते रहो' जिसमें पात्र राजकपूर की मासूम आँखें दरवाजों में बंद समाज के लोगों का असली चेहरा उजागर करती हैं। ये फिल्म निर्देशन की सूझबूझ और अनुभव का उत्कृष्ट उदाहरण है जो सामाजिक सरोकार और जीवन को प्रदर्शित करता है।[7] समझा जाता है कि राजकपूर के फिल्मी व्यक्तित्व और उनकी फिल्मों पर चार्ली चैप्लिन का का बहुत प्रभाव रहा। खुद चैप्लिन ने अपनी ढेर सारी फिल्मों में शहर की व्यवस्था और शहरी जीवन पर कटाक्ष किये। नटखट बन कर हँसीं-हँसीं में गंभीर विषय उठा लेना! उट-पटांग हरकतों से आदर्श स्थापित कर देना ! जहाँ राजकपूर की शैली रही है। वहीं उनके समकक्ष काम कर रहे कई निर्माता-निर्देशक और कलाकार समाज को आईना दिखाने को विवश करते रहे। शांताराम सरीखे फिल्म निर्माता ने कई ऐसी फिल्में बनायीं जो दर्शकों को, समाज को झकझोरती रहीं। उत्तेजित करती रहीं।

**'दुनिया न माने'** (1959)[8], फिल्म दिखाती है कि महिलाओं की हैसियत, घर और समाज में क्या है। 'दो आँखे बारह हाथ'[9], जैसी उनकी फिल्मों ने दर्शक और समाज की सोच को बदला। उस व्यवस्था को समझ पायें जिसमें सजा का मतलब सुधार होता है न की जेल। इस बदलाव और बदल देने की रेस में और भी कई वीर कैमरा उठाये थे। गुरुदत, विमल राय, और राजकपूर जैसे फिल्मकार भी ऐसे थे जो लोकप्रिय सिनेमा के आस्वाद के दायरे में कुछ सोद्देश्यपूर्ण फिल्में बना रहे थे जिसमें दर्शकों के लिए मनोरंजन के तत्त्व भी थे और समाज के लिए एक संदेश भी। इस तरह की फिल्मों को दर्शक भी खूब पसंद करते थे और ऐसी बहुत सारी फिल्में किसी भी मसाला फिल्म से ज्यादा सफल रहीं। यह सफलता सिर्फ आर्थिक दृष्टिकोण से ही नहीं थी बल्कि सफलता का एक पैमाना यह भी रहा कि आज पचास-साठ साल बाद भी इस तरह कि फिल्मों को देखा जाता है और सिनेमा समीक्षा में जिसके उदाहरण पेश किए जाते हैं।

**जिन्दगी** से लेना और जिन्दगी को देना, जीवन के इसी

आधारभूत क्रियाकलाप पर सिनेमा जगत जन्मा और आगे बढ़ा। यह सालों तक उस चंचल बच्चे की तरह रहा जिसके तन, मन पर बदलते वातावरण का तुरंत असर होता है। साथ ही उस बूढ़े की तरह रहा जो बढ़ते बबंडर से अपने कुनबे को बचा लेने का माद्दा रखता है। आजादी के बाद सिनेमा के निर्माता, निर्देशक और कलाकार को यह एहसास हो गया कि अब सब कुछ उसका है। ये आजाद जमाना (भारत) भी और जिम्मेदारी भी जिसका परिणाम यह हुआ कि संसद के साथ-साथ सिनेमा जगत भी भारत निर्माण में जुट गया ।

**संसद** का सामाजिक प्रयास सिनेमा को प्रभावित करता तो सिनेमा की आधुनिक सोच संसद को। एक ऐसा संतुलन जो हकीकत में सपने जैसा था। जिसे बस पूरा होना था और धीरे-धीरे पूरा भी हो रहा था। जमींदारी प्रथा में सिसकती जिन्दगी! ऊँच-नीच के अत्याचार से त्रस्त समाज! किसान की हैसियत! मानवता का त्याग और बलिदान! प्रेम के लिए सामाजिक सुधार! आदि जैसे जाने कितने मुद्दों पर संसद और सिनेमा साथ-साथ काम कर रहे थे। संसद कार्यक्रम बनाता, सिनेमा विचार! संसद कानून बनाता तो सिनेमा सरोकार।

**60 के** दशक में जब देश युद्ध और अकाल की मार से ग्रसित था तब सिनेमा ने देशवासियों में देशभक्ति का जज्बा भरा 'हकीकत'(1964)।[10] देश की उन्नति के लिए जनता की हिम्मत को जगाया 'उपकार'(1965)।[11] 'जय जवान जय किसान', जैसे नारे के बीच लोगों ने जब फिल्म 'हकीकत' को देखा तो उन्हें पता चला सीमा पर जवान देश की आजादी के लिए निहत्थे दीवार बनकर खड़े हैं। देश के सम्मान के लिए अपना सर कटा रहे हैं। फिल्म 'उपकार' जब 1965 में लोगों के सामने आयी तो मानो पूरा देश ही देशभक्ति में डूब गया। संगीन ही नहीं, हल से भी देश भक्ति की जा सकती है। किसान की इस सोच और समझ ने देश को अकाल से दूर कर दिया।

**70 का** दशक बहुत ही उथल-पुथल भरा रहा। सामाजिक, राजनैतिक और वैज्ञानिक स्तर पर बहुत सारी चीजें एक साथ हो रही थीं। सरकारी योजना सख्ती से लागू की जा रही थी। गाँव शहर से जुड़ रहा था। जमींदारी प्रथा ध्वस्त हो रही थी। सहकारिता से समृद्धि और विकास के नित नए रास्ते खुल रहे थे जिससे लोगों की सोच और समझ बदल रही थी। परन्तु बदलाव की इस आपा-धापी में सब कुछ सही था ऐसा नहीं है। सो चल रहे गलत और सही के हर पहलू पर सिनेमा-जगत की नजर थी। समाज के हर उत्साह ! हर भटकाव ! हर विकास ! और हर सपने के लिए इस दौरान फिल्में बनायीं गयी। अद्‌भूत संतुलन के साथ हर फिल्मकारों ने अपने दृष्टिकोण को दर्शकों के सामने रखा । 'पूरब-पश्चिम' (1970)[12] 'मेरा गाँव मेरा देश' (1971)[13] जैसे कई फिल्में प्रदर्शित हुई। जिन्होंने लोगों का मार्गदर्शन किया जबकि इस दौरान भी ज्यादातर फिल्में मनोरंजन को हीं ध्यान में रख कर बनायीं जाती थी। बावजूद इसके भारतीय सिनेमा यहाँ की मुख्य संस्कृति के महत्व को उजागर करते रहे और वो भी इस स्तर पर कि अगर मोटरकार की चमक थी तो बैलगाड़ी घोड़ागाड़ी की शान भी थी 'शोले' (1975)[14] अगर गाँव पर फिल्म बने तो बड़े-बड़े मुद्दे होने चाहिए इस भ्रम को इस दौर में तोड़ा गया। गाँव की साधारण कहानी! गाँव के अल्हड़ पात्र! गाँव की सादी जिन्दगी! गवई रिश्तों का चित्रण! गाँव की सामाजिक संरचना आदि सब को भरपूर रूप से इस दौर में दिखाया गया। 'नदिया के पार, (1982)[15] गाँव के जिन्दगी को दिखाती एक बेहतरीन फिल्म है। साथ ही समानान्तर फिल्म के रूप में अंकुर (1974)[16] और मंथन (1976)[17] जैसी फिल्में भी अपना कमाल दिखाती रहीं।

**ये कहना** गलत नहीं होगा कि 60 वें, 70 वें और 80 वें दशक के मध्य और कमोवेश अंत तक सिनेमा भारत के गाँव का प्रतिनिधित्व करता रहा। अपने संस्कार और शिष्टाचार को समेटे हुए भारतीयता को प्रदर्शित और प्रचारित करती रही। वहीं भारतीयता जो गाँव का शरीर रूप है, जिसकी जीवन शैली गवई है। 'नया दौर' (1957)[18], गंगा जमुना (1961)[19], मिलन (1967)[20], तीसरी कसम (1966)[21], आया सावन झूम के (1969)[22], पूरब और पश्चिम (1970)[23], गोपी (1970)[24], प्रेम रोग (1982)[25] ये सारी की सारी फिल्में गाँव की परिवेश को दिखाती हैं और सब की सब हिट रहीं हैं।

**90 वें** दशक तक आते-आते गाँव सिनेमा से गायब होने लगा। अब तक की फिल्मों की कहानी, शहर को गाँव की तरफ ले जाती रही लेकिन 1990 के बाद फिल्मों की कहानी का रुख गाँव से शहर की तरफ हो गया। राजकपूर की 'राम तेरी गंगा मैली' (1995)[26] का नायक पहाड़ी लड़की से प्यार करता है और गाँव छोड़ कर शहर आ जाता है। राजकपूर ने ऐसे ही एक प्रसंग पर 'बरसात'[27] नाम की फिल्म 40 साल पहले बनाई थी। लेकिन दोनों फिल्मों के मूल्यों में जो अंतर है वह वस्तुतः समाज में

और सिनेमा जगत में 40 साल के दौरान आए मूल्यों में बदलाव को दिखाता है। जो गाँव के जीवन के प्रति दृष्टिकोण में हुए परिवर्तन का प्रमाण है। वैसे गाहे-बगाहे आज भी गाँव के परिवेश पर फिल्में बनती हैं। परन्तु अब उसके सन्दर्भ बदल चुके हैं। सकारात्मक को त्याग कर नकारात्मक को दिखाया जाता है। गैंग ऑफ वासेपुर (2012)[28] सरीखें फिल्म को देख कर तो यही लगता है। **फिल्मों में** जैसे शहर बनावटी दिखाए जाते हैं। वैसे ही अब गाँव भी बनावटी दिखाए जाने लगे हैं। मालामाल वीकली (2006)[29] वेलकम टू सजनपुर (2008)[30] जैसी फिल्में इसके उदाहरण हैं। परन्तु उम्मीद अभी तक जिन्दा है, जिसके सहारे अनुराग कश्यप जैसे कुछ फिल्म निर्माता यह कहते हैं कि ... ''नया सिनेमा छोटे-छोटे गाँव-मोहल्लों से निकल कर आएगा। अपने एक इंटरव्यू में उन्होंने कहा कि पहले भी कहानीकार लिखते थे, फिल्में बनती थीं, लोग देखते थे, लेकिन इकॉनोमिक्स और बिजनेस का मॉडल नहीं था इतना बड़ा आज ज्यादा टेकओवर कर गया। आज फिल्में इंडीविजुअल प्रोड्यूसर बना रहा है और स्टूडियो फंड कर रहा है। स्टूडियो क्या होता है? स्टूडियो वो होता है, जिसके पास पब्लिक का पैसा है। मनी रेज क्या है। मनी कहाँ से रेज किया हुआ है, प्राइवेट फंडर से रेज किया हुआ है। प्राइवेट फंडर क्यों फंड करता है किसी चीज को, उसके पास तो अथाह पैसा है। हमलोग क्यों इन्वेस्ट करते हैं, ग्रोथ फंड में डालते हैं अपना पैसा। क्योंकि हमारा पैसा सेव रहे और बढ़ता रहे। ताकि भविष्य में काम आये। एक मिडिल क्लास आदमी का फंडा ये है। जो बड़ा आदमी है, वो भी इसी फंडे पे चलता है। वो अपना अथाह पैसा उठा के डाल देता है कि चलो एक कंपनी बनाओ। उसे दुगना करो। उस पैसे से स्टूडियो बनता है। स्टूडियो का डायरेक्टिव क्या है, स्टूडियो कौन चलाता है? कुछ लोग हैं, उनको इतनी सैलरी मिल रही है, जितनी जिंदगी में उन्होंने देखी नहीं है। उनको इतनी सैलरी तभी मिलती रहेगी, जब स्टूडियो का बिजनेस बढ़ेगा। तो बिजनेस बढ़ाने के लिए वो वैसा ही सिनेमा बनाएंगे, जो पैसा कमा कर देगा, बिजनेस बढ़ाएगा। ताकि उनकी नौकरी बनी रहे। चीजें तभी चेंज होंगी, जब आडिएंस देखना शुरू करेगी। अभी थोड़ा सा चेंज आया जिसका परिणाम है की 'विकी डोनर' और 'गैंग ऑफ वासेपुर' जैसी फिल्में चली।[31] यह सही है कि गाँव आज बदल गए हैं। गंवईपन बदल गया है। किसान मजदूर हो गए हैं। लोहार पलम्बर बन गया है। कुम्हार माली तो धोबी इस्त्रीसाज हो गया ! सब का पलायन शहर की तरफ हुआ। शहर की आबादी दुकानों पर फूल तो देखती है परन्तु जड़ वाले, कांटे वाले उसके पौधे नहीं देख पाती है। फिल्म बनाने से लेकर फिल्मों में काम करने वाले तक, सभी का सम्बन्ध गाँव से टूटा हुआ है। ऐसे में यदि कभी-कभार कोई कहानी गाँव पर लिखी जाती है और हिम्मत करके उसे कोई निर्माता बना भी लेता है तो उसके पात्र दर्शकों में वो भाव,स्नेह, वो लगाव पैदा नहीं कर पाते हैं जो हमें गाँव तक ले जाए। किसान (2009)[32] फिल्म को देख कर ऐसा ही प्रतीत होता है। दिलीप कुमार, सुनील दत्त, राज कपूर, राजेंद्र कुमार, आशा पारीख, वैजयंती माला, नरगिस, जया भादुरी, सायरा बानो, नूतन, स्मिता पाटिल जैसे तमाम कलाकार जितनी गहराई से गाँव के जीवन को पर्दे पर ला पाते थे वो आज के कलाकार नहीं कर पा रहे हैं। दुर्भाग्य कि हम लोगों के मन में गाँव के लिए सरोकार पैदा नहीं कर पा रहे हैं। गाँव आज अव्यवस्थित जिन्दगी का पर्याय बन गया है जिसे न कोई बेचना चाहता है और न कोई खरीदना। बस सब इससे भाग रहे हैं। गनीमत है कि सब शहर तक ही भाग रहे हैं। इन्तजार कीजिये, उस दिन का जब फिर से शहर गाँव की तरफ भागेगा।

**साहित्य का पुनरावलोकन** : सारी (1995)[33] ने 'फिल्म और सामाजिक विकास' पर आधारित अपने अध्ययन में यह पाया की हिंदी फ़िल्मों ने अपने प्रारम्भिक वर्षो में भारतीय जीवन के ग्रामीण परिवेश पर विशेष ध्यान दिया। यह बड़ा ही जीवन्त और पारम्परिक पहलू था। नब्बे के दशक के मध्य से फिल्मों का सारा ध्यान शहरी कथानकों की ओर दिया जाने लगा।

**भाखड़ी** (1995)[34] ने 'सिनेमा का समाज पर प्रभाव' पर आधारित अपने अध्ययन में समाज में हिंदी सिनेमा की सकारात्मक भूमिका का पता लगाने का प्रयास किया है जिसके अन्तर्गत सिनेमा कितना मनोरंजन, ज्ञान और सूचनाओं को बढ़ाता है। समाज के ज्वलंत मुद्दों पर लोगों को किस तरह जागृत करता है या सामाजिकता अथवा दर्शकों को किस सीमा तक तनाव मुक्त करता है, इस पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही साथ समाज पर सिनेमा के पड़ने वाले नकारात्मक असर की भी जांच का प्रयत्न किया गया है, जैसे गलत मूल्यों की शिक्षा देना, सैक्स, सामाजिक हिंसा और अपराध को बढ़ावा देना, जिन्दगी की हकीकत

और समस्याओं से दूर स्वप्निल संसार की ओर ले जाना आदि।

**पारख** (2006)[35] ने 'हिन्दी सिनेमा का समाजशास्त्र' में लिखा है फिल्मकारों को सपनों का सौदागर कहा जाता है। फिल्म के माध्यम से सपने बेचना अपने में कोई सकारात्मक मूल्य नहीं है जब तक कि यह साफ न हो कि सपने किस तरह के हैं और जनता पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा। हमारे यहाँ लोग दिन-भर की कमाई का 50 प्रतिशत खर्च करके ऐसी फ़िल्में देखने जाते हैं जिसमें अपना कुछ नहीं होता है। सिनेमाई पर्दा अगर सही अर्थों में सत्य को उद्घाटित करता तो आज वह विश्व में क्रान्ति की आग जला सकता था किन्तु फिलहाल चैन की नींद सो सकते हैं क्योंकि सिनेमा को पूरी मात्रा में अफीम खिलाकर जंजीर में जकड़ कर रखा गया है। इन फिल्मों से सरकार को टैक्स मिल रहा है और निर्माता धन कमा रहा है। यह खेल बड़े ही लोकतान्त्रिक ढंग से चल रहा है बाजार और सत्ता के गठबंधन से।

**वगऍश** (2013)[36] ने 'हिन्दी सिनेमा के बदलते परिदृश्य एक आलोचनात्मक अध्ययन' में लिखा है की पहले जब हमारा समाज ग्राम केन्द्रित था, तो फिल्मों में भी गाँव नजर आते थे। उस समय जमींदार फिल्मों के नायक हुआ करते थे। परवर्ती समय में यह स्थान स्मगलरों ने ले लिया। इसके बाद खलनायकों के रूप में भ्रष्ट नेता दिखाए जाने लगे।

**अध्ययन के उद्देश्य**

1. स्वतंत्रता के बाद हिन्दी फिल्मों में ग्रामीण समाज के वास्तविक स्वरुप का अध्ययन करना।
2. हिन्दी सिनेमा के लिए गाँव और गाँव के लिए सिनेमा के अंतर्संबंधों का अध्ययन करना।
3. हिन्दी सिनेमा में सामाजिक सरोकार का अध्ययन करना।

**शोध अभिकल्प :** प्रस्तुत शोध 'भारतीय सिनेमा में ग्रामीण परिवेश का चित्रण' की शोध पद्धति की प्ररचना 'वर्णनात्मक' है। अध्ययन के अंतर्गत भारतीय ग्रामीण परिवेश से सम्बंधित मुद्दों एवं उनकी समस्याओं को गुणात्मक रूप से विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है।

**शोध विधि :** प्रस्तुत शोध विषय 'भारतीय सिनेमा में ग्रामीण परिवेश का चित्रण' में शोधकर्ता ने विषय-वस्तु विश्लेषण विधि का प्रयोग किया गया है। औद्योगिक समाज में संचार एक जटिल प्रतिरूप में पाया जाता है, क्योंकि संचार अप्रत्यक्ष होने के कारण जनसंचार के साधन, जैसे समाचार पत्र, टेलीविजन, रेडियों, इन्टरनेट, फिल्म इत्यादि महत्वपूर्ण हो गए हैं। वास्तव में तकनीकी विकास ने जनसंचार के साधनों को विकसित करने में सहायता दी है। विषय-वस्तु विश्लेषण का प्रयोग केवल संचार प्रकट विषय-वस्तु के लिए ही किया जाता है।

**आंकड़ा संकलन :** प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने आंकड़ों के संकलन हेतु केवल द्वितीयक स्त्रोत का प्रयोग किया है। द्वितीयक स्त्रोत में शोधकर्ता को नए सिरे से सूचनाएं एकत्रित करने की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि पहले से उपस्थित तथ्यों के आधार पर ही निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया जाता है। इस दृष्टि से द्वितीयक सर्वेक्षण की प्रकृति एक बड़ी सीमा तक अनुभव सिद्ध न होकर सैद्धांतिक ही होती है। शोध संकलन में द्वितीयक स्तोत्र के अन्तर्गत फिल्मों से सम्बंधित विभिन्न पुस्तकों, ग्रंथों, समाचार पत्रों में प्रकाशित लेख तथा पत्रिकाएं, इन्टरनेट द्वरा प्राप्त वेबसाइट से सूचनाएं, विषय से सम्बंधित फिल्मों का अवलोकन कर उसके तथ्यों को समाहित किया गया है।

**निष्कर्ष :** सिनेमा की उत्पत्ति एक सोच के गर्भ से होती है जिस सोच का अपना एक धरातल होता है, अपना एक वातावरण होता है। आज के फिल्म निर्माता अधिकतर शहरी क्षेत्र से आते हैं। उनका जन्म, उनकी शिक्षा, उनके समझ का विस्तार शहरी जलवायु में हुआ होता है। जहाँ सब कुछ क्षणिक है। नाम ! काम ! पहचान ! सब कुछ क्षणिक !! गाँव से उनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता है और शहर में रहते हुए गाँव से आये हुए अपने समकक्ष लोगों से मुलाकात भी उन्हें गाँव कि अच्छी छवि नहीं दिखाती है। ऐसे में उनकी सारी फिल्में शहर और शहरी जीवन को लेकर ही बनती हैं। सिनेमा एक ऐसा भावनात्मक व्यवसाय है जो एकतरफा कभी नहीं होता है। बीते कुछ समय में दर्शकों की सामाजिक पृष्ठभूमि बदल गई है। स्वतंत्रता के 73 साल बाद भी गाँव की स्थिति नहीं बदली। बल्कि और ज्यादा बदत्तर हो गई है। जहाँ रह रहे लोगों की नाउम्मीदी और निराशा कि सुगबुगाहट सिनेमा जगत को पहले ही हो गयी। 'गाँव नहीं बदलेगा' इस सोच का समर्थन अब वह सिनेमा-जगत भी करने लगा जिसने गाँव को सुधारने के लिए भूतकाल में खूब प्रयास किये। गाँव से लोगों के पलायन ने उसकी सिर्फ जरूरत ही नहीं उसके सरोकार को बदल दिया। जहाँ दो वक्त कि रोटी नहीं। सुकून भरी जिन्दगी नहीं उसके बारे में और कितना

सोचना। छोड़ो ! और जहाँ के हो वही के हो कर जी लो। इस सोच ने दर्शक के दर्शन भी बदल दिए और आज की फिल्में इस सामाजिक बदलाव को प्रमाणित करती हैं। पैसा हर चीज को प्रभावित करता है। सपने भी इससे अछूते नहीं हैं जो सिनेमा जगत का मुख्य घटक हैं। सपने देखने का काम हमेशा से दर्शक और फिल्म निर्माता साथ-साथ करते आये हैं। दर्शक व्यक्तिगत सपने देखता रहा तो फिल्म निर्माता सामाजिक सरोकार, राष्ट्रीय महत्व और मानवीय सम्बन्ध के सपने देखता रहा। परन्तु पिछले कुछ वर्षो से एक साथ देखे-जाने वाले एक जैसे भी हो गए हैं। अब निर्माता भी दर्शक की भांति व्यक्तिगत सपने देखने लगा है। व्यक्तिवादिता हर जवाबदेही से मुक्त कर देती है और इस मुक्ति का प्रारंभ उस भूमंडलीकरण के दौर से हुआ जो देश ने 1990 के बाद अपनाया।

**अथाह** पैसे का प्रवाह फिल्म जगत में हुआ, जिस पैसे ने अपने पहले असर से ही फिल्म जगत को फिल्म उद्योग बना दिया। फिर तो धीरे-धीरे फिल्मों की सारी कथा, व्यथा पैसे के इर्द-गिर्द घूमने लगी। निर्मातों में पैसे कमाने की होड़ लगी तो आदर्श कहीं पीछे छूट गए। बाद में सामाजिक जिम्मेदारी भी त्याग दी गयी ।

**दूसरी** तरफ बदलती अर्थव्यवस्था की दौड़ा-दौड़ी में दर्शकों की जेबें भी भरी। नजरों को सपनों के पंख लगे। घर से निकलने की मजबूरी में सारे भय क्या खत्म हुए कि फिर तो हर दायरे तोड़े जाने लगे। सरहद के दायरे। सम्बन्ध के दायरे। सोच के दायरे। समझ के दायरे। समग्र रूप से गाँव और गंवईपन के दायरे, जिसका पूरा समर्थन हमारी फिल्मों ने किया। वितरक अब बनी फिल्में नहीं चलाते हैं बल्कि फिल्में चलने के लिए बनाते हैं। देश में साल भर में हजारों फिल्में बनती हैं लेकिन दर्शक तक बहुत ही कम फिल्में पहुँच पाती हैं जिसमें से ज्यादातर वो फिल्में होती है जिसे खुद वितरक या प्रदर्शक (सिनेमा हाल के मालिक) ने बनाया हो। तुम बनाओ और हम दिखाएँ ! तुम कुछ भी बनाओ और हम अपना सिनेमा हाल तुडवाएं ! ऐसा नहीं होगा ! अब हम ही बनायेंगे और हम ही दिखायेंगे। सिनेमा हॉल मालिक और वितरक की ऐसी सोच ने फिल्म उद्योग से गंभीर, संवेदनशील निर्माता निर्देशकों को अलग कर दिया। शोध के निष्कर्ष में हमें ऐसे कई मुद्दे मिले जो वर्तमान सिनेमा में गाँव नहीं होने के मुख्य कारण हैं। 1. निर्माता और दर्शक की सामाजिक पृष्ठभूमि का बदलाव 2. फिल्म बनाने वालों और देखने वालों का आर्थिक पहलू और 3. फिल्म प्रदर्शन से जुड़ी लोकतान्त्रिक व्यवस्था का अभाव।

## संदर्भ


1. पंड्या, मिहिर, 'शहर और सिनेमा वाया दिल्ली', वाणी प्रकाशन, 2012, पृ. 20
2. खिलनानी, सुनील, 'भारतनामा', अनुवाद-अभय कुमार दुबे, राजकमल प्रकाशन, 2001, पृ. 141,
3. Barjatya, Ajit Kumar.(Producer), Barjatya, Sooraj (Director).(1994).Ham Aapke Hai Koun [Motion Picture].India
4. मजूमदार, रंजनी, बाम्बे सिनेमाः आर्काइव ऑफ़ द सिटी, परमानेंट ब्लॉक, पहला संस्करण, 2007,पृ.9
5. Khan, Mehboob.( Producer&Director).(1957). Mother India [Motion Picture]. India
6. Kapoor, Raj. (Producer), Mitra, Sombhu (Director).(1956).Jagte Raho [Motion Picture]. India
7. Ibid
8. Rehni, M.M.(Producer), Avadhoot. V. (Director), (1959).Duniya Na Mane [Motion Picture].India
9. Shantaram, V.(Producer & Director), (1957), Do Aankhen Barah Haath [Motion Picture]. India
10. Anand, Chetan. ( Producer & Director), (1964), Haqeeqat [Motion Picture].India
11. Mirchandani, Harkishen R. (Producer), Kumar, Manoj. (Director), (1967), Upkar [Motion Picture]. India
12. Kumar, Manoj. (Producer & Director),(1970), Purab Aur Paschim[ Motion Picture]. India
13. Khosla, Lekhraj. (Producer), Khosla,Ra.(Director), (1971), Mera Gaon Mera Desh [Motion Picture]. India
14. Sippy,G.P.(Producer),Sippy, Ramesh. (Director), (1975), Sholay [Motion Picture].India
15. Barjatya, Tarachand. (Producer), Moonis, Govind. (Director), (1982), Nadiya Ke Par [Motion Picture]. India
16. Bijlani, Lalit.M.(Producer), Benegal, Shyam. (Director), (1974), Ankur [Motion Picture].India
17. Gujarat Co-operative Milk Marketing Federation Ltd.(Producer), Benegal, Shyam (Director), (1976) Manthan [Motion Picture].India
18. Chopra,B.R.(Producer & Director), (1957), Naya Daur [Motion Picture].India
19. Kumar, Dilip.(Producer),Bose, Nitin(Director), (1961), Ganga Jamna [Motion Picture].India
20. Prasad,L.V.(Producer),Rao,Adurthi Subba.(Director), (1967), Milan [Motion Picture].India
21. Tirulokchandar,A.C.(Producer & Director),(1982), Teri Kasam [Motion Picture].India

22. Prakash.J.Om.(Producer), Jhalani, Raghunath. (Director), (1969), Aya Sawan Jhoom Ke [Motion Picture].India
23. Kumar, Manoj. (Producer & Director),(1970), Purab Aur Paschim[ Motion Picture]. India
24. Muthuswamy,T.S.( Producer),S Bhimsingh,A.( Director),(1970), Gopi [ Motion Picture]. India
25. Kapoor, Raj.( Producer & Director), (1982), Prem Rog [ Motion Picture].India
26. Kapoor, Randhir.( Producer), Kapoor, Raj. (Director), (1985) Ram Teri Ganga Maili [Motion Picture].India
27. Kapoor, Raj.( Producer & Director), (1949), Barsaat [Motion Picture].India
28. Shukla, Atul.(Producer), Kashyap, Anurag.( Director), (2012), Gangs of Wasseypur [ Motion Picture].India
29. Balaje,Suresh.(Producer),Priyadarshan(Director), (2006), Malamaal Weekly [Motion Picture].India
30. Screwvala,Ronnie.(Producer), Benegal, Shyam. (Director), (2008), Welcome to Sajjanpur [Motion Picture].India
31. Kashap, Anurag.(2011). Retrived from Mohallalive.com
32. Screwvala, Ronnie.(Producer), Sira, Pneet.(Director), (2009), Kisaan [ Motion Picture].India
33. सारी, अनिल 'फिल्म और सामजिक विकासः हिन्दी सिनेमा पर एक नजर', 1995 Retrieved from http://yojana.gov.in/CMS/(S(kienev3ucj3vsnnssehhrjyv))/pdf/Yojana/Hindi/1995/AUG%201995.pdf
34. भाखड़ी, साबित, 'सिनेमा का समाज पर प्रभावः एक अध्ययन दिल्ली महानगर में' 1995 Retrieved from http://yojana.gov.in/CMS/(S(kienev3ucj3vsnnssehhrjyv))/pdf/Yojana/Hindi/1995/AUG%201995.pdf
35. पारख, जवरीमल्ल 'हिंदी सिनेमा का समाजशास्त्र', ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, 2006
36. वर्गेश, वरुण 'हिंदी सिनेमा का बदलता परिदृश्य एक आलोचनात्मक अध्ययन' (पीएचडी थीसिस) 2013 Retrieved from https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/113631

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2020

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# जनजातीय क्षेत्र में नक्सलवाद के प्रभाव का समाजशास्त्रीय अध्ययन
## (छत्तीसगढ़ राज्य के कांकेर जिले के दुर्गकोंदल विकासखण्ड के विशेष संदर्भ में)

❑ डॉ. हेमलता बोरकर वासनिक

**भारत** विविधताओं भरा देश है यहाँ विभिन्न जाति, समुदाय एवं धर्म के लोग निवास करते हैं। भारत अपनी इन्हीं विविधताओं भरी संस्कृति के कारण संपूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। भारत की विविधताओं को दर्शाने में यहां की जनजातीय संस्कृति की भी बहुत बड़ी भूमिका है। भारत में कुल जनसंख्या का लगभग 6 प्रतिशत जनजातियाँ निवास करती हैं। छत्तीसगढ़ राज्य में लगभग 8 प्रतिशत जनजातियाँ निवास करती हैं।[1] बस्तर संभाग का एक जिला कांकेर है, जिसका दुर्गकोंदल विकासखण्ड जनजाति बाहुल्य वाला क्षेत्र है। ये जनजातियाँ वर्तमान में नक्सल प्रभावित क्षेत्र के अंर्तगत आती हैं। छत्तीसगढ़ राज्य में 1980 के दशक में नक्सलवाद का उदय सरगुजा एवं बस्तर में हुआ। छ.ग. राज्य के जनजातीय क्षेत्रों का उपयोग माईनिंग (खदान) एवं उद्योग की स्थापना हेतु किया जाने लगा है इससे जनजातियों का कृषि भूमि का अधिग्रहण हो रहा है। छत्तीसगढ़ राज्य में 2005 के पूर्व नक्सल प्रभावित जिलों की संख्या 10 थी जो बढ़कर वर्तमान में 18 हो गयी है इसलिए यह वर्तमान समाज की गंभीर समस्या बन गयी है।

भारत एक जनसंख्या बाहुल्य देश है। 2011 की जनगणनानुसार इस देश में लगभग 121 करोड़ जनसंख्या निवास करती है। यहाँ विविध समुदाय के लोग निवास करते हैं। जनजाति समुदाय भी इनमें से एक है। भारत में लगभग संपूर्ण जनसंख्या का 6 प्रतिशत हिस्सा जनजातियों का है। छत्तीसगढ़ राज्य भारत का 26वाँ राज्य है यहाँ लगभग 8 प्रतिशत जनसंख्या जनजातियों की है। ये जनजातियाँ प्राचीन काल से अपने आखेट एवं कठोर परिश्रम के लिये प्रसिद्ध हैं। 1967 के पूर्व शिक्षा एवं जागरूकता के अभाव के कारण भूस्वामियों द्वारा इनकी जमीन को हड़प लिया जाता था तथा इनसे बंधुआ मजदूरी करवायी जाती थी जिसके कारण उनमें आक्रोश की भावना पनपी और यहीं से नक्सलवाद का जन्म हुआ। जनजातियाँ कठोर परिश्रम करने के बावजूद आज भी निम्न स्तर का जीवन जीने को लाचार हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् इनके लिए कई योजनाएँ बनायी गयी हैं फिर भी ये शिक्षा, स्वास्थ्य, एवं जागरूकता के दृष्टिकोण से पिछड़ी हुई हैं। छ.ग. राज्य मानव विकास सूचकांक की दृष्टि से सबसे निम्न स्थान पर है। जीवन स्तर, स्वास्थ्य स्तर, स्वच्छता, हाइजिन की दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ है। छत्तीसगढ़ राज्य में 1980 के दशक में नक्सलवाद का उदय सरगुजा एवं बस्तर में हुआ। छ.ग. राज्य के जनजातीय क्षेत्रों का उपयोग माईनिंग (खदान) एवं उद्योग की स्थापना हेतु किया जाने लगा है इससे जनजातियों का कृषि भूमि का अधिग्रहण हो रहा है। छत्तीसगढ़ राज्य में 2005 के पूर्व नक्सल प्रभावित जिलों की संख्या 10 थी जो बढ़कर वर्तमान में 18 हो गयी है इसलिए यह वर्तमान समाज की गंभीर समस्या बनकर उभरा है। यह आलेख प्राथमिक एवं अनुभवजन्य स्रोतों पर आधारित है जिसमें जनजातियों के सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति पर नक्सलवाद के प्रभाव को जानने का प्रयास किया गया है।

**जनजातियाँ** अपने कठोर कार्यों एवं संस्कृति को विद्यमान बनाये रखने के लिये प्रसिद्ध हैं। ये जनजातियाँ प्राचीन काल से अपने आखेट एवं कठोर परिश्रम के लिये प्रसिद्ध हैं। जनजातियाँ कठोर परिश्रम करने के बावजूद आज भी पिछड़ी हुई हैं। आज भी जनजातियाँ निम्न स्तर का जीवन जीने को लाचार हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् इनके लिए कई योजनाएँ बनायी गयी हैं फिर भी ये शिक्षा, स्वास्थ्य, एवं जागरूकता के दृष्टिकोण से पिछड़ी हुई हैं। 18 वीं शताब्दी के पूर्व शिक्षा एवं जागरूकता के अभाव के कारण भूस्वामियों द्वारा इनकी जमीन को हड़प लिया जाता था तथा इनसे बंधुआ मजदूरी करवायी जाती थी जिसके कारण उनमें आक्रोश की भावना पनपी और यहीं से नक्सलवाद का जन्म हुआ। प्रारंभिक चरण में नक्सलवाद आंदोलन का मुख्य उद्देश्य गरीब किसानों को भूस्वामियों के चंगुल से छुड़ाकर सामाजिक न्याय दिलाना था अर्थात् नक्सलवाद आंदोलन का प्रादुर्भाव सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने के दृष्टिकोण से किया गया था। प्रारंभिक चरण में चारू मजूमदार के नेतृत्व में नक्सलवाद आंदोलन मार्क्स एवं लेनिन के अहिंसात्मक सिद्धांत पर कार्य करता था लेकिन वर्तमान में यह अपने मार्ग से

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

भटक गया है अब यह हिसां पर आधारित आंदोलन बनकर रह गया है।

**साहित्य समीक्षाः** प्रमुख समाजशास्त्री **वेरियर ऐल्विन** ने[2] 'दी ट्राइब्स वर्ल्ड्स ऑफ वेरियर ऐल्विन' में जनजातियों का अध्ययन किया और बतलाया कि निम्न आर्थिक स्थिति के कारण ये शिक्षा ग्रहण करने में रूचि नहीं लेते। गरीबी के कारण अपने बच्चों को ये बचपन से ही आर्थिक उपार्जन की शिक्षा देते हैं जिससे ये अपना भरण पोषण स्वयं कर सकें। **रसेल व हीरालाल रायबहादुर**[3] ने 'ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑफ सेंट्रल इण्डिया' में मध्यभारत के जंगलों में रहने वाले जनजातियों का अध्ययन किया है, जिसमें उन्होंने बस्तर के माड़िया जनजातियों का अध्ययन किया है तथा इस तथ्य की पुष्टि की है। **गुप्ता**[4] ने अपनी कृति 'द नक्सलाइट मूवमेण्ट' में नक्सलवाद आंदोलन का विस्तृत अध्ययन किया है तथा भारत में नक्सलवाद के उदय के कारणों की विवेचना कर यह बतलाया कि जनजातियों द्वारा सामाजिक परिवर्तन हेतु नक्सलवादी विचारधारा को अपनाया है। **पाण्डे**[5] ने बिहार राज्य के नक्सलवादी आंदोलन का विस्तृत अध्ययन किया है तथा नक्सलवाद से संबधित भ्रातियों को दूर करने का प्रयास किया है, इनका अध्ययन नक्सल वायलेंस : ए सोशियोलॉजिकल स्टडी पर आधारित है। **सिंह**[6] ने अपनी कृति 'द नक्सलाइट मूवमेण्ट इन इण्डिया', मे बतलाया कि गरीबी बेरोजगारी, भुखमरी एवं भ्रष्टाचार तथा शासन की उपेक्षा के कारण नक्सलवादी आंदोलन का उदय हुआ है। **नदीम हसनैन**[7] ने ''जनजातीय भारत'' में क्षेत्रीय परिवेश में जनजातियों की समस्या का वर्णन किया है एवं यह बतलाया है कि जनजातियाँ किन समस्याओं से प्रमुख रूप से ग्रसित हैं। **पी.सी. जोशी**[8] ने अपनी कृति 'लैण्ड रिफार्मस इन इण्डिया : ट्रेंडस एण्ड पर्स्पेक्टिव' में इस तथ्य को बतलाने का प्रयास किया है कि किन परिस्थितियों में जनजातीय कृषक सामाजिक न्याय के लिए आंदोलन हेतु प्रेरित हुए। **बेला भाटिया**[9] ने बिहार में नक्सलवाद आंदोलन पर शोध कार्य करके यह बतलाने का प्रयास किया है कि जनजातीय समुदाय सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक असमानताओं के कारण नक्सलवादी आंदोलन से जुड़ते जा रहे हैं। **केन्डी जोनाथन एवं किंग लावरेंस**[10] 'आदिवासी माओस्ट्स एण्ड इनसर्जेन्सी इन दि सेन्ट्रल इंडियन ट्राइवल बेल्ट' विषय पर शोध प्रकाशित किया है। इन्होनें दंतेवाड़ा जिले के आदिवासी समुदाय का गहन विश्लेषण किया है। जनजातियाँ औपनिवेशिक विचारधारा की विरोधी हैं क्योंकि इससे इनका क्षेत्र, भूमि, प्राकृतिक संसाधनों पर से नियंत्रण खत्म हो जाता है और सरकार का नियंत्रण हो जाता है। जनजातियाँ प्राकृतिक संसाधनों जल, जंगल, जमीन एवं खनिज पदार्थों पर अपना अधिकार मानती है एवं वे मार्क्सवाद, वेबरवाद एवं दुर्खिम के सिद्धांतों का पालन करती है। **जैकब, कैथरीन एवं इमेफा**[11] 'इंडियन स्टेट काउण्टर सर्जरी पालिसी : ब्रीफ हिस्टारीकल समरीस' में जनजातियों का विस्तृत अध्ययन किया तथा पाया कि छ.ग. राज्य मानव विकास सूचकांक की दृष्टि से सबसे निम्न स्थान पर है जीवन स्तर, स्वास्थ्य स्तर, स्वच्छता, हाइजिन की दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ है। सूचना प्रौद्यौगिकी में भी इसका खराब प्रदर्शन है। इस राज्य में मृत्यु दर का ग्राफ भी अधिक है। छत्तीसगढ़ राज्य में 1980 के दशक में नक्सलवाद का उदय सरगुजा एवं बस्तर में हुआ। छ.ग. राज्य के जनजातीय क्षेत्रों का उपयोग माईनिंग (खदान) एवं उद्योग की स्थापना हेतु किया जाने लगा है इससे जनजातियों की कृषि भूमि का अधिग्रहण हो रहा है। प्राकृतिक संसाधन से उनका नियंत्रण खत्म हो रहा है। परिणामस्वरुप जनजातियाँ नक्सल गतिविधियों में शामिल हो रही हैं तथा नक्सली इनकी मजबूरी का फायदा उठाकर इनकी मूलभूत सुविधाओं को इनके पास पहुंचने से रोक रहे हैं ताकि ये जनजातियॉ उनके नियंत्रण में बनी रहें एवं वे इन क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व बनाये रखे।

**अध्ययन का उद्देश्य –** जनजातियों के सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति पर नक्सलवाद के प्रभाव को ज्ञात करना।

**अध्ययन पद्धति–** अध्ययन पद्धति को चार भागों में वर्गीकृत किया गया है –

**अ. अध्ययन क्षेत्र का संक्षिप्त परिचय**

1. सटेली – दुर्गकोंदल से सटेली ग्राम पंचायत की दूरी लगभग 15 किमी है यहॉ लगभग 358 जनजाति परिवार निवास करते हैं।
2. महेंद्रपुर ग्राम – दुर्गकोंदल से महेंद्रपुर ग्राम की दूरी लगभग 15 किमी है। यहॉ पर कुल 255 जनजाति परिवार हैं।
3. राउरवाही ग्राम पंचायत – राउरवाही ग्राम पंचायत दुर्गकोंदल विकासखण्ड से लगभग 15 किमी की दूरी पर स्थित है , यहॉ लगभग 916 जनजाति परिवार

रहते हैं।

**ब. उत्तरदाताओं का चयन** – प्रस्तुत अध्ययन हेतु सटेली ग्राम से 19 ,महेंद्रपुर से 19 एवं राउरवाही से 21 अर्थात् कुल 59 उत्तरदाताओं का चयन उद्धेश्य पूर्ण निदर्शन के द्वारा किया गया है।

**स. तथ्य संकलन हेतु प्रयुक्त उपकरण एवं प्रविधि** – प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार-अनुसूची उपकरण का उपयोग किया गया है इसके अलावा असहभागी अवलोकन प्रविधि द्वारा तथ्यों का संकलन किया गया है।

**द. प्राप्त तथ्यों का वर्गीकरण, सारणीयन, विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण** – प्राथमिक स्रोत्रों से प्राप्त तथ्यों का वर्गीकरण, सारणीयन किया गया है तत्पश्चात् प्राप्त तथ्यों का तुलनात्मक विश्लेषण कर प्रस्तुतीकरण करने का प्रयास किया गया है।

**प्राथमिक स्रोत्रों से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण**

**सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति पर नक्सलवाद का प्रभाव** : डी. एन. मजूमदार[12] ने अपने आलेख 'ट्राइबल कल्चर्स एण्ड एकल्चरेशन' में बतलाया है कि जनजातियॉ सामान्य रूप से ऋणग्रस्तता, गरीबी, मद्यपान कुपोषण तथा नक्सलवाद की समस्या से जूझ रहीं हैं। श्यामाचरण दुबे[13] ने अपने अध्ययन जनजातीय सामुदायिक विकास कार्यक्रम के मूल्यांकन में बतलाया कि एकीकृत जनजाति विकास कार्यक्रम का समुचित ढंग से क्रियान्वयन नहीं होने के कारण इसका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं इसी कारण ये सामाजिक-आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए हैं।

**किसी भी** समुदाय का विकास वहाँ की सामाजिक संरचना एवं सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करता है। किसी भी समुदाय की सामाजिक संरचना व्यक्तियों के आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित होती है जिस समुदाय के व्यक्तियों की जितनी अधिक आवश्यकताएॅ होती हैं वहाँ की सामाजिक संरचना उतनी अधिक विस्तृत एवं विकसित होती है। चूँकि जनजाति समुदाय की अनिवार्य आवश्यकताएँ सीमित हैं इसलिये वहाँ की सामाजिक संरचना भी ठीक वैसी ही है। सामाजिक व्यवस्था को निर्धारित करने वाले तत्व व्यक्ति, सांस्कृतिक प्रतिमान एवं सामाजिक मूल्य होते हैं। प्रत्येक समुदाय का अपना सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिमान एवं मूल्य होता है। प्रत्येक समुदाय का व्यक्ति उस सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिमान एवं मूल्यों के अनुसार आचरण व्यक्त करता है। यही आचरण सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में सहायक होती है। जनजाति समुदाय के व्यक्ति अपने सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिमानों एवं मूल्यों के अनुकूल आचरण करते हैं इससे वहॉ की सामाजिक व्यवस्था में संतुलन बना रहता है, वे किसी भी प्रकार का ऐसा आचरण नहीं करते जिससे सामाजिक व्यवस्था में असंतुलन उत्पन्न हो, जो व्यक्ति यदि ऐसा करता है उसके लिये दण्ड का प्रावधान निर्धारित होता है। दण्ड के डर से व्यक्ति सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों एवं प्रतिमानों के अनुसार आचरण व्यक्त करते हैं परंतु वर्तमान में जनजाति क्षेत्रों एवं समुदायों में बाहरी व्यक्तियों का हस्तक्षेप भी दिखाई दे रहा है इसी कारण से ये अपने सामाजिक मूल्यों एवं प्रतिमानों के अलावा पश्चिमी सभ्यता का भी अनुकरण करने लगे हैं। जनजातियों की परंपरागत वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन एवं आचार-विचार में थोड़ा आधुनिक सभ्यता का असर देखा जा सकता है। जनजातियाँ अब अपने परंपरागत उत्सव के अलावा दूसरे समुदाय के उत्सवों को भी मानने लगे हैं लेकिन जो इनका परंपरागत व्यवसाय कृषि, पशुपालन एवं वनोपज संग्रह है उसे ये आज भी अपनाये हुए हैं। जनजाति समुदाय में अपने समुदाय के प्रति आज भी हम की भावना विद्यमान है ये अपने समुदाय के सदस्यों के प्रति आज भी आदर एवं प्रेम की भावना रखते हैं तथा अपने समुदाय की रक्षा के लिये संघर्षरत हैं। यही कारण है कि स्वतंत्रता के 70 सालों के बावजूद जनजातीय समुदाय अपने अस्मिता की रक्षा के लिये संघर्ष कर रहा है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास है इस अध्ययन में जनजातियों की सामाजिक संरचना एवं सामाजिक व्यवस्था में नक्सलवाद के प्रभाव से संबंधित तथ्यों को बतलाने का प्रयास किया गया है।

**तालिका क्रमांक 1**
**समुदाय में किए जाने वाले कार्य के संबंध में जनजातियों की राय**

| राय | हाँ | | नहीं | | योग | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | आवृत्ति | प्रतिशत | आवृत्ति | प्रतिशत | आवृत्ति | प्रतिशत |
| गाँव में बिना किसी डर के निवास करना | 59 | 100 | - | - | 59 | 100 |
| सामाजिक उत्सव एवं त्यौहार बिना किसी डर के मनाना | 59 | 100 | - | - | 59 | 100 |
| गाँव एवं गाँव से बाहर स्वच्छंद रूप से बिना किसी डर से आना-जाना, घूमना फिरना करना | 59 | 100 | - | - | 59 | 100 |
| गाँव में सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन होना | 59 | 100 | - | - | 59 | 100 |
| सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेना | 59 | 100 | - | - | 59 | 100 |
| बिना किसी डर के राष्ट्रीय पर्व में झण्डा फहराया जाना | 59 | 100 | - | - | 59 | 100 |
| जनजाति सामाजिक संगठन में स्वतंत्र रूप से भाग लेना | 59 | 100 | - | - | 59 | 100 |

**जनजाति** क्षेत्र में नक्सलवाद के प्रभाव को जानने के लिये जनजाति परिवार के मुखिया उत्तरदाता से यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या वे गॉव में बिना किसी डर के निवास करते हैं? क्या वे अपने गॉव एवं गॉव से बाहर स्वच्छंद रूप से बिना किसी डर से आना-जाना, घूमना फिरना करते हैं? के संबंध में शत् प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बिना किसी डर के गॉव एवं गॉव से बाहर घूमने-फिरने एवं आने-जाने को स्वीकार किया है वे कहते हैं कि उन्हें किसी भी प्रकार का भय महसूस नहीं होता है। हालांकि अध्ययन क्षेत्र के रहवासी शाम होते ही अपने चूल्हा चौका एवं बाहर का काम निपटा लेते हैं एवं रात्रि भोजन करने के बाद शहर की अपेक्षा जल्द ही सो जाते हैं। अध्ययनगत जनजातीय परिवारों से बिना किसी डर के सामाजिक उत्सव एवं त्यौहार को मानने के संदर्भ में तथ्य संकलित किये जाने से इस तथ्य कि पुष्टि हुई कि वे अपना सामाजिक उत्सव एवं त्यौहार बिना किसी डर के मनाते हैं उन्हें किसी भी प्रकार का नक्सली भय नहीं रहता है। गाँव में जनजातीय सामाजिक संगठन के होने के संबंध में शत् प्रतिशत उत्तरदाताओं ने होना बताया है तथा वे जनजातीय सामाजिक संगठन में स्वतंत्र रूप से भाग भी लेते हैं।

**तालिका क्रमांक 2**
**उत्तरदाताओं की जनजातीय सामाजिक संगठन में सहभागिता का स्वरूप**

| सहभागिता का स्वरूप | आवृत्ति | प्रतिशत |
|---|---|---|
| अध्यक्ष | 2 | 03.4 |
| सदस्य | 6 | 10.2 |
| आमजनता | 51 | 86.4 |
| योग | 59 | 100 |

**जनजाति** सामाजिक संगठनों में भागीदारी के स्वरूप के संबंध में 86.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आम जनता के रूप में, 10.2 प्रतिशत ने सदस्य के रूप में तथा 03.4 प्रतिशत ने अध्यक्ष के रूप में अपनी भागीदारी बतलाया है। जनजातीय सामाजिक संगठनों की बैठकों के आयोजन के संबंध में इन्होंनें बतलाया कि कोविड 19 के पहले बैंठकें माह में 3-4 बार हो जाती थी परंतु वर्तमान में केवल एकाध बार ही वे बैठकों का आयोजन कर पाते हैं। बैठकों के आयोजन का उद्देश्य जानने पर ज्ञात हुआ कि वे सामाजिक-पारिवारिक समस्याओं तथा जन समस्याओं को सुलझाने हेतु सामाजिक संगठन की बैठकें करते हैं तथा बैठकों द्वारा सुझाये गये निर्णय के आधार पर कार्यों का संपादन करते हैं, बैठकों द्वारा दिया गया निर्णय

सर्वमान्य होता है इसकी कोई अलोचना नहीं करता। साहू, सी.[14] ने अपनी कृति 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन ट्राईबल्स' में भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में निवास करने वाले जनजातियों के सामाजिक संगठन, खान-पान, रहन-सहन एवं आर्थिक जीवन का विस्तृत अध्ययन किया है एवं इन्होंनें यह बताया है कि जनजातीय लोगों का अपना संगठन होता है, जिसमें गांव की छोटी-छोटी समस्याओं का निपटारा किया जाता है। जनजातीय सामाजिक संगठन की कार्यप्रणाली एवं परिवारों की भागीदारी के आधार पर कहा जा सकता है कि ये अपने गॉव में बिना किसी दबाव के जनजातीय संगठन में स्वतंत्र रूप से भाग ले रहे हैं।

**आर्थिक स्थिति पर नक्सलवाद का प्रभाव :** आर्थिक स्थिति का मूल्यॉकन व्यक्ति के जीवनस्तर ,आय, भौतिक संसाधनों की उपलब्धता एवं व्यवसाय से किया जाता है। नक्सलवाद के कारण क्या इनकी अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई है, और हुई है तो किस प्रकार तालिका क्रमांक 3, 4, 5 एवं 6 में इसे जानने का प्रयास किया गया है।

**तालिका क्रमांक 3**

**उत्तरदाताओं का व्यवसाय**

| व्यवसाय | हाँ | | नहीं | | योग | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | आवृत्ति | प्रतिशत | आवृत्ति | प्रतिशत | आवृत्ति | प्रतिशत |
| कृषि | 59 | 100 | 00 | 00 | 59 | 100 |
| पशुपालन | 59 | 100 | 00 | 00 | 59 | 100 |
| मजदूरी | 49 | 83.0 | 10 | 16.9 | 59 | 100 |
| मिस्त्री | 07 | 11.9 | 52 | 88.1 | 59 | 100 |
| बढ़ाई | 05 | 8.5 | 54 | 91.5 | 59 | 100 |
| शासकीय शिक्षक | 04 | 6.8 | 55 | 93.2 | 59 | 100 |
| निजी किराना दुकान | 9 | 15.2 | 50 | 84.8 | 59 | 100 |

**उपर्युक्त** तालिका से स्पष्ट होता है कि शत-प्रतिशत उत्तरदाताओं का व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन है। 83 प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा मजदूरी किया जाता है, 15. 2 प्रतिशत उत्तरदाताओं का निजी किराना दुकान है एवं 11.6 प्रतिशत उत्तरदाता मिस्त्री का कार्य करते हैं, इसी प्रकार 8.5 प्रतिशत उत्तरदाता बढ़ाई एवं 5.8 प्रतिशत उत्तरदाता शासकीय शिक्षक के रूप में कार्य करते हैं। इस शोध आलेख से इस तथ्य की पुष्टि हुई कि वर्तमान में इनका शासकीय नौकरी एवं कृषि से इतर व्यवसायों के प्रति रूझान बढ़ता जा रहा है।

**तालिका क्रमांक 4**

**व्यवसाय करने में भय महसूस होना**

| व्यवसाय | हाँ | | नहीं | | योग | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | आवृत्ति | प्रतिशत | आवृत्ति | प्रतिशत | आवृत्ति | प्रतिशत |
| कृषि | – | – | 59 | 100 | 59 | 100 |
| मजदूरी | – | – | 49 | 100 | 49 | 100 |
| दुकानदारी | – | – | 09 | 100 | 09 | 100 |
| सरकारी नौकरी | – | – | 04 | 100 | 04 | 100 |
| पशुपालन | – | – | 59 | 100 | 59 | 100 |

**व्यवसाय** करने में भय महसूस होने के संबंध में शत् प्रतिशत उत्तरदाता भय महसूस नहीं करते हैं। बिना किसी डर के गाँव एवं गाँव से बाहर व्यवसाय के लिए जाने को स्वीकार करते हैं। अब जनजातियॉ व्यवसाय करने गॉव एवं गाँव से बाहर भी जाने लगी हैं। जनजातियाँ अब अपने परंपरागत व्यवसाय के अलावा दूसरे व्यवसाय को भी अपनाने लगी हैं। भय नहीं होने के कारण बिना किसी डर के पेशे का चयन भी कर रही हैं।

**तालिका क्रमांक 5**
**बाजार में स्वतंत्रता पूर्वक अपने कार्यों का निष्पादन कर पाने के संबंध में राय**

| राय | आवृत्ति | प्रतिशत |
|---|---|---|
| हॉ | 59 | 100 |
| नहीं | 00 | 00 |
| योग | 59 | 100 |

**तालिका क्रमांक 5** से स्पष्ट है कि शत् प्रतिशत जनजातियॉ बाजार में स्वतंत्रतापूर्वक अपने कार्यों का निष्पादन कर पाती हैं। जनजातियाँ गाँव एवं गाँव से बाहर बाजार घूमने फिरने में भय अनुभव नहीं करतीं।

**तालिका क्रमांक 6**
**नक्सल प्रभावित क्षेत्र के जनजाति परिवार में उपलब्ध भौतिक सुविधाओं का स्वरूप**

| सुविधाओं का स्वरूप | हॉ | | नहीं | | योग | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | आवृत्ति | प्रतिशत | आवृत्ति | प्रतिशत | आवृत्ति | प्रतिशत |
| बिजली | 59 | 100 | – | – | 59 | 100 |
| पानी | 38 | 64.4 | 21 | 35.6 | 59 | 100 |
| स्नानागार | 02 | 3.4 | 57 | 96.6 | 59 | 100 |
| शौचालय | 01 | 1.7 | 58 | 98.3 | 59 | 100 |
| गंदे पानी के निकासी हेतु नाली | – | – | 59 | 100 | 59 | 100 |
| गैस स्टोव | 42 | 71.1 | 17 | 28.9 | 59 | 100 |
| टेलीविजन | 08 | 13.6 | 51 | 86.4 | 59 | 100 |
| साधारण मोबाइल | 27 | 45.7 | 32 | 54.2 | 59 | 100 |
| स्मार्ट मोबाइल | 07 | 11.9 | 52 | 88.1 | 59 | 100 |
| मोटर साइकिल | 9 | 15.3 | 50 | 84.7 | 59 | 100 |

**जनजाति** परिवार में उपलब्ध सुविधाओं का मूल्यांकन करने पर ज्ञात हुआ कि शत् प्रतिशत उत्तरदाताओं के यहॉ बिजली की सुविधा है लेकिन किसी कारणवश बिजली चले जाने पर 3 से 4 दिनों तक इन्हें अंधेरे में गुजर-बसर करना पड़ता है। 64 प्रतिशत के यहॉ पानी की सुविधा है किंतु आज भी एक-तिहाई उत्तरदाताओं के यहॉ पानी की व्यवस्था नहीं है। गर्मी के दिनों में अध्ययनगत क्षेत्रों में पानी की समस्या बनी रहती है। एक परिवार को छोड़कर 99 प्रतिशत के यहॉ स्नानागार की व्यवस्था नहीं है अर्थात् ये आज भी खुले में स्नान करने को मजबूर हैं, इसी प्रकार शत् प्रतिशत के यहॉ शौचालय की व्यवस्था नहीं है, जिसके कारण आज भी ये खुले में शौच करने जाते हैं जबकि वर्तमान में वृहत पैमाने पर स्वच्छता कार्यक्रम चलाया जा रहा है एवं शौचालय एवं स्नानागार का निर्माण कराया जा रहा है। यहॉ स्वच्छता कार्यक्रम की असफलता के पीछे जागरूकता का अभाव एवं ग्रामीण रूढ़िवादिता को माना जा सकता है। शत् प्रतिशत के यहॉं गंदे पानी के निकासी हेतु नाली की व्यवस्था नहीं हैं, जिसके कारण से इन क्षेत्रों में मलेरिया एवं डेंगू का प्रकोप हमेशा बना रहता है। इस समस्या को ध्यान में रखते हुये छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा मलेरिया मुक्त बस्तर का अभियान चलाया जा रहा है। महापात्रा[15] ने अपने अध्ययन में जनजाति के परिवारों में मलेरिया (फैलसिफेरम) का प्रकोप ज्यादातर पाया। जनजाति परिवार में 71 प्रतिशत के यहॉ गैस स्टोव की सुविधा है, इसका प्रमुख कारण सरकार द्वारा चलाया गयी उज्जवला योजना है। अधिकांश जनजातियों के पास स्मार्ट मोबाइल की सुविधा नहीं है, लगभग 50 प्रतिशत जनजातीय परिवारों के पास साधारण मोबाइल की सुविधा है, 84.7 प्रतिशत परिवारों के यहॉ मोटर साइकिल नहीं है, तथा केवल 15.3 प्रतिशत परिवारों के यहॉ मोटर साइकिल है। आज भी अधिकांश जनजातियों के यहॉ टेलीविजन नहीं है केवल 13. 6 प्रतिशत परिवारों के यहॉ टेलीविजन है। आज भी जनजातियॉ आधुनिक भौतिक संसाधनों से कोसों दूर हैं जिसके कारण से इनका समुचित विकास नहीं हैं रहा है। भारत की कुल 104 मिलियन जनजातीय जनसंख्या में से 89.97 प्रतिशत ग्रामीण

क्षेत्रों में निवास करती है तथा 10.03 प्रतिशत जनजातियां नगरीय क्षेत्रों में निवास करती हैं तीन-चौथाई से अधिक जनजातीय जनसंख्या ग्रामों में निवास करने के कारण आज भी शासन द्वारा क्रियान्वित योजनाओं से अनभिज्ञ हैं। उपर्युक्त विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि आज भी जनजातियॉ खुले में शौच करने जाती हैं आज भी वे पीने के पानी हेतु सार्वजनिक हैण्ड पंप एवं कुओं पर निर्भर हैं, आज भी वो तालाबों में नहाने जाते हैं आज भी वे आधुनिक भौतिक संसाधनों से कोसों दूर हैं सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं के बावजूद वे इस प्रकार का जीवन जीने को बाध्य हैं जबकि जनजाति विकास हेतु बड़े पैमाने पर बजट आंबटित किया जाता रहा है।[16]

**जनजातियों की शैक्षणिक स्थिति पर नक्सलवाद का प्रभाव -** प्रसिद्ध मानवशास्त्री श्यामाचरण दुबे ने जनजातीय सर्वेक्षण रिपोर्ट में इस तथ्य की पुष्टि की है कि शासन द्वारा क्रियान्वित विकास योजनाओं की विफलता का सबसे प्रमुख कारण जनजातीय क्षेत्रों में नियुक्त कर्मचारियों को स्थानीय भाषा के ज्ञान का अभाव होना बतलाया है।

**तालिका-क्रमांक 7**

**उत्तरदाताओं के गॉव में विद्यालय होना**

| विद्यालय होना | आवृत्ति | प्रतिशत |
|---|---|---|
| हॉं | 59 | 100 |
| नहीं | 00 | 00 |
| योग | 59 | 100 |

तालिका क्रमांक 7 से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि शत् प्रतिशत उत्तरदाताओं के गॉंव में विद्यालय की सुविधा है।

**तालिका-क्रमांक 8 विद्यालय का स्वरूप**

| विद्यालय का स्वरूप | हॉं | | नहीं | | योग | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | आवृत्ति | प्रतिशत | आवृत्ति | प्रतिशत | आवृत्ति | प्रतिशत |
| प्राथमिक | 59 | 100 | - | - | 59 | 100 |
| माध्यमिक | 21 | 35.6 | 38 | 64.4 | 59 | 100 |
| हाईस्कूल | - | - | - | - | - | - |
| हायर सेकेण्डरी | - | - | - | - | - | - |

**विद्यालय** के स्वरूप से ज्ञात हुआ कि शत् प्रतिशत उत्तरदाताओं के गॉव में प्राथमिक, एक-तिहाई के यहॉं माध्यमिक विद्यालय है किंतु आज भी लगभग तीन-चौथाई उत्तरदाताओं के गॉव में माध्यमिक विद्यालय नहीं है। अध्ययनगत किसी भी गॉव में हाईस्कूल एवं हायर सेकेण्डरी विद्यालय नहीं है। इन बच्चों को यदि हाईस्कूल एवं हायर सेकेण्डरी पढ़ना है तो 15 से 30 कि.मी. तक की दूरी तय करनी पड़ेगी तभी वे आगे की पढ़ाई कर सकते हैं, अन्यथा नहीं।

**तालिका-क्रमांक 9**

**जनजातियों द्वारा बिना किसी डर के बच्चों को विद्यालय भेजा जाना**

| विद्यालय भेजा जाना | आवृत्ति | प्रतिशत |
|---|---|---|
| हॉं | 59 | 100 |
| नहीं | 00 | 00 |
| योग | 59 | 100 |

**तालिका 9** से स्पष्ट है कि शत् प्रतिशत जनजातियों के द्वारा बिना किसी डर के बच्चों को विद्यालय भेजा जाता है ।

**तालिका-क्रमांक 10**

**विद्यालय की कार्य प्रणाली एवं व्यवस्था से संबंधित विचार**

| विद्यालय की कार्य प्रणाली से संबंधित विचार | हॉं | | नहीं | | योग | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | आवृत्ति | प्रतिशत | आवृत्ति | प्रतिशत | आवृत्ति | प्रतिशत |
| विद्यालय नियमित रूप से लगता है | 59 | 100 | 00 | 00 | 59 | 100 |
| बच्चे नियमित रूप से विद्यालय आते हैं | 36 | 61.0 | 23 | 38.9 | 59 | 100 |
| विद्यालय में पानी की व्यवस्था है | 59 | 100 | 00 | 00 | 59 | 100 |
| विद्यालय में शौचालय की व्यवस्था है | 59 | 100 | 00 | 00 | 59 | 100 |
| शिक्षकों की व्यवस्था है | 52 | 81.1 | 07 | 11.9 | 59 | 100 |
| बच्चों के लिए बैठने की व्यवस्था है | 33 | 55.9 | 26 | 44.1 | 59 | 100 |

**उपर्युक्त** विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि शत् प्रतिशत गॉव में विद्यालय नियमित रूप से लगता है, शत् प्रतिशत विद्यालय में पानी की व्यवस्था है , शत् प्रतिशत विद्यालय में अस्थायी शौचालय की व्यवस्था है 81.1 प्रतिशत गॉव के विद्यालयों में शिक्षकों की व्यवस्था है 61.0 प्रतिशत गॉव में बच्चे नियमित रूप से विद्यालय आते हैं 55.9 प्रतिशत गॉव में विद्यालय में बच्चों के लिए बैठने की व्यवस्था है।

**निष्कर्ष** – जनजातियों के सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति के आधार पर कहा जा सकता है कि जनजाति क्षेत्रों में नक्सलवाद का प्रभाव नहीं के बराबर है। सरकार की उपेक्षा के कारण इनका समुचित विकास नहीं हो पाया है।

**सुझाव :**

1. जनजातीय क्षेत्र में शिक्षण संस्थानों का विस्तार किया जाना चाहिए।
2. जनजातीय क्षेत्र में स्थानीय लोगों के द्वारा स्थानीय भाषा में शिक्षण का कार्य करवाया जाना चाहिए।
3. जनजातीय कला एवं साहित्य को पाठ्यक्रम में सम्मलित किया जाना चाहिए।
4. जनजातीय क्षेत्र में सरकार द्वारा संचालित योजना का स्थानीय भाषा में अधिकाधिक प्रचार प्रसार किया जाना चाहिए।
5. जनजातीय क्षेत्र में स्थानीय लोगों के द्वारा जनजाति जागरूकता कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए।
6. जनजातीय क्षेत्र में यातायात व्यवस्था का विस्तार करना चाहिए जिससे वे अन्य शहर से जुड़कर अपना विकास कर सके।

## संदर्भ


1. भारत की जनगणना 2011।
2. वेरियर, ऐल्विन, 'दी ट्राइब्स वर्ल्ड्स ऑफ वेरियर ऐल्विन', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1964
3. रसेल व हीरालाल रायबहादुर, ' ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑफ सेंट्रल इण्डिया' एशिया एजुकेशन सर्विस, मैकमिलन लंदन, 1975, पृ. 41
4. गुप्ता, विप्लवदास, 'द नक्सलाइट मूवमेण्ट' मैकमिलन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1981
5. पाण्डे, सचिदानंद, 'नक्सल वायलेंस : अ सोशियो-पॉलिटिकल ए स्टडी', चाणक्य पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1985
6. सिंह, प्रकाश, 'द नक्सलाइट मूवमेण्ट इन इण्डिया, रूपा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2006
7. हसनैन, नदीम, 'जनजातीय भारत' जवाहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004, पृ. 131-145
8. जोशी, पी.सी., 'लैण्ड रिफार्मस इन इण्डिया : ट्रेंडस एण्ड पर्स्पेक्टिव', एलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1975 पृ. 81
9. भाटिया, बेला, 'द नक्सल मूवमेण्ट इन सेण्ट्रल बिहार' युनिवसिर्टी ऑफ केम्ब्रीज, लंदन, 2000
10. केन्डी जोनाथन एवं किंग लावरेंस, 'आदिवासी मौइस्ट एण्ड इनसर्जरी इन द सेंट्रल इण्डिया ट्राइबल बेल्ट', यूरोपियन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी, 2013, पृ. 1-32
11. जैकब, कैथरीन एवं इमेफा, 'इन्डियन स्टेट कॉउनटर इनसर्जरी पोलिसी : ब्रीफ हिस्टोरीकल समरीस', प्रीन्सेटो यूनिवर्सिटी प्रेस, 2017 पृ. 36-44
12. मजूमदार डी.एन, 'ट्राइबल कल्चर एण्ड अकल्चैरेशन', एशिया पब्लिशिंग, हाउस बांबे, 1958, पृ. 97-105
13. श्यामाचरण दुबे, 'इन्डियाज चैंजिंग विलेजेस : कम्युनिटी डव्लपमेंट प्रोग्राम', रूटलेज पब्लिशर्स केगान पॉल पब्लिशर्स, लंदन, 1958, पृ. 85
14. साहू, सी., 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन ट्राईबल्स', सरूप बुक पब्लिशर्स, दिल्ली, 2000, पृ. 51
15. महापात्रा, एल. के., 'ट्राइब्ल डेव्लपमेण्ट, इन इंडिया', विकास पब्लिशिंस हाउस, नई दिल्ली, 1994, पृ. 71-101
16. चौधरी, एस.एन., 'सोशियल मूवमेण्ट इन ट्राइबल इण्डिया', रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2016, पृ. 113-131

**राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा** Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
**वर्ष 22 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2020** UGC-CARE List-Social Sciences

# ग्रामीण विकास में राष्ट्रीय सेवा योजना की भूमिका

❑ **डॉ. हसमुख पंचाल**

भारत में राष्ट्रीय सेवा योजना (एनएसएस) स्वयंसेवी समुदाय सेवा के माध्यम से युवा छात्रों के व्यक्तित्त्व और चरित्र का विकास करने के मुख्य उदेश्य के साथ 1969 में आरंभ की गई थी। सेवा के माध्यम से शिक्षा एनएसएस का उद्देश्य हैं। एनएसएस की विचारधारा का उन्मुखीकरण महात्मा गांधी के विचारों से प्रेरित है। उचित रूप से एनएसएस का विचार ''मैं नहीं, परंतु आप'' है। एक एनएसएस स्वयंसेवी स्वयं से पहले समुदाय को रखता है। एनएसएस द्वारा राष्ट्र निर्माण में विभिन्न प्रकार के कार्यो को क्रियान्वित किया जाता है जिसमें ग्रामीण विकास प्रमुख हैं। एनएसएस द्वारा साक्षरता मिशन, पर्यावरण संरक्षण, आरोग्य, जलसंरक्षण, प्राकृतिक आपदा प्रबंधन जैसे कई कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण विकास में सहयोग किया जाता है। वर्तमान कोविड-19 संकट काल में भी एनएसएस स्वयंसेवी समुदाय ने सेवा के जन जागृति का महत्वपूर्ण कार्य करके राष्ट्र सेवा का कार्य किया जो पूरे विश्व में प्रशंसनीय रहा हैं। प्रस्तुत शोधपत्र ग्रामीण विकास में एनएसएस की भूमिका को प्रकट करने का प्रयास हैं।

**महात्मा** गांधी ने लिखा कि "मैं कहना चाहूँगा कि यदि गाँव समाप्त होते हैं तो भारत भी समाप्त हो जायेगा। यह भारत के रूप में नहीं बचेगा। विश्व में भारत का जीवन लक्ष्य ही गुम हो जायेगा। ग्रामीण विकास का पुनरुद्धार केवल तभी सम्भव है जब इसका और अधिक शोषण न हो।"[1]

**अतः** ग्रामीण विकास भारत की एक निरपेक्ष एवं त्वरित आवश्यकता है एवं यह आने वाले समय में भी बनी रहेगी। किसी भी भौगोलिक परिस्थिति, संस्कृति एवं समाज के विकास की ऐतिहासिक दशा में ग्रामीण विकास के वास्तविक अर्थ के लिए कम से कम तीन तत्वों पर विचार किया जाना चाहिए। एक है **जीवन की आधारभूत आवश्यकताएँ**-लोगों की कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं, जिनके बिना उनका बना रहना असम्भव हो जाता है। मूलभूत आवश्यकताओं में भोजन, कपड़ा, आवास, आरम्भिक शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल एवं जीवन और सम्पदा की रक्षा को सम्मिलित किया जाता हैं। यदि इनमें से कोई एक अथवा सभी अनुपस्थित हों अथवा इनकी आपूर्ति में न्यूनतम स्तर तक गिरावट आ जाए तो हम कह सकते हैं कि यह एक ऐसी अवस्था है जिसमें निरपेक्ष निम्न विकास विद्यमान हैं। सभी अर्थव्यवस्थाओं में चाहें पूँजीवादी हो, समाजवादी हो अथवा मिश्रित उनमें सभी के जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं हेतु प्रावधान होता है। इस अर्थ में, हम यह दावा कर सकते हैं कि आर्थिक वृद्धि ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर में सुधार की आवश्यक शर्त हैं, जिसे ग्रामीण विकास कहते हैं। दूसरा, **आत्मसम्मान** - प्रत्येक व्यक्ति एवं प्रत्येक राष्ट्र का अपना आत्मसम्मान, गरिमा व आदर होता हैं। आत्मसम्मान की अनुपस्थिति अथवा वंचना विकास की कमी का द्योतक हैं। तीसरा है, **स्वतन्त्रता** - इस सन्दर्भ में, स्वतन्त्रता का आशय राजनीतिक एवं वैचारिक स्वतन्त्रता, आर्थिक स्वतन्त्रता एवं सामाजिक दासता से मुक्ति से हैं। जहाँ तक एक समाज व्यक्ति की प्रकृति, उपेक्षा, अन्य व्यक्तियों, संस्थाओं एवं धार्मिक मान्यता की दासता से बँधा है, वह विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने का दावा नहीं कर सकता। दासता का कोई भी स्वरूप न्यून विकास की स्थिति का द्योतक हैं।[2]

**आर्थिक** वृद्धि विकास का एक अनिवार्य अवयव है किन्तु यह एकमात्र नहीं हैं, क्योंकि विकास विशुद्ध रूप से आर्थिक प्रक्रिया नहीं है। निर्णायक अर्थ में, इसमें व्यक्ति के जीवन के भौतिक एवं वित्तीय पक्षों से आगे बढ़कर अन्य पक्षों को भी सम्मिलित करना चाहिए। अतएव विकास को बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसमें आर्थिक एवं सामाजिक संरचनाओं, व्यक्तियों तथा समुदायों के मूल्यों और लोकाचारों में आमलचूल परिवर्तन सम्मिलित हैं। आर्थिक वृद्धि एवं विकास के बीच के अन्तर को चित्रित करने के लिए कोई भी भारत में पंजाब एवं केरल का उदाहरण ले सकता है। पंजाब केवल प्रति व्यक्ति आय के आधार पर आर्थिक वृद्धि के स्तर को मापने पर केरल से ऊपर हैं लेकिन

❑ **असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, गुजरात विद्यापीठ, गाँधीनगर (गुजरात)**

केरल विकास की दृष्टि से पंजाब से बेहतर है जो प्रति व्यक्ति आय के अतिरिक्त साक्षरता दर, शिशु मृत्यु दर, लिंग अनुपात तथा कानून एवं व्यवस्था की स्थिति में मापा जाता हैं। अन्तिमतः यद्यपि विकास को राष्ट्रीय सन्दर्भ में व्याख्यायित किया जाता है, किन्तु विस्तृत रूप में इनको अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं में भी आधारभूत परिवर्तनों के लिए आवश्यक माना जा सकता हैं।[3] यह प्रत्येक राज्य की स्थिति को देखते हुए भारत के विकास के लिए नितान्त आवश्यक है जिसमें एनएसएस की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। एनएसएस का मूल उद्देश्य सामाजिक सेवा के द्वारा छात्रों के व्यक्तित्व का विकास करना है, जिससे वे ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें। राष्ट्रीय सेवा योजना शिक्षण संस्थाओं एवं समाज के मध्य एक कड़ी का काम करती हैं। प्रस्तुत शोधपत्र एनएसएस के उदेश्य और ग्रामीण विकास में उनकी भूमिका को समझने का प्रयास है।

**साहित्य समीक्षा** – कटार सिंह[4] (2011) ने अपनी पुस्तक ग्रामीण विकास में सिद्धांत, नीतियाँ एवं प्रबन्ध की बात कही हैं और जन जागृति लाने से भी विकास होता हैं यह बताया हैं। विकास एक व्यक्तिपरक एवं मूल्य आधारित संकल्पना हैं। विकास की सार्वभौमिक स्वीकार्य परिभाषा के बारे में सोचा जाना असम्भव हैं। लेकिन, सामान्य तौर पर, विकास की अपेक्षित सामाजिक उदेश्यों के रूप में संकल्पना की जा सकती है, जो समय के साथ कम नहीं होती हैं। महात्मा गांधी ने ग्राम स्वराज के बारे में विचार दिये हैं और इसी से भारत में पंचायती राज स्थापन की प्रक्रियाएं हो रही हैं। गांधी के विचारों से जन जागृति आयेगी, इसलिए गांधीजी ने कहा कि मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। गांधी स्वप्न के रूप ग्राम व्यवस्था में स्वाभाविक रूप से ग्रामसेवक का स्थान चाबी स्वरूप है। इनके कर्तव्यों के निरूपण में वो कहते हैं कि ग्राम सेवक कृषि एवं गृह उद्योग के माध्यम से गांव स्वावलंबी बने इस रूप से वह संगठित करे, ग्रामीणों को स्वच्छता एवं आरोग्य की शिक्षा दे और नई शिक्षा को महत्व दे। इस बात का जिक्र राष्ट्रीय सेवा योजना में भी होता हैं और इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयंसेवक कार्य करते हैं।

**राजु काशिमिर[5]** (2011) ने अपने लेख Youth Work in India, में द्वितीय आंकड़ों के माध्यम से बताया कि युवाओं के लिए बदलती जरूरतों और मुद्दों ने भारत सरकार को राष्ट्रीय युवा नीति की समीक्षा करने के लिए मजबूर किया। भारत में देना और सेवा की अवधारणाओं के आधार पर नागरिक समाज का एक लंबा इतिहास रहा हैं। भारत के सभी राज्यों के जिलों में फैले युवा, कल्याण और भलाई के कार्यो के लिए प्रतिबद्ध हैं। भारत ने युवा कार्यकलापों के माध्यम से बताया कि भारत युवाओं का देश हैं और उनको दिशा निर्देशन पर विकास बढ़ता रहेगा।[5]

**दिक्षिता[6]**(2016), 'Role of NSS in Creating Social Responsibility at Higher Education' में सर्वे पद्धति से दर्शाया है कि भारत में शैक्षिक विचारों के विकास का एक सर्वेक्षण सामाजिक प्रतिबद्धता के प्रति इसके पूर्वाग्रह को स्पष्ट रुप से इंगित करता है और नियोजन प्रक्रिया की समीक्षा जिसने राष्ट्रीय सेवा योजना के गठन से पहले स्पष्ट किया कि राष्ट्रीय सेवा योजना का उच्चशिक्षा के सामाजिक लक्ष्यों को बढ़ावा देने के लिए डिजाइन किया गया है। राष्ट्रीय सेवा योजना की अपनी पहचान हैं, इसका उपयोग छात्रों की सामाजिक जिम्मेंदारी बनाने के लिए उच्च शिक्षा में उचित कार्यान्वयन द्वारा समाज के भले के लिए किया जा सकता हैं। भारत में राष्ट्रीय सेवा योजना के माध्यम से कई महत्वपूर्ण कार्य किए गए हैं जिसमें ग्रामीण विकास में उसकी भूमिका को देखा गया है।

**उदेश्य**

1. राष्ट्रीय सेवा योजना के उदेश्यों को जानना
2. राष्ट्रीय सेवा योजना की ग्रामीण विकास मे भूमिका ।

**शोध पद्धति** – प्रस्तुत शोधपत्र में द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग करके अध्ययन करने की कोशिश की गयी है। अध्ययन में एमवायएएस, युवा कार्यक्रम और खेल मंत्रालय, भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट 2019-20 में दिए गए आंकड़ों का उपयोग किया है तथा सेन्सस, पुस्तकें आदि द्वितीयक स्त्रोतों के आधार लिए गए हैं। अध्ययन के प्रथम भाग में विषय वस्तु, साहित्य समीक्षा, दूसरे भाग में शोध प्रविधि, तीसरे भाग में वर्गीकरण एवं विश्लेषण और चौथे भाग में निष्कर्ष निरूपण किया हैं।

**राष्ट्रीय सेवा योजना के उदेश्य** – भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारंभ से ही छात्रों को राष्ट्रीय सेवा के प्रति जागरूक करने का प्रयास होता रहा है। 1950 मे प्रथम शिक्षा आयोग ने छात्रों को राष्ट्रीय सेवा के लिए भावना के आधार पर प्रवेश के लिए संस्तुति की। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के सुझाव पर सी.डी. देशमुख की अध्यक्षता में एक आयोग बनाया गया, जिसका उदेश्य

छात्रों को स्नातक कक्षाओं में प्रवेश से पूर्व राष्ट्रीय सेवा अनिवार्य रूप से करना थी। के.जी. सैउद्दीन जो अनेक देशों के युवाओं द्वारा राष्ट्रीय सेवा के क्षेत्र में किए गए कार्यों का अध्ययन कर चुके थे, उनका कहना था कि राष्ट्रीय सेवा स्वयं सेवकों के आधार पर शुरू की जानी चाहिए। इसी प्रकार के सुझाव तत्कालीन शिक्षा आयोग के अध्यक्ष डी.एस.कोठारी ने दिये। अप्रैल 1967 में आयोजित विभिन्न राज्यों के शिक्षा मंत्रियों की बैठक में "राष्ट्रीय सेवा योजना" नाम से बनाई गई योजना को स्वीकृति प्रदान की गई व छात्रों को इस योजना में सम्मिलित करने का आहवान किया गया। सितम्बर 1967 में उपकुलपतियों के एक सम्मेलन में इस योजना का स्वागत किया गया एवं सुझाव दिया कि उपकुलपतियों की एक विशेष समिति बनाई जाए जो इस योजना के क्रियान्वयन के बारे में विचार कर सकें। इसके परिणामस्वरूप योजना आयोग द्वारा 5 करोड़ रूपए का प्रावधान किया गया ताकि चौथी पंचवर्षीय योजना में संस्थानों में प्रयोग के आधार पर इसे शुरू किया जा सके। इसके पश्चात 1969 गांधी शताब्दी वर्ष से इस योजना को प्रारंभ किया गया।[7] राष्ट्रीय सेवा योजना का महत्वपूर्ण जीवनदर्शन युवाशक्ति को देश के सामाजिक प्रश्नों को सेवा की प्रवृत्ति के द्वारा समाधान करना है। युवाओं का सहयोग अनिवार्य होता हैं। मात्र सरकार सभी प्रश्नों के समाधान नहीं कर सकती। एनएसएस जीवन की पाठशाला हैं। शिविर के द्वारा स्वयंसेवक परस्पर रीति-रिवाज, पोषाक, रहन-सहन, खान-पान, त्योंहार, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, कृषि पद्धति, शिक्षा व्यवस्था के द्वारा सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति के दर्शन द्वारा उनमें विशाल दृष्टिकोण विकसित होता हैं। राष्ट्रीय सेवा योजना का ध्येय युवा को स्वविकास से, समाजविकास में उपयोगी बन कर राष्ट्र निर्माण द्वारा सर्वांगीण विकास का लक्ष्य प्राप्त करना है। 2019-20 में राष्ट्रीय सेवा योजना इकाइयों ने समुदाय से संबंधित मुद्दों पर 72,896 जागरुकता कार्यक्रमों व रैलियों व अभियानों का आयोजन किया जिसमें 48,93,144 स्वयंसेवकों ने भाग लिया। एनएसएस लगभग 40,000 स्वयंसेवको को शामिल करते हुए 37 विश्वविद्यालयों में 1969 में आरंभ की गई थी। वर्तमान (31-12-2019) में, एनएसएस में 530 से अधिक विश्वविद्यालयों और 2 परिषदों एवं निदेशालयों, 17,676 कॉलेजों व तकनीकी संस्थाओं और 12,087 वरिष्ठ माध्यमिक स्कूलों में पंजीकृत लगभग 3.93 मिलियन स्वयंसेवक हैं। शुरू से अब तक 7 करोड़ से अधिक छात्रों ने एनएसएस से लाभ उठाया है।[8]

**एनएसएस** के उदेश्य - एनएसएस का उदेश्य स्वयंसेवकों में निम्नलिखित गुणों एवं सक्षमताओं का विकास करना है।[9]

1) उस समुदाय को समझना जिसमें एनएसएस स्वयंसेवक कार्य करते हैं।
2) समुदाय की आवश्यकताओं और समस्याओं की पहचान करना तथा स्वयं को समस्या सुलझाने की कार्यवाही में सम्मिलित करना।
3) स्वयं में सामाजिक और नागरिक जिम्मेदारी की भावना विकसित करना।
4) अपने ज्ञान को व्यक्ति तथा समुदाय की समस्याओं को व्यावहारिक रूप से हल करने में प्रयोग करना।
5) समुदाय भागीदारी जुटाने में कौशल प्राप्त करना।
6) नेतृत्व के गुण तथा लोकतांत्रिक मूल्य अर्जित करना।
7) आपात स्थितियों और प्राकृतिक आपदाओं का सामना करने के लिए क्षमता का विकास करना।
8) राष्ट्रीय एकता तथा सामाजिक सद्भावना अपनाना।

**राष्ट्रीय सेवा योजना की ग्रामीण विकास में भूमिका -** राष्ट्रीय सेवा योजना का मूल सिद्धांत यह है कि इसमें छात्र एवं अध्यापक अपने संयुक्त प्रयासों से समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में रचनात्मक भूमिका निभाते हैं। अब यह योजना देश के सभी विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं कुछ चुने हुए वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों में चल रही है। अब छात्र, अध्यापक एवं प्रशासक एनएसएस की उपयोगिता अनुभव करने लगे हैं। एनएसएस एक ठोस कार्यक्रम है जो शिक्षा को समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रासंगिक बनाता है। यह योजना शिक्षित एवं अशिक्षित युवा वर्ग के मध्य खाई को भरने का काम करती है। समाज सेवा द्वारा शिक्षा का विकास एनएसएस की मूल संकल्पना है। समाज सेवा योजना के माध्यम से झाड़ू एवं पुस्तक, कलम एवं हल एक दूसरे के दोस्त बन जाते हैं। एनएसएस के नारे 'मेरे लिए नहीं, तुम्हारे लिए' का तात्पर्य है कि व्यक्तिगत हित सामाजिक हित पर आधारित है। एनएसएस के इस नारे से निःस्वार्थ सेवा की भावना उजागर होती है।[10] विशेष शिविर एनएसएस का अभिन्न भाग है जिसमें स्वयंसेवक ग्रामीण लोगों के साथ निकटता से मिलने का अवसर, उनके जीवन को समझने, 7 दिन के लिए उनके साथ रहने और विभिन्न विकास कार्यकलाप

करने का अवसर प्राप्त करते हैं। एनएसएस द्वारा राष्ट्र निर्माण में विभिन्न प्रकार के कार्यो को क्रियान्वित किया जाता है, जिससे ग्रामीण विकास का कार्य प्रमुख है जो निम्न प्रकार दर्शाया जाता है।

**कोविड-19 में भूमिका** - वर्तमान कोविड-19 महामारी में एनएसएस के स्वयं सेवकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को कोविड-19 के बारे मे प्राथमिक जानकारी देने का महत्वपूर्ण कार्य स्वयं सेवकों ने किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को सोशियल डिस्टेन्सिंग, मास्क पहिनना, हाथ को स्वच्छ रखना, दो गज की दूरी से बात करना, बेवजह घर से बहार न निकलना आदि कोविड-19 के फैलाव से बचने का सरल तरीका समझाने के लिए स्वयंसेवी युवाओं ने घर-घर जाकर बताया है। गाँवो में बाहर से आये हुए लोगों को कैसे क्वोरन्टाइन होना है और क्या ध्यान में रखना है, जो कोविड-19 के फैलाव को रोक सकता है। बाजार में खरीदी करते समय दो गज दूरी बनाने में, प्यार से समझाने के लिए स्वयंसेवी युवा खड़े रहे हैं और राष्ट्र निर्माण के कार्य में सहयोग कर रहे हैं। गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद के रांधेजा यूनिट के कई छात्रों ने अपने आप मास्क तैयार करके जरूरतमंद लोगों को बांटा है। सामान्य घरेलू उपचारों के बारे में गाँव वालों को समझाने का भी कर्तव्य निभाया है। मुफ्त राशन, चिकित्सा सहायता में स्वयंसेवक सहयोग करते हैं।

**श्री किरेन रिजुजू,** (मंत्री वायएएस) ने दर्शाया कि युवा मंत्रालय की योजनाओं के अंतर्गत 1 करोड़ से अधिक स्वयं सेवकों को जुटाने का लक्ष्य रखा हैं। स्वयंसेवक न केवल कोविड-19 के खिलाफ अपनी लड़ाई जारी रखेंगे, बल्कि नागरिकों को प्रधानमंत्री के आत्मनिर्भर भारत के दृष्टिकोण से लाभ प्राप्त करने में मदद करेंगे। आत्मनिर्भर के अंतर्गत विभिन्न प्रावधान हैं। भारत सरकार जो मुफ्त राशन, चिकित्सा सहायता गरीब से गरीब लोगों की सीधे मदद करेगी, हमारे स्वयंसेवक उन प्रावधानों के बारे में जागरूकता पैदा करेंगे जो उनके लिए निर्धारित किए गए हैं। सूचना तक पहुँच इन प्रयासों में कई परिवारों को सम्मान के साथ जीवित रहने में मदद करेंगी।[11]

**साक्षरता अभियान में भूमिका** - प्रौढ़ शिक्षा, स्कूल पूर्व शिक्षा, पढ़ाई छोड़ चुके व्यक्तियों को पढ़ाई जारी रखने में सहायता करना, सामाजिक बुराइयों को मिटाने के लिए कार्यक्रम आदि महत्वपूर्ण कार्य इस अभियान में किए जाते हैं। भारतीय समाज में निरक्षरता के कलंक को मिटाना है। भारत में 2011 की जनगणना से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार महिला साक्षरता दर 65.46 और पुरूष साक्षरता दर 82.14 प्रतिशत थी। इस प्रकार पुरूष एवं महिला साक्षरता दर में 16.68 प्रतिशत का अंतर था।[12] एनएसएस के स्वयंसेवकों द्वारा देश में बड़े स्तर पर 1989 से निरक्षरता को समाप्त करने का कार्यक्रम जारी है। प्रोढ़ों को शिक्षा देने में उनके घर जाकर रात्रि के समय, पढ़ाई छोड़ चुके व्यक्तियों को पढ़ाई जारी रखने में सहायता करने के लिए ऐसे छात्रों को मिलकर उनके समय के अनुसार सप्ताह मे दो या तीन बार मिलकर कार्य को सफल बनाना और सामाजिक बुराइयों को मिटाने के लिए राष्ट्रीय सेवा योजना के स्वयंसेवक कार्यक्रम करते हैं। स्वयंसेवक ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर नियमित एवं विशेष वार्षिक शिविर के दौरान क्रियान्वित की जाने वाली गतिविधियों के माध्यम से ग्रामीणों को साक्षर बनाने का कार्य करते हैं। राष्ट्र निर्माण में सभी नागरिकों का साक्षर होना अनिवार्य है ताकि सरकार द्वारा समय-समय पर जारी की गई विभिन्न योजनाओं को समझकर उनसे भरपूर लाभ प्राप्त कर सकें।

**स्वास्थ्य, परिवार कल्याण और पोषण मे भूमिका** - स्वास्थ्य शिक्षा, टीकाकरण, रक्तदान, एड्स जागरूकता आदि कार्यक्रमों का आयोजन एनएसएस शिविर मे किया जाता हैं। भारत में जनसंख्या वृद्धि कई समस्याओं को जन्म दे रही हैं। 2011 में भारत की जनसंख्या 121 करोड़ आंकी गई थी, जिसमें 62.37 करोड़ पुरूष और 58.65 करोड़ महिलाएं थीं। भारत में जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर 1.6 प्रतिशत है। 1901 में जनसंख्या घनत्व 166 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर था जो 2011 में बढ़कर 382 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर हो गया। भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम की विफलता ने भी जनसंख्या वृद्धि में भूमिका निभाई है। इस कार्यक्रम की सफलता के लिए सरकार ने इस कार्यक्रम का नाम बदलकर परिवार कल्याण कर दिया। एनएसएस के स्वयंसेवकों ने ग्रामीण क्षेत्रों मे जाकर इस कार्यक्रम की महत्ता के बारे मे आम जनता को जागरूक किया व अगले ही कुछ वर्षो मे परिवार कल्याण कार्यक्रम के सकारात्मक परिणाम सामने आने लगे। एनएसएस इकाइयों ने 16,160 स्वास्थ्य, नेत्र व टीकाकरण शिविरों के आयोजन में सक्रिय भूमिका निभाई जिसमें 8,84,380 एनएसएस स्वयंसेवकों ने भाग लिया।[13]

**पल्स पोलियो टीकाकरण अभियान मे भूमिका** - पोलियो

उन्मूलन एक राष्ट्रीय कार्यक्रम है। भारत मे पोलियो के शिकार होकर बड़ी संख्या मे बच्चे अपंग हो जाते हैं। भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने विभिन्न स्तरों पर समाज के विभिन्न वर्गो का सहयोग प्राप्त करके पोलियो को जड़ से समाप्त करने का अभियान शुरू किया है। एनएसएस के स्वयंसेवक पोलियो उन्मूलन अभियान मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। प्रतिवर्ष पोलियो टीकाकरण कार्यक्रम मे एनएसएस के स्वयंसेवकों ने देशभर में स्थानीय प्रशासन को, बच्चों को पल्स पोलियो की दवा पिलाने में सहायता की। वे स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर देश के दूर-दराज के ग्रामीण अंचलों में स्थित परिवारों के बच्चों को पोलियो टीकाकरण करवाते हैं। इस अभियान के सकारात्मक परिणाम सामने आने लगे हैं। 2019-20 के दौरान एनएसएस स्वयंसेवक पल्स पोलियो टीकाकरण के लिए बच्चों को एकत्रित करने में सम्मिलित थे और 97,618 बच्चों ने इस कार्यक्रम से लाभ उठाया।[14]

**रक्तदान कार्यक्रमों में भूमिका** - वर्तमान भारत के अखबारों में प्रति दिन आकस्मिक घटनाएं प्रकट होती रहती हैं। आकिस्मक घटना में व्यक्ति को बचाने के लिए रक्त की काफी जरूरत रहती है। दूसरा थेलेसेमिया के पीड़ितों को भी समय-समय पर रक्त जरुरी हैं। मानव उदारता के बिना रक्त मिलना संभव नहीं है। एनएसएस के स्वयंसेवक देश मे गरीबों, जरूरतमंदों और अस्पतालों में आपातकालीन मामलों में रक्तदान करने के लिए सदैव अग्रणी रहते हैं। नियमित कार्यक्रम के अंतर्गत अधिकांश रा.से.यो. इकाइयाँ भारतीय रेड क्रॉस सोसायटी, सरकारी अस्पतालों और ब्लड बैंकों के सहयोग से रक्तदान शिविरों का अनिवार्य रूप से आयोजन करती हैं। युवाओं को रक्तदान हेतु प्रेरित करना एनएसएस की एक प्रमुख गतिविधि है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में समय-समय पर रक्तदान शिविरों का आयोजन किया जाता हैं। गुजरात विद्यापीठ के ग्राम केन्द्र, रांधेजा युनिट के स्वयंसेवकों ने 2018 में रूपाल गांव मे 52 और 2019 में वासण गांव में 32 यूनिट रक्तदान किया था। एनएसएस के स्वयंसेवक नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से समाज में रक्तदान के पक्ष में वातावरण का निर्माण करते हैं। अधिकांश विश्वविद्यालय एवं संस्थाएं एनएसएस के स्वयंसेवी रक्तदाताओं की एक निर्देशिका रखते हैं, जिन्हें आपातकालीन समय पर रक्तदान करने के लिए बुलाया जा सके। 2019-2020 के दौरान भारत भर में एनएसएस के स्वयंसेवकों द्वारा 2,22,138 यूनिट रक्तदान किया गया।[15]

**एड्स जागरूकता अभियान में भूमिका** - 1 दिसम्बर, विश्व एड्स दिवस के रूप मे पूरे विश्व में एड्स प्रतिकार दिवस के रूप में मनाया जाता हैं। एड्स एचआईवी वायरस से होने वाली बीमारी है। इस लाइलाज एवं घातक बीमारी के प्रति लोगों को जागरूक करने में एनएसएस कार्यक्रमों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। एनएसएस के स्वयंसेवकों को सर्वप्रथम विभिन्न समूहों में बांट कर एड्स बीमारी के कारणों एवं बचने के उपायों पर विस्तार से चिकित्सकों एवं विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है। तत्पश्चात् प्रशिक्षित स्वयंसेवक कई ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में विभिन्न कार्यशालाओं एवं जागरूकता अभियानों के माध्यम से इस बीमारी के विरूद्ध कार्य करते हैं। जनजागृति के माध्यम से ग्रामीण विकास का यह अनोखा कार्यक्रम है।

**राष्ट्रीय पोषण माह 2019-20** - भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी कुपोषण की समस्या विद्यमान है। कुपोषण से बचने के लिए कई सरकारी योजनाओं का आयोजन हुआ है फिर भी पूर्ण रुप से सफलता प्राप्ति नहीं हई। पोषण माह 1 से 30 सितम्बर, 2019 के दौरान आयोजित किया गया। माह के दौरान 8,02,452 एनएसएस के स्वयंसेवकों ने पोषण या जागरूकता अभियानों में भाग लिया। 7,41,308 एनएसएस के स्वयंसेवकों ने मोटापा आहार विकार सत्र में भाग लिया और 8,63,845 स्वयंसेवकों ने फास्ट-फूड एवं पैक्ड खाद्य पदार्थो के प्रभाव और प्राकृतिक आहार के संवर्धन पर जागरूकता पैदा की। ग्रामीण क्षेत्रों मे यह प्रशिक्षित युवा स्वयंसेवकों ने लोगों को स्वास्थ्य की सुरक्षा हेतु समझाया, जिसका परिणाम कोविड-19 मे पाया गया।[16]

**पर्यावरण संरक्षण में भूमिका** - पर्यावरण संरक्षण, पौधा रोपण और उनका परिरक्षण एवं देखरेख, नालों व सड़कों की सफाई और अनुरक्षण जैसे महत्वपूर्ण कार्यो में एनएसएस के स्वयंसेवकों की सहभागिता प्रशंसनीय है। वर्तमान समय में पर्यावरण प्रदूषण एक भू-मंडलीय समस्या बन गई हैं। एनएसएस के स्वयंसेवक ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में पर्यावरण जागरुकता अभियान के माध्यम से जन-जन को पर्यावरण प्रदूषण के सभी खतरों एवं उनके उपायों की जानकारी देते हैं जिससे लोगों मे प्रदूषण कम करने की सोच को कायम करने में सफलता मिले।

**पौधा रोपण अभियान में भूमिका** - पौधा रोपण और उनका परिरक्षण एवं देख-रेख में एनएसएस के स्वयंसेवकों

की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए वनक्षेत्र में विस्तार करना अनिवार्य है। शताब्दियों से यह सिकुड़न जारी है पर जिस गति से आजादी के बाद वनों पर दबाव बढ़ा है वैसा पहले कभी नही था। वनों के बचाव के लिए हमें दोहरी नीति अपनानी होगी अर्थात् आज के आधुनिक प्रौद्योगिक ज्ञान को लोगों के पारम्परिक अनुभव के साथ मिलाकर आगे बढ़ना होगा। एनएसएस के स्वयंसेवकों ने कई गाँवों के शमशान, सार्वजनिक एवं परती भूमि, रास्तों के दोनों ओर पौधा रोपण और उनका परिरक्षण एवं परवरिश की जिम्मेदारी भी निभाते हैं। भारत मे 2019-20 के दौरान विभिन्न स्थानों में 19,59,753 पौधो का रोपण किया गया।[17]

**जल संरक्षण में भूमिका** - भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास मे जल संरक्षण की महत्वपूर्ण भूमिका है। देश में जल संकट दिनों-दिन बढ़ता नजर आता है। देश मे जल संसाधनों के प्रबंधन में इस सीमा तक लापरवाही और अनदेखी है कि भविष्य ही संकट में पड़ता नजर आ रहा है। ग्रीष्म ऋतु मे अनेक राज्यों में महिलाओं को मीलों चलकर पीने के पानी की व्यवस्था करनी पड़ती है। ग्रामीण क्षेत्रों में पीने के पानी की व्यवस्था में महिलाएं अपना सबसे ज्यादा समय लगाती हैं। वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति प्रति दिन लगभग 100 लीटर जल का उपभोग करता है। जल समस्या को लेकर कई गांवों में आज भी कोई अपनी लड़की का विवाह नहीं करना चाहता। भूमिगत जल स्तर नीचे जा रहा है और नदियों व झीलों मे उद्योगों के दूषित जल मिलाने से जहरीला बनता जा रहा है। आने वाली पीढ़ियों को पीने के पानी का सवाल खड़ा हो गया है।[18] जल ही जीवन है और जल है, तो कल है। यह हम सब जानते हैं तब तो जल संरक्षण को भी जानना पड़ेगा। जल संरक्षण के विविध कार्यक्रम से जनता तक पहुंचाने में एनएसएस के स्वयंसेवक अपने विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से देश के ग्रामीण अंचलों में उनका प्रथम महत्वपूर्ण कार्य है कि जल को अशुद्ध न करो और वर्षा के जल को संरक्षित करने की विभिन्न तकनीकों की जानकारी प्रदान करते हैं। गुजरात के सौराष्ट्र और कच्छ जिलों के कई गांवो मे छोटे-छोटे चैक डैमों का निर्माण किया है जिससे भूमि का जल स्तर बढ़ा है एवं कृषि उत्पादन बढ़ा है तथा किसानों की आर्थिक स्थिति मे गुणात्मक सुधार हुआ है।

**महिलाओं की स्थिति में सुधार में भूमिका** - महिला मानवसमाज का महत्वपूर्ण अंग हैं। भारत में जाति, विवाह, संयुक्त परिवार, मूल्य एवं रिवाजों की परंपरा का बाहुल्य रहा हैं। परंपरा से भारतीय समाज में पुरूष प्रधानता रही है। ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति आज भी सोचनीय और दयनीय बनी हुई है। इसका मुख्य कारण हैं ग्रामीण समाज का आर्थिक-सामाजिक और राजनैतिक चेतना में पिछड़ा होना।[19] स्वतंत्र भारत में स्त्री-पुरूष समान बन सकें और एक नागरिक के रूप में अपने व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास प्राप्ति हेतु सशक्त बन सकें इसके लिए स्त्री को जीवन, रक्षा, कल्याण, विवाहित जीवन और विवाह, विवाह विच्छेदन, स्थावर जंगम, वारिस, समान वेतन, शिक्षा, व्यवसाय संबंधी कानूनी अधिकार देना एवं स्त्री रक्षा और कल्याण की कई विशिष्ट कानूनी व्यवस्था सामने आई हैं। किन्तु इस कानून व्यवस्था का लाभ अभी भी सभी महिलाओं तक नहीं पहुँच सका है। इन अधिकारों से कई महिलाएं वंचित हैं यह आज की वास्तविकता है। महिला अधिकारों के संबंध मे जागरूकता उत्पन्न करने में रा.से.यो. के स्वयंसेवकों ने कई कार्यक्रमों का आयोजन करके महिला जागृति मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है। महिलाओं को कौशल प्रशिक्षण प्रदान करने मे नाटक,पोस्टर प्रदर्शन, रेली, घर-घर मुलाकात जैसे कई कार्यक्रम गांवों मे किए हैं। स्त्री भ्रूण हत्या, दहेज, बाल विवाह, बेटी बचाएं-बेटी पढ़ाए, बेटियाँ कूल दिवडी, छोरियाँ छोरों से कम नहीं, एक शिक्षित महिला 100 शिक्षक के समान है, बेटे और बेटियाँ एक समान, जैसे कई कार्यक्रमों से महिला अधिकारों की जागरूकता उत्पन्न करने मे काफी सफलता प्राप्त होती है। महात्मा गांधी ने कहा है कि स्त्री एवं पुरूष एक समान हैं और उनमें कुदरती शारीरिक अंतर के सिवा और कोई अंतर मुझे मंजूर नहीं। स्त्री, पुरुष की सहचारिणी है, पुरुष के समान मन रखती है। पुरुष की सभी प्रवृत्ति सूक्ष्मता से जानने का अधिकार है, जितनी स्वतंत्रता पुरुष भुगत रहा है, उतनी ही वह भुगतने के अधिकार रखती है एवं पुरुष अपने क्षेत्र में सर्वोपरी हैं उसी प्रकार स्त्री भी अपने क्षेत्र में सर्वोपरी है।[20] इस प्रकार स्त्री एवं पुरुष में कोई अंतर नहीं है किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में परंपराओं ने सब जकड़ कर रखा है, बंधनों का जोर है, स्वतंत्रता की कमी रहती है। रा.से.यो. के प्रयासों से बदलाव आया है, स्त्री सशक्तीकरण से ग्रामीण विकास मे सहभागिता प्राप्त होती है।

**आपदा, राहत और पुनर्वास में भूमिका** - प्राकृतिक

आपदा जैसे कि बाढ़, सूखा, भूकम्प, चक्रवात, सुनामी आदि से व्यापक रूप से जन-धन की हानि होती है। आपदा प्राकृतिक हो या कृत्रिम, सभी स्थानों पर आपदाओं से प्रबंधन में एनएसएस के स्वयंसेवकों की अहम भूमिका होती है। आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु और आसाम में तूफान पीड़ितों की सहायता करके, गुजरात, प.बंगाल, बिहार में बाढ़ के दौरान तथा महाराष्ट्र, राजस्थान व उड़ीसा में सूखे के दौरान लोगों की सहायता करके प्रशंसनीय कार्य किया है। गुजरात विद्यापीठ के रा.से.यो. एकम के स्वयंसेवकों ने गुजरात के कच्छ में भूकम्प में और राधनपुर मे बाढ़ से प्रभावित क्षेत्रों में राहत कार्य किया था। रा.से.यो. के स्वयंसेवकों ने पुनर्वास के कार्यो मे भी कंधे से कंधा मिलाकर सहयोग दिया है।

**श्रमदान में भूमिका** - रा.से.यो. के स्वयंसेवकों ने वर्षभर श्रमदान किया जो श्रमिकों की गरिमा को बढ़ाता है और मूल्यवान समुदाय परिसंपत्ति का निर्माण करता है। 2019-20 के दौरान 78,12,200 स्वयंसेवी श्रमदान के घंटे रा.से.यो. के स्वयंसेवकों द्वारा दिए गए। कई गांवों में पंखी घर, पुस्तकालय, किसी गरीब के घर या मकान का निर्माण और पुनर्वास के कार्यो में श्रमदान करके स्वयंसेवकों योगदान करते है।[21]

**मतदान जागरूकता कार्यक्रम में भूमिका** - ग्रामीण क्षेत्रों में मतदान जागरूकता की आवश्यकता रहती है। लोकशाही में शिक्षित लोग सक्रिय रहें यह जरुरी है। भारत में कभी-कभी शिक्षित लोग ही मतदान नहीं करते और बाद मे कहते हैं की सबकुछ बिगड़ गया है। इसका नतीजा बुरा होता है। कई ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्ति को मतदान करना है किन्तु इसके लिए अपना नाम मतदाता सूची में होना जरुरी होता है जो उनको पता ही नहीं होता। तब वो चाहते हुए भी मतदान नहीं कर सकता। रा.से.यो. के स्वयंसेवकों ने मतदाताओं को मतदाता सूची में नाम दर्ज करवाने और चुनाव के दिन मताधिकार का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करने हेतु चुनाव अधिकारियों के साथ मतदाता जागरूकता अभियान चलाया।[22]

**अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस का आयोजन** - ग्रामीण क्षेत्रों मे श्रम का कार्य ज्यादा रहता है। इसलिए लोग योग को ज्यादा पसंद नहीं करते व जानकारी भी नहीं रखते। रा.से.यो. के स्वयंसेवकों ने 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस और योग का महत्व समझा कर सबका ध्यानाकर्षित किया है। योग से रोग दूर भागते हैं और शरीर स्वस्थ रहता है। कोविड-19 मे यह बात सबसे महत्वपूर्ण रही है। 21 जून 2019 को लगभग 26,77,433 रा.से.यो. के स्वयंसेवकों ने देशभर में आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भाग लिया।[23]

**स्वच्छता पखवाड़ा (2019-20)** - सफाई कार्य एक यज्ञ कार्य है। हम ऐसे समय को याद नही करते हैं कि मानव सफाई यज्ञ बंद कर दे। हाँ, ये संभव है कि विज्ञान की प्रगति से उनका स्वरुप बदल जाये। जिस प्रकार खाना अपने जीवन से जुड़ा है उसी प्रकार सफाई भी अपने जीवन से जुड़ी है। महात्मा गांधी स्वच्छता प्रभुता मंत्र में श्रद्धा रखते थे। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के बारे मे गांधीजी ने कहा कि गाँव सुंदर, शोभित हैं किन्तु उनके प्रवेशद्वार के पास इतना कूड़ा-कचरा होता है कि वहीं से गुजरने वाला प्रत्येक व्यक्ति इसकी बदबू से अपनी नासिका बंद कर ले। अस्वच्छता भारत का सबसे बड़ा रोग है और उनकी सूझ हमें नहीं है कि हम कितने गंदे हैं। अधिकतर महासभावासी गांवों के रहने वाले हैं, तब तो उन्हे गांवों को सब तरीकों से इसे स्वच्छता के नमूने रुप तैयार करना चाहिए। राष्ट्रीय व सामाजिक स्वच्छता को हमने अपना आवश्यक गुण नहीं माना। नदी, तालाब और जलाशयों में स्नान करते हैं किन्तु इसे शुद्ध रखना हमने कभी सीखा ही नहीं। इसीलिए इसकी अवदशा हुई है। कोई करे या न करे मुझे तो सफाई करनी है ऐसा प्रण लेने से ही हम इस सफाई यज्ञ को जीवंत रख सकेंगे।[24]

**देश भर** में रा.से.यो. के स्वयंसेवकों द्वारा 1 अगस्त 2019 से 15 अगस्त 2019 तक शानदार तरीके से स्वच्छता पखवाड़ा मनाया गया। 284 विश्वविद्यालयों, 12,397 संस्थानों और 152 स्कूलों के कुल 13,15,064 रा.से.यो. के स्वयंसेवकों ने स्वच्छता शपथ ली। 5,11,930 रा.से.यो. के स्वयंसेवकों ने खुले में शौचमुक्ति, सामान्य सफाई और स्वच्छता के बारे में जागरुकता पैदा करते हुए 6,363 गोद लिए गए गाँवो व मलिन बस्तियों में घर-घर अभियान चलाया। गाँवों और शहरों में जागरूकता गतिविधियों के लिए प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन पर स्वच्छता ही सेवा, प्रतिज्ञा पर और ग्राम पंचायतों के सहयोग से एकत्रित प्लास्टिक कचरे के प्रभावी निपटान के लिए क्षमता निर्माण व अभिविन्यास किया गया।[25]

**एक भारत श्रेष्ठ भारत (एक मंच पर भारत) 2019-20-** रा.से.यो. गतिविधियों के एक वर्ष में 120 घंटे की नियमित गतिविधियों और पड़ोसी गोद लिए गांवों में 7

दिन विशेष शिविर गतिविधि में विभाजित किया गया है। 120 घंटो की नियमित गतिविधियो में ''एक भारत श्रेष्ठ भारत'' का एक अनूठा कार्यक्रम जोड़ा गया। एक वर्ष में रा.से.यो. की नियमित गतिविधियों के 120 घंटे 10 गतिविधियों के आयोजन के लिए समर्पित किए गए, जिसमें प्रारंभ मे युग्मित राज्य में विश्वविद्यालय व कॉलेज में स्वयंसेवक के कम से कम 10 प्रतिशत आबंटन (2.5 लाख) शामिल थे। नवम्बर और दिसम्बर माह के दौरान 6,93,062 स्वयंसेवकों ने "एक भारत श्रेष्ठ भारत" गतिविधियों मे भाग लिया।[26]

**निष्कर्ष** – विकास परिवर्तन का कारण एवं परिणाम दोनों हैं। इनके मध्य दोतरफा सम्बन्ध हैं, जिसमें विकास परिवर्तन को प्रभावित करता है एवं परिवर्तन से प्रभावित भी होता है। परिवर्तन में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भौतिक, तकनीकी, संस्थागत अथवा राजनीतिक परिवर्तन समाविष्ट है। ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में किसी परिवर्तन को एक साधन के रूप में मानना चाहिए, जिसका उपयोग ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने के लिए होता है। रा.से.यो. के प्रति छात्रों की प्रतिक्रिया एवं समाज की सोच बहुत शानदार रही है। इस प्रकार रा.से.यो. शिक्षा को समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने में एक ठोस प्रयास हैं। रा.से.यो. के छात्रों ने सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन में विशेष योगदान दिया है। चाहें दहेज प्रथा के उन्मूलन की बात हो, बाल विवाह प्रथा के निराकरण की बात हो या नशे के लत की बात हो, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओं, एक भारत श्रेष्ठ भारत, महिला सशक्तीकरण या कृषि विकास का कार्यक्रम हो प्रत्येक क्षेत्र में रा.से.यो. के छात्रों का सराहनीय प्रयास रहा है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर पर मान्य लक्ष्यों जैसे भारतीयता में गर्व महसूस करना, स्वतन्त्रता, समाजवाद, राष्ट्रीय एकता, धर्म निरपेक्षता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास, आत्मनिर्भर भारत, आदि अभियानों में सराहनीय कार्य किया है। अतः रा.से.यो. के कार्यक्रम से ग्रामीण विकास के क्षेत्र में काफी संभावनाएँ उत्पन्न हुई हैं। इसलिए भारत में रा.से.यो. का और अधिक विस्तार किया जाना चाहिए।

## सन्दर्भ


1. कटार सिंह, 'ग्रामीण विकास', रावत पब्लिकेशन्स, 2011, जयपुर, पृ.6
2. Tadaro Michael, *'Economic Development'*, 5th Edition, NewYork and Londan: Longman, 1995, pp. 16,18
3. व्यास हरिप्रसाद (सं.) 'ग्राम स्वराज', नवजीवन ट्रस्ट, अहमदावाद, 2019, पृ.
4. कटार सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 7
5. Casimir Raju. M., *'Youth Work in India'*, Research Gate, YNow 11, 2011, pp.14,15
6. Deekshitha, *'Role of NSS in Creating Social Responsibility at Higher Education'*, IJSRME, Vol- 1, Issue 1, 2016, pp. 756 - 760
7. परमार मोहन और त्रिवेदी सी.जे., 2018-19, राष्ट्रीय सेवा योजना के बुनियादी ख्याल, बी.एस.शाह प्रकाशन, अहमदाबाद
8. एमवायएएस वार्षक रिपोर्ट, 2019-20, युवा कार्यक्रम और खेल मंत्रालय, युवा कार्यक्रम विभाग, भारत सरकार, पेज नं 24.
9. एमवायएएस वार्षक रिपोर्ट, 2019-20, पेज नं 24.
10. कुरुक्षेत्र हिन्दी सामयिक, जुलाई-2006, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ.35
11. nss.gov.in
12. 2011 की भारत जनगणना रिपोर्ट
13. एमवायएएस वार्षिक रिपोर्ट, 2019-20, पृ.28
14. एमवायएएस वार्षिक रिपोर्ट, 2019-20, पृ.27
15. एमवायएएस वार्षिक रिपोर्ट, 2019-20, पृ.28
16. एमवायएएस वार्षिक रिपोर्ट, 2019-20, पृ.35
17. एमवायएएस वार्षिक रिपोर्ट, 2019-20, पृ.27
18. चौधरी सुमनबहन, 'पर्यावरण का समाजशास्त्र', यूनीवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, गुजरात राज्य, अहमदाबाद, 2000, पृ.198
19. पंचाल हसमुख, महात्मा गांधी का समाजदर्शन, अनडा बुक डिपो, अहमदावाद, पृ.24,25
20. एमवायएएस वार्षिक रिपोर्ट, 2019-20, पृ.37
21. एमवायएएस वार्षिक रिपोर्ट, 2019-20, पृ.37
22. एमवायएएस वार्षिक रिपोर्ट, 2019-20, पृ.35
23. व्यास हरिप्रसाद पूर्वोक्त, पृ.182,183
24. एमवायएएस वार्षिक रिपोर्ट, 2019-20, पृ.33
25. एमवायएएस वार्षिक रिपोर्ट, 2019-20, पृ.30

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 22 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2020
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# 21वीं सदी में महिला सशक्तीकरण : एक सिंहावलोकन

❑ सुश्री राखी प्रजापत

संपूर्ण राष्ट्रीय विकास से संबधित जिन आधारभूत विषयों पर विचार किये जाने की नितांत आवश्यकता है, उनमें महिला सशक्तीकरण महत्वपूर्ण है। भारत में महिलाओं की स्थिति में कई बड़े बदलाव आये हैं। स्वतंत्रता से पूर्व महिला विभिन्न प्रकार के शोषणों का शिकार थी। स्वतंत्रता पश्चात् महिलाओं की दयनीय स्थिति में सुधार हेतु भारत सरकार ने अथक प्रयास प्रारंभ किये। इसके अंतर्गत महिलाओं को शिक्षित कर उन्हें कौशल प्रशिक्षण द्वारा आत्मनिर्भर बनाने के लिये प्रयासरत हैं। आज 21वीं सदी में महिलाओं ने स्वयं को मुख्यधारा से जोड़ लिया है। पिछले वर्षों में भारत सरकार ने महिलाओं के सशक्तीकरण के लिये महत्वपूर्ण योजनाओं एवं कानूनों का निर्माण किया जिससे महिला के अधिकारों में, उसकी शैक्षिक स्थिति एवं रोजगार से संबधित क्षेत्रों में काफी परिवर्तन आया है। भारत की साक्षरता दर पर अगर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि साक्षरता में महिलाओं ने अपने कदम बढ़ाये हैं। इसी के साथ सरकारी एवं गैर-सरकारी नौकरियों में भी महिलायें उच्च पदों पर कार्यरत हैं। परीक्षा परिणामों में भी महिलायें पुरूषों की तुलना में बेहतर प्रदर्शन कर रही हैं। यह सब साक्षरता के प्रति महिला की जागृत चेतना का ही परिणाम है। पुलिस, सेना, पायलट, कंमाडो आदि पोस्ट जो सिर्फ पुरूषों के लिये ही थीं, उन पर भी महिलाओं ने अपनी अभूतपूर्व शक्ति का प्रदर्शन किया है। एक तरफ जहां महिला प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही हैं वही दूसरी तरफ उसे विभिन्न कुरीतियों, रूढ़ियों से जकड़ दिया जा रहा है। सभी प्रावधानों एवं प्रयत्नों के बावजूद उसे दोयम दर्जे का सामना करना पड़ रहा हैं। प्रस्तुत शोध पत्र 21वीं सदी में महिला सशक्तीकरण की स्थिति के अवलोकन के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया हैं।

**किसी** भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक विकास में महिला की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। महिला का आदर एवं उसके हितों की रक्षा करना भारतीय संस्कृति की पुरानी परंपरा रही है। परंतु भारतीय संस्कृति की यह एक विडम्बना ही रही हैं कि यहां महिला की स्थिति पुरातन काल से वर्तमान काल तक विरोधाभासी ही रही है। यदि भारतीय संदर्भ में महिलाओं की स्थिति का अवलोकन करें तो ज्ञात होता हैं कि भारत में महिला की स्थिति समय के परिवर्तन के साथ बदलती रही है। पुरातन काल से लेकर वर्तमान काल तक की यात्रा में महिला के जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आये। इसका स्पष्टतः उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य यथा वेद, महाभारत, रामायण, स्मृति आदि ग्रंथों में दृष्टिगोचर होता है। यजुर्वेद में एक स्थान पर वर्णित हैं कि ''सब माता-पिता और पढ़ानेहारी विदुषी स्त्रियों को चाहिये कि कन्याओं को सम्यक् बुद्धिमती करें (अर्थात् समझाये) कि हे कन्या लोगों! तुम जो पूर्ण अखंडित ब्रह्मचर्य से संपूर्ण विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त युवती होकर अपने तुल्य वरों के साथ स्वयंवर विवाह करके गृहाश्रम का सेवन करों, तो सब सुखों को प्राप्त हो और संतान भी अच्छी होवें।''[1] प्राचीन साहित्य में नारी को न केवल पुरूष के समान माना बल्कि नारी को दुर्गा, सरस्वती व लक्ष्मी के रूपों में शक्ति, विद्या एवं धन के क्षेत्रों में अग्रणी भी माना है। इसी के कारण समाज में विभिन्न कहावतों का प्रचलन हुआ यथा महिला पुरूष की पूरक, महिला-पुरूष जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं, एक पुरूष की सफलता के पीछे महिला का हाथ होता हैं, जहां पर नारी की पूजा की जाती हैं, वहां पर देवताओं का निवास होता हैं। ऋग्वेद में वर्णित हैं की ''जितनी कुमारी हैं वे विदुषियों से विद्या अध्ययन करें और वे कुमारी ब्रह्मचारिणी उन विदुषियों से ऐसी प्रार्थना करें की आप हम सबको विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें।''[2] पर समय के परिवर्तन के साथ साथ महिलाओं की स्थिति में गिरावट आने लगी। उसके लिये ढोल, गंवार, शूद्र पशु, नारी ये सब ताड़न के अधिकारी जैसी उक्तियां प्रचलित होने लगीं और उनको समाज में विभिन्न कुरीतियों का सामना करना पड़ा जैसे- सती प्रथा, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा आदि। एलिजाबेथ ब्यूमिलर की किताब 'मे यू बी द मदर ऑफ हण्ड्रेड सन्स' में एक बड़े व्यापारी की पत्नी यह कहती हैं कि ''कन्या शिशु को जन्म देना एक सामाजिक अप्रतिष्ठा की बात है।''[3] इक्कीसवीं सदी में महिला

❑ शोध अध्येत्री, अहिंसा एवं शांति विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनू (राजस्थान)

सशक्तीकरण एक महत्वपूर्ण मुद्दा हैं। महिला सशक्तीकरण एक व्यापक शब्द हैं। जया कोठारी, पिल्लयी के अनुसार सशक्तीकरण एक सक्रिय बहुआयामी प्रक्रिया है जो कि महिलाओं को सक्षम बनाती हैं व उन्हें जीवन के सभी पहलुओं की पूर्ण पहचान कराती है। शक्ति कोई वस्तु नहीं है जिसका कारोबार किया जा सके और ना ही इसे किसी उद्देश्य से दूर रखा जा सकता है शक्ति को प्राप्त करना पड़ता हैं और एक प्राप्त करने के बाद इसे इस्तेमाल में लाना पड़ता हैं।''[4] अतः महिला सशक्तीकरण से तात्पर्य हैं कि बिना किसी लैंगिक भेदभाव के महिलाओं को शिक्षा एवं स्वतंत्रता से संलग्न करते हुये उन्हें सामाजिक क्षेत्र में समान अवसर प्रदान करना, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में नीति-निर्धारण में उन्हें भागीदार बनाना, स्वावलम्बन का अधिकार आदि से हैं। महिला सशक्तीकरण महिलाओं को पुरूषों के समान वैधानिक, राजनैतिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक क्षेत्रों में उनके पारिवार, समुदाय, समाज व राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायत्ता से हैं।

**18वीं शताब्दी** के उतरार्द्ध में ही वैश्विक पटल पर महिला सशक्तीकरण का प्रारंभ हो गया था। 1793 में इंग्लैण्ड की मेल वोलस्टोनक्राट ने अपनी पुस्तक 'विन्डीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमेन' में महिला सशक्तीकरण के पक्ष में अपना प्रथम उद्‌बोध दिया। उन्होनें अपनी पुस्तक में महिलाओं को कानूनी, राजनैतिक एवं शैक्षणिक समानता की बात कही। इसमें कहा गया था कि विश्व में दानशीलता की नहीं, न्याय की कमी है। पुस्तक में विश्व के विभिन्न देशों में अधिकार-प्राप्ति के लिये महिलाओं के संघर्ष का चित्रण है, जो उन्नीसवीं शताब्दी में एक नये चरण में पहुंचा। इंग्लैण्ड को विवाह संबंधी कानूनों में संशोधन करना पड़ा। फ्रांस को महिलाओं को पदधारण का अधिकार देना पड़ा। चीन को महिलाओं को पदधारण का अधिकार देना पड़ा। 1893 में न्यूजीलैण्ड विश्व का पहला देश बना, जिसने महिलाओं को वोट का अधिकार प्रदान किया।[5] जॉन किट्स ने कहा हैं कि ''एक सफल पुरूष के पीछे स्त्री ही रही है। नारी के बिना पुरूष अधूरा है और पुरूष के बिना नारी अपूर्ण हैं।''[6] महिला के सशक्तीकरण के लिये सभी राष्ट्रों, विभिन्न संगठनों एवं राज्य सरकारों द्वारा कई प्रयास किये जा रहे हैं। उनके लिये प्रत्येक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम व योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा हैं ताकि महिला पूर्ण रूप से सशक्त होकर देश के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भागीदारी निभा सके। स्वामी विवेकानंद[7] ने कहा हैं कि जिस प्रकार एक पक्षी एक पंख के सहारे नहीं उड़ सकता, समाज तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि सभी गतिविधियों में महिलाओं को सम्मिलित न किया जाये। समाज का सर्वांगीण विकास तब संभव हैं, जब नर और नारी दोनों का बराबर विकास हो, दोनों को ही व्यावहारिक रूप से बराबर अधिकार प्राप्त हो। सिर्फ एक वर्ग के विकास से समाज में संतुलन नहीं बन सकता। अतः इसके लिये आवश्यक है महिलाओं में साक्षरता, जागरूकता, आत्मनिर्भरता में वृद्धि करने की।

**अध्ययन का उद्‌देश्य** : प्रस्तुत शोध पत्र के उद्‌देश्य निम्न प्रकार से हैं-

1. महिला सशक्तीकरण का अध्ययन करना।
2. भारतीय समाज में महिलाओं की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।
3. महिला सशक्तीकरण के विविध आयामों का अध्ययन करना।
4. महिला सशक्तीकरण के लिये सुझाव प्रस्तुत करना।

**परिकल्पना**

1. महिला की स्थिति में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा हैं।
2. वे अपने मानवाधिकारों के प्रति जागृत हुई हैं।
3. महिला सशक्तीकरण के लिये बनी संवैधानिक उपबंध, अधिनियम, योजना, नीतियां आयोग आदि के क्रियान्वयन के फलस्वरूप समाज में सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिले हैं।

**शोध प्रविधि**: प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक है। प्रस्तुत शोध पत्र में संपूर्ण रूप से द्वितीयक समंकों का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक समंकों के लिये नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो की रिपोर्ट्स, विभिन्न एनजीओ की रिपोर्ट्स, यूनिसेफ द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट्स, मानव संसाधन विकास मंत्रालय की रिपोर्ट, विश्व आर्थिक मंच की रिपोर्ट्स, भारत सरकार द्वारा जारी आर्थिक सर्वेक्षण आदि के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों प्रसिद्ध पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, समाचार पत्रों एवं वेबसाइट आदि के माध्यम से भी प्राप्त की गई हैं।

**साहित्य समीक्षा** : संबधित साहित्य के सर्वेक्षण से तात्पर्य उस अध्ययन से है जों शोध समस्या के चयन के पहले अथवा बाद में उस समस्या पर पूर्व में किये गये शोध कार्यों, विचारों, सिद्धांतों कार्यविधियों, तकनीक शोध के दौरान होने वाली समस्याओं आदि कें बारे में जानने के

लिये किया जाता है। अतः अनुसंधान की समस्या का अंतिम रूप में चयन एवं अनुसंधान प्रक्रिया की पहली सीढ़ी हैं, संबधित साहित्य का अवलोकन एवं समीक्षा। संबंधित साहित्य के सर्वेक्षण में पाठ्यपुस्तक, शोध प्रबंध का प्रयोग किया है। महिला सशक्तिकरण पर किये गये कुछ प्रमुख अध्ययन -

**चव्हाण**[8] पंजाब आनंदराव की पुस्तक ''भारतीय राजनीति एवं महिलायें'' भारत के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की स्थिति पर विशद् वर्णन किया गया हैं। इसके साथ ही सामाजिक विकास में महिलाओं की भूमिका, भारतीय संविधान से प्राप्त महिलाओं को महत्वपूर्ण उपबंध, महिला की स्वास्थ्य व शैक्षिक स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया हैं।

**प्रेम नारायण शर्मा**, झा संजीव कुमार, विनायक वाणी, विनायक सुषमा[9] ने अपनी पुस्तक ''महिला सशक्तिकरण एवं समग्र विकास'' में महिला सशक्तीकरण, महिला सशक्तीकरण की नीतियां एवं कार्यक्रम आदि का वर्णन किया गया हैं।

**सुनील गोयल**[10], संगीता गोयल ने अपनी पुस्तक ''भारतीय समाज में नारी'' में प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक समाज में व्याप्त महिला की स्थिति पर प्रकाश डाला हैं एवं इसके साथ ही महिला सुरक्षा के लिये बने कानूनी प्रावधानों पर भी अध्ययन किया गया हैं।

**शाप सानप**[11] की पुस्तक ''महिला सशक्तीकरण'' भारतीय समाज में महिला सशक्तीकरण से संबधित विभिन्न पक्षों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया हैं। लेखक ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महिलाओं हेतु आंदोलन, भारतीय समाज में महिला की सामाजिक स्थिति आदि के वर्णन के साथ ही साथ महिला की आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हुये महिला सशक्तीकरण के लिये विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों पर विस्तारपूर्वक वर्णन किया हैं।

**ममता**[12] ने अपनी पुस्तक ''घरेलू हिंसा अधिकारों के प्रति महिलाओं की जागरूकता'' में भारतीय समाज में महिलाओं के विरूद्ध व्याप्त सामाजिक कुरीतियों पर प्रकाश डाला गया है एवं इनके साथ ही अधिकारों के प्रति महिलाओं की जागरूकता के स्तर को दर्शाया गया हैं।

**महिला सशक्तिकरण के आधारभूत तत्व** : महिला सशक्तीकरण के महत्वपूर्ण तत्वों मे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिणिक, राजनीतिक आदि तत्व न केवल एक-दूसरे के पूरक हैं अपितु एक-दूसरे पर निर्भर भी हैं किसी भी एक तत्व की जड़ें कमजोर रह जाने पर महिला विकास एवं सशक्तीकरण संभव नहीं हैं। अतः महिला सशक्तीकरण से संबधित सभी तत्वों का एक रूप से विकास होना आवश्यक हैं। महिला सशक्तीकरण के महत्वपूर्ण तत्व निम्न प्रकार से हैं -

**शिक्षा** : महिला सशक्तीकरण एवं शिक्षा का गहनतम संबंध है। यदि एक महिला शिक्षित है, तो वह आत्मनिर्भर व स्वावंलंबी बनकर स्वयं के विकास के साथ ही परिवार के स्तर को भी ऊंचा उठायेगी। महिला की शिक्षा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र यथा पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि को प्रभावित करती हैं। शिक्षा ही एक ऐसा तत्व है जो महिला को स्वास्थ्य, स्वच्छता, सुरक्षा एवं विकास के अधिकारों के प्रति सचेत कर महिलाओं को समाज के सभी कार्यों में सक्षम बनाती है। शिक्षा उनकी बुद्धि का विकास करती हैं, जो उनकी प्रगति के प्रति अत्यंत आवश्यक हैं। इसके साथ ही समाज में व्याप्त विसंगतियों से लड़ने का एकमात्र हथियार भी शिक्षा ही हैं। पर लड़कियों पर अत्यधिक घरेलू दायित्व, बाल-विवाह, अधिक शिक्षित होने पर अत्यधिक दहेज, पढ़ने के लिये घर से दूर भेजने पर सुरक्षा आदि कई कारण से लड़कियों को पढ़ाने के प्रति अभिभावकों को हतोत्साहित करते हैं। आज भी कई मुस्लिम परिवारों में एवं कई रूढ़िग्रस्त हिंदू परिवारों में पर्दा-प्रथा एवं कई प्रकार की बंदिशों के चलते लड़कियां पढ़ नहीं पाती अथवा वे उच्च शिक्षा के स्तर तक नहीं पहुंच पाती।[13] 2011 की जनगणना के अनुसार पुरूषों की तुलना महिलाओं की साक्षरता में काफी अंतराल है। यह आंकड़े बताते हैं कि देश में महिलाओं की साक्षरता दर जहां 64.46 प्रतिशत हैं वहीं पुरूषों की यह दर 82.14 प्रतिशत हैं।[14] महिला की शैक्षिक स्थिति का यदि अवलोकन करें तो आज सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिल रहा। अब माता-पिता अपनी बच्चियों को शिक्षित करने में रूचि लेने लगे हैं। पर अभी भी आवश्यकता हैं कि अभिभावक अपनी बच्चियों को पूर्ण शिक्षित करके एवं खुद के पैरों पर खड़े होने के पश्चात् ही उनके विवाह संबंधित चर्चा करें। विभिन्न रिपोर्ट्स का अध्ययन करें तो हम पाते हैं कि भारत में महिला शिक्षा को लेकर जागृति आई हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की रिपोर्ट[15] All India Survey On Higher Education (AISHE) 2018-2019 के अनुसार

1. उच्च शिक्षा में 2017-2018 में कुल नामांकन में महिला नामांकन 47.6 प्रतिशत में वृद्धि होकर यह नामांकन 2018-2019 में 48.6 प्रतिशत हो गया।
2. उच्च शिक्षा के नामांकन के मामले में दो राज्य उ.प्र. एवं कर्नाटक में 18-23 वर्ष की उम्र वाले छात्र-छात्राओं में छात्रों की अपेक्षा छात्राओं की संख्या अधिक हैं।
3. राष्ट्रीय महत्व के संस्थानों में छात्राओं की सबसे कम भागीदारी देखने को मिली, उसके बाद राज्य स्तरीय निजी मुक्त विश्वविद्यालय, डीम्ड विश्वविद्यालयों (सरकारी) में।
4. रिपोर्ट के अनुसार उच्च शिक्षा संस्थानों में कुल 14,16,299 शिक्षक हैं जिनमें 57.85 प्रतिशत पुरूष एवं 42.2 प्रतिशत महिलाये हैं। यूनिवर्सिटी स्तर पर शिक्षकों की कुल 1.90 लाख हैं जिनमें पुरूष 63.35 प्रतिशत हैं तो वही महिला शिक्षिका 36.65 प्रतिशत हैं।

**वही** PRATHAM Education Foundation की शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट, 2019 (Annual Status of Education Report-ASER, 2019) का अध्ययन करें तो पता चलता है कि 4 से 8 वर्ष के छोटे बच्चों के मध्य में लड़कों एवं लड़कियों के नामांकन पैटर्न अलग-अलग देखे गये जिसमें निजी संस्थाओं में लड़कों का ज्यादा नामांकन तो वही सरकारी संस्थाओं में लड़कियों का नामांकन अधिक पाया गया। यह रिपोर्ट प्रदर्शित करती हैं कि आज भी मंहगे निजी विद्यालयों में बेटों के दाखिलों को महत्व दिया जाता हैं।

**PRATHAM Education** Foundation की शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट, 2019 (Annual Status of Education Report-ASER, 2019) में पाया गया कि उम्र के साथ यह अंतराल और बढ़ता गया, जैसे 4 और 5 साल के बच्चों में से 56.8 प्रतिशत लड़कियां एवं 50. 4 प्रतिशत लड़के सरकारी पूर्व-प्राथमिक या प्राथमिक विद्यालय में नामांकित हैं जबकि वही 43.2 प्रतिशत लड़कियां एवं 49.6 प्रतिशत लड़के निजी प्री-प्राइमरी अथवा प्राइमरी विद्यालय में नामांकित है। 6-8 वर्ष की आयु वर्ग की सभी लड़कियों में से 61.1 प्रतिशत लड़कियां एवं सभी लड़कों में से 52.1 प्रतिशत लड़के सरकारी पूर्व प्राथमिक या प्राथमिक विद्यालय में नामांकित हैं।[16] यह रिपोर्ट भारत की शिक्षा प्रणाली के परिणामों को दृष्टि में रखते हुये पेश की जाती हैं।

**वर्तमान में** सरकार द्वारा बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये विशेष कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। इन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप महिला विकास की ओर गतिमान हो रही हैं। उसने अपने विभिन्न क्षेत्रों में कदम रखे। सभी क्षेत्रों में उसने उल्लेखनीय प्रगति की और देश के विकास में पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर देश की उन्नति में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। आज महिला अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होकर एवं महिला सशक्तीकरण के अर्थ को समझते हुये महिला वर्ग के उत्थान में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।[17]

**आर्थिक स्वावलंबन** : महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण का अर्थ हैं कि महिला में उनकी योग्यता एवं कौशल में वृद्धि करके, उसे आर्थिक गतिविधियों में शामिल करना हैं। देश एवं समाज के विकास के लिये महिलाओं का आर्थिक विकास महत्वपूर्ण हैं। किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिये आर्थिक सुदृढ़ीकरण उसका सबसे महत्वपूर्ण पक्ष हैं। आर्थिक रूप से स्वावंलबन होना आत्मनिर्भर होना अपनी महती भूमिका का निर्वहन करता है। भारत सरकार द्वारा महिलाओं को स्वावलंबी एवं उन्हे आर्थिक रूप से सशक्त करने के लिये अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। पर यह एक विडंबना ही है कि देश में कुल आबादी में लगभग आधी आबादी महिलाओं की होने के बाद भी आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी नगण्य हैं। वे आज भी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं हैं। ''भारत में श्रमशक्ति में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 29 प्रतिशत है, जबकि 2004 में यह आंकड़ा 35 प्रतिशत था। भारत में महिलाओं द्वारा किया जाने वाला आधे से अधिक श्रम अवैतनिक है और लगभग पूरा श्रम अनौपचारिक और असुरक्षित है। अधिकतर क्षेत्रों में महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता, जिसमें व्यापार जगत के शीर्ष पद भी शामिल हैं। हालांकि महिलायें खेतों से जुड़े 40 प्रतिशत कार्य करती हैं, भारत में केवल 9 प्रतिशत भूमि पर उनका नियंत्रण हैं और 60 प्रतिशत महिलाओं की हिस्सेदारी केवल 17 प्रतिशत है जबकि उनका विश्व औसत 37 प्रतिशत हैं।''[18]

**विश्व** आर्थिक मंच की वैश्विक लैंगिक अंतराल रिपोर्ट 2020 के अनुसार[19]

1. 2006 में पहली बार प्रकाशित आंकड़ों की तुलना में आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं के लिये सक्रिय भागीदारी के अवसरों में कमी आई है।

2. 153 देशों में किये गये सर्वे में भारत एकमात्र ऐसा देश है जहां आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी का प्रतिशत राजनीतिक क्षेत्र से कम हैं।
3. श्रमिक बाजार में भी महिलाओं की सक्रिय भागीदारी पुरूषों (82 प्रतिशत) की तुलना में एक चौथाई ही है तथा महिलाओं की औसत आय पुरूषों की तुलना में आधी है, इस मामले में भारत का विश्व में 144वां स्थान है।
4. रिपोर्ट के अनुसार, हालांकि भारत अपने यहां लिंगानुपात में व्याप्त असमानता को लगभग दो-तिहाई दूर करने में सफल रहा है, लेकिन यूईएफ ने देश के दूर-दराज के इलाकों में महिलाओं की स्थिति और भारतीय समाज में गहराई तक फैले लैंगिक अंतराल पर चिंता प्रदर्शित की हैं।

**अतः महिला** को सशक्त होने के लिये उसे आत्मनिर्भर होना अत्यंत आवश्यक है। आज का युग भौतिकवादी युग है। अमेरिका, भारत, जापान, चीन आदि राष्ट्रों में महिलायें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो रही हैं, लेकिन कुछ राष्ट्रों के ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी भिन्न हैं। रोजगार के संबंध में वर्ष 2005-06 में रोजगार में आ रही महिलाओं की संख्या जहां 36 प्रतिशत थी वही वर्ष 2015-16 में इसमें गिरावट होकर यह 24 प्रतिशत ही रह गई।[20] ग्रामीण महिलाओं की प्रायः विभिन्न कार्यों में व्यस्तता रहती हैं, जिसका कोई मूल्य स्वीकृत नहीं हैं एवं ग्रामीण स्त्रियों की आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर निर्भर है। भारतीय समाज में प्रत्येक क्षेत्र में महिला की महत्वपूर्ण भागीदारी होने के बावजूद वह आर्थिक रूप से पिछड़ी है।

**स्वास्थ्य** : स्वास्थ्य की दृष्टि से महिला को सशक्त बनाना न केवल पारिवारिक सदस्यों एवं बालकों की भलाई के लिये आवश्यक हैं बल्कि एक देश के विकास लिये अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। महिला के चहुंमुखी विकास से उन्हें स्वंय की आंतरिक क्षमता का एहसास, संसाधनों तक पहुंच एवं उन्हें निर्णय लेने की स्वायत्तता के साथ-साथ स्वतंत्र रूप से समाधानों के चयन की एवं साथ ही घर में एवं घर से बाहर दोनों ही क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की शक्ति मिलती हैं। महिला सशक्तीकरण न केवल सामाजिक न्याय व समानता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं अपितु यह विभिन्न संधारणीय विकास लक्ष्यों (ए.डी.जी.) को प्राप्त करने का भी एक साधन है। पूरे 17 विकास लक्ष्यों में मुख्यतया गरीबी को कम करने के साथ व्यक्तियों में पोषण में सुधार करने का लक्ष्य भी शामिल है। NFHS-4 में पोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी आंकड़े बताते हैं कि 15 से 49 वर्ष आयु वर्ग महिलाओं में से 22.9 प्रतिशत कम वजन एवं 53.1 प्रतिशत महिलायें एनीमिया से ग्रसित पाई गई। इसके साथ ही गर्भवती स्त्रियों में से मात्र 21 प्रतिशत महिलाएं ही प्रसव पूर्व देखभाल की सुविधाओं का लाभ उठा पाईं।[21] वही लांसेट ग्लोबल हेल्थ जर्नल में प्रकाशित अध्ययन के अनुसार भारतीय महिलायें शारीरिक रूप से उतनी सक्रिय नहीं हैं, जिसके चलते उन्हे जीवनशैली से संबधित ज्यादा रोग हो रहे हैं। अध्ययन में बताया गया हैं कि स्वस्थ रहने के लिये 34 प्रतिशत भारतीय पर्याप्त व्यायाम नहीं करते। वहीं 44 प्रतिशत भारतीय महिलायें सरकार द्वारा निर्धारित गाइडलाइन के जितना भी व्यायाम नहीं करती।[22] वहीं कुछ सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं भारत सरकार द्वारा प्रकाशित आर्थिक सर्वेक्षण 2019-2020 के अनुसार जहां 62.3 प्रतिशत महिलाएं वर्ष 2005-06 में अपने स्वास्थ्य से संबधित निर्णय लिया करती थीं, वहीं वर्ष 2015-16 में इसमें वृद्धि होकर 74.5 प्रतिशत हो गयीं।[23]

**महिलाओं** में असशक्तता होने से अक्सर उन्हें समय की कमी, घरेलू संसाधनों पर न के बराबर नियंत्रण, हीनभावना और मानसिक अस्वस्थता के साथ-साथ स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं की अपर्याप्त जानकारी व सीमित उपयोग की अक्सर संभावना रहती है। शोध एवं प्रमाणों ने सिद्ध कर दिया है कि घरेलू हिंसा से ग्रस्त महिलाओं (असशक्तता का एक संकेतक) के स्वयं के पोषण व स्वास्थ्य पर तो प्रतिकूल प्रभाव पड़ता ही है, साथ-साथ परिवार के अन्य सदस्यों (विशेषकर बच्चों) के पोषण एवं स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता हैं।[24] इन सबके बावजूद मातृ-मृत्यु दर को लेकर एक सकारात्मक परिणाम हमको देखने को मिल रहा हैं। भारत की रजिस्ट्रार जनरल द्वारा जारी एमएमआर की रिपोर्ट के अनुसार भारत की मातृ-मृत्यु दर में गिरावट देखने को मिली है।[25]

| 2014-2016 | 2015-2017 | 2014-2016 |
|---|---|---|
| 130 | 122 | 113 |

(स्त्रोत- भारत की रजिस्ट्रार जनरल द्वारा जारी एमएमआर की रिपोर्ट)

**इसी के** साथ ही सतत विकास लक्ष्यों के प्रति भारत की प्रतिबद्धता पर बोलते हुये डॉ हर्षवर्धन ने कहा ''एमएमआर में इस निरंतर गिरावट के साथ, भारत 2030 तक

70/लाख जीवित बच्चों के जन्म के लक्ष्य और 100/जीवित बच्चों के जन्म की राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति(एनएचपी) लक्ष्य 2020 को हासिल करने की राह पर अग्रसर है।''[26]

पिछले दो दशकों में एमएमआर में कमी लाने में भारत ने वैश्विक औसत में काफी अच्छा प्रदर्शन किया हैं परंतु एमएमआर की नजरिये से अभी और लंबा सफर निर्धारित करना होगा। स्वास्थ्य विभाग द्वारा महिलाओं के स्वास्थ्य में सुधार लेने के निमित्त विभिन्न कार्यक्रमों को प्रारंभ किया गया। पर ग्रामीण क्षेत्रों के संदर्भ में महिलाओं की स्वास्थ्य संबंधी स्थिति अच्छी नहीं है। स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं तक भी ग्रामीण महिलाओं की पहुंच नहीं इसके साथ अधिकांश महिलायें स्वास्थ्य के प्रति सचेत भी नहीं हैं।[27] भारत सरकार ने स्वास्थ्य से संबधित बहुत महत्वपूर्ण योजनाओं एवं पहलों को प्रारंभ किया है लेकिन फिर भी समाज को भी संवेदनशील तरीके से सोचना होगा। भारत सरकार द्वारा महिलाओं के कुपोषण की समस्या के समाधान को प्रमुख प्राथमिकता दी हैं एवं इसके समाधान के लिये विभिन्न नीतियों, कार्यक्रमों व योजनाओं के माध्यम से भरसक प्रयासरत हैं।

**सता में भागीदारी** : भारत एक विशाल लोकतांत्रिक गणराज्य हैं जिसमें संप्रभु शक्ति यहां की जनता के हाथ में रहती हैं। सभी राष्ट्रों में मुख्यतः निम्न व मध्यम आय वाले राष्ट्रों में राजनीतिक सता के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी पुरूषों की अपेक्षा कम हैं। सर्वप्रथम न्यूजीलैण्ड में 1893 में महिलाओं को मतदान का अधिकार मिला। इसी प्रकार 1918 ई. में इग्लैण्ड व रूस एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में 1920 में महिला को पुरूषों के बराबर मताधिकार प्राप्त हुआ।[28] स्वतंत्रता प्राप्ति पूर्व सता में महिला की भागीदारी की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। गांधीजी के नेतृत्व में वर्ष 1919 के बाद कुछ महिलाओं ने राजनीति में पर्दापण अवश्य किया लेकिन उन्हें कुलीन परिवार के विरोधों का सामना करना पड़ा। हालांकि आज मतदान करने के क्षेत्र में महिला जागरूक हो रही हैं। वर्ष 1962 में आम चुनावों में जहां पुरूष व महिला मतदाताओं के बीच अंतर 16.7 प्रतिशत था वहीं 2014 में हुये आम चुनावों में यह अंतराल मात्र 1.5 प्रतिशत रह गया।[29] आज यह माना जाता हैं कि भारत में राजनीतिक प्रतिनिधित्व में महिला की स्थिति ठीक हैं पर इसकी जमीनी हकीकत कुछ ओर है, अक्सर यह देखने में आया हैं कि जब महिलायें मतदान करने के लिये जाती हैं तब यह उसके पिता, पुत्र अथवा पति द्वारा पहले ही तय कर दिया जाता हैं कि मतदान किसे करना है।

**लोकनीति** CSDS (Centre for study of Developing Socities) और कोनराड एडेनॉयर स्टिफटंग (Konrad Adenauer Stiftung) कोनराड के सर्वेक्षण रिपोर्ट Women & Politics : Changing Trends and Emerging Patterns[30] के अनुसार -

1. लोकनीति एवं कोनराड एडेनॉयर स्टिफटंग के राजनीति में महिलाओं की भागीदारी को लेकर किये सर्वे में पाया गया कि चुनाव में महिलाओं की भागीदारी में उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। राजनीति में सामाजिक एवं आर्थिक रूप से उच्च वर्गों की महिलाओं की भागीदारी अधिक पाई गई जबकि निम्न सामाजिक-आर्थिक वर्ग की महिलाओं की भागीदारी अत्यधिक कम थी।
2. पिछले कुछ सालों में मतदाता के रूप में चुनावों में महिला की भागीदारी बढ़ी है। जहां काफी राज्यों में विभिन्न चुनावों में महिलायें पुरूषों के बराबर वोट दे रही हैं, वहीं कई स्थानों पर महिलायें पुरूषों की तुलना में अधिक वोट दे रही हैं।
3. राजनीति में पुरूषों के वर्चस्व को लेकर सर्वेक्षण में पाया गया कि राजनीति में पुरूषों का वर्चस्व, महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में प्रमुख बाधक तत्वों में से एक हैं।
4. सर्वे में अधिकांश महिलाओं का मानना हैं कि महिला उम्मीदवारों की तुलना में पुरूष उम्मीदवारों को भारतीय मतदाता अधिक मतदान करते हैं।
5. सर्वे में अधिकतर महिलाओं के अनुसार पितृसतात्मक व रूढ़िवादी सामाजिक ढांचे के कारण घरों में राजनीति से संबधित निर्णय लेने में महिलाओं को कम स्वायत्तता हैं।
6. सर्वेक्षण में 66 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि वे राजनीतिक निर्णय से संबधित मामलों में अभी भी स्वायत्त नहीं हैं।
7. राजनीति में महिलाओं की कम भागीदारी के पीछे कारणों में 22 प्रतिशत महिलाओं ने जहां पितृसतात्मक समाज को बाधक तत्व माना वही 13 प्रतिशत महिलाओं ने घरेलू जिम्मेदारियों को माना, 10 प्रतिशत महिलाओं ने व्यक्तिगत कारणों को माना, वहीं 7 प्रतिशत महिलाओं ने सांस्कृतिक कारणों के कारण

राजनीति में भाग लेने में असमर्थता जताई आदि कारणों के चलते महिलायें राजनीतिक में भागीदारी नहीं लेने के कारण बताये।

''**पुरूष** प्रधान समाज में आज भी नारी को उच्च स्थिति प्राप्त नहीं हुई हैं। पंचायतों में चुनाव में विजय हासिल करने के पश्चात् भी महिला अपनी स्वयं की इच्छा से कोई कार्य प्रारंभ नहीं कर पाती हैं।''[31] इस तरह राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी में कम हैं। इंटर पार्लियामेंट युनियन की रिपोर्ट 2019 के अनुसार, संसद के निचले सदन में महिला प्रतिनिधियों वाले 193 राष्ट्रों में से भारत 149वें पर हैं।[32] अतः आज राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

**सामाजिक कुरीति उन्मूलन/ सामाजिक सुदृढ़ीकरण** : वर्तमान परिदृश्य में महिला की छवि बदल रही हैं। उसके लिये विभिन्न उपबंधों, अधिनियमों एवं योजनाओं के क्रियान्वयन में जहां उसके लिये शिक्षा के द्वार खुले हैं, वहीं रोजगार के भी नये अवसर उत्पन्न हुये हैं। आज प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं के अस्तित्व एवं उनकी भागीदारी को स्वीकारा जा रहा हैं। जहां संवैधानिक उपबंधों में महिलाओं को बिना लैंगिक भेदभाव के समानता दी है, वही अधिनियमों में उन्हें संरक्षण प्रदान किया हैं। इस तरह समय के परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक जीवन में मूल्यों में भी एक सकारात्मक प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा हैं। संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय बाल आपातकालीन कोष द्वारा जारी रिपोर्ट ''फैक्टशीट चाइल्ड मैरिज 2019'' के अनुसार पिछले कुछ दशकों में भारत में बाल-विवाह की दर में कमी आई हैं पर कुछ राज्यों में यह प्रथा आज भी विद्यमान हैं। जहां एक तरफ महिला सशक्तीकरण को लेकर सकारात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं वहीं कुछ नकारात्मक पहलू/घटक अभी भी समाज में विद्यमान हैं। उनमें में मुख्य हैं पुत्र की चाह, यह समस्या के फलस्वरूप समाज में गर्भपात जैसी समस्या को जन्म दे रही हैं। ''संभवत वह क्षेत्र जहां भारतीय समाज को सर्वाधिक ध्यान देने की जरूरत है वह पुत्र ही की चाह में लिंग चयनित गर्भपात और उत्तरजीविता में भिन्नता से जन्म के समय और आगे लिंगानुपात में विषमता पैदा होती है, जिससे 63 मिलियन महिलाओं के गुम हो जाने का अनुमान होता है। लेकिन हमारे यहां पुत्र की चाह का दूसरा स्वरूप भी है जिसमें प्रजनन करने वाले माता-पिता द्वारा ''विराम नियमों'' को अपनाया जाना शामिल है, वे तब तक बच्चों को जन्म देते हैं जब तक इच्छित संख्या में पुत्र पैदा नहीं हो जाते। इस पुत्र की चाह से ''अनचाही'' लड़कियों की अनिच्छत श्रेणी बढ़ती है जो 20 मिलियन से अधिक है। कुछ मायनों में, लड़कियों का एक बार जन्म होने पर पहले तो उनकी स्थिति में सुधार होता है लेकिन समाज अभी यही चाहता है कि काश, इनमें से कुछ कम ही पैदा हुई होती। पुत्र की चाह और पुत्र के बाद पुत्र की चाह के संबंध में भारतीय समाज द्वारा सामूहिक आत्मचिंतन आवश्यक है। सरकार की बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, सुकन्या समृद्धि योजना और अनिवार्य मातृत्व नियमावली जैसी पहलें इस अंतर्निहित चुनौती का निराकरण करने पर केन्द्रित एक महत्वपूर्ण कदम हैं।''[33]

**वर्तमान** परिदृश्य में एक तरफ जहां महिला सभी क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही हैं वही दूसरी तरफ हमारे समाज में महिलाओं के विरूद्ध हो रहे अपराध में कोई कमी दर्ज नहीं की गई हैं। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों का अध्ययन करे तो इन आंकड़ों में निरतंर बढ़ोतरी दर्ज की गई है।

| 2015 | 2016 | 2017 | 2018 |
|---|---|---|---|
| 3,29,243 | 3,38,954 | 3,59,849 | 3,78,277 |

(स्त्रोत - नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो)

**आज 21वीं** सदी में महिलाओं में प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करवायी हैं। पर यहां यह भी ध्यातव्य हैं कि आज भी समाज में कुछ ऐसी कुरीतियां, प्रथायें विद्यमान हैं जिसके चलते महिलाओं को शोषण, उत्पीड़न से गुजरना पड़ता है, जो कि महिला सशक्तीकरण में बाधक हैं। समाज में महिलाओं के सामने कई ऐसी समस्यायें विद्यमान हैं जो कि उनके सामाजिक क्षेत्र में सशक्तीकरण के लिये बाधक तत्व हैं, जिनमें दहेज प्रथा, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह आदि महत्वपूर्ण हैं। सदियों से उनके साथ कभी धर्म, कभी संस्कृति के नाम पर उत्पीड़न हो रहा है। इन्हीं प्रथाओं में एक प्रथा है, खतना। यूनिसेफ द्वारा जा जारी आंकड़ों के अनुसार दुनिया भर में करीब बीस करोड़ बालिकाओं एवं महिलाओं के जननांगों को नुकसान पहुंचाया गया है। आज प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं के साथ हो रहे शोषण कम तो हुये है लेकिन समूल नष्ट नहीं हुये हैं क्योंकि आज भी समाज में रूढ़िवादी परंपराओं, मान्यताओं एवं अंधविश्वासों का वर्चस्व कायम हैं।

**महिला सशक्तीकरण एवं योजनायें** : समाज में महिलाओं के विरूद्ध हो रहे अत्याचार एवं अपराध को रोकने एवं

उन्हें मुख्य धारा से जोड़ने के लिये संविधान में महत्वपूर्ण प्रावधान किये गये हैं एवं भारत सरकार ने भी कई प्रकार की योजनायें, नीतियां बनाई एवं साथ ही स्वयंसेवी संस्थायें भी इस ओर निरंतर प्रयासरत हैं। वर्ष 2001 को भारत में महिला सशक्तीकरण वर्ष घोषित किया गया। इसी उपलक्ष्य में भारत में राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति लाई गई। यह भारत सरकार द्वारा महिला सशक्तीकरण को लेकर एक नई पहल थी। महिला सशक्तीकरण के लिये बनी इस नीति में विभिन्न दिशा-निर्देश एवं मानक तय किये गये। सरकार द्वारा प्रत्येक स्तर जैसे सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, कुपोषण के विभिन्न क्षेत्रों में सुधार लाने के लिये विशेष कार्यक्रम एवं योजनायें बनाई गई जो निम्नलिखित हैं - आयुष्मति योजना, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना, वन स्टॉप सेंटर स्कीम, उज्जवला योजना, महिला पुलिस वोलिन्टियर, महिला समृद्धि योजना, सी बॉक्स आदि महत्वपूर्ण हैं।

**महिला सशक्तीकरण की चुनौतियां** : यद्यपि आज महिला प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही हैं तथापि उसके सशक्तीकरण में विभिन्न चुनौतियां उभरकर सामने आ रही हैं। समाज में व्याप्त रूढ़ियों एवं विसंगतियों के चलते महिलाओं को विभिन्न प्रकार के उत्पीड़न एवं शोषणों से गुजरना पड़ रहा हैं। आज भी महिला की स्वतंत्रता कई प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों से बाधित है। आज 21वीं सदी में भी उन्हें परंपरा के नाम पर भेदभाव का सामना करना पड़ रहा हैं। धर्म के ठेकेदारों की मनमानी के चलते महिला विभिन्न धार्मिक क्रियाकलापों से वंचित हैं, सबरीमाला मंदिर में महिला के प्रवेश निषेध का मामला एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। जहां राजनैतिक क्षेत्र में उन्हें संविधान द्वारा आरक्षण का प्रावधान किया गया हैं पर वहां भी (ग्राम पंचायतों) महिला प्रधान, सरपंच पति प्रथा से ग्रसित हैं। जहां वर्तमान परिदृश्य में लड़के एवं लड़कियों में शिक्षा को लेकर होने वाले भेदभाव कम हुये हैं वहीं निम्न जातियों में कमजोर आर्थिक स्थिति के नाम पर और संभ्रांत परिवारों में रूढ़िवादी परंपरा के नाम पर बालिकाओं को शिक्षित करने के मार्ग अवरूद्ध हो रहे हैं। ''बहुत कम लड़कियां का स्कूलों में दाखिला कराया जाता हैं और उनमें से भी कई बीच में ही स्कूल छोड़ देती हैं। इसके अलावा कई लड़कियां रूढ़िवादी सांस्कृतिक रवैये के कारण स्कूल नहीं जा पाती हैं। वर्ष 2018 में राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग द्वारा जारी रिपोर्ट में कहा गया था कि 15-18 वर्ष की आयु वर्ग की लगभग 39.4 प्रतिशत लड़कियां स्कूली शिक्षा हेतु किसी भी संस्थान में पंजीकृत नहीं हैं और इनमें से अधिकतर या तो घरेलू कार्यों में संलग्न होती हैं या भीख मांगने जैसे कार्यो में। आंकड़े यह भी बताते हैं कि भारत में अभी भी लगभग 145 मिलियन महिलायें हैं जो पढ़ने या लिखने में असमर्थ हैं। उल्लेखनीय है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा स्थिति और अधिक गंभीर है।''[34] कार्यशील महिला को कार्यस्थल पर विभिन्न शोषणों का सामना करना पड़ रहा हैं। नैतिक शिक्षा देने के नाम पर चलने वाले संस्थानों में भी ऐसे कई घटनायें प्रतिदिन सामने आने को मिल रही हैं जो मानवता को शर्मसार कर देते हैं। इस तरह अशिक्षा, कुरीतियां, रूढ़िवादिता एवं पूर्वाग्रह, धार्मिक आंडबंर आदि चुनौतियां महिला के चहुंमुखी विकास में बाधक तत्व के रूप में सामने आ रही हैं। महिला सशक्तीकरण से संबधित चुनौतियां सदियों से चली आ रही हैं। अतः यह संभव नहीं कि ये चुनौतियां आज एक पल में समाप्त हो जाये इन चुनौतियों के समाधान के लिये अभी ओर सकारात्मक सुधार की आवश्यकता है।

**निष्कर्ष** : प्रस्तुत आंकड़ों का अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकलता हैं कि क्षमता के संबंध में महिला में उल्लेखनीय प्रगति हुई है जैसे परिवार से संबधित महत्वपूर्ण निर्णय आदि लेने में महिला सशक्त हुई हैं पर वहीं महिलाओं के खिलाफ घटित होने वाले अपराधों में बढ़ोतरी देखी गई हैं। महिला की शैक्षिक स्थिति का अवलोकन करने पर ज्ञात होता हैं कि महिला के शैक्षिक स्तर में सकारात्मक सुधार हुआ तथापि यह सुधार देश में हो रहे विकास के अनुरूप नहीं हैं। आर्थिक सुदृढ़ीकरण से संबधित आंकड़ों के संबंध में कोई सकारात्मक परिणाम देखने को नहीं मिले। आर्थिक क्षेत्र में आज भी वह दूसरों पर ही आश्रित है। हालांकि महिला के आर्थिक सशक्तीकरण को लेकर सरकार द्वारा निरंतर प्रयास जारी हैं। सरकार ने भी महिला को आर्थिक क्षेत्र में बढ़ाने के लिये उसके लिये निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में नियोजित महिलाओं के लिये मातृत्व अवकाश को भी बढ़ाकर 26 सप्ताह अनिवार्य कर दिया। इसके साथ ही सरकार द्वारा आर्थिक रूप से सशक्त करने के लिये विभिन्न योजनाएँ भी क्रियान्वित भी की गई हैं। केन्द्र सरकार ने महिला सशक्तीकरण को गंभीरता में लेते हुये तीन तलाक, यौन

अपराध अधिनियम 2012 को संसद में पारित करवाकर महिला सशक्तीकरण की ओर एक सकारात्मक कदम बढ़ाया हैं। काफी हद तक वर्तमान आंकड़े यह दर्शाते हैं कि 21वीं सदी में महिलाओं के प्रति समाजि के दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन आया है। पिछले कुछ वर्षों में महिलाओं के रहन-सहन के सामाजिक जीवन में काफी परिवर्तन आया हैं। आज 21वीं सदी में महिलाओं ने स्वयं को मुख्यधारा से जोड़ लिया हैं। पिछले कुछ वर्षों में भारत सरकार ने महिलाओं के सशक्तीकरण के लिये महत्वपूर्ण योजनाओं का निर्माण किया एवं कानूनों का निर्माण किया जिससे महिलाओं के अधिकारों में, उसकी शैक्षिक स्थिति एवं रोजगार से संबंधित क्षेत्रों में काफी परिवर्तन आया। भारत की साक्षरता दर पर अगर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि साक्षरता में महिलाओं ने अपने कदम बढ़ाये हैं। शिक्षण संस्थानों में उसने उपस्थिति दर्ज करवायी हैं। इसी के साथ सरकारी एवं गैर-सरकारी नौकरियों में भी महिलायें उच्च पदों पर कार्यरत है। परीक्षा परिणामों में भी महिलायें पुरूषों की तुलना में बेहतर प्रदर्शन कर रही हैं। यह सब साक्षरता के प्रति महिला चेतना का ही परिणाम है। एक समय था जब पुलिस, सेना, पायलट, कंमाडो आदि पोस्ट जो सिर्फ पुरूषों के लिये ही थी, उस पर भी महिलाओं ने अपनी अभुतपूर्व शक्ति का प्रदर्शन किया है। अब महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक रूप से परिवर्तन आ रहा है। वह समाज में एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में अपनी जगह बनाने में सफल हो रही है। आज वे भेदभाव, अत्याचार और शोषण के विरूद्ध आवाज उठा रही हैं, वह स्त्री-शक्ति की मिसाल बन रही है। लेकिन अभी महिलाओं को सशक्त करने में समाज को एक लंबा सफर तय करना होगा, एक तरफ जहां महिलाएं प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही हैं, वही दूसरी तरफ उसे विभिन्न कुरीतियों, रूढ़ियों से जकड़ दिया जा रहा हैं। सभी प्रावधानों एवं प्रयत्नों के बावजूद भी उसे दोयम दर्जे का सामना करना पड़ रहा हैं। आज 21वीं सदी में भी न केवल विकासशील राष्ट्रों में अपितु विकसित देशों में भी लिंग आधारित भेदभाव देखने को मिल रहा है। आज भी समाज में अधिकतर लड़कियों के जन्म की तुलना में लड़कों के जन्म को प्राथमिकता दी जा रही है। यद्यपि महिला की स्थिति भिन्न-भिन्न समाजों में परिवर्तनीय है पर किसी भी समाज में यह शोषण/भेदभाव पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ। अतः आज स्वयं महिला को सशक्त होने की आवश्यकता हैं। आज आवश्यकता है कि महिलायें स्वयं अपने कानूनी अधिकारों के प्रति जागरूक हो, स्वयं अपने साहस, विश्वास एवं बिना किसी डर सामाजिक कुरीतियों का निषेध कर प्रगति के पथ पर अग्रसर हों। **इस बात** को नहीं नकारा जा सकता कि समाज में महिला सशक्तीकरण को लेकर सकारात्मक परिवर्तन हुये लेकिन अभी भी पूर्ण रूप से इस दिशा में जागरूकता लाने की आवश्यकता हैं। महिला सशक्तीकरण के लिये आवश्यक हैं कि न सिर्फ सरकार को अपितु समाज, समुदाय को सभी को जागरूक होना होगा एवं समाज में बढ़ रहे अधिक पुत्र मोह पर भी विचार करना होगा। अब जिम्मेदारी सरकार द्वारा लाये गये कानून, योजना को ईमानदारी से वास्तविक धरातल पर लाने के लिये समाज एवं देश निवास करने वाले नागरिकों की हैं। वर्तमान परिदृश्य जिस प्रकार में भारत प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने के प्रति प्रतिबद्ध हैं, उसी तरह लिंग संबंधी सकारात्मक परिणामों को प्राप्त करने के लिये प्रतिबद्धता दिखानी होगी। अतः आज सरकार, समाज को आवश्यकता है सकारात्मक एवं रचनात्मक कदम उठाने की जिससे लिंगाधारित कुत्सित विचारधारा इतिहास में परिवर्तित हो जाये।

## सन्दर्भ


1. यजुर्वेद 12.53
2. ऋग्वेद 2.41.16
3. ममता (उद्धृत), 'घरेलू हिंसा, अधिकारों के प्रति महिलाओं की जागरूकता', रेगल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 87
4. कुमार श्याम (उद्धृत), 'महिला सशक्तीकरण में मनरेगा की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधाकमल मुकर्जी : चिंतन परंपरा, वर्ष 18 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2016, पृ.146
5. महाजन सुमित्रा, 'दर्शन, लक्ष्य और उपलब्धियां', योजना, वर्ष 45, अंक 5, अगस्त 2001, पृ.3
6. गोयल सुनील, गोयल संगीता, 'भारतीय समाज में नारी', आरबीएसए पब्लिशर्स, जयपुर, 2003, पृ.1
7. 'न्यू इंडिया' की संकल्पना : चुनौतियां और संभावनायें, 19 Aug 2018, https://www.drishtiias.com/hindi/mains/model-essays/concept-of-new-india-challenges-and-prospects, Accessed on 20 Aug 2020
8. चव्हाण पंजाब आनंदराव, 'भारतीय राजनीति और महिलायें', चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, 2017

9. शर्मा प्रेम नारायण, झा संजीव कुमार, विनायक वाणी, विनायक सुषमा, 'महिला सशक्तिकरण एवं समग्र विकास', भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2008
10. गोयल सुनील, गोयल संगीता, पूर्वोक्त
11. शाप सानप, 'महिला सशक्तीकरण', चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, 2014
12. ममता, पूर्वोक्त
13. शाप सानप, पूर्वोक्त, पृ.153
14. गृह मंत्रालय, भारत की जनगणना 2011, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2011
15. Ministry of Human Resource Development (MHRD), All India Survey On Higher Education (AISHE) 2018-2019, Department of Higher Education, (New Delhi : Govt. of India 2018)
16. PRATHAM Education Foundation, Annual Status of Education Report -2019 'Early Years', (New Delhi : ASER Centre, 2020)
17. शर्मा प्रेम नारायण, झा संजीव कुमार, विनायक वाणी, विनायक सुषमा, पूर्वोक्त, पृ.34
18. लैंगिग असमानताः महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण, https://in.one.un.org./unibf-hindi/gender-equlity/, Accessed on 20 Aug 2020
19. लैंगिग अंतराल रिपोर्ट - 2020, 17 Dec 2019, www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-anaysis/world-economic-forum-2, 17 Dec 2019, accessed on 20 Aug 2020
20. वित मंत्रालय, आर्थिक सर्वेक्षण 2019-2020, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2019, पृ.105
21. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, नेशनल फैमिली हैल्थ सर्वे-2015-2016 (एनएफएचएस-IV), भारत सरकार, नई दिल्ली, 2017
22. भारत में आधी महिला आबादी पर्याप्त व्यायाम नहीं करती-लैन्सेट रिपोर्ट, 8 मार्च 2020, https://healthcarefbpage.blogspot.com/2020/08/blog-post_3html?m=1, a aaccessed on 14 sep 2020
23. वित मंत्रालय, आर्थिक सर्वेक्षण 2019-2020, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2019, पृ.105
24. जैन पासी संतोष, जैन आंकाक्षा 'स्वस्थ एवं पोषित महिलायें सशक्त राष्ट्र की आधारशिला', कुरूक्षेत्र वर्ष 66, अंक 7, मई 2020 पृ.11
25. India's maternal mortality ratio declines by 7.4%, Rajasthan, UP show most reduction, July 18, 2020, https://www.indiatoday.in/india/story/india-maternal-mortality-ratio-declines-by-7-percent-1701797-2020-07-18, aaccessed on 14 sep 2020
26. भारत सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी), राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (एनएसपी) और मातृ मृत्यु दर (एमएमआर) लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसरः हर्षवर्धन, 17 जुलाई 2020, https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1639471# , aaccessed on 14 sep 2020
27. बाला किरन, 'ग्रामीण महिलाओं का स्वास्थ्य - एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधाकमल मुकर्जी : चिंतन परंपरा, वर्ष 16, अंक 1, जनवरी-जून 2014, पृ.160
28. शर्मा प्रभा, 'भारतीय राजनीति में महिलाओं की सहभागिता एवं सशक्तीकरण', राधाकमल मुकर्जी : चिंतन परंपरा, वर्ष 17, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015, पृ.72
29. उमंग कुमार, 8 मार्च 2019, जानिये देश के पहले चुनाव में लाखों महिलायें मतदान के अधिकार से क्यों वंचित रह गई, https://www.sautuk.com/world/here-is-why-lakhs-of-women-didnt-vote-in-first-general-elections-in-india/ Accessed on 10 Aug 2020
30. Lokniti-Centre for study of Developing Socities & Konrad Adenauer Stiftung, Women & Politics : Changing Trends and Emerging Patterns ¼Lokniti-Centre for study of Developing Socities & Konrad Adenauer Stiftung's survey, 2019 ½] https://www.lokniti.org/media/upload_files/Executive%20Summary%20(1).pdf, Accessed on 20 Aug 2020
31. चव्हाण पंजाब आनंदराव, पूर्वोक्त, पृ.111
32. Inter Parliamentary Union, Women in national parliaments, (Inter Parliamentary Union, 2019) http://archive.ipu.org/wmn-e/arc/classif010219.htm, accessed on 20 Aug 2020
33. वित मंत्रालय, आर्थिक सर्वेक्षण 2019-2020, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2019, पृ.105
34. महिला शिक्षा, 19 अक्टुबर 2019, https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-editorial/women-education, Accessed on 13 sep 2020

**राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा** Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
**वर्ष 22 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2020** UGC-CARE List-Social Sciences

# गौतम बुद्ध केंद्रीय पुस्तकालय (बी.बी.ए.यू.) के उपयोगकर्ताओं की डिजिटल लाइब्रेरी के महत्व पर अवधारणा

❑ सुश्री नेहा कन्नौजिया
❖ प्रोफेसर शिल्पी वर्मा

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य लखनऊ के बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय (बीबीएयू) के गौतम बुद्ध सेंट्रल लाइब्रेरी के उपयोगकर्ताओं की डिजिटल लाइब्रेरी के प्रति अवधारणा को प्रस्तुत करना है। सूचना के उपयोग को बढ़ावा देने में डिजिटल लाइब्रेरी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। डिजिटल लाइब्रेरी पारंपरिक लाइब्रेरी की मुख्य चुनौतियों का समाधान करती हैं। वर्तमान समय में हम हर क्षेत्र में डिजिटल जानकारी चाहते हैं। डिजिटल लाइब्रेरी के द्वारा हम कम समय में सूचना प्राप्त कर सकते हैं। यह लेख भारत में स्थापित सफल डिजिटल लाइब्रेरी प्रोजेक्ट की भी पड़ताल करता है और भारतीय परिप्रक्ष्य में डिजिटल लाइब्रेरी का भविष्य क्या है? यह भी ज्ञात करने का प्रयास करता है। अध्ययन के डेटा संग्रह के लिए, एक सर्वेक्षण पद्धति का उपयोग किया गया है। एक अर्ध-संरचित प्रश्नावली का इस अध्ययन में ओपन और क्लोज-एंड प्रश्नावली अनुसंधान उपकरण का उपयोग किया गया था। अध्ययन में अध्ययनकर्ता ने पाया कि विषय विशेष रूप से जानकारी को व्यवस्थित और प्राप्त करने के लिए अधिकांश छात्र डिजिटल संसाधन का प्रयोग करते हैं और उनका डिजिटल संसाधन को प्रयोग करने का उदेद्श्य अपने अध्ययन कार्य और शोध कार्य पर क्रेंदित होना है। इसके लिए वह विश्वविधयालय के केंद्रीय पुस्तकालय के पुस्तकालय वेबसाइट लिंक का उपयोग करते हैं।

**शैक्षिक** और अनुसंधान प्रक्रिया में पुस्तकालय महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक डिजिटल लाइब्रेरी दुनिया भर में कई ज्ञान नेटवर्क तक पहुंच प्रदान कर सकती है, जो कि किसी भी अनुसंधान अनुभव का एक आवश्यक घटक है। डिजिटल सूचना, इलेक्ट्रानिक प्रौद्योगिकी, डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू की बढ़ती लोकप्रियता और सीडी–रोम उत्पादों की जबरदस्त वृद्धि के युग में, डिजिटल पुस्तकालयों में मल्टीमीडिया जानकारी, फिल्मों, भाषणों, छवियों और तस्वीरों से लेकर ध्वनियों, पाठ और उससे आगे की सभी चीजें उपलब्ध हैं। ऑनलाइन, सीडी–रोम और सूचना के अन्य डिजिटल स्रोतों की मात्रा में विस्फोट हो रहा है और सामग्री तक पहुँचने के लिए बुनियादी ढाँचा लगभग रोजाना सुधर रहा है। डिजिटल पुस्तकालयों की मल्टीमीडिया प्रदृति के लिए प्रासंगिक जानकारी को कुशलतापूर्वक खर्च करने और डिजिटल सूचना प्रणाली (डीआईएस) के प्रारूपों के एक विस्तृत विविधता में प्रभावी ढंग से प्रसारित करने के लिए डिजिटल लाइब्रेरियन की आवश्यकता होती है। डिजिटल पुस्तकालयों का आगमन चुनौतियों और अवसरों का ढेर प्रस्तुत करता है!

**डिजिटल** लाइब्रेरी एक विशेष पुस्तकालय है जिसमें डिजिटल वस्तुओं का एक संग्रह होता है जिसमें पाठ, दृश्य सामग्री, ऑडियो सामग्री, वीडियो सामग्री शामिल हो सकती है, इलेक्ट्रानिक मीडिया प्रारूपों के रूप में संग्रहीत होती है, साथ ही फाइलों और मीडिया को व्यवस्थित करने, संग्रहीत करने और पुनर्प्राप्त करने के लिए साधन शामिल होते हैं। डिजिटल पुस्तकालय आकार और दायरे में काफी भिन्न हो सकते हैं, और व्यक्तियों, संगठनों, या स्थापित भौतिक पुस्तकालय भवनों या संस्थानों के साथ या शैक्षणिक संस्थानों के साथ बनाए रखा जा सकता है। इलेक्ट्रानिक सामग्री को स्थानीय रूप से संग्रहीत किया जा सकता है, या कंप्यूटर नेटवर्क के माध्यम से दूरस्थ रूप से एक्सेस किया जा सकता है। इलेक्ट्रानिक लाइब्रेरी एक प्रकार की सूचना पुनर्प्राप्ति प्रणाली है।[1]

**डिजिटलीकरण का इतिहास :** डिजिटल इमेज प्रोसेसिंग की शुरुआत 1960 में कैलिफोर्निया में जेट प्रोपल्सन प्रयोगशाला के माध्यम से किए गए काम के साथ हुई और इसमें अंतरिक्ष यान द्वारा भेजे गए चंद्रमा की सतह की टेलीविजन छवि को डिजिटाइज करना शामिल था, अन्य उपयोगों में

❑ शोध अध्येत्री, पुस्तकालय और सूचना विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
❖ विभागाध्यक्ष, पुस्तकालय और सूचना विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

सैन्य खुफिया जानकारी, शहरी नियोजन, चिकित्सा और डिजिटल वीडियो और फोटोग्राफी का कोर्स शामिल था।

**डिजिटल लाइब्रेरी के उद्देश्य :**

1. एक डिजिटल पुस्तकालय विषयों में अनुसंधान, शिक्षण और विद्वानों के संचार का समर्थन करने के लिए सुविधाएं और सेवाएं प्रदान करता है।
2. यह प्रिंट और डिजिटल जानकारी एकत्र करने, संगठित करने और देखभाल करने और भविष्य में उपयोग करने के बिंदु पर प्रसार करने में मदद करता है।
3. यह सूचना तक पूर्ण पहुंच प्रदान करता है।
4. यह डिजिटल और इलेक्ट्रानिक सूचना के प्रवेश द्वार के रूप में कार्य करता है।
5. यह एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है और एक स्थान पर कई स्रोतों से सामग्री को एकीकृत करता है।

**डिजिटल लाइब्रेरी के लाभ :**

1. कोई शारीरिक सीमा नहीं: उपयोगकर्ता को शारीरिक रूप से पुस्तकालय जाने की आवश्यकता नहीं है। दुनिया भर के लोग एक ही जानकारी का उपयोग कर सकते हैं।
2. 24×7 पहुंचः डिजिटल पुस्तकालयों का एक बड़ा फायदा यह है कि लोग इसकी जानकारी तक 24×7 पहुंच सकते हैं।
3. मल्टीपल एक्सेसः डिजिटल लाइब्रेरी के एक ही संसाधन का उपयोग कई संस्थानों और उपयोगकर्ताओं द्वारा एक साथ किया जा सकता है।
4. सूचना पुनर्प्राप्तिः उपयोगकर्ता पूरे संग्रह को खोजने के लिए किसी भी खोज शब्द का उपयोग करने में सक्षम है। यह बहुत ही उपयोगकर्ता के अनुकूल इंटरफेस प्रदान करता है, इसके संसाधनों पर क्लिक करने योग्य पहुंच प्रदान करता है।
5. परिरक्षण और संरक्षणः भौतिक संग्रह के लिए, डिजिटलीकरण एक दीर्घकालिक संरक्षण समाधान नहीं है, लेकिन उन सामग्रियों के लिए उपयोग प्रतियां प्रदान करने में सफल होता है जो अन्यथा बारम्बार उपयोग से संशोधन में आते हैं।
6. पारंपरिक पुस्तकालय भंडारण स्थान द्वारा सीमित होते हैं लेकिन डिजिटल पुस्तकालयों में बहुत अधिक जानकारी संग्रहीत करने की क्षमता होती है। डिजिटल जानकारी के लिए उन्हें रखने के लिए बहुत कम भौतिक स्थान की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, मीडिया भंडारण प्रौद्योगिकियां पहले से कहीं अधिक सस्ती हैं।
7. आसानी से सुलभः कोई भी किसी भी समय किसी भी जगह से डिजिटल लाइब्रेरी तक पहुंच सकता है।

**डिजिटल लाइब्रेरी के नुकसान :**

1. कॉपीराइटः एक लेखक की कृति को उसकी स्वीकृति के बिना दूसरों द्वारा स्वतंत्र रूप से स्थानांतरित किया जा सकता है, यहां डिजिटलीकरण कॉपीराइट कानून का उल्लंघन करता है।
2. पहुंच की गतिः जैसे-जैसे कई कंप्यूटर इंटरनेट से जुड़े होते हैं इसकी पहुंच की गति यथोचित रूप से कम होती जाती है।
3. प्रारंभिक लागत अधिक हैः एक डिजिटल लाइब्रेरी की बुनियादी ढांचा लागत जो हार्डवेयर, सॉटवेयर, लीजिंग संचार सर्किट की लागत आमतौर पर बहुत अधिक है।
4. बैंडविड्थः डिजिटल पुस्तकालयों को मल्टीमीडिया संसाधनों के हस्तांतरण के लिए उच्च बैंडविड्थ की आवश्यकता होती है।
5. पर्यावरणः यह एक पारंपरिक पुस्तकालय के पर्यावरण को पुनः पेश नहीं कर सकता है। क्योंकि बहुत से लोगों को कंप्यूटर स्क्रीन पर पढ़ने की सामग्री की तुलना में मुद्रित सामग्री पढ़ना आसान लगता है।
6. परिरक्षणः एक डिजिटल पुस्तकालय तेजी से पुराना हो सकता है और तकनीकी विकास के कारण इसका डेटा अप्राप्य हो सकता है।[2]

**डिजिटल लाइब्रेरी बनाने में चुनौतियां :** 1990 की शुरुआत से आशावाद और प्रचार को इस अहसास से बदल दिया गया है कि डिजिटल पुस्तकालयों का निर्माण एक कठिन, महंगा और दीर्घकालिक प्रयास होगा। प्रभावी डिजिटल पुस्तकालयों का निर्माण गंभीर चुनौतियां हैं। **डिजिटल** सूचना की अद्वितीय प्रकृति, यह कम निश्चित है, आसानी से कॉपी की जाती है और दूरस्थ रूप से एक साथ कई उपयोगकर्ताओं द्वारा सुलभ है। डिजिटल पुस्तकालयों के विकास का सामना करने वाले कुछ और गंभीर मुद्दों को नीचे उल्लेखित किया गया है।

**डिजिटल लाइब्रेरी की आवश्यकता क्यों है :** विज्ञान, मानविकी, सामाजिक विज्ञान और पुस्तकालयों में सूचना विस्फोट का सामना करना पड़ रहा है। उनकी सेवा बनाए

रखने के लिए डिजिटल पुस्तकालयों की भूमिका बहुत आवश्यक है। वर्तमान परिदृश्य में डिजिटल लाइब्रेरी दुनिया में हर हिस्से में फैल रहा है। इसे नियंत्रित करना बहुत आसान है इनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया गया है।

1. गुणवत्ता आधारित सेवा प्रदान करने और उपयोगकर्ताओं की आवश्यकता को पूरा करने के लिए।
2. डिजिटल पुस्तकालय, पुस्तकालय के कर्मचारियों और समय की बचत करता है।
3. डिजिटल पुस्तकालय सूचनाओं को पुनः प्राप्त करने में विशेष रूप से सक्षम होगा।
4. डिजिटल लाइब्रेरी दूरस्थ शिक्षा के लिए अधिक सुविधाजनक है।
5. डिजिटल लाइब्रेरी कम लागत वाली तकनीक है।

**डिजिटल वातावरण में लाइब्रेरियन की भूमिकाः** डिजिटल वातावरण में लाइब्रेरियन की भूमिका सूचना प्रबंधक, ज्ञान प्रबंधक, मध्यस्थ, सूत्रधार, अंतिम-उपयोगकर्ता ट्रेनर, वेब साइट बिल्डर, शोधकर्ता, इंटरफ़ेस डिजाइनर, सूचना वैज्ञानिकों के रूप में होती है-

**डिजिटल** जानकारी के उदय में लाइब्रेरियन की भूमिका और एक नई पीढ़ी के उद्भव की ओर जाती है लाइब्रेरियन को ''साइबर लाइब्रेरियन'' या ''साइब्रेरियन'' कहा जाता है। पुस्तकालयों में प्रौद्योगिकी की बढ़ती भूमिका महत्वपूर्ण है। नयी तकनीकें सूचना और लाइब्रेरियन की पहुंच बढ़ा रहे हैं जो उपयोगकर्ताओं की विकसित जरूरतों के अनुकूल हैं। नए पर्यावरण यह निर्णय लेने के लिए लाइब्रेरियन के लिए बहुत मुश्किल होगा क्या आयोजित किया जाना चाहिए और संग्रह को कैसे व्यवस्थित करना चाहिए? आदि क्योंकि नया वातावरण होगा, वास्तव में यह तय करना लाइब्रेरियन के लिए चुनौतीपूर्ण होता है। नए माहौल में किसी को भी जिनके पास डिजिटल पुस्तकालयों के नेटवर्क तक पहुंच हो सकती है।[3]

**साहित्य समीक्षा :** लेख का यह भाग डिजिटल लाइब्रेरी के साथ उपयोगकर्ता के अनुभव से संबंधित अनुसंधान के बारे में चर्चा करता है। यह डिजिटल लाइब्रेरी के साथ उपयोगकर्ता की राय, दृष्टिकोण, संतुष्टि और सेवा के अनुभवों को समझने में सहायक हो सकता है, जिसे डिजिटल लाइब्रेरी के उपयोग के प्रति उपयोगकर्ता की संतुष्टि को बढ़ाने के लिए आगे माना जा सकता है।

**यादव,** के.आर.[3] ने अपने अध्ययन में बहुआयामी शिक्षा प्रणाली के विकास के साथ, पुस्तकालयों और सूचना विज्ञान के महत्व को बढ़ावा दिया है। लेखक ने बताया कि न केवल पारंपरिक पुस्तकालय आकार में बड़े हुए हैं, बल्कि डिजिटल लाइब्रेरी के रूप में कहे जाने वाले पुस्तकालयों की एक नई अवधारणा अस्तित्व में आई है। न केवल पुस्तकालय और सूचना सेवाओं में बल्कि पुस्तकालय और सूचना पेशेवरों की भूमिकाओं की अपेक्षाओं में भी डिजिटल लाइब्रेरी के रूप में बहुत बदलाव आए हैं। शोधकर्ता ने बताया है की तकनीकी विस्फोट में वृद्धि कुछ दशकों में हमारी जीवनशैली को बदल रही है। इसलिए, डिजिटल लाइब्रेरी आधुनिक समाज में सूचना के प्रसार के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। एक डिजिटल लाइब्रेरी में आजीवन लेयरिंग, रिसर्च, स्कॉलरली कम्युनिकेशन के साथ-साथ हमारे रिकॉर्ड किए गए नॉलेज के संरक्षण और संरक्षण के लिए डिजिटल कलेक्शन, सर्विसेज और इंफ्रास्ट्रक्चर शामिल हैं। इस शोध पत्र में डिजिटल लाइब्रेरी, उनकी जरूरतों, इसके लाभ और पुस्तकालय के डिजिटलीकरण की चुनौतियों और डिजिटल पुस्तकालयों में लाइब्रेरियन की भूमिका पर भी ध्यान केंद्रित किया गया हैं।

**थैकर, के** और वाघेला, पी.एस.[4] ने अपने अध्ययन में पाया कि इंटरनेट और डिस्ट्रिब्यूटेड नेटवर्क सिस्टम से सूचना प्रणाली और उसके संबंधित क्षेत्रों में अनुसंधान के लिए एक नयी आशा उत्पन हुई है। डिजिटल लाइब्रेरी, लाइब्रेरी और सूचना विज्ञान में आधुनिकतम विकास में से एक है, जो अपने उपयोगकर्ता को वेब ब्राउजर के माध्यम से जानकारी लेने में मदद करता है। डिजिटल लाइब्रेरी को सूचना का वर्गीकरण, अपने सहायक और एक जगह के साथ आयोजित किया जाता है जहां सूचना को डिजिटल प्रारूप में रखा जाता है और इसे नेटवर्क पर पुनर्प्राप्त किया जा सकता है। शोधकर्ता ने बताया कि पिछले एक दशक से शोधकर्ता डिजिटल लाइब्रेरी के उपयोगकर्ताओं पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं ताकि वे अधिक कुशल और प्रभावी प्रणाली विकसित कर सकें और उपयोगकर्ताओं को गुणवत्ता सेवा प्रदान कर सके। शोध पत्र का उद्देश्य अपने उपयोगकर्ताओं के सूचना के संबंध में डिजिटल लाइब्रेरी पर साहित्य प्रदान करना है जो भविष्य के अनुसंधान के लिए सहायक हो सकता है।

**शोधकर्ता** उपयोगकर्ताओं को सीधे पुस्तकालयों के साथ जोड़ने के लिए वायरलेस तकनीक का उपयोग करके सिस्टम अपग्रेडेशन पर काम कर रहे हैं। इसके अलावा,

डिजिटल लाइब्रेरी के संबंध में उपयोगकर्ता की धारणा, दृष्टिकोण, अनुकूलन और संतुष्टि जैसे अन्य क्षेत्रों पर भी चर्चा की है।

**खान,** ए. और खान, जी.[5] ने शोध छात्रों के बीच डिजिटल लाइब्रेरी को अपनाने वाले कारकों की जांच की और निष्कर्षों से पता चला कि इंटरफेस विशेषताएँ संज्ञानात्मक प्रतिक्रिया को प्रभावित करती हैं जो डिजिटल लाइब्रेरी का उपयोग करने के छात्र के इरादे का अनुमान लगाती हैं, जबकि नेविगेशन, व्यक्तिगत अंतर और सिस्टम विशेषताओं ने उपयोग की आसानी को काफी प्रभावित किया। सिस्टम की विशेषताओं और सिस्टम की गुणवत्ता से उपयोगिता सीधे प्रभावित होती है। अंत में, यह पाया गया कि उपयोगिता का डिजिटल लाइब्रेरी उपयोग के इरादे पर सबसे अधिक प्रभाव है।

**सुना,** जे., और युआन, बी.[6] डिजिटल लाइब्रेरीज नए सामाजिक फायदे का वादा करती हैं, विशेष रूप से डिजिटल या मोबाइल समय में ई-लर्निंग के लिए। पुस्तकालय और सूचना पेशेवरों को डिजिटल ज्ञान और कौशल प्राप्त करने की आवश्यकता होती है क्योंकि पुस्तकालय अत्यधिक आईटी प्रभावित सेवा पेशे में से एक है। यह लेख डिजिटल पुस्तकालय अनुसंधान में वर्तमान रुझानों का अवलोकन देता है जिसमें डिजिटल लाइब्रेरी विशेषता, लाभ, नुकसान और कार्य शामिल हैं।

**महेश,** जी. और मित्तल, आर.[7] ने हाल के वर्षों में भारत में कई डिजिटल पुस्तकालय के विकास की पहल देखी हैं। भारत में डिजिटल लाइब्रेरी पहले के विकास और वर्तमान स्थिति को समझने के लिए, जैसा कि विद्वानों की पत्रिकाओं के माध्यम से फिर से अध्ययन किया है, भारत में डिजिटल पुस्तकालयों पर 63 प्रकाशित अध्ययनों की समीक्षा की है। अध्ययन से पता चलता है कि अधिकांश लेख डिजिटल पुस्तकालयों और डिजिटल संग्रह को विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं, कॉपीराइट पर कुछ अध्ययनों को छोड़कर डिजिटल झूठ बोलने वालों का प्रबंधन है। डिजिटल अधिकार प्रबंधन, सुरक्षा और डिजिटल लाइब्रेरी नीतियों जैसे मुद्दों पर कई अध्ययन हुए हैं।

**समस्या का वर्णनः** वर्तमान अध्ययन का शीर्षक ''गौतम बुद्ध केंद्रीय पुस्तकालय (बी.बी.यू.) के उपयोगकर्ताओं की डिजिटल लाइब्रेरी के महत्व पर अवधारणा'' है।

**विश्वविद्यालय प्रोफाइल :** बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय (बीबीएयू) लखनऊ, उत्तर प्रदेश में एक केंद्रीय विश्वविद्यालय है। विश्वविद्यालय का नाम भारतीय संविधान के निर्माता बाबासाहेब अम्बेडकर के नाम पर रखा गया है। विश्वविद्यालय प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उच्च शिक्षा के शिक्षण को बढ़ावा देने के लिए समर्पित है। विश्वविद्यालय की स्थापना 10 जनवरी 1996 को हुई थी।

**गौतम बुद्ध केंद्रीय पुस्तकालयः** ज्ञान और सूचना के प्रभावी प्रसार के माध्यम से ज्ञान और अनुप्रयोग को बढ़ावा देने के लिए जनवरी 1998 में सेंट्रल लाइब्रेरी की स्थापना की गई थी। भगवान गौतम बुद्ध के नाम पर इसका नाम गौतम बुद्ध सेंट्रल लाइब्रेरी रखा गया है। पुस्तकालय, पुस्तकालय सलाहकार समिति (एलएसी) द्वारा शासित है।

**अध्ययन का उद्देश्यः** - अनुसंधान कार्य का मुख्य उद्देश्य बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय पुस्तकालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश में उपयोगकर्ताओं पर डिजिटल लाइब्रेरी के प्रति उनकी अवधारणा के प्रभाव को प्रकट करना है। अध्ययन के विशिष्ट उद्देश्य इस प्रकार हैं:

1. डिजिटल लाइब्रेरी के प्रति उच्च शिक्षण संस्थानों में उपयोगकर्ताओं की जागरूकता का निर्धारण करना
2. डिजिटल लाइब्रेरी का उपयोग करने के उद्देश्य और कारण का निर्धारण करना
3. डिजिटल लाइब्रेरी का उपयोग करने पर उपयोगकर्ताओं की संतुष्टि के स्तर का पता लगाने के लिए
4. डिजिटल लाइब्रेरी के प्रति उपयोगकर्ता की धारणाओं को निर्धारित करने के लिए।

**अध्ययन की परिकल्पनाएँ : -**

संबंधित साहित्य और अध्ययन के लिए निर्धारित उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित परिकल्पनाएँ तैयार की गई हैं:

1. एच 1: डिजिटल लाइब्रेरी की उपयोगिता के बारे में शोधकर्ताओं के बीच एक समान राय मौजूद है।
2. एच 2:डिजिटल लाइब्रेरी के उपयोग और उपयोग में समस्याएं हैं।

**शोध प्रविधिः** अध्ययन हमेशा कई तथ्यात्मक आंकड़ों में बदल जाता है। आवश्यक जानकारी को प्राप्त करने के लिए, सबसे लोकप्रिय सर्वेक्षण पद्धति का उपयोग किया गया है।

**अध्ययन** बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय पुस्तकालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश के उपयोगकर्ताओं के बीच आयोजित किया गया। ऐसा करने के लिए, सर्वेक्षण

तकनीक और एक अर्ध-संरचना प्रश्नावली, अवलोकन, साक्षात्कार विधि का व्यापक रूप से डेटा संग्रह के लिए उपयोग किया गया है। अध्ययन के लिए पूरे उपयोगकर्ताओं का चयन किया गया इसलिए सरल यादृच्छिक नमूना तकनीक का संचालन किया जायगा।

**प्रस्तुत** अध्ययन में यह सबसे लोकप्रिय और व्यापक रूप से उपयोग की जाने वाली प्रश्नावली विधि का उपयोग आवश्यक जानकारी को प्राप्त करने के लिए किया गया। प्रश्नावली को व्यक्तिगत माध्यम से ई-मेल व इंटरनेट (वेब-प्रश्नावली) द्वारा वितरित किया गया।

**अध्ययन** के प्रतिभागी बीबीएयू में यूजी, पीजी और पीएचडी छात्र हैं। विभिन्न तरीकों के माध्यम से डेटा एकत्र करने के बाद अगले चरण में डेटा का विश्लेषण किया गया है। वर्तमान विश्लेषण में लखनऊ के ''बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय'' के गौतम बुद्ध सेंट्रल लाइब्रेरी के उपयोगकर्ताओं में डिजिटल लाइब्रेरी, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी कौशल (आईटी) और पुस्तकालय शिक्षा का विश्लेषण किया है।

**अध्ययन** के डेटा संग्रह के लिए 110 प्रश्नावली उपयोगकर्ताओं के लिए पुस्तकालय में वितरित की गई और 100 भरे हुए प्रश्नावली प्राप्त हुए। इसलिये, डेटा विश्लेषण 100 प्रश्नावली पर आधारित है।

**तालिका 1**

**डिजिटल लाइब्रेरी के बारे में जागरूकता और उपयोग**

| विकल्प | उत्तरदाता | | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| | हां | नहीं | |
| डिजिटल लाइब्रेरी के बारे में जानते हैं | 95 | 05 | 95 |
| डिजिटल लाइब्रेरी का उपयोग करते हैं | 90 | 10 | 90 |
| कुल | | 100 | 100 |

**तालिका 1ः** का परिणाम दर्शाता है कि 95 प्रतिशत उत्तरदाता डिजिटल लाइब्रेरी के बारे में जानते हैं, और 90 प्रतिशत उत्तरदाता डिजिटल लाइब्रेरी का उपयोग करते हैं, यह तालिका दिखाती है कि अधिकांश उत्तरदाता डिजिटल लाइब्रेरी के बारे में जानते और उनका उपयोग भी करते हैं।

**तालिका 2**

**डिजिटल लाइब्रेरी का उपयोग करने का उद्देश्य**

| विकल्प | उत्तरदाता | प्रतिशत |
|---|---|---|
| अध्ययन कार्य के लिए | 40 | 40 |
| अद्यतन विषय ज्ञान के लिए | 20 | 20 |
| लेख लिखने के लिए | 10 | 10 |
| शोध कार्य के लिए | 30 | 30 |
| कुल | 100 | 100 |

**तालिका 2ः** के परिणाम से पता चलता है कि अधिकांश छात्र (40 प्रतिशत) अध्ययन कार्य के लिऐ डिजिटल लाइब्रेरी का उपयोग कर रहे हैं। तालिका से यह भी स्पष्ट है कि 30 प्रतिशत उपयोगकर्ता शोध कार्य के लिए डिजिटल लाइब्रेरी का उपयोग कर रहे हैं, 20 प्रतिशत अद्यतन विषय ज्ञान के लिए लाइब्रेरी का उपयोग कर रहे हैं, जबकि 10 प्रतिशत उपयोगकर्ता शिक्षण कार्य हेतु और लेख लिखने के लिए डिजिटल लाइब्रेरी का उपयोग कर रहे हैं। यह तालिका दर्शाती है कि अधिकांश छात्र अध्ययन कार्य के लिऐ और शोध कार्य के लिए डिजिटल लाइब्रेरी का उपयोग कर रहे हैं!

**तालिका 3**

**डिजिटल लाइब्रेरी की उपयोग आवृत्ति**

| विकल्प | उत्तरदाता | प्रतिशत |
|---|---|---|
| दैनिक | 36 | 36 |
| मासिक | 25 | 25 |
| दैनिक | 25 | 25 |
| मासिक | 14 | 14 |
| कुल | 100 | 100 |

**तालिका 3** के परिणाम से पता चलता है कि अधिकांश छात्र (36 प्रतिशत) शिक्षा में डिजिटल लाइब्रेरी का उपयोग अपने दैनिक जीवन में करते हैं। तालिका से यह भी स्पष्ट है कि 25-25 प्रतिशत उपयोगकर्ता साप्ताहिक और मासिक में डिजिटल लाइब्रेरी का उपयोग हैं, 14 प्रतिशत उपयोगकर्ता कभी-कभी डिजिटल लाइब्रेरी का उपयोग करते हैं।

**तालिका 4**

**लाइब्रेरी में प्रिंट आउट सुविधा**

| विकल्प | उत्तरदाता | प्रतिशत |
|---|---|---|
| हां | 100 | 100 |
| नहीं | 0 | 0 |
| कुल | 100 | 100 |

तालिका 4 के परिणाम से पता चलता है कि सभी छात्र (100 प्रतिशत) अध्ययन कार्य के लिऐ लाइब्रेरी प्रिंट आउट सुविधा का उपयोग कर रहे हैं।

**तालिका 5**

**सूचना साक्षरता कार्यक्रम में भाग लेना**

| विकल्प | रिस्पांस | प्रतिशत |
|---|---|---|
| हां | 70 | 70 |
| नहीं | 30 | 30 |
| कुल | 100 | 100 |

तालिका 5 के परिणाम से पता चलता है कि अधिकांश छात्र (70 प्रतिशत) अध्ययन कार्य के लिऐ लाइब्रेरी सूचना साक्षरता कार्यक्रम में भाग लेते हैं। तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि 30 प्रतिशत छात्र कार्यक्रम में भाग नहीं लेते हैं।

**तालिका 6**

**डिजिटल लाइब्रेरी ब्राउज़ करते समय समस्या का सामना करना पड़ता है**

| विकल्प | उत्तरदाता | प्रतिशत |
|---|---|---|
| कई जर्नल उपलब्ध नहीं हैं | 32 | 32 |
| प्रशिक्षण की कमी | 12 | 12 |
| बहुत समय लगेगा | 17 | 17 |
| प्रिंट जर्नल बेहतर है | 28 | 28 |
| कॉपीराइट / लाइसेंसिंग मुद्दे | 11 | 11 |
| कुल | 100 | 100 |

**तालिका 6** के परिणाम से ज्ञात होता है की (32 प्रतिशत) छात्र मानते हैं की डिजिटल लाइब्रेरी की खोज में बहुत से जर्नल प्राप्त नहीं होते हैं। 28 प्रतिशत छात्रों की मान्यता है की प्रिंट जर्नल ज्यादा बेहतर होते हैं। 17 प्रतिशत छात्र मानते हैं कि जर्नल सर्च करने में ज्यादा समय लगता है। 12 प्रतिशत उपयोगकर्ता मानते हैं कि उनके सर्च करने की प्रक्रिया में प्रशिक्षण की कमी है। 11 प्रतिशत उपयोगकर्ता कॉपीराइट / लाइसेंसिंग मुद्दे को प्रयोग में बाधा मानते है! **उपर्युक्त** पूर्ण विश्लेषण के प्रकाश में निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अधिकांश उत्तरदाता डिजीटल लाइब्रेरी का उपयोग करते हैं। वे सभी अपने अध्ययन कार्य के लिए डिजीटल लाइब्रेरी का उपयोग करते हैं, अधिकांश छात्र अध्ययन कार्य के लिए लाइब्रेरी में सूचना साक्षरता कार्यक्रम में भाग लेते हैं। किन्तु 32 प्रतिशत छात्र मानते हैं कि डिजीटल लाइब्रेरी की खोज में बहुत से जर्नल प्राप्त नहीं होते हैं तथा 17 प्रतिशत यह भी मानते हैं कि जर्नल सर्च करने में अधिक समय लगता है।

## संदर्भ


1. http://desarrolloweb.dlsi.ua.es/digital-libraries/what-is-a-digital-library
2. https://www.hrishiblogbuddhi.com/digital-library-objectives-advantages-disadvantage
3. Yadav, K. R., *'Development of Digital Library in India Issues and Challenges: Role of librarian in Digital Environment'*, International Journal of Advanced Educational Research. Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 425-427, ISSN: 2455-6157
4. Thaker, K. & Vaghela, P.S., *'Digital Library and User's Experience: A Literature Review'*. SSARSC International Journal of Library, Information Networks and Knowledge. Volume 2; Issue 1; January-June 2017, ISSN 2455-5207
5. Khan, A. & Khan, G., *'The Impact of Digital Library Resources Usage on Engineering Research Productivity: an Empirical Evidences from Pakistan'*. Collection Building, 36(2), 37-44. doi:10.1108/cb-10-2016-0027
6. Suna, J. & Yuan, B. (2012). *'Development and Characteristic of Digital Library as a Library Branch'*. International Conference on Future Computer Supported Education Development and Characteristic of Digital Library as a Library Branch
7. Mahesh, G., & Mittal, R., *'Digital Libraries in India: A Review'*. Libri, 2008, 58(1). doi:10.1515/libr.2008.002
8. http://www.bbau.ac.in/

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

# नवादा जिले की फसल गहनता : एक भौगोलिक अध्ययन

❑ डॉ. अमर कुमार

बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य आवश्यकता की पूर्ति हेतु कृषिगत उत्पादकता में अभिवृद्धि अपरिहार्य है। अधिक कृषि उत्पादन के लिए कृषि भूमि में विस्तार की गुंजाइश नहीं के बराबर है। अतः फसल गहनता कृषि उत्पादकता में अभिवृद्धि का अपरिहार्य माध्यम है। प्रस्तुत शोध–पत्र में फसल गहनता का सूक्ष्म स्तर पर अध्ययन करने के लिए नवादा जिला को एक प्रतीक अध्ययन क्षेत्र के रूप में चुना गया है। यह दक्षिण गंगा के विशाल मैदान का एक अभिन्न अंग है। जनसंख्या का संकेन्द्रण इस क्षेत्र में अधिक है, अतः इनके भरण–पोषण हेतु यहाँ पर खाद्यान्न फसलों की गहन कृषि की जाती है। अध्ययन क्षेत्र की औसत फसल गहनता 164.52 प्रतिशत है। क्षेत्रीय विषमता 133.34 प्रतिशत से लेकर 164.52 प्रतिशत तक मिलती है। तात्पर्य यह कि नवादा जनपद की कृषि भूमि के 64.52 प्रतिशत भाग पर वर्ष में दो या दो से अधिक बार फसलें उत्पादित की जाती हैं। शेष कृषि क्षेत्र एक फसली क्षेत्र के अंतर्गत आता है, जिन क्षेत्रों में सिंचन सुविधाएँ सुलभ नहीं है तथा कृषि विकास हेतु नवीन कृषि साधनों का अल्प विकास हुआ है, वहाँ पर प्रकृति पर आधारित कृषि की जाती है और यहीं पर फसल गहनता कम है।

**फसल** गहनता से तात्पर्य कृषि भूमि उपयोग क्षमता से है, जिसका निर्धारण एक निश्चित क्षेत्र में एक वर्ष में ली जाने वाली फसलों की संख्या या आवृत्ति से किया जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में बिहार राज्य के नवादा जिले के 14 प्रखंडों में फसल गहनता का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया और यही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का उद्देश्य भी है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में फसल गहनता के निर्धारण हेतु 14 प्रखंडों को फसल गहनता की दृष्टि से विभिन्न स्तरों में विभाजित कर उनके क्षेत्रीय स्वरूप को आलोकित किया गया है।

**प्रस्तुत** शोध के लिए संबंधित प्रखंड का मानचित्र प्राप्त किया गया है। फसल गहनता के विश्लेषण हेतु प्रखण्ड को अध्ययन इकाई माना गया है तथा जिला अर्थ एवं संख्याधिकारी विभाग से प्रकाशित जिला सांख्यिकी पत्रिका से प्रखण्डवार द्वितीयक आँकड़ों का संग्रह एवं उपयोग किया गया है। फसल गहनता मापन हेतु भूगोलविद्ों द्वारा प्रयुक्त परम्परागत सूत्र का ही उपयोग किया गया है। इस सूत्र में फसल गहनता की गणना कुल बोये गये क्षेत्र तथा शुद्ध बोये गये क्षेत्र से सम्बन्धित प्राप्त आंकडों की सहायता से किया गया है। शुद्ध बोये गये क्षेत्र की तुलना में कुल बोया गया क्षेत्र जितना ही अधिक होगा, फसल गहनता उतनी ही अधिक होगी। प्रत्येक प्रखण्ड की फसल गहनता के निर्धारण के पश्चात यह देखा गया कि नवादा जनपद की फसल गहनता के क्षेत्रीय वितरण में असमानता मिलती है। इसलिए इस क्षेत्र की फसल गहनता को चार स्तरों में विभाजित किया गया है–

1.अति उच्च फसल गहनता
2.उच्च फसल गहनता
3.मध्यम स्तरीय फसल गहनता
4.निम्न स्तरीय फसल गहनता

**अध्ययन क्षेत्र :** नवादा जिला बिहार राज्य के विशाल गंगा मैदान के दक्षिणी भाग में स्थित है। इसका विस्तार 2494 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर है। यह जिला 24$^0$88’ उत्तरी अक्षांश तथा 88$^0$53’ पूर्वी देशांतर पर है। इसकी समुद्र तल से औसत ऊँचाई 80 मीटर है। जिले का अधिकांश भाग मैदानी है, जबकि दक्षिणी भाग (मेसकौर और नरहट) पठारी है। प्रमुख नदियाँ सकरी, पंचाने, खुशी तथा तिलैया है। यह क्षेत्र उत्तर में नालंदा एवं शेखपुरा जिला, पूरब में जमुई जिला, पश्चिम में गया जिला तथा दक्षिण में झारखंड राज्य द्वारा घिरा हुआ है। इसके अधिकांश भाग पर दोमट मिट्टी पायी जाती है। यह बिहार राज्य का एक उपजाऊँ कृषि क्षेत्र है। जिले के 63 प्रतिशत भू–भाग पर कृषि कार्य किया जाता है। यहाँ की आबादी अत्यंत सघन है। अतः खाद्यान्न की आपूर्ति के लिए सघन कृषि कार्य किया जाता है। कृषि प्रधान इस जिले की जलवायु मानसूनी है। प्रमुख मिट्टियाँ–बांगर (केवाल मिट्टी) और बल्थर (लाल–पीली मिट्टी) है। यहाँ मुख्य रूप से आम, सखुआ, बरगद, पीपल, शीशम नीम वनस्पति के रूप में पायी जाती है। जिले की कृषि भूमि के लिये सिंचाई का प्रधान स्रोत नहरें एवं नलकूप हैं। जिले के उत्तरी भू–भाग में सिंचाई सुविधाओं

❑ सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक) भूगोल विभाग सी० एम० जे० कॉलेज, दोनवारीहाट खुटौना, मधुबनी (बिहार)

का अधिक विस्तार है। अध्ययन क्षेत्र में खरीफ, रबी और गरमा तीनों ऋतुओं में फसलें उगायी जाती है। प्रमुख फसलें धान, गेहूँ, मक्का, मूंग, चना, मटर, मसूर, सरसों, सूर्यमुखी हैं।

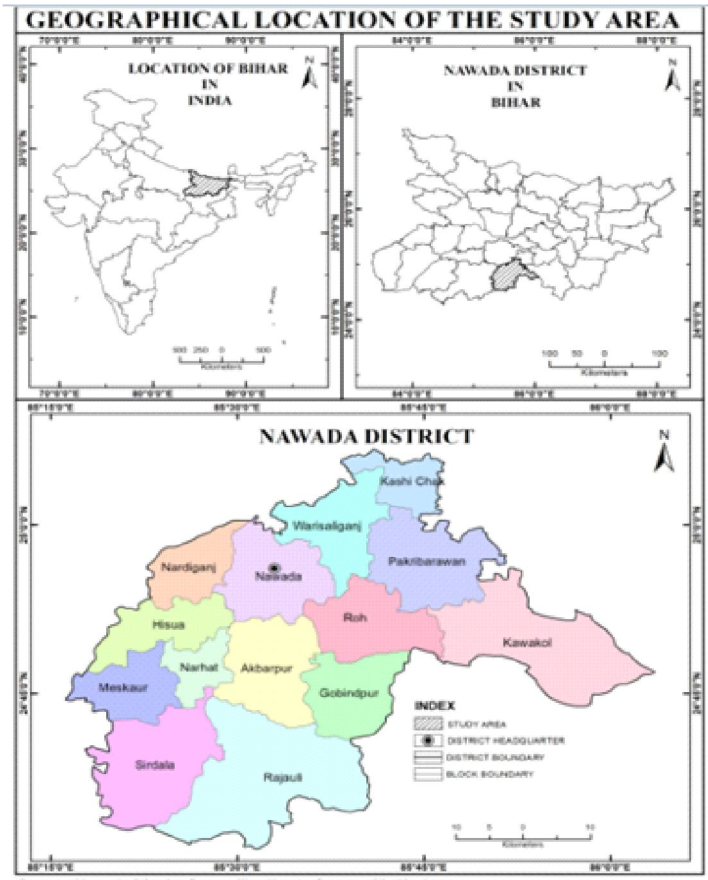


Source : Nawada District Census Handbook, Census of India, 2011

**फसल गहनता :** फसल गहनता का तात्पर्य एक निश्चित क्षेत्र में एक वर्ष में ली जाने वाली फसलों की संख्या या आवृत्ति से है। किसी क्षेत्र में फसलों की संख्या फसल गहनता का परिचायक होती है। यदि एक क्षेत्र में वर्ष में एक ही फसल उत्पन्न होती है तो उसकी गहनता 100 प्रतिशत ही होगी और यदि उसी खेत में वर्ष में दो फसलें उत्पादित की जाती हैं तो फसल गहनता 200 प्रतिशत हो जायेगी। फसलों की संख्या बढ़ने से फसल गहनता अधिक होती है, जबकि फसलों की संख्या कम होने से गहनता न्यून होती है। फसल गहनता सूचकांक सदैव प्रतिशत में होता है। यदि यह प्रतिशत कम है तो कृषि भूमि के कम सघन उपयोग का परिचायक है। गहनता सूचकांक अधिक होने पर कृषि भूमि के अधिक गहन उपयोग होने का सूचक होता है। कुल मिलाकर फसल गहनता सूचकांक तथा भूमि उपयोग की गहनता के मध्य धनात्मक संबंध होता है। किसी भी क्षेत्र में शुद्ध बोये गये क्षेत्र की अपेक्षा कुल फसल क्षेत्र का अधिक होना फसल गहनता की मात्रा को प्रदर्शित करता है। शुद्ध बोये गये क्षेत्र का विस्तार धरातलीय बनावट, मृदा की उर्वरता, वर्ष में ऋत्विक भिन्नता, सिंचाई की उपलब्धता, कृषि यन्त्रीकरण आदि द्वारा नियंत्रित होता है। अध्ययन क्षेत्र के शुद्ध बोये गये क्षेत्र का बहुत बड़ा भाग सीमित वर्षा, प्रतिबंधित सिंचाई व्यवस्था अथवा मौसमी बाढ़ से प्रभावित है, इसीलिये यहां पर भूमि का गहन उपयोग नहीं हो पा रहा है। वस्तुतः इस क्षेत्र में फसल गहनता का निर्धारण सिंचन सुविधाओं, उर्वरकों, उन्नतिशील बीजों तथा कृषि उपकरणों आदि विविध कारकों से प्रभावित है।[1]

**फसल** गहनता की गणना उन भागों में आसान होती है, जहाँ वर्ष में एक ही फसल उगायी जाती है या एक फसल के बाद तुरंत उसी खेत में दूसरी फसल उगायी जाती है। लेकिन उन खेतों की फसल गहनता ज्ञात करना कठिन कार्य

है जहाँ पर मिश्रित फसल उत्पादन व्यवस्था अपनाई जाती है। वस्तुतः अब तकनीकी विकास से बहुधा एकसार कृषि की जाने लगी है और यदि मिश्रित फसल व्यवस्था अपनायी जाती है तो उन सभी फसलों के क्षेत्र का आंकडा उपलब्ध नहीं हो पाता है।

**यद्यपि** फसल गहनता का अध्ययन अनेक विद्वानों ने किया है, लेकिन वाई.जी. जोशी[2] ने फसल गहनता के स्थान पर फसल तीव्रता, जबकि जसबीर सिंह[3] ने फसल गहनता के स्थान पर भूमि उपयोग क्षमता शब्द का आयोग किया है। बी.एस. त्यागी[4] ने फसल गहनता के स्थान पर कृषि गहनता शब्द का आयोग किया है। इन्होंने यह गणना तीन स्तरों पर की है-

1. कुल क्षेत्र में से भूमि उपयोग के अनेक पक्षों द्वारा अधिकृत क्षेत्र का प्रतिशत ज्ञात करके।
2. सम्पूर्ण फसल में से प्रत्येक फसल के अंतर्गत पड़ने वाले अधिकृत क्षेत्र का प्रतिशत ज्ञात करके।
3. शुद्ध फसल क्षेत्र में से रबी तथा खरीफ फसल मौसमों में बोयी गयी फसलों के प्रतिशत की गणना करके तत्पश्चात् प्रतिशत श्रेणियों को जोड़ा गया है। अन्त में सम्पूर्ण श्रेणी मान के जोड़ में श्रेणी की कुल संख्या से भाग देकर औसत मालूम किया है। त्यागी ने श्रेणी गुणांक की इस विधि के आधार पर ग्राम-स्तर पर कृषि गहनता ज्ञात कर नवादा जिला को पाँच वर्गो में विभाजित किया है।

**अध्ययन** क्षेत्र में फसल गहनता सूचकांक का परिकलन अधोलिखित सूत्र के आधार पर किया गया है।

$$\text{फसल गहनता} = \frac{\text{कुल बोया गया क्षेत्र}}{\text{शुद्ध बोया गया क्षेत्र}} \times 100$$

**तालिका-1** से स्पष्ट है कि नवादा जिला में फसल गहनता का वितरण असमान है। जनपद की औसत फसल गहनता से अधिक फसल गहनता सात विकासखण्डों में मिलती है। औसत से कम फसल गहनता भी सात ही विकास खण्डों में मिलती है। सर्वाधिक फसल गहनता मेसकौर प्रखण्ड में (185.34) है जबकि सबसे कम फसल गहनता नारदीगंज प्रखण्ड में मिलती है, जो केवल 133.34 प्रतिशत ही है। 6 आखंड क्रमशः गोविन्दपुर, मेसकौर, पकरीबरावाँ, नवादा, हिसुआ, एवं वारिसलीगंज अति उच्च फसल गहनता सूचकांक (170 प्रतिशत से अधिक) के अंतर्गत है जबकि काशीचक, रोह एवं रजौली तीन आखंडों में उच्च स्तर (160-170 प्रतिशत) की फसल गहनता सूचकांक पायी जाती है। मध्यम स्तर की फसल गहनता अर्थात 150-160 प्रतिशत तक गहनता केवल दो प्रखण्डों सिरदला एवं अकबरपुर में पायी जाती है। 140 से 150 पतिशत तक फसल गहनता केवल एक प्रखण्ड कौवाकोल में पायी जाती है। अति न्यून स्तर अर्थात 130-140 प्रतिशत की गहनता नरहट एवं नारदीगंज प्रखंडों में मिलती है।

**तालिका-1**

**नवादा जिला : (फसल गहनता) 2011**

| आखंड | शुद्ध बोया गया क्षेत्र हे0 | कुल बोया गया क्षेत्र हे0 | फसल गहनता (प्रतिशत) |
|---|---|---|---|
| नारदीगंज | 6706 | 8942 | 133.34 |
| नवादा | 9003 | 16103 | 178.31 |
| वारीसलीगंज | 9164 | 16207 | 176.86 |
| काशीचक | 4629 | 7715 | 166.67 |
| पकरीबरावाँ | 13537 | 25031 | 184.91 |
| कौआकोल | 6868 | 10243 | 149.14 |
| रोह | 9721 | 15895 | 163.51 |
| गोविन्दफर | 5201 | 9171 | 176.33 |
| अकबरफर | 11213 | 16850 | 150.07 |
| हिसुआ | 5356 | 9495 | 177.27 |
| नरहट | 5432 | 7377 | 135.80 |
| मेसकौर | 4665 | 8846 | 185.34 |
| सिरदला | 10617 | 16365 | 154.14 |
| रजौली | 12688 | 20637 | 162.65 |
| नवादा जिला | 114800 | 188877 | 164.52 |

स्त्रोत- जिला सांख्यिकी कार्यालय, नवादा (2011-2012)

**नवादा** जनपद की जनसंख्या में वृद्धि के साथ ही कृषि की आधुनिक तकनीकों का अनवरत विकास हुआ है। सिंचाई, उर्वरक, यन्त्रीकरण आदि का प्रयोग क्रमशः बढ़ता गया है। इसके परिणाम स्वरूप नवादा जनपद की फसल गहनता में निरन्तर परिवर्द्धन की प्रवृत्ति रही है। 1981से 2001 के बीच शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल लगभग यथावत रहा परन्तु एक फसल की जगह दो फसलों की खेती होने के कारण कुल फसल क्षेत्र अधिक बढ़ा है। यही कारण है कि नवादा जनपद में फसल गहनता जों 1981 में 151.20 प्रतिशत रही, बढ़कर 1991 में 155.78 तथा 2001 में 158.8 प्रतिशत हो गयी । यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि फसल गहनता में अभिवृद्धि एक फसली भूमि को दो फसली भूमि

बनाये जाने तक सीमित है, जो बढ़ती हुई खाद्यान्न की आवश्यकता का प्रतिफल है।

**किसी** प्रखण्ड की फसल गहनता शुद्ध बोये गये क्षेत्र, एक बार से अधिक बोये गये क्षेत्र तथा कुल बोये गये क्षेत्र से सम्बन्धित है। चूंकि इन चरों में कमोवेश परिवर्तन हुआ है, इसलिए हर प्रखण्ड की फसल गहनता में कमोबेश परिवर्तन हुआ है। यह परिवर्तन 1981 से 1991 तथा 2011 मे मध्य देखा गयी है। नवादा जनपद का औसत स्वरूप देखा जाय तो जनपद का कुल बोया गया क्षेत्र 1981 में 169240 हे0 था और गहनता 151.20 प्रतिशत थी। लेकिन कुल बोया गया क्षेत्र 1991 में 174675 हे0 तथा 2011 में 179091 हे0 हो गया है। यही कारण है कि नवादा जनपद की फसल गहनता 1981 से 2011 के मध्य बढ़कर 151.2 से 158.80 प्रतिशत हो गयी। अर्थात गहनता में 7.6 आतिशत की वृद्धि हुई है। वर्ष 2011 के आँकड़ों के अनुसार, जिले में इन तीनों के बीच के फसल गहनता में काफी अभिवृद्धि देखी गई है। इस वर्ष जिले के शुद्ध बोये गये क्षेत्र 114800 हेक्टेयर के अंतर्गत कुल बोया गया क्षेत्र का आकार 188877 हेक्टेयर था, जिससे फसल गहनता प्रतिशत 164.22 रही। यह जिले की औसत स्थिति है और इस तथ्य की ओर संकेत है कि यहाँ के कृषकों ने विविध एवं सघन कृषि उत्पादन की तकनीक को अपनाने में रूचि दिखलायी है। परन्तु जिले की विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों की सीमा के भीतर फसल वैविध्य के प्रतिरूप और उनके आकार में समानता नहीं है। तालिका में उल्लिखित प्रखंडवार तत्संबंधी आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि शुद्ध बोया गया क्षेत्र और कुल बोया गया क्षेत्र की मात्रात्मक फसल सघनता प्रतिशत आखंड के स्थानिक कारणों से निदेशित है। ये कारण सम्बद्ध प्रखंड की मिट्टी की उर्वरता, उपलब्ध सिंचाई के साधन और अन्य आधुनिक कृषि तकनीक हैं। जिले के रजौली, हिसुआ, सिरदला, गोविन्दपुर, वारिसलीगंज, पकरीबरावाँ, नवादा तथा अकबरफर प्रखंडों में दोनों आकार के क्षेत्रों के फसल गहनता प्रतिशत में 1981 से उच्चता के कई कारण है। चार अन्य नये प्रखंडों के गठन के बाद इनमें भी इसी तरह की प्रवृति दिखी है। इसका मूल कारण इन चारों प्रखंडों नारदीगंज, काशीचक, रोह तथा मेसकौर का गठन क्रमशः नवादा, पकरीबराबाँ, गोबिन्दपुर तथा सिरदला प्रखंडों के विभाजन से हुआ है। 2011 के आँकड़ों के अनुसार पूर्ववर्ती आठों प्रखंडों में तथा नवगठित चारों प्रखंडों में शुद्ध बोया गया क्षेत्र और कुल बोया गया क्षेत्र का फसल गहनता प्रतिशत सर्वाधिक है। यह अंतर 150.07 से 185.34 प्रतिशत तक है। मेसकौर सर्वाधिक फसल गहनता प्रतिशत 185.34 वाला आखंड है जबकि इसी वर्ष पकरीबरावाँ 184.91 प्रतिशत के साथ दूसरे स्थान पर है। सबसे न्यूनतम फसल गहनता वाला प्रखंड नरहट है अन्य प्रखंडों की फसल गहनता प्रतिशत की स्थिति तालिका में देखी जा सकती है[6]

**तालिका संख्या-2**

**नवादा जिला : फसल गहनता में परिवर्ततन की प्रवृत्ति**

| प्रखंडों के नाम | फसल गहनता (प्रतिशत में) | | |
|---|---|---|---|
| | 1981 | 1997 | 2011 |
| नारदीगंज | – | – | 131.99 |
| नवादा | 152.86 | 151.86 | 170.36 |
| वारीसलीगंज | 153.03 | 160.42 | 149.62 |
| काशीचक | – | – | 157.39 |
| पकरीबरावाँ | 159.78 | 156.95 | 176.05 |
| कौआकोल | 126.62 | 129.96 | 159.33 |
| रोह – | – | 162.10 | |
| गोविन्दफर | 147.22 | 147.53 | 171.13 |
| अकबरफर | 167.76 | 165.74 | 152.53 |
| हिसुआ | 157.98 | 159.57 | 175.66 |
| नरहट | 127.57 | 146.52 | 136.44 |
| मेसकौर | – | – | 164.10 |
| सिरदला | 144.57 | 149.36 | 150.25 |
| रजौली | 160.77 | 171.29 | 159.12 |
| कुल | 151.20 | 155.78 | 158.80 |

स्रोत– जिला सांख्यिकी कार्यालय, नवादा

**फसल** के गहनता का क्षेत्रीय वितरण मानचित्र 2 में चित्रित है।

**अध्ययन** क्षेत्र में वर्तमान स्थिति में भी यहाँ के कृषक कृषि उत्पादन वृद्धि के प्रति सजग हैं और कृषि क्षेत्र में तकनीकी विकास के साथ सामंजस्य करते हुए उसका लाभ लेने के प्रति सचेष्ट भी है। बीज सिंचाई सुविधाएँ रसायनिक उर्वरक और कीटनाशकों के प्रयोग द्वारा भूमि उत्पादकता के अधिकतम उपयोग के लिए तो सक्रिय है, साथ ही एक ही कृषि भूमि में कई मौसमी फसलों के उत्पादन में वो लगे है। अपनी कृषि भूमि में दो और अधिक फसलों के उत्पादन की प्रवृत्ति ने एक फसली भूमि को बहुफसली भूमि में बदल दिया है। निश्चित रूप से जिले में सिंचाई की उपलब्ध्ता पर एक प्रबल कारण या अभिप्रेरक रही है। इसने जिले में जोत के सघन कृषि के विकल्प खोले हैं। इस पूरे जिले में छोटे और सीमांत

कृषकों की बहुलता है जिनके पास धनार्जन के लिए एकमात्र संसाधन भूमि है। जिले में जनसंख्या की अभिवृद्धि ने इस संसाधन के अधिकतम उपयोग के लिए कृषकों को प्रेरित किया है और प्राप्त आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि जिले की कृषि-भूमि की अधिकतम लाभकारी बनाने के क्रम में फसल वैविध्य को यहाँ स्वीकार किया गया है।[6]

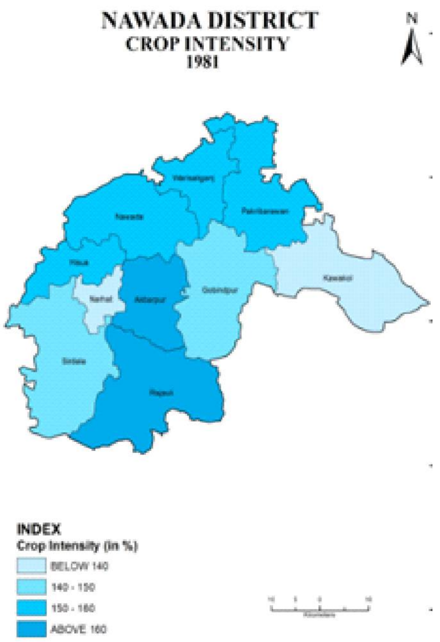

**निष्कर्ष :** इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र में उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जो प्रखंड सिंचाई संसाधनों से युक्त है और जहाँ का भू-क्षेत्र सर्वथा मैदानी और समुचित अपवाह तंत्र से सम्पन्न है उर्वरा सम्पन्न है, उनमें कुल बोये गये क्षेत्र के अधिक होने के कारण फसल गहनता प्रतिशत अपेक्षाकृत उच्च है। जैसे-गोविन्दफर, मेसकौर, पकरीबरावाँ, नवादा अकबरफर, हिसुआ तथा वारिसलीगंज उच्च फसल गहनता सूचकांक के अंतर्गत आते हैं। जहाँ कृषकों को अपनी कृषि भूमि में एकाधिक फसलों के लिए पर्याप्त सिंचाई सुविधायें उपलब्ध हैं, जबकि सम्पूर्ण कौवाकोल, नरहट तथा नारदीगंज के दक्षिण-पूर्वी भू-भाग इस दिशा में विफल हैं। इस प्रकार अब नवादा जिले में शुद्ध बोये गये क्षेत्र के बढ़ने की संभावना बहुत ही कम है, इसलिए फसल गहनता ही वह विकल्प है जिससे नवादा जिला में कृषि उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

**अध्ययन** क्षेत्र में फसल गहनता में अभिवृद्धि हेतु सिंचाई सुविधा एवं क्षमता का विकास तथा ऊसर एवं बाढ़ ग्रसित भूमि में सुधार किया जाना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि सिंचाई साधनों एवं सिंचाई क्षमता में वृद्धि तथा भूमि-सुधार के फलस्वरूप ही कृषि योग्य भूमि को कृषिगत क्षेत्र में शामिल कर कृषि क्षेत्र का विस्तार किया जा सकेगा। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि अब कृषिगत भूमि में विस्तार की गुंजाइश नही के बराबर है अतः उपलब्ध कृषि भूमि में गहन फसलोत्पादन से ही कृषि उत्पादकता बढ़ सकती है। इसके लिए आधुनिक कृषि प्रविधियों की सुविधा उपलब्ध कराना परम आवश्यक है।

## संदर्भ


1. 'शस्य गहनता एवं कृषि दक्षता : प्रतापगढ़ जनपद का एक प्रतीक अध्ययन', दि इटर्निटी, वाराणसी, वर्ष 4 अंक 4, मई 2016, पृ. 129-135 : Vol-IV, Issuse IV, May-2016
2. Joshi ,YG, *'Agriculture Geography'*, Janki Prakashan, Patna, 2005, p. 72.
3. Singh, Jashir, *'Agriculture Geography'* TMH Publication Co., New Delhi, 1984 p. 188
4. B. S. Tyagi, *'Determination of Agricultural Development : An Inter District Analysis'*, NGJOI, 1997, Vol-43 (1), p. 53-37
5. Dayal P., *'Agricultural Region of Bihar'*, IGI, Vol.25, 1950, pp.3-4
6. Statistics Department of Nawada District.

# श्रद्धांजलि

# प्रोफेसर ए.आर.एन. श्रीवास्तव

## प्रख्यात मानवशास्त्री एवं समाजशास्त्री की आत्मा चल बसी

अखौरी रतीश नंदन श्रीवास्तव, जिनसे हम सभी ए.आर.एन. श्रीवास्तव के नाम से परिचित हैं, का जन्म बिहार के आरा नगर में 8 नवम्बर 1942 को हुआ। अपनी प्रारंभिक शिक्षा आरा और पटना में पूर्ण करके 1962 में मनोविज्ञान (आनर्स) विषय से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की। 1964 में राँची विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर मानवशास्त्र में गोल्ड मैडल प्राप्त किया। राँची में वह विश्वविख्यात मानवशास्त्री प्रोफेसर एल.पी. विद्यार्थी के प्रिय शिष्य रहे। प्रोफेसर श्रीवास्तव ने पीएच.डी. उपाधि अमेरिका की एरीजोना स्टेट यूनीवर्सिटी से प्राप्त की।

1968 से 1973 तक अमेरिका में, तत्पश्चात भारत में राँची विश्वविद्यालय तथा पंडित रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर में अध्यापन किया। 1985 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में मानवशास्त्र-समाजशास्त्र के संयुक्त विभाग की स्थापना हुई और दोनों अनुशासनों के दुरूह संयुक्त दायित्व का निर्वहन करने के लिए विश्वविद्यालय ने प्रोफेसर श्रीवास्तव का अध्यक्ष पद हेतु चयन किया। पूर्ण मनोयोग से इस दायित्व को निभाते हुए उन्होंने दोनों ही विषयों की संयुक्त अकादमिक गतिविधियों का कुशलतापूर्व मार्गदर्शन करते हुए प्रख्यात अमेरिकन मानवशास्त्री ए.एल. क्रोवर के कथन "मानवशास्त्र और समाजशास्त्र जुड़वां बहिनें हैं" को सार्थकता प्रदान की। उनकी इस विलक्षण बौद्धिक क्षमता के लिए उन्हें Anthro-Sociologist कहना ही उचित होगा।

प्रोफेसर श्रीवास्तव ने अंग्रेजी एवं हिन्दी में अनेकानेक पुस्तकों का विरचन किया जिनमें से कतिपय हैं- 'Social Anthropology in India', 'The Developmental Dimension of Domestic Groups in India', 'Tribal Freedom is Anthropology', 'Essentials of Cultural Anthropology', 'भारत में मानवविज्ञान', 'सामाजिक मानव विज्ञान-विवेचन', 'सांस्कृतिक मानवशास्त्र, 'जनजातीय विकास के पांच दशक' आदि। अपनी सेवानिवृति के पश्चात और स्वर्गारोहण से पूर्व सामाजिक विज्ञानों के लिए प्रोफेसर श्रीवास्तव का अतिशय महत्वपूर्ण एवं अनूठा योगदान 10 खण्डों में विभाजित 'मानवविज्ञान विश्वकोष' है जो सामाजिक विज्ञानों के अध्येताओं के बीच उनकी स्मृति को अक्षुण्य बनाये रखेगा।

22 अक्टूबर 2020 को प्रातःकाल हृदयाघात के कारण प्रोफेसर श्रीवास्तव का देहली में अकस्मात निधन हो गया। वह साधुवृत्ति के अतिशय सरल व्यक्ति थे। वह जहाँ मानवशास्त्र के क्षेत्र में एक प्रख्यात विद्वान के रूप में प्रतिष्ठित थे वहीं समाजशास्त्रीय जगत में भी अतिशय लोकप्रिय थे। यही कारण है कि इस दुनियाँ से विदा लेने पर उनके लिए जहाँ मानवशास्त्रियों की आँखें नम हैं वहीं समाजशास्त्रियों के हृदय भी द्रवित हैं।

"राधाकमल मुकर्जी चिन्तन परम्परा" से प्रारंभिक काल से ही प्रोफेसर श्रीवास्तव जुड़े रहे। शोध पत्रिका के वर्तमान राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त करने में उनके मार्गदर्शन एवं सहयोग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आत्माओं के अस्तित्व के प्रति आनुभविक श्रृद्धा एवं विश्वास रखते हुए मैं आशा करता हूँ कि शोध पत्रिका के लिए उनकी आत्मा सदैव स्नेहाशीष प्रदान करती रहेगी। संपूर्ण पत्रिका परिवार उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि प्रदान करता है।

**जे.एस. राठौर**
सम्पादक

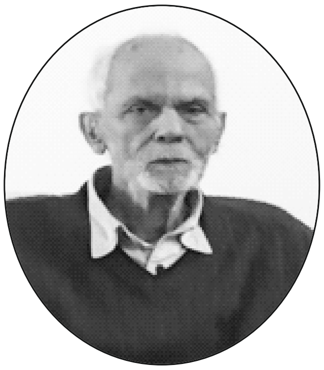

# श्रद्धांजलि

## समाजशास्त्र की विभूति
# प्रोफेसर बंशीधर त्रिपाठी
## की चिरविदा

प्रोफेसर बंशीधर त्रिपाठी अपने गुरुजनों, मित्रों, शिष्यों, सम्पर्कशीलों, पत्रकारों, पाठकों, उदासीनों और आलोचकों तक में अत्यन्त स्नेह से श्रद्धा-पुष्प चढ़ाने योग्य व्यक्तित्व थे। महान फ्रेंच समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम, जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर एवं भारतीय समाजशास्त्री प्रोफेसर गोविन्द सदाशिव धूर्ये के महान प्रशंसक थे। निर्माण की महान् साधना साधु-सन्तों के ओज और ऋषियों के वरदान की तेज की तरह उनके जीवन, उनकी कलम और उनकी समाजशास्त्रीय साधना पर उतर पड़ती। प्रोफेसर धूर्ये से प्रभावित होकर साधु-जगत् का अध्ययन करने लगे और स्वयं दो बार साधु (वैष्णव साधु एवं शैव साधु) बनकर सहभागी अवलोकनकर्त्ता के रूप में साधु समुदाय का अध्ययन कर उन्होंने 'साधूज ऑफ इण्डिया : दि सोशियोलॉजिकल व्यू' (1978) नामक पुस्तक का विरचन किया। सहभागी अवलोकन के आधार पर समाजशास्त्री अध्ययन करने वाले भारतीय समाजशास्त्रियों की श्रेणी में प्रोफेसर त्रिपाठी एकल समाजशास्त्री हैं। तत्पश्चात् 'नेचर ऑफ सोशियोलाजिकल थियोरी : दि एक्शन अप्रोच' (1977) नामक पुस्तक प्रकाश में आयी। एक अन्य कृति 'सोसाइटी टुडे एण्ड टुमारो' (1990) प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में कई समाजशास्त्रीय अवधारणाएँ एवं सिद्धान्त अन्तर्विष्ट हैं जो समाजशास्त्रीय साहित्य के लिए पूर्णतया नवीन हैं। तद्नन्तर 'अभिनव दर्शनम्' (1989), 'दि न्यू विजन' (2001), 'मुस्लिम समुदाय तथा भारतीय राजनीति' (1990), 'चारो धाम एवं अन्य यात्रा वृत्तान्त' (2000), 'मेरी अमेरिका यात्रा' (2001) इत्यादि उनकी अनेक कृतियों का प्रकाशन सामने आया। उनकी सारी कृतियाँ क्लासिक के श्रेष्ठ आसन पर समासीन की जा सकती हैं। भारत एवं भारतेतर देशों की समाजशास्त्रीय पत्रिकाओं में इनके दर्जनों शोध पत्र प्रकाशित हैं। अन्य विभिन्न पत्रिकाओं यथा साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग, हंस, साहित्य अमृत, दैनिक पत्रों, इत्यादि में इनके अनेकों लेख प्रकाशित हैं।

भारत के प्रसिद्ध और प्रतिभा प्रभु समाजशास्त्री का जन्म दिसम्बर सन् 1933 में तथा स्वर्गवास साम्प्रतिक करोना काल में 13 नवम्बर 2020 को हुआ। इनकी उच्च शिक्षा इलाहाबाद (प्रयागराज) एवं लखनऊ विश्वविद्यालयों में हुई। सन् 1966 ई. में लखनऊ विश्वविद्यालय से समाजशास्त्र में पी-एच.डी. की उपाधि से अलंकृत हुए। काशी विद्यापीठ, वाराणसी समाजशास्त्र विभाग में प्रवक्ता के पद पर सन् 1963 में इनकी नियुक्ति हुई और यहीं से प्रोफेसर समाजशास्त्र पद से 1994 में आपकी सेवा-निवृत्ति हुई।

आप राजनीतिक गतिविधियों से बहुत दूर थे। समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रकाण्ड विद्वान थे। धर्मशास्त्रों का आपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म ढंग से चिन्तन-मनन किया था। धर्म-धुरन्धर आचार्य के रूप में वे समादृत थे। स्वभाव के बड़े मधुर, सादगी के पुंज, सच्चरित्र और ईमानदार आचार्य के साथ-साथ मिलनसार एवं विनोदी भी थे। आपने अपना सारा जीवन स्वाध्याय एवं पठन-पाठन में ही अर्पित कर दिया। हिन्दी, अंग्रेजी एवं संस्कृत भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। आध्यात्मिक मत-मतान्तरों पर तो आपका गम्भीर अध्ययन था। इनके ज्येष्ठ पुत्र डॉ. नीलकान्त त्रिपाठी सम्प्रति राजकीय महाविद्यालय पलहीपट्टी वाराणसी में प्राचार्य हैं।

राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा से आप आजीवन जुड़े रहे तथा एतद्र्थ प्रमोच्च शोध लेख लिखते रहे, जो शोधार्थियों एवं आचार्यों के लिए प्रेरणा-प्रदीप हैं। प्रोफेसर त्रिपाठी अथ से अन्त तक निरन्तर स्वाध्याय एवं समाजशास्त्रीय अनुसंधान में संलग्न रहे। उनके दर्जनों शिष्य इनके निर्देशन में पी-एच.डी. की उपाधि से विभूषित होकर विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में कार्यरत हैं। इन पंक्तियों के साथ हम उन्हें श्रद्धा से मस्तक झुकाते हैं-नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषभ्यः। राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा समाज विज्ञान विकास संस्थान बरेली (उ.प्र.) प्रोफेसर त्रिपाठी की पावन स्मृतियों पर अपनी सुमनांजली अर्पित करता है। उनके सबल व्यक्तित्व को प्रणाम करते हुये श्रद्धाजंली भेंट करता है। बस, इस समय, बहते आँसुओं और भरे हृदय के साथ इतना ही।

**जे.एस. राठौर**
सम्पादक

**प्रोफेसर श्यामधर सिंह**
प्राक्तन प्रोफेसर, समजाशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।